Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी-साहित्य वैजयन्ती

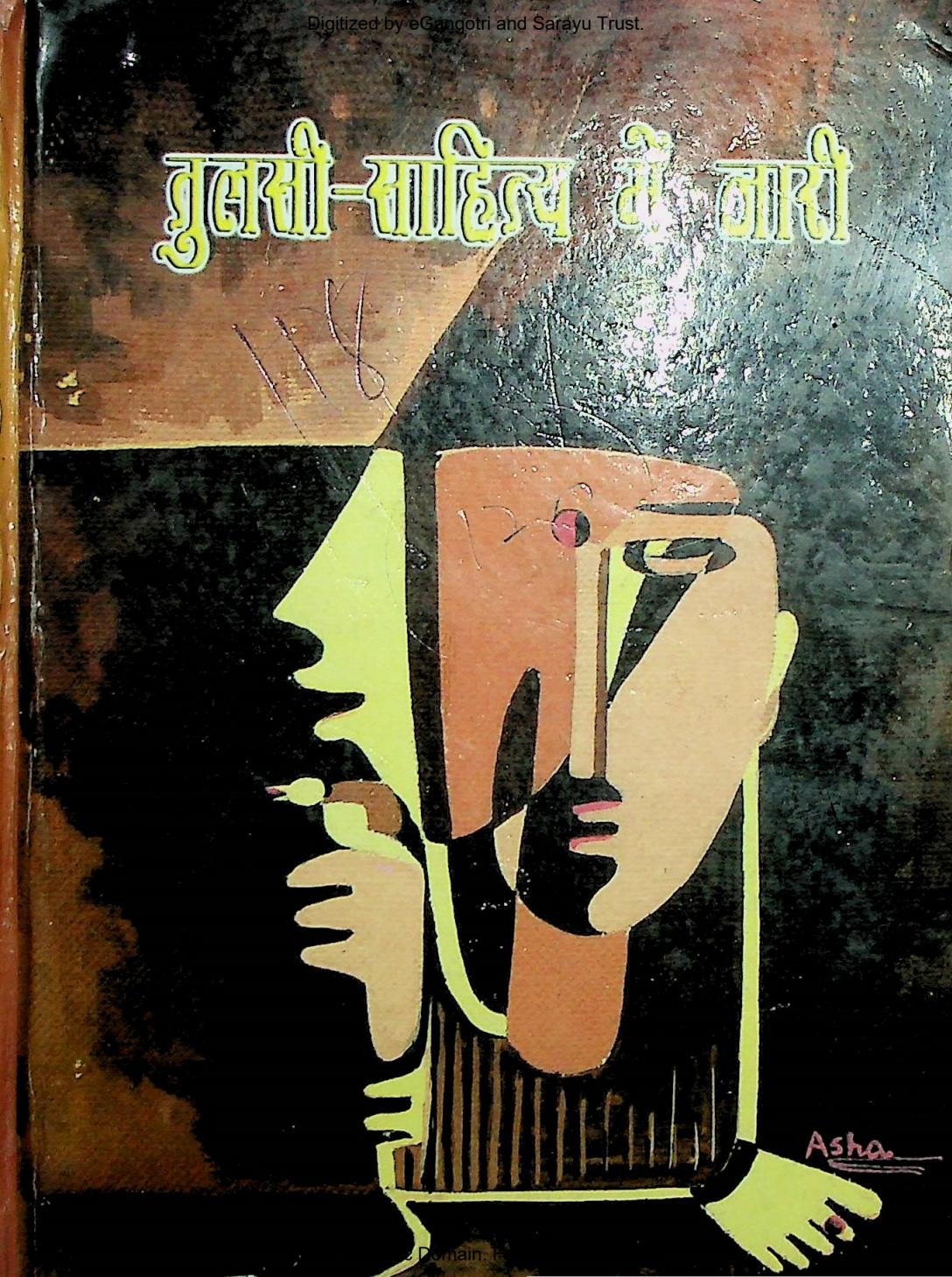

Public Domain. H

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी-साहित्य की क्यारी

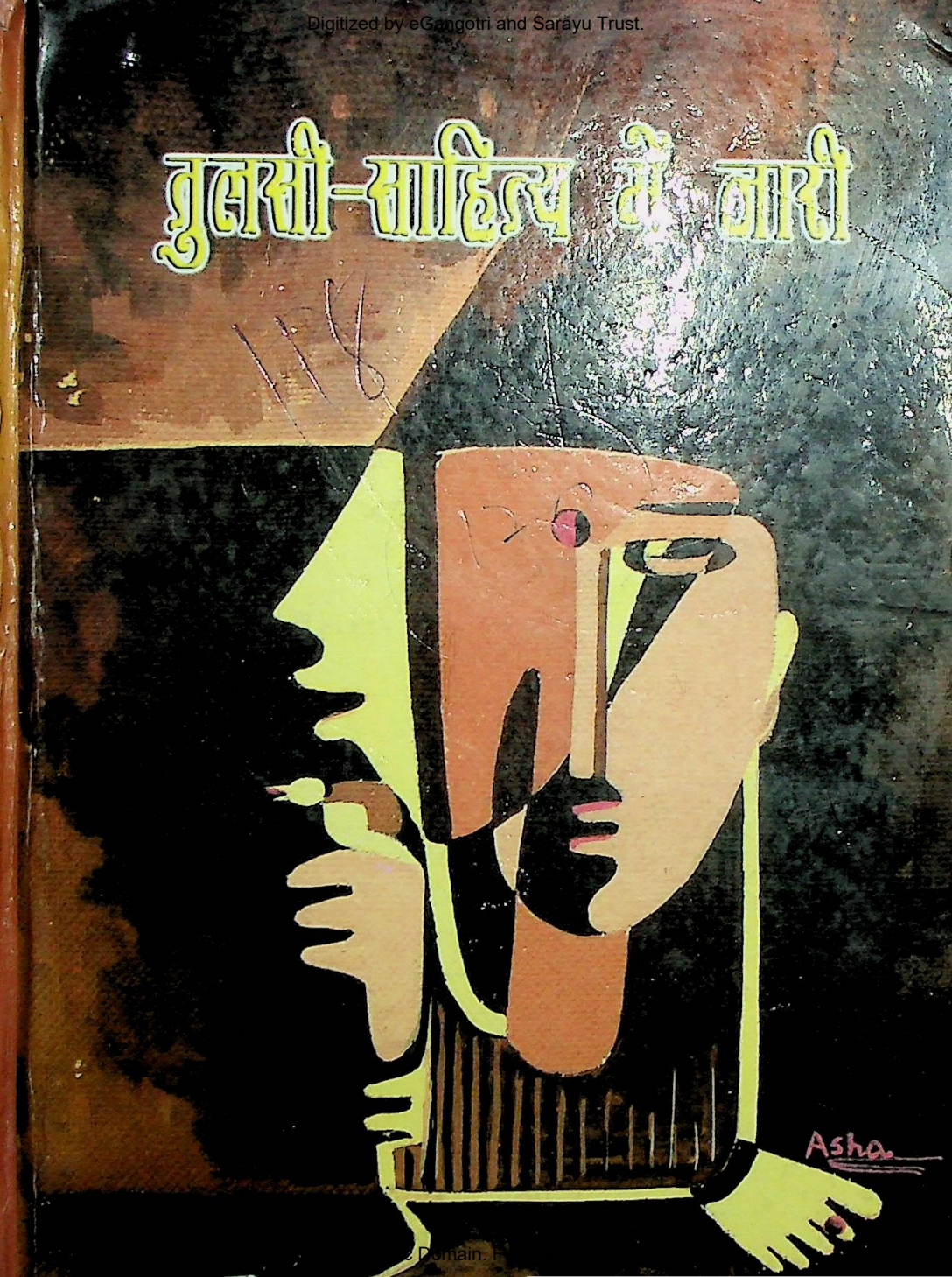

Public Domain. H

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी साहित्य में नारी

डॉ० शारदा त्यागी

ईशान प्रकाशन

17, शिवपुरी, निकट पुराना ईव्ज़ सिनेमा,
मेरठ—250001

Eeshan parkashan, Meerut

CC-0. In Public Domain. Funding by MoE-IKS

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

176
A152

समर्पण

सोलह-सत्रह वर्ष की अल्हड़-सी बालिका पाणिग्रहण करने वाले जिन हाथों में अपने हाथ के साथ-ही अपना सब कुछ, समूचे का समूचा, समर्पित कर निश्चिंत भाव से तीस वर्षों तक दांपत्य के सहज सुख को अनुभूत करती रही...और...जिन्होंने अपनी हृदय की सम्पूर्ण विशालता, उदारता और अनन्त स्नेह से मेरे उस सब कुछ को स्वीकारा, सँजोया, सँवारा और सराह-सराह कर ऐसा अपनाया कि मेरा-उनका अलग-अलग कुछ शेष नहीं रह गया था, उन्हीं की प्रेरणा, इच्छा और चाहत के फलस्वरूप ही इस ग्रन्थ की रचना और प्रकाशन सम्भव हो सका।

पर...आज सोचती हूँ जब उनका यह ग्रन्थ उनके हाथों में थमाने का समय आया तो नहीं जानती, अनजाने में ऐसा क्या अपराध कर बैठी मैं कि जीवन के हर सुख-दुःख में साथ देने वाले, वे जीवन की संध्या वेला की धुँधली राहों में यूँ नितान्त एकाकी छोड़ – अचानक अकेले ही चले गए।

फिर भी, मेरी आहत आत्मा में जीवन्त तुम, तुम्हें ही; अपने शेष रहे सब कुछ के साथ, तुम्हारा हो चुका– सबका सब; फिर...तुम्हें ही अर्पित करती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राक्कथन

तुलसी का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति के पावन आदर्शों से अनुप्राणित दिखलाई पड़ता है। उनकी वाणी केवल उनके युग में निश्शेष नहीं हो गई, वरन् उसकी अर्थव्यंजनाएँ आज भी अनेकानेक क्षेत्रों में चिन्तकों को चिन्तन के लिए प्रेरित करती है। अतः तुलसी साहित्य के अध्ययन की दिशाएँ व्यापक हैं और उनके लिए विस्तृत व्याख्याएँ अपेक्षित हैं।

तुलसी का अध्ययन मुख्यतः तीन क्षेत्रों में किया गया है– दार्शनिक, साहित्यिक और सामाजिक। परन्तु ये तीनों क्षेत्र भी अपने में इस विशाल व्यक्तित्व की दृष्टि से अत्यन्त व्यापक सिद्ध हुए हैं। तुलसी लोकनायक महात्मा पहले हैं और कवि बाद में। आचार्य शुक्ल ने उनके इस लोकनायकत्व और लोक-संग्रह के भाव पर विशेष बल दिया है। डॉ० ग्रियर्सन ने उन्हें बुद्धदेव के बाद भारत में सबसे बड़ा लोकनायक कहा और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी उन्हें समन्वयवादी लोकनायक माना। फलतः सामाजिक दृष्टि से तुलसी-साहित्य के अध्ययन के अनेक पक्ष सामने आये हैं, जिनमें उनके नारी-सम्बन्धी विचार भी एक पक्ष हैं, जिस पर लगभग सभी मूर्धन्य समालोचकों ने अपने विचार यत्किंचित् अभिव्यक्त किये हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इसी सामाजिक पक्ष को आधार बनाकर उनके अध्ययन का एक प्रयास है।

इस प्रबन्ध की मूल प्रेरणा मानस की 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी' के सम्बन्ध में उठे हुए, अनेक आलोचकों और विचारकों के मतों के झंझावात हैं। इस उक्ति तथा इसी प्रकार की अन्य उक्तियों को लेकर तुलसी के पक्ष और विपक्ष में जो अनेक शिविर स्थापित होते चले आ रहे थे, उन सबका समीकरण करते हुए मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध में तुलसी के नारी सम्बन्धी विचारों को पूर्व परम्परा और उनके सम्पूर्ण साहित्य के सन्दर्भ में रख कर वैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा समझने की चेष्टा की है। शोध के स्तर पर उस विषय का अध्ययन किए बिना हम तुलसी के नारी सम्बन्धी विचारों को वास्तविक और तर्क सम्मत रूप में नहीं समझ सकते थे। प्रस्तुत प्रबन्ध में आलोचकों द्वारा तुलसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की नारी भावना के सम्बन्ध में प्रस्तुत विचारों से तथा ज्ञान के नापे हुए पथ से आगे बढ़ने का मेरा प्रयास ही इस शोध-कार्य की सफलता का एक मानदंड माना जा सकता है।

मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत प्रबन्ध न केवल तुलसी-साहित्य के प्रति नवीन विचारकों को आकर्षित करेगा अपितु भारतीय समाज, दर्शन, सांस्कृतिक परम्पराओं और व्यापक रूप में अन्य देशी तथा विदेशी भाषाओं के साहित्यों और अन्य देशों के समाजों के साथ भारतीय समाज के तुलनात्मक अध्ययन की और भी प्रवृत्त होने के लिए उन नवीन विचारकों को प्रेरित करेगा।

प्रस्तुत शोध के सम्बन्ध में तुलसी साहित्य के विभिन्न टीकाकारों, आलोचकों, समीक्षकों तथा भारतीय साहित्य में नारी भावना पर लिखने वाले आलोचकों के प्रति, जिनके ग्रन्थों से मैंने लाभ उठाया है और जिनके अनेक विचार, उद्धरण और व्यवस्था का रूप ग्रहण किया है। मैं उन सब के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

तुलसी साहित्य पर विशेष अध्ययन करने वाले विद्वानों के प्रति, जिनके सम्पर्क में आने का मुझे सौभाग्य मिला है और जिन्होंने अपने अमूल्य विचार एवं परामर्श से मुझे लाभान्वित किया है– हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

इस प्रबन्ध के लिए मुझे डॉ० राजकिशोर कक्कड़ से जो विशेष प्रेरणा, मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिए मैं उनकी विशेष आभारी हूँ।

आज इस ग्रन्थ के प्रकाशन के समय मुझे बरबस याद आ रही है अपने सहपाठी और हितु-मित्र सुरेशचन्द सेठ की जिन्होंने मुझे रामचरितमानस के नियमित पाठ की प्रेरणा दी थी और मैं अध्ययन करते-करते इसमें इतना रम गई कि तुलसी से सम्बन्धित विभिन्न भ्रामक धारणाओं का खण्डन करने के लिए मैं व्यग्र हो उठी। चिर ऋणी हूँ सुरेश भैया की।

इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का सपना मुझ से अधिक मेरे पति ने देखा था। परन्तु उनके असमय काल-कवलित हो जाने ने मुझे कुछ इस तरह बिखरा दिया कि इसे प्रकाशित करने का सपना अँधेरों के गर्त में खोने लगा था। तभी इस सपने को सच करने की बात की आत्मजावत् मेरी प्रिय शिष्या डॉ० उर्मिला अग्रवाल, अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, इस्माईल नेशनल गर्ल्स पी० जी० कॉलिज, मेरठ ने। उनके लिए केवल इतना ही कह सकती हूँ कि मेरे अन्तरतम् का सम्पूर्ण आशीष इन्हें लग जाये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपने आशीष और स्नेह मैं देना चाहती हूँ अपनी दूसरी शिष्या डॉ० आशा आनन्द, रीडर, कला विभाग, इस्माईल नेशनल गर्ल्स पी० जी० कॉलिज, मेरठ को जिन्होंने पूरी लगन और निष्ठा के साथ इस ग्रन्थ के मुखपृष्ठ को सजाया और सँवारा है।

आभारी हूँ डॉ० महेशचन्द्र रीडर, हिन्दी विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ, की जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपना अमूल्य सहयोग दिया।

श्री नरेन्द्र जी की भी मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने प्रकाशक के रूप में बड़ी ही आत्मीयता के साथ इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया।

–डॉ० शारदा त्यागी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय-सूची

पृष्ठ सं०

प्राक्कथन ५

१. विषय प्रवेश १३

(क) विषय की व्याख्या

(ख) विषय का महत्त्व

(ग) विषय की सीमाएँ

२. तुलसी के पूर्वकालीन साहित्य में नारी २०

१. प्रागैतिहासिक युग में नारी

(क) इण्डो-यूरोपीय काल में नारी

(ख) इण्डो-ईरानी काल में नारी

२. वैदिक-उपनिषद् साहित्य में नारी

३. सूत्र-स्मृति और पुराण साहित्य में नारी

४. संस्कृत महाकाव्य में नारी

५. बौद्ध साहित्य में नारी

६. जैन साहित्य में नारी

७. नाथ साहित्य में नारी

निष्कर्ष

३. वीर-काव्य तथा सन्त काव्य में नारी ५१

१. वीर-काव्य में नारी चित्रण

(क) नारी का वीर रूप

(ख) नारी का शृंगारिक रूप

(ग) नारी का सामाजिक रूप

(घ) नारी का धार्मिक रूप

(ड) वीर-काव्य में नारी का आदर्श

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२. सन्त-काव्य में नारी

(क) सन्त युग का जीवन और परिस्थितियाँ

(ख) सन्त काव्य में नारी का सामाजिक रूप

(ग) सन्त काव्य में नारी के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण

(i) नारी का सत् रूप

(ii) नारी का असत् रूप

(घ) सन्त साहित्य में प्रतीक रूप में नारी

(i) दांपत्य भाव का प्रतीक

(क) स्वकीया नायिका का प्रतीक

(ख) पतिव्रता का प्रतीक

(ii) माता का प्रतीक

निष्कर्ष

४. तुलसी की नारी भावना पर साहित्यिक परम्परा, समकालीन साहित्य एवं परिस्थितियों तथा उनके व्यक्तित्व और जीवन का प्रभाव ८१

१. साहित्यिक परम्परा का प्रभाव

(क) संस्कृत साहित्य की परम्परा का प्रभाव

(ख) पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य की परम्परा का प्रभाव

(ग) पूर्वतर हिन्दी साहित्य की परम्परा का प्रभाव

(i) सन्त काव्य की परम्परा का प्रभाव

(ii) सूफी काव्य की परम्परा का प्रभाव

२. समकालीन साहित्य का प्रभाव

३. समकालीन जीवन और परिस्थितियों का प्रभाव

(क) सामाजिक जीवन और परिस्थिति का प्रभाव

(ख) राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव

(ग) धार्मिक परिस्थिति का प्रभाव

४. तुलसी के व्यक्तित्व और जीवन का प्रभाव

(क) तुलसी के जीवन का प्रभाव

(ख) तुलसी के व्यक्तित्व का प्रभाव

निष्कर्ष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५. तुलसी की नारी भावना १६६

१. नारी का सत् अथवा आदर्श रूप

२. नारी का असत् रूप

३. नारी का पारिवारिक रूप (मातृ रूप, पुत्री रूप, कुलवधू रूप, पत्नी रूप, प्रेयसी रूप, सपत्नी रूप, भगिनी रूप, सखी रूप तथा दासी रूप)

४. नारी का धार्मिक रूप

५. नारी का राजनीतिक रूप

६. नारी का सामाजिक रूप

७. निष्कर्ष

६. तुलसी की जीवन सम्बन्धी विचारधारा और नारी २२२

१. पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा और परिवार में नारी का स्थान

(क) पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा

(ख) परिवार में नारी का स्थान (माता का स्थान, कुलवधू का स्थान, पत्नी का स्थान और पुत्री का स्थान तथा सखी आदि)

२. राजनीति सम्बन्धी विचारधारा और राजनीति में नारी का स्थान

३. धार्मिक विचारधारा और धार्मिक क्षेत्र में नारी

(क) व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में नारी

(ख) लोक साधना के क्षेत्र में नारी

४. सामाजिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा तथा समाज में नारी का स्थान

निष्कर्ष

७. तुलसी के नारी पात्र २६६

सीता, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सती, पार्वती, मैना, सुनयना, मंदोदरी, तारा, मंथरा, शूर्पणखा, शबरी, अनसूया, त्रिजटा, अहल्या, स्वयंप्रभा, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति

निष्कर्ष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

८. तुलसी की नारी भावना का तुलनात्मक अध्ययन ३२५

१. संस्कृत काव्य की नारी भावना से तुलना

(क) वैदिक उपनिषद् साहित्य की नारी भावना से तुलना

(ख) सूत्र-स्मृति और पुराण साहित्य की नारी भावना से तुलना

(ग) संस्कृत महाकाव्य की नारी भावना से तुलना

२. वीर काव्य की नारी भावना से तुलना

३. सन्त काव्य की नारी भावना से तुलना

४. कृष्ण काव्य की नारी भावना से तुलना

५. रीति काव्य की नारी भावना से तुलना

६. आधुनिक काव्य की नारी भावना से तुलना

निष्कर्ष

९. उपसंहार ३७५

संदर्भ ग्रन्थ-सूची ३८०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

1 अध्याय

विषय-प्रवेश

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली, क्लेशों को हरने वाली और सम्पूर्ण कल्याणों को प्रदान करने वाली, मातृ शक्ति के उपासक तुलसी की नारी भावना एक युग से आलोचना का विषय रही है। केवल साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, भारतीय परिवारों की परिसीमाओं और समाज की विशाल परिधियों के मध्य भी तुलसी की नारी सम्बन्धी उक्तियाँ कभी परिहास, कभी उपहास और कभी आक्रोश के साथ उद्धृत की जाती रही हैं।

रामचरितमानस के प्रति पारिवारिक परम्परा से प्राप्त एक आकर्षण में, मैं शैशवावस्था से ही अनुबन्धित हूँ। तत्पश्चात् अपने अध्ययन और अध्यापन काल में भी तुलसी साहित्य पर गम्भीर अध्ययन और मनन का अवसर मिला तथा गत अनेक वर्षों से मानस के नियमित पारायण ने मुझे तुलसी की आत्मा में झाँकने और उसे परखने का सुयोग प्रदान दिया। 'तुलसी की नारी भावना' जो बचपन में मुझे उद्वेलित करती रही है, अब अपनी व्यापक और विस्तृत परिधियों की दिशा में संयत, निष्पक्ष और तटस्थ दृष्टिकोण से परखने को प्रेरित करती हुई दृष्टिगत हुई।

विषय की व्याख्या

तुलसी साहित्य पर चिन्तन करने वाले सभी विचारकों तथा मूर्धन्य आलोचकों ने तुलसी की नारी भावना को लेकर कुछ न कुछ विचार अवश्य ही प्रकट किए हैं। डॉ० नगेन्द्र ने तुलसी को नारी की प्रकृति उसके चारित्र्य, बुद्धि-विवेक और आचार व्यवहार सभी का निन्दक घोषित करके, आधुनिक नारी की उद्बुद्ध चेतना को सहृदयता के न्यायालय में अपने प्रति न्याय की मांग करने के लिए प्रेरित किया। मिश्रबन्धुओं ने गोस्वामी जी को प्रत्येक स्थल पर नारी निन्दक कहा और विद्वान आलोचक आदरणीय डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी की नारी भावना के विषय में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहा—प्रत्येक युग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के कलाकार नारी-चित्रण में प्रायः उदार पाए जाते हैं, किन्तु नारी-चित्रण में तुलसीदास बेहद अनुदार हैं। यद्यपि उनकी इस अनुदारता का कारण अभी तक रहस्य के गर्भ में छिपा हुआ है पर नारी-विषयक उनकी अनुदारता एक ऐसा तथ्य है जिसको अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।[1]

इस मत के अनेक अनुयायी दिखलाई पड़े। डॉ० राजपति दीक्षित ने नारी के सम्बन्ध में तुलसी की अनुभूति और उनकी धारणा को अच्छा नहीं बतलाया और डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल ने भी तुलसी को नारी के प्रति अनुदार और अशालीन कहा। डॉ० शैल कुमारी ने अपने शोध प्रबन्ध की भूमिका में लगभग सभी मध्ययुगीन भक्त कवियों को, नारी को अत्यन्त नीच समझने वाला कहकर तुलसी की अनेक नारी निन्दक उक्तियों को उद्धृत किया। डॉ० उषा पाण्डेय ने भी अपने शोध प्रबन्ध में नारी मात्र के लिए कही गई उक्तियों के आधार पर तुलसी को नारी निन्दा की प्रवृत्ति में सन्तों के समानधर्मी कहकर उन्हें नारी विरोधी की संज्ञा से विभूषित किया।

कुछ गणमान्य आलोचकों ने इसके विपरीत विचारों की अभिव्यक्ति भी की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल और रामनरेश त्रिपाठी ने कई स्थलों पर तुलसी की वकालत करके उनकी नारी भावना पर उदारता से विचार प्रस्तुत किए हैं। डॉ० अग्रवाल ने भी अपने शोध प्रबन्ध में तुलसी और वाल्मीकि की नारी भावना का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए तुलसी को उदार दृष्टिकोण से परखने का प्रयास किया है, परन्तु तुलसी की भावना का विश्लेषण करते हुए तुलसी की निन्दा को ही अधिक प्रश्रय मिला है।

ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी की नारी भावना पर दृष्टिपात करते हुए तुलसी साहित्य में अवतरित नारी निन्दक उक्तियों पर ही अधिक ध्यान दिया गया है, तुलसी साहित्य में चित्रित नारी के गरिमामय, पावन, निष्कलुष और महिमामय नारी रूपों पर नहीं। तुलसी के नारी सम्बन्धी विचारों के लगभग सभी आलोचकों के मत एकत्रित करने पर प्रतीत होता है कि वे नारी निन्दा को तुलसी के काव्य सृजन का एक लक्ष्य ही मान बैठे हैं, मानो कि वे प्रच्छन्न रूप से अपनी पत्नी के प्रति प्रतिहिंसा की पूर्ति अथवा अपनी कुंठित भावनाओं की अभिव्यक्ति कर रहे हों। यह मान्यता निश्चय ही तुलसी के प्रति अन्याय है क्योंकि नारी निन्दा उन्होंने सोद्देश्य नहीं की थी अपितु वह उनके काव्य में नारी के असत् रूप के संदर्भ में यत्र-तत्र आती रही है, यह बात केवल तुलसी के लिए ही सत्य नहीं है अपितु सब युगों में लगभग सभी कवियों की वाणी में नारी निन्दक स्वर इसी प्रकार, कहीं कम कहीं अधिक, झंकृत होते रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः मुझे यह आवश्यकता महसूस हुई कि 'तुलसी साहित्य में नारी' विषय को लेकर एक व्यापक दृष्टिकोण से तुलसी साहित्य में चित्रित नारी का यथातथ्य रूप में, पूर्वाग्रह विहीन तटस्थ तथा वैज्ञानिक आधार पर सांगोपांग विश्लेषण प्रस्तुत किया जाय जिससे तुलसी की अन्तरात्मा के साथ न्याय किया जा सके।

तुलसी की नारी भावना की आलोचना मेरे लिए सरल हो जाती यदि मैं भी अपने पूर्ववर्ती विचारकों और प्रकांड पंडितों के अनुरूप तुलसी की नारी की आलोचना करके उनसे पुष्टि ले लेती परन्तु मेरी अनुभूति मुझसे अपने प्रति सच्चाई और तुलसी के प्रति ईमानदार होने की मांग करती है। साथ ही अपने अनुभवों और नारीत्व की दृष्टि से भी मैंने तुलसी को समझने का प्रयास करना न्यायोचित समझा क्योंकि तुलसी की उक्तियाँ जिस समाज पर घटित होती हैं मैं भी उसके अन्तर्गत ही हूँ। मैंने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तुलसी के विस्तृत साहित्य में उद्‌भूत नारी के विविध रूपों की व्याख्या करके अपने पूर्ववर्ती मूर्धन्य समालोचकों और विचारकों की, तुलसी की नारी सम्बन्धी, निर्धारित मान्यताओं तथा उनके निष्कर्षों से आगे बढ़ने का सच्चा प्रयास किया है। इसके लिए मुझे अपने अनेक पूज्य आचार्यों और तुलसी साहित्य के अन्य आलोचकों के मतों से विनम्र असहमति प्रकट करनी पड़ी जिसके लिए मैंने यथेष्ट तर्क प्रस्तुत किए हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध 'तुलसी साहित्य में नारी' के अन्तर्गत तुलसी की नारी के विश्लेषण तथा स्पष्ट रूप की व्याख्या के लिए तुलसी के सभी छोटे बड़े काव्य ग्रन्थों का गहन अध्ययन, मनन और नियमित पारायण करके तुलसी साहित्य के विशाल पट पर चित्रित नारी के विभिन्न परिस्थितियों में विविध स्वरूपों और व्यक्तित्वों का परिशीलन किया गया है।

विषय का महत्त्व

प्रायः एक युग से भारतीय जनता की निश्छल भाव चेतना और साहित्यिकों की विचार-चेतना पर अपना सहज और अखंड अधिकार स्थापित किए हुए तुलसी और उनका काव्य अग्रगण्य हैं किन्तु इसी के साथ गोस्वामी तुलसीदास की नारी भावना एक बड़ी अवधि से विवाद का विषय बनी हुई है और तुलसी को नारी निन्दक कहकर स्वीकार करने की प्रवृत्ति जनता और प्रतिनिधि साहित्यकारों में प्रस्फुटित होती आ रही है।

लगभग सभी आलोचकों और विद्वान् विचारकों ने तुलसी की नारी भावना पर अपने अमूल्य विचार प्रस्तुत करके विषय के महत्त्व की ओर संकेत किया है। किन्तु अब तक विचारकों की आलोचना का आनुषंगिक विषय तुलसी की नारी भावना रहा है, जिसके विवेचन का आधार तुलसी साहित्य में, नारी के प्रति कही गई कुछ कटु उक्तियों को ही बनाया गया है। निश्चय ही तुलसी की नारी भावना को समझने के लिए आलोचकों की दृष्टि एकांगी रही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी की नारी भावना पर अब तक कोई विस्तृत अनुसंधानात्मक दृष्टि से विचार नहीं हुआ है, परन्तु कुछ विद्वानों ने इस पर विचार करते हुए इस ओर ध्यान दिया और इस विषय के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा—"तुलसीदास की नारी कल्पना अनुसन्धान का स्वतन्त्र विषय होने की क्षमता रखती है अतः उसके सम्बन्ध में अकारण प्रयत्न न करके निष्कर्ष रूप में कहना इतना ही है कि गोस्वामी जी में नारी के प्रति जैसी धारणा मिलती है उसके हेतु का तो पता चल जाता है, पर उसका पूर्ण समर्थन भारतीय दृष्टि से भी सम्भाव्य नहीं है।"[२] जैसा कि पहले कहा जा चुका है श्री माता प्रसाद गुप्त जी ने भी तुलसी की नारी विषयक अनुदारता का कारण अभी तक रहस्य के गर्भ में छिपा हुआ माना है। अतः इस विषय का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। मैंने प्रस्तुत विषय पर शोध कार्य करने की आवश्यकता अनुभूत की और तुलसी की नारी भावना को भारतीय साहित्य तथा संस्कृति के संदर्भ में रखकर उसका गम्भीर रूप से विवेचन और विश्लेषण किया।

तुलसी की नारी भावना को यथातथ्य रूप में समझने, तथा तुलसी के सम्पूर्ण साहित्य में नारी के सर्वांग स्वरूपों को परखने और निष्पक्ष एवम् तटस्थ भाव से तुलसी की आत्मा में झाँकने के हेतु 'तुलसी साहित्य में नारी' विषय ही उपयुक्त प्रतीत हुआ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध तुलसी की नारी भावना के अध्ययन की शृंखला में एक नई कड़ी की नियोजना है। इस दृष्टि से तुलसी के समीक्षकों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं अथवा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि तुलसी की नारी भावना के अध्ययन को तीन सोपानों में विभाजित कर सकते हैं। इनमें से प्रथम सोपान अथवा वर्ग उन विद्वानों का है जिन्होंने तुलसी को सर्वथा नारी निन्दक ही घोषित किया है। इसके अन्तर्गत उल्लेखनीय नाम हैं—सर्वश्री मिश्रबन्धु, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० नगेन्द्र और डॉ० शैल कुमारी तथा डॉ० उषा पाण्डेय। दूसरा सोपान अथवा वर्ग उन विद्वानों का है जिन्होंने तुलसी को एक सीमा तक नारी निन्दक माना है परन्तु उनके नारी-चित्रण की भव्यता देखकर उनमें नारी के प्रति आदर भाव का भी अनुभव किया है। इन विद्वानों ने इस बात को लक्षित किया है कि कुछ पात्रों के मुख से कुछ परिस्थितियों में नारी निन्दा के उद्‌गार अवश्य प्रस्फुटित हुए हैं परन्तु व्यापक रूप में नारी, तुलसी साहित्य में समादर की ही पात्री है। इस वर्ग के अन्तर्गत उल्लेखनीय नाम हैं—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल और डॉ० बड़थ्वाल। तीसरा वर्ग उन तरुण विद्वानों एवं अनुसंधानकारों का है जिन्होंने पहले वर्ग के विद्वानों का कुछ साहस के साथ खंडन करने का प्रयत्न किया है और दूसरे वर्ग के विद्वानों को अधिक प्रशस्त मार्ग और उदार दिशा की ओर मोड़ा है। इस वर्ग में मुख्यतः पंडित राम नरेश त्रिपाठी का नाम उल्लेखनीय है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की लेखिका भी विनम्रता पूर्वक इसी पंक्ति में बैठने की आकांक्षिणी है और अपने विचार पथ के सहयोगियों का आह्वान करती है।

भारतीय संस्कृति, दर्शन एवम् साहित्य में नारी को सदा ही विशिष्ट स्थान मिला है। सामाजिक व्यवस्था के लिए भी त्यागमय मातृत्व, एकनिष्ठ पत्नीत्व और स्नेहमय भगिनीत्व को लिए हुए नारी परमावश्यक अंग है और काव्य के क्षेत्र से नारी को पृथक कर देना तो उसे निर्जीव बना देना ही है। काव्य में नारी के महत्त्वपूर्ण स्थान का प्रतिपादन करते हुए श्री जे० जे० मेयर ने (सेक्सुअल लाइफ इन एनशियंट इन्डिया प्रथम पोथी-पृ०६) कहा है कि किसान और नागरिक के बिना काव्य का काम चल सकता है परन्तु उसमें से नारी को हटाते ही उसका जीवन नष्ट हो जाता है। स्पष्ट है नारी काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी रही है।

प्रत्येक युग के साहित्य में नारी के सत् और असत् दोनों रूपों का सदा से ही अंकन होता आया है। तुलसी ने भी अपने काव्य में नारी के दोनों रूपों का अंकन किया है। नारी के जननी रूप में उन्होंने उसकी वन्दना, साध्वी पत्नी के रूप में उसकी अभ्यर्थना और कष्टों को हरण करने वाली तथा कल्याणी देवी के रूप में सर्वत्र उसकी अर्चना की है।

पार्वती के रूप में तुलसी ने नारी को साक्षात श्रद्धा के रूप में देखा है और मनु-पत्नी शतरूपा को शरीर धारण किए हुए भक्ति की प्रतिमूर्ति कहा है परन्तु फिर भी नारी सम्बन्धी कुछ कटु उक्तियों के आधार पर तुलसी को नारी निन्दक की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा और उनकी पंक्तियों को लेकर जाने अनजाने मातृ शक्ति का अनादर होने लगा। पत्र-पत्रिकाओं में प्रस्तुत लेखों, समाज के मंचों पर दिए गए भाषणों और विद्यालय प्रांगण में आयोजित वाद विवादों में प्रतिक्रिया स्वरूप पुरुष जाति के प्रति भी वैसा ही आक्रोश अभिव्यञ्जित होने लगा। यहाँ एक अर्ध साहित्यिक किन्तु विशेष लोकप्रिय पत्रिका का उद्धरण देना अप्रासंगिक न होगा। सरिता (पत्रिका - मई १९६१ अंक १८७ सं० विश्वनाथ) में दिए गए एक लेख—'नारी' में लेखक ने कहा है कि कॉलिज में एक छात्रा को देखकर एक छात्र ने उपहास किया—'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी सकल ताड़ना के अधिकारी' तो उसने पलट कर उत्तर दिया 'ढोल गंवार पुरुष और गधा, जितना पीटो उतना भला।' लेखक को इस उत्तर से प्रसन्नता हुई परन्तु मेरा मन क्षोभ से भर गया। वस्तुतः स्वस्थ समाज के लिए यह प्रवृत्ति घातक है। बिना सोचे समझे तुलसी की उक्तियों के अनर्थ करना और उनके बहाने वस्तुतः अपनी ही कलुषित भावनाओं को अभिव्यक्त करना अनुचित ही नहीं, तुलसी के प्रति अपराध भी है।

लोकनायक महामना तुलसी जिनको आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भावी समाज की सृष्टि करने वाला कहकर उत्तर भारत को तुलसी द्वारा रचा हुआ माना है तथा उन्हें उत्तर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रदेश के मेरुदंड कहते हुए उत्तर भारत का मार्गदर्शक कहा और उनके उस दिन भी मार्गदर्शक बने रहने की बात कही जिस दिन नवीन भारत का जन्म हो गया होगा।[२] ऐसे तुलसी को, मातृ शक्ति नारी का अनादर करने वाला कहकर उनका एकांगी पक्ष देखना नितान्त अनुचित है। अतः प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तुलसी साहित्य के आधार पर नारी के महत्त्व को सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों के मध्य रख कर समझने का प्रयत्न किया गया है।

विषय की सीमाएँ

यह विषय जितना सरल जान पड़ता है अध्ययन करने पर उतना ही जटिल और विस्तृत प्रतीत हुआ क्योंकि तुलसी की नारी भावना विवादास्पद रही है। अतः तुलसी साहित्य की एक एक पंक्ति में उनकी आत्मा को झाँकने के लिए उसकी अनेक टीकाओं और आलोचकों के विचारों को अनेक बार अनेक दृष्टिकोणों से परखना पड़ा और तब मानस के नियमित पारायण के कारण ही तुलसी की प्रकृति और प्रवृत्ति को परखने की यथेष्ट दृष्टि प्राप्त हो सकी है।

विषय को यद्यपि तुलसी साहित्य और उसमें चित्रित नारी तक ही सीमित रखने का प्रयास किया गया है, परन्तु तुलसी साहित्य पर पड़े निगमागम के अनिवार्य प्रभाव को समझने के लिए पूर्व पीठिका के रूप में तुलसी साहित्य से पूर्व नारी की, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति तथा पूर्वतर संस्कृत साहित्य एवं हिन्दी काव्यों में नारी के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालना भी नितान्त आवश्यक हो गया है।

तुलसी साहित्य में अंकित नारी अनेक स्थलों पर वैदिक युगीन गरिमामयी नारी के समकक्ष प्रतीत होती है अतः वैदिक साहित्य की नारी पर भी प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः नारी के वास्तविक रूप को समझने के हेतु पूर्व प्रस्तर युग से ही नारी के उत्कर्ष और अपकर्ष का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

सभ्यता के विकास की आधार शिला पर होने वाले मानसिक परिवर्तन ही नारी भावना को विकसित बनाते हैं और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थिति से सभ्यता का इतिहास बनता है, फलतः किसी भी कवि की नारी भावना को समझने के पूर्व इन सभी स्थितियों और पूर्व काव्य की परम्परा को समझना आवश्यक हो जाता है। अतः तुलसी के सभी ग्रन्थों में निरन्तर अवगाहन के अतिरिक्त भारतीय प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों का अध्ययन भी अनिवार्य हो गया है। यद्यपि मैं यह दावा नहीं कर सकती कि संस्कृत ग्रन्थों का सम्पूर्ण परिशीलन कर लिया है तथापि तुलसी की नारी भावना को समझने के लिए प्राचीन ग्रन्थों तथा नारी भावना से सम्बन्धित आलोचनात्मक ग्रन्थों से भी यथेष्ट सामग्री ली गई है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रकार प्राचीन नारी की स्थिति का अवलोकन करके मध्यकालीन (तुलसी-युग के) जीवन को सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों के प्रकाश में देखकर नारी अवस्था का दिग्दर्शन और तुलसी की नारी भावना पर उनके प्रभाव को भी देखा गया है। तत्पश्चात् तुलसी साहित्य में नारी के पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक स्वरूपों का विस्तृत विवेचन किया गया है। साथ ही तुलसी के जीवन और व्यक्तित्व के अनिवार्य प्रभाव को परखने के पश्चात निष्पक्ष एवम् तटस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत करना ही लक्ष्य रहा है। इसके अतिरिक्त तुलसी की नारी को स्पष्टतया समझने के लिए समकालीन और परवर्ती साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाना भी आवश्यक हो गया है। अतः रीतिकालीन काव्य तथा आधुनिक काव्य को भी अध्ययन का विषय बनाना पड़ा।

इस विषय की सीमाओं के अन्तर्गत तुलसी साहित्य का सामाजिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है अतः उनके साहित्यिक और दार्शनिक पक्षों को पृथक् रखने का प्रयास किया गया परन्तु तुलसी की नारी भावना को स्पष्टतया समझने के लिए आवश्यकतानुसार उनका (साहित्यिक और दार्शनिक) विश्लेषण अनिवार्य रूप से आ गया है। इस प्रकार 'तुलसी साहित्य में नारी' विषय की सीमाएँ किंचित् विस्तृत हुई हैं।

इस अनुसंधान कार्य के लिए अध्ययन और मनन के मध्य अनेक पाश्चात्य साहित्यकारों , विचारकों तथा आलोचकों और मनोविज्ञान विशारदों के नारी सम्बन्धी विचार भी दृष्टिगोचर हुए परन्तु उनकी और केवल संकेत ही किया जा सका है विशेष विश्लेषण नहीं, क्योंकि हमारी सीमाएँ इसकी अनुमति नहीं देती थी।

❁

---

१. तुलसीदास (समालोचनात्मक अध्ययन) : डॉ० माताप्रसाद गुप्त—पृ० २६६

२. तुलसीदास और उनका युग : डॉ० राजपति दीक्षित, पृ० ७६

३. हिन्दी साहित्य की भूमिका : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८७

❁❁❁

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१ अध्याय

तुलसी के पूर्वकालीन साहित्य में नारी

प्रागैतिहासिक युग में नारी

नारी की प्राचीनतम स्थिति का पता लगाने के लिए प्रस्तर युग के धुँधले इतिहास की अँधेरी गुफाओं में आकर रुक जाना पड़ता है। अतः इस युग की नारी की व्यवस्था के चित्रण का आधार या तो अनुमान अथवा विद्वानों, इतिहासकारों, पुरातत्त्ववेत्ताओं तथा साहित्य मनीषियों द्वारा प्रस्तुत उनकी अनेक धारणायें हैं। पुरातत्त्व विभाग के जॉन मार्शल, दयाराम साहनी और राखाल दास बनर्जी आदि ने हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई से जो तथ्य प्रस्तुत किए हैं, उनसे स्पष्ट है कि आर्यों की वैदिक संस्कृति के पूर्व भी यहाँ की सभ्यता समुन्नत थी।[1]

अनेक अनुसंधानकर्ताओं और विचारकों ने इस युग के पूर्व काल में मातृसत्तात्मक परिवारों के पक्ष में अपनी धारणाएँ प्रकट की हैं।[2] शशिभूषण गुप्त के अनुसार भी इस युग का समाज मातृसत्तात्मक था, जिसमें मातृ शक्ति की उपासना होती थी।[3] ऐसी स्थिति में स्त्रियों की दशा श्रेष्ठ ही रही होगी।

कुछ विद्वानों ने मातृ सत्तात्मक समाज का कारण उस युग के कामाचार अनुमान को माना है। ए० एस० डांगे का मत है कि इस युग में यौन सम्बन्धों में मानव समाज अर्धमानव अर्धपशु था।[4] श्री अल्तेकर के विचारानुसार इस युग में विवाह की कोई व्यवस्था न थी और यौन सम्बन्धों में नारी पूर्ण स्वतन्त्रता व उच्छृंखलता का जीवन व्यतीत करती थीं। उनकी इस धारणा का आधार संस्कृत महाकाव्यों की कुछ कथाएँ हैं।[5] परन्तु जिन प्रकरणों के आधार पर कामाचारावस्था के ये अनुमान प्रस्तुत किये गये हैं उन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। श्री हरिदत्त वेदालंकार ने श्री अल्तेकर द्वारा प्रतिपादित महाभारत के उन समस्त उद्धरणों को निर्मूल सिद्ध कर दिया है।[6] डार्विन और वैस्टरमार्क आदि विद्वानों ने भी इस सिद्धान्त को छिन्न भिन्न कर डाला है।[7] अतः कहा जा सकता है कि उस युग में वैदिक मंत्रों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की ध्वनि के बीच अग्नि को साक्षी मानकर स्त्री-पुरुष भले ही पति-पत्नी के रूप में एक दूसरे के प्रति सच्चे रहने की शपथ न लेते हों लेकिन उनमें अपने जोड़े बनाकर रहने की प्रथा तो अवश्य ही रही होगी, जैसा कि आज भी अनेक जंगली जातियों में देखा जाता है। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है पति-पत्नी का रूप संगी-साथी का रहा होगा और नारी की स्थिति यदि पुरुष से उत्कृष्ट न भी रही हो तो समकक्ष तो अवश्य ही रही होगी।

धीरे-धीरे पुराना पाषाण युग नूतन प्रस्तर युग की ओर अग्रसर हुआ, जिसमें जीविकोपार्जन के साधनों की उन्नति के साथ ही साथ सामाजिक और मानसिक व्यवस्थाओं में अन्तर आता गया, धार्मिक मान्यताएँ बदली और मातृसत्तात्मक परिवारों का स्थान पितृसत्तात्मक परिवारों ने ले लिया।[८] फलस्वरूप जैसे-जैसे पुरुष ने अपनी सम्पत्ति का विस्तार किया और उस पर अपना अधिकार जमाया, उसके साथ ही साथ स्त्रियों की दशा क्रमशः हीन होती गई।

प्रागैतिहासिक युग में नारी अवस्था के क्रमिक स्तरों के अध्ययन की सुविधा के लिए विद्वानों द्वारा (भाषा के आधार पर) निर्मित इन्डो-यूरोपीय और इन्डो-ईरानी जाति[९] में नारी की स्थिति का पर्यावलोकन अति उपयुक्त और सार्थक होगा, क्योंकि विकसित होती हुई भाषा के आधार पर इण्डो-यूरोपीय नाम से अभिहित जाति विशेष की सभ्यता और संस्कृति को जानने का प्रामाणिक आधार एक नूतन विज्ञान, तुलनात्मक देवतोपाख्यान विज्ञान (कम्पेरिटिव माइथोलोजी) है।[१०]

(क) इण्डो-यूरोपीय काल में नारी—विद्वानों ने इण्डो-यूरोपीय जातियों में भी मातृसत्तात्मक परिवारों की स्थिति की पुष्टि की है।[११] सम्भव है पूर्व इण्डो-यूरोपियन लोगों में मातृसत्ता को माना जाता हो, लेकिन भाषा परिवार के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर किये गये विश्लेषण से मातृसत्ता अथवा सामूहिक विवाह की प्रथा की पुष्टि नहीं की जा सकती। प्रो० मैक्समूलर के अनुसार इण्डो-यूरोपियन परिवार पितृ-सत्तात्मक थे।[१२] सम्पूर्ण परिवार किसी ज्येष्ठ व्यक्ति (पिता-पितामह अथवा बड़े भाई) के आधीन रहता था। स्त्रियाँ तथा छोटे भाई, पुत्र आदि भी उसी के आधीन रहते थे।

पत्नियाँ प्रायः अपहरण अथवा शुल्क देकर प्राप्त की जाती थीं। हिन्दू धर्म-शास्त्रों में , वीर-काव्यों में और ग्रीक-साहित्य में भी इसके प्रमाण उपलब्ध हैं।[१३] आज भी अनेक निम्न वर्ग की जातियों में तथा कुछ पहाड़ी जातियों में शुल्क द्वारा वधू प्राप्त की जाती है। ऐसी अवस्था में स्त्री का नाता पितृ-कुल से टूट कर पति कुल से ही जुड़ जाता था और वह पति की आधिकारिक सम्पत्ति के समान उसके अधीन मानी जाती थी।

सभी इन्डो-यूरोपियन जातियों में बहुपत्नी विवाह की प्रथा का प्रचलन[१४] था परन्तु बहु पति प्रथा का कोई निश्चित चिह्न नहीं पाया जाता।[१५] इसके विपरीत स्त्रियों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.
54119

व्यभिचारिणी होने पर कठिन दंड का विधान था।[१६] इण्डो-यूरोपीय लोगों में विवाहित स्त्री की महत्ता 'सन्तान उत्पन्न करने वाली' होने में थी, ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह का प्रमुख प्रयोजन ही संतति प्राप्ति था। स्पार्टा में तो वन्ध्या पत्नी को त्याग भी दिया जाता था।[१७] पति की मृत्यु पत्नी की हीन अवस्था का कारण हो जाती थी। वी० लेन के अनुसार इण्डो-यूरोपियन काल में विधवा स्त्री को पति के साथ जला देने अथवा गाड़ देने की प्रथा पाई जाती थी।[१८]

कुछ विद्वानों द्वारा प्रस्तुत ऐसे साक्ष्य भी हैं, जिनके अनुसार इस युग में स्त्रियों की अवस्था पुरुषों के समान उन्नत मानी गई है। इण्डो-यूरोपीय भाषाओं में विवाहिता स्त्री को स्वामिनी अर्थ के वाचक शब्दों से सम्बोधित किया गया है।[१९] भारतीय आर्यों तथा रोमनों के धार्मिक कृत्यों में भी स्त्रियों को समान अधिकार दिया जाता था। वृहदारण्यकोपनिषद् और शतपथ ब्राह्मण में नारी की पुरुष के साथ एकात्मता के गीत भी गाये गये हैं, परन्तु साथ ही साथ स्त्री को नाभि से नीचे अपवित्र भी कहा गया है।[२०]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आदर्श रूप में नारियाँ अवश्य ही विशेष सम्मान और परिवार में महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी मानी जाती रही होंगी, परन्तु व्यवहारिक रूप में साधारण स्त्रियों की अवस्था निश्चय ही शोचनीय रही होगी। क्रीत वधू पति की गृहिणी होने के नाते ही घर के छोटे सदस्यों तथा सेवकों आदि की दृष्टि में स्वामिनी कही जाती होगी अपने अधिकार से नहीं। पति ही घर तथा स्त्रियों का स्वामी होता था। पत्नियाँ पुरुष की आधिकारिक वस्तुओं में ही मानी जाती थीं।

(ख) इण्डो-ईरानी काल में नारी—इण्डो-यूरोपीय काल की भाँति इस काल में भी पितृ सत्ता की महत्ता थी। अतः विद्वानों का मत है कि दाय का अधिकारी भी पुत्र होता था पुत्री नहीं। इसके अतिरिक्त भारतीय तथा ईरानी दोनों आर्य शाखाओं के साहित्य में पुत्र की महिमा का गुणगान किया गया है। वीर प्रसूति होकर माताएँ विशेष गौरव की अधिकारिणी होती थीं। स्पष्ट है पुत्रियों की साहित्य में कहीं अवमानना न होने पर भी पुत्र की महत्ता बढ़ने पर सहज ही पुत्री का महत्त्व घट जाता है और वैसे भी पुत्रवती पत्नियाँ ही अधिक सम्मान की अधिकारिणी होती थीं।

इण्डो-ईरानी युग में विवाह के साथ धार्मिक भावना भी जुड़ गयी थी, जिसके फलस्वरूप गाथा में विवाह एक महान धार्मिक कृत्य के रूप में अभिव्यंजित किया गया है।[२१] एक पति-पत्नी के आदर्श को व्यवहारिक रूप में ग्रहण कर सम्पुष्ट किया गया है। यह स्थिति पत्नी के स्थान को परिवार तथा समाज दोनों में ही समुन्नत करने में सहायक रही होगी। यद्यपि बहुपत्नी प्रथा के प्रमाण बाद तक (वैदिक साहित्य ओर अवेस्ता दोनों में) भी मिलते हैं तथापि इसमें सन्देह नहीं कि तुलनात्मक दृष्टि से इण्डो-ईरानी काल की समुन्नत सभ्यता

Shri Pratap Singh Library
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एवं संस्कृति में नारी का महत्त्व बढ़ा, उसकी स्थिति दृढ़ हुई और वह विशिष्ट सामाजिक अधिकारों से युक्त होकर अधिक सम्मान की अधिकारिणी बनी। इस प्रकार वैदिक संस्कृति के गौरवमय विहान की पूर्व पीठिका के रूप में उत्तर प्रागैतिहासिक काल विशेष महत्त्व रखता है।

वैदिक-उपनिषद् साहित्य में नारी

भारतीय आर्यों की श्रेष्ठतम संस्कृति का आदि स्रोत वैदिक साहित्य ही है, जिसके महत्त्व को देश-विदेश के विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से माना है।[२२] युग-युगों से पददलिता, अपमानिता और लांछिता नारी के गौरव एवं गरिमामय तथा पावन स्वरूप की सर्वाधिक प्रतिष्ठा यदि कहीं है तो वह वैदिक साहित्य में ही देखी जा सकती है।

वैदिक-काल में भी समाज का आधार पितृसत्ता प्रधान परिवार था[२३] परन्तु फिर भी वैदिक काल में स्त्री सच्चे अर्थों में गृहस्वामिनी थी जिसे परिवार में सबके ऊपर शासन करते हुए सम्राज्ञीवत् समादरणीय स्थान प्राप्त था।[२४] वैदिक युग में नारी अपने पुत्री, पत्नी और माता के रूप में क्रमशः स्नेह तथा दुलार, समानाधिकार और प्रेम एवं आदर और सम्मान की अधिकारिणी थी।

ऋग्वेद में सन्तति की कामना करते हुए सन्तानों द्वारा अमरत्व के उपभोग की प्रार्थना की गई है।[२५] सन्तान का तात्पर्य पुत्र एवम् पुत्री दोनों से ही लगाया जा सकता है। यज्ञकर्ता द्वारा पति-पत्नी को कुमार-कुमारियों से युक्त होकर पूर्ण आयु माँगने तथा निष्कलंक रहने का आशीर्वाद दिया गया है।[२६] वेदों में ऐसे स्थलों की अधिकता है जहाँ केवल पुत्र अथवा वीर की अभिलाषा व्यक्त की गई है।[२७] फिर भी तेजस्विनी पुत्री तथा शत्रुनाशक पुत्र, दोनों ही माता के परम् सन्तोष और गर्व की वस्तु हैं।[२८] कन्या की उत्पत्ति कल्याणप्रद तथा उसका स्वरूप मांगलिक माना जाता था। अथर्ववेद में तो कन्या में अद्भुत चमत्कारपूर्ण शक्ति मानी गयी है।[२९] डॉ० ईरावती कार्वे कन्या में दिव्य शक्ति मानने का कारण उसकी मातृत्व शक्ति मानती हैं।[३०] जो भी हो इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक युग में कन्याएँ परिवार में माता-पिता के स्नेह एवं दुलार की अधिकारिणी और समाज में पावनता की प्रतीक मानी जाती थीं।

पुत्र-पुत्रियाँ समान रूप से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करते थे। तत्पश्चात् कन्या ब्रह्मचारी-पति का वरण करती थी।[३१] साधारणतः सभी कन्याओं का विवाहित होना अनिवार्य सा ही था[३२] परन्तु ऐसे भी प्रमाण हैं जब कि कन्याएँ बड़ी आयु तक विवाह नहीं करती थीं[३३] तथा कुछ स्त्रियाँ बिल्कुल विवाह करती ही नहीं थीं और आजीवन अपने पिता के घर भाई के साथ ही रहतीं थी।[३४] अतः दो प्रकार की स्त्रियाँ होती थीं—एक ब्रह्मवादिनी, जो उपनयन, अग्निहोत्र और वेदाध्ययन करती थीं और दूसरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सद्योद्वाहः जो गृहस्थ में प्रविष्ट होकर वीर सन्तति का निर्माण करती हुई जीवन सफल बनाती थीं।[३५] मुनियों की भाँति जीवन यापन करने वाली ऋषि स्त्रियों का वर्णन भी आया है, जो धार्मिक साहित्य-सृजन की शक्ति रखती थीं और जिनकी ऋचाएँ ऋग्वेद संहिता में उपलब्ध हैं।[३६] अल्तेकर ने, सुलभा, मैत्रेयी, वाक प्राचितेई और गार्गी आदि स्त्रियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि वे वाचकनवी थीं।[३७] इनके अतिरिक्त और भी अनेक विदुषी नारियों के उल्लेख उपलब्ध हैं।[३८] यही नहीं स्त्रियाँ शिक्षकों का पद भी ग्रहण करती थीं।[३९] वैदिक युग में स्त्रियाँ राजा तथा अन्य राज्याधिकारी भी बन सकती थीं और सभा एवं समिति (लेजिस्लेटिव चेम्बर्स) में जाकर भाषण देती थीं।[४०]

स्पष्ट है बाल-विवाह की कुरीति वैदिक युग में नहीं थी। कन्याएँ अपनी शिक्षा समाप्ति पर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय ले सकती थीं। अपने लिए स्वयं ही पति चुनने वाली कन्याएँ प्रशंसनीय मानी जाती थीं।[४१] इस प्रकार कन्याएँ पूर्ण स्वतन्त्र तथा आत्म-निर्भर होती थीं। पर्दा-प्रथा का भी कहीं उल्लेख नहीं है। माताएँ स्वयं अपनी युवती कन्याओं को सुसज्जित और अलंकृत करके सवन (मेले उत्सव आदि) में भेजती थीं,[४२] जहाँ युवक-युवतियाँ अपनी रुचि का जीवन साथी चुनने में सफल होते थे। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के तालाब तथा नदियों में स्नान और जल-क्रीड़ाएँ करने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं[४३]। कन्याओं के मित्र (अथवा प्रेमी) भी होते थे, जिनका स्वागत वे घर पर भी कर सकती थीं।[४४] सम्भवतः यह स्वतन्त्रता जब अनुचित रूप से बढ़ गई होगी और इसके बुरे परिणाम (अवैध सन्तान आदि) हुए होंगे तभी आगे चलकर स्मृतिकारों ने नारी की स्वतन्त्रता पर बन्धन लगा दिए होंगे।

पितृसत्तात्मक वैदिक काल में दाय का अधिकारी पुत्र होता था पुत्री नहीं। यद्यपि इस विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद हैं,[४५] तथापि आदर पूर्वक विवाह करके अन्य को दे दी जाने वाली कन्या को पिता की अचल सम्पत्ति की अधिकारिणी मानना उचित नहीं है क्यों कि पति गृह में जाकर उसके सम्पूर्ण वैभव की अधिकारिणी तो वह स्वतः ही बन जाती थी। साथ ही ऋग्वेद में कन्या को यौतुक (दहेज़) देने की प्रथा का उल्लेख है, जो सम्भवतः कन्या को स्नेहवश पिता या भाई प्रसन्नता से देता होगा। बहिनों की कन्या के लिए योग्य वर प्राप्ति के लिए भी भाई पर्याप्त धन व्यय करने को तत्पर रहता था और साथ ही कन्या शुल्क (जामाता के दोषी होने पर) की प्रथा का उल्लेख भी है।[४६]

स्पष्ट है कि वैदिक युग में कन्या की स्थिति सब प्रकार से उन्नत और दृढ़ थी वह परिवार में असीम स्नेह और आदर की पात्री थी तथा समाज में स्वतन्त्र स्थिति को धारण करते हुए समादरणीय थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वैदिक काल में पति-पत्नी के सम्बन्ध भी बहुत ही मधुर, सरस एवं मित्रता पूर्ण तथा अटूट कहे गए हैं। वैदिक युग में विवाह धर्म, प्रेम और आस्था का पावन बन्धन था जो सौभाग्य प्राप्ति और कर्त्तव्य पालन के लिए कभी भी विच्छिन्न न होने के लिए बांधा जाता था।[३७] जहाँ पति-पत्नी ऋक् और साम, द्यौ और पृथ्वी, वीर्य और वीर्य धारण करने वाली तथा मन और वाणी के समान एक होकर एक दूसरे के अनुगामी बनते थे।[३८] पत्नी ऐश्वर्य से भरी नौका पर चढ़कर अपने मनोनीत पुरुष (पति) को भव सागर से पार ले जाने वाली[३९] तथा पति गृह में सबके लिए परम कल्याणकारिणी मानी गई है।[४०] वेदों में पत्नी के ज्ञानवती होने, घर की मुखिया, धैर्यशालिनी तथा व्याख्यात्री होने के स्पष्ट उल्लेख हैं, वह शत्रु का नाश करने वाली है अतः पति को चाहिए कि वह उसके अनुकूल व्यवहार करे।[४१] स्त्री को पति की कामना पूर्ण करने वाली तथा एक पतिव्रत धर्म को धारण करते हुए पूर्ण जीवन एक ही पति के साथ व्यतीत करने वाली होने का आदेश भी है।[४२] साथ ही घर के सम्पूर्ण हितों को बढ़ाने वाली भौतिक सुखों को प्राप्त कराने वाली तथा ज्ञानवृद्ध बनकर घर और बाहर (सभा समाजों में) वक्तृता देने वाली तथा उच्च स्थान की अधिकारिणी मानी गई है।[४३]

अपने गौरव एवं गरिमावान् व्यक्तित्व के कारण वेदों में गृहपत्नी उषा देवी (जो सोने वालों को जगाती हुई आती है) और अग्निदेवता (जो सबकी सुरक्षा एवं सावधानी करने वाले हैं) की उपमान मानी गई है।[४४] वैदिक काल में पत्नी ही घर और वही गृहस्थी है, पत्नी विहीन घर को घर की मान्यता नहीं दी जाती थी।[४५] पत्नी गृह की एकछत्र सम्राज्ञी, पति की शक्ति, उसके हृदय की एक मात्र अधिकारिणी और उसके सम्पूर्ण प्रेम की अधीश्वरी है।[४६] यही नहीं पति-गृह में पत्नी, गृहस्वामिनी बन कर सबको वश में रखने वाली, श्वशुर-सास, देवर और ननद सबके मध्य दीप्तिमान सम्राज्ञीवत् आदर और मान की पात्री है।[४७]

वैदिक काल में पर्दा प्रथा का कहीं संकेत नहीं है। स्त्री पुरुष के साथ सम्पूर्ण सामाजिक उत्सवों में पूर्ण स्वतन्त्रता से भाग लेती थी। वैदिक काल आनन्द और उल्लास, प्रेम तथा विलास का युग था। हिन्दू आर्य (स्त्री-पुरुष सभी) नृत्य और गान में रुचि पूर्वक भाग लेते थे तथा सुरा और सोम का पान करते थे।[४८] धार्मिक-कर्म (यज्ञादि) करने के लिए भी पत्नी समान रूप से अधिकारिणी होती थी।[४९] इसके अतिरिक्त पुरुष के अभाव में भी अकेले ही वह संध्योपासना तथा अग्निहोत्र आदि करने के योग्य समझी गई है।[५०] विवाह-विच्छेद जैसी प्रथा का प्रचलन उस युग में नहीं था[५१] और ऐसा प्रतीत होता है कि एक पति-पत्नी प्रथा ही सर्व प्रचलित थी।[५२] पत्नी द्वारा अपराध किए जाने पर भी उदारता का व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किया जाता था। वरुण प्राद्यास यज्ञ में अपने अपराध की स्वीकृति करने (प्रेमी का नाम बता देने) पर वह यज्ञादि धार्मिक कृत्यों की अधिकारिणी बन कर समाज में पुनः प्रतिष्ठा पाती थी।[६३]

वैधव्य अपार दुःख का कारण था।[६४] उस युग में पत्नी से वियुक्त होकर पति के रुदन का उल्लेख भी मिलता है।[६५] विधवाओं के पुनर्विवाह के उल्लेख भी मिलते हैं। मृतक पति के शव के साथ लेटी पत्नी (जो केवल पति के साथ जलाए जाने की परिपाटी निभाने के लिए चिता पर कुछ देर के लिए लेट जाती) को उसका देवर या अन्य कोई पुरुष (जो उसका हाथ पकड़ना चाहे) मृतक के पास से उठकर जीवितों के संसार में आने का, सन्तान और सम्पत्ति प्राप्त करने का सन्देश देता है।[६६] किन्ही विशेष अवस्थाओं में स्त्रियों को नियोग का अधिकार भी दिया गया है।[६७] इस प्रकार विधवाओं की स्थिति सुदृढ़ और सम्माननीय थी। विधुर भी विवाह करते थे और अन्य विशेष स्थितियों (स्त्री के वंध्यादि होने) में दूसरे विवाहों के उल्लेख भी हैं परन्तु अनेक विवाह केवल राजा पुरोहित या अन्य कुछ धनवान व्यक्ति ही कर सकते थे।[६८] इस प्रकार वैदिक काल स्त्रियों की गौरव-मयी स्थिति का स्वर्ण काल है। इस युग में स्त्रियों को सर्वाधिक आदर और सम्मान प्राप्त था।[६९]

वैदिक युग में माता का स्थान सर्वाधिक सम्माननीय और पूजनीय था।[७०] उपनिषदों में भी माता को देव-तुल्य पूजने का आदेश दिया गया है।[७१] भक्त भी भाव विह्वल होकर परमात्मा को पिता न मानकर माता के रूप में ही देखता है।[७२] निश्चय ही सुपुत्रों को उत्पन्न करने वाली वीर प्रसूति और परम् हितैषिणी माता की अत्यधिक प्रतिष्ठा थी।[७३] दस-पुत्रों को जन्म देने वाली माता असीमित मान, गर्व और गौरव की पात्री मानी जाती थी।[७४] वह महिषी (मुख्य पत्नी) पद की अधिकारिणी होती थी।[७५] यह स्थिति वंध्या अथवा पुत्रहीन पत्नी की स्थिति को हीन बना देने वाली तथा बहु पत्नी प्रथा की द्योतक है। फलस्वरूप स्त्रियों को सौत का दुःख सहन करना पड़ता था।[७६] फिर भी ऋग्वैदिक आर्यों ने अनेक देवों की माता के रूप से समता करते हुए उनसे माता द्वारा प्राप्त होने वाले सुख, शान्ति तथा रक्षण की कामना की है।[७७] अनेक स्थलों पर माता के नाम से ही पुत्र निर्दिष्ट हुए हैं।[७८] माताएँ संतान का स्नेह पूर्ण लालन-पालन तो करती ही थीं साथ ही पुत्रों के साथ युद्ध में भी जाती थीं और उनको रक्षा करने का प्रयत्न करती थीं।[७९] पुत्री के विवाह आदि में भी माता का महत्त्वपूर्ण भाग होता था, परन्तु माता के अधिकार सीमित थे, यदि समाज और पिता किसी कारणवश पुत्र को त्याग देता था तो वह उसे क्षमा नहीं कर सकती थी।[८०] इससे पता चलता है कि माता का स्थान पिता के बाद दूसरा था।[८१] फिर भी माता रूप में स्त्री अधिक सम्माननीय तथा स्पृहणीय स्थिति की अधिकारिणी थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर वैदिक काल

उत्तर वैदिक कालीन साहित्य[८३] के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इस युग में धार्मिक-भावनाएँ बढ़ रही थीं जिससे आर्यों के जीवन का उल्लास फीका पड़ रहा था, अब वे परलोक के लिये अधिक सोचने लगे थे।[८३] अनार्यों की सामाजिक स्वीकृति और उनसे बढ़ते हुए सम्मिश्रण से वर्ण व्यवस्था दृढ़ हो रही थी।[८४] आर्य अपने रुधिर, चरित्र, संस्कृति और सभ्यता को पवित्र बनाए रखने के विचार से जाति बन्धनों को महत्त्व प्रदान कर रहे थे। इस स्थिति ने सर्वप्रथम स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर आघात किया। फलस्वरूप स्त्रियों की पतनावस्था के चिह्न दृष्टिगत होने लगे।

उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भिक काल में यद्यपि स्त्रियों की स्वतन्त्रता,[८५] पति-पत्नी की एकात्मता,[८६] तथा उनके अधिकार,[८७] माता का गौरव,[८८] स्त्रियों की शिक्षा,[८९] धर्म के क्षेत्र में समान अधिकार[९०] तथा विधवाओं की सुदृढ़ स्थिति पूर्ववत् ही दृष्टिगत होती है तथापि स्त्रियों की हीनावस्था के स्पष्ट उदाहरण भी अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं। कोई भी कन्या किसी दशा में भी किसी अनार्य (शूद्र) से विवाह करने के लिए स्वतन्त्र नहीं थी[९१] जबकि पुरुषों के, अनार्य स्त्रियों से सम्बन्ध स्थापित करने के अनेक उदाहरण मिलते हैं।[९२] माता-पिता तथा भाई ने अब कन्याओं के विवाह का उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर वैदिक काल में कन्याओं के भाई उनके साथ रहते तथा पति चुनने में उनकी सहायता करते तथा दुष्ट युवकों से उनकी रक्षा करते होंगे और भ्रातृहीन कन्याएँ कदाचित् संदिग्ध दृष्टि से देखी जाती थीं क्योंकि पर्याप्त सुरक्षा के अभाव में उनके भ्रष्ट होने की सम्भावना रहती थी। अतः भ्रातृहीन कन्याएँ इधर-उधर घूमने वाली और निन्दनीय समझी जाती थीं।[९३] सम्भवतः ऐसी कन्याएँ ही वेश्यावृत्ति के लिए विवश हो जाती थीं।[९४] अविवाहित स्त्रियों को समाज में अमाजुर, अगु आदि कहा जाता था तथा उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।[९५] इसका कारण सम्भवतः समाज का पतित होना है, अविवाहित कन्यायें यदि माँ बन जाती थीं तो उन्हें समाज ग्रहण नहीं करता था अतः ऐसी अवस्था में पुत्र को दूर फेंका हुआ कहा गया है।[९६] पुत्रियों को किसी प्रकार के साम्पत्तिक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे।[९७] फिर भी विवाह एक पवित्र बंधन था और कभी-कभी कन्याओं को दहेज़ भी दिया जाता था तथा किन्हीं विशेष परिस्थितियों में दामाद भी ससुर को द्रव्य देता था।[९८]

धार्मिक क्षेत्र में यद्यपि संध्या आदि के कार्य नारी पूर्ववत् कर सकती थी लेकिन अल्तेकर का मत है कि यज्ञादि के महत्त्वपूर्ण कार्य (बलिदान आदि) जिन्हें स्त्रियाँ ही किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करती थीं अब पुरुषों (पुरोहितों आदि) के द्वारा ही सम्पन्न किये जाने लगे थे।[९९] इसका कारण सम्भवतः अनार्य स्त्रियों की, जो संस्कृत भाषा और आर्य संस्कृति से च्युत होती थीं लेकिन आर्यों की पत्नियाँ बन जाती थीं, यज्ञादि में मंत्रों के उच्चारण की अनभिज्ञता थी। इसी कारण पर्दा-प्रथा न होने पर भी पुरुषों की सभा गोष्ठियों से वे पृथक् ही रहती थीं। अनार्य पत्नियाँ उस गरिमावान् स्थान को प्राप्त करने में असमर्थ ही रहीं जिसे आर्य पत्नियाँ प्राप्त करती थीं अतः पत्नी मात्र का स्थान हीन होता गया। आर्य कामनावश अनार्य स्त्रियों से विवाह तो कर लेते होंगे परन्तु समाज में यह सम्माननीय नहीं माना जाता था। अतः नियम संयम का महत्त्व बढ़ाया जाने लगा और काम प्रवृत्ति की निन्दा होने लगी, फलस्वरूप काम की उत्तेजक एवं उसकी पूर्ति की साधन नारी जाति भी निन्दा की पात्र बन गई।

उत्तर वैदिक काल में मैत्रायणी संहिता स्त्रियों को जुए और शराब के समान बुरा समझती है।[१००] एक अन्य स्थल पर स्त्री अनृत कही गई है।[१०१] इसी प्रकार तैत्तिरीय संहिता में स्त्री हीन, शूद्र से भी निकृष्ट उद्घोषित की गई है।[१०२] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार पुत्र स्वर्ग तुल्य सुख लेकिन कन्या कृपण अर्थात् विपत्ति या कष्ट मानी गई है।[१०३] अथर्ववेद में भी पुरुष गर्भ के स्त्री गर्भ में परिवर्तित न होने की कामना की गई है।[१०४] साथ ही पुरुष गर्भ प्राप्त करने की औषधियों, यज्ञों एवम् मंत्रों आदि के उल्लेख भी हैं।[१०५] इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में कन्या के उत्पन्न होते ही उसके प्रति हीनता और उपेक्षा के भाव अभिव्यक्त होते हैं।

अनेक स्थलों पर पत्नियों को अपने पुरुषों को कभी उत्तर न देने तथा आज्ञा पालन की कठोर आज्ञा दी गई है।[१०६] बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन भी प्रचुर रूप से देखा जाता है, जिससे स्वतः ही नारी अवहेलना की पात्र बन जाती है।[१०७] इसके अतिरिक्त नारी जाति मात्र के लिए निन्दावाचक स्थलों का भी अभाव नहीं है। ऋग्वेद में ही इन्द्र ने स्त्रियों को हीन बुद्धि और संयमहीन चंचल चित्त वाली कहा है।[१०८] एक अन्य ऋक् में कहा गया है कि स्त्रियों की मित्रता अस्थिर तथा उनके हृदय सालावृकों, (भेड़ियों) लकड़भग्गों के होते हैं,[१०९] और भी अन्य अनेक स्थल स्त्रियों की निन्दा के कटु उदाहरण हैं।[११०] स्त्रियों पर चंचलता और पाषाणहृदयता के स्पष्ट आरोप प्रस्तुत किए गए हैं।[१११] स्त्रियों को दाय अथवा उत्तराधिकार का भी कोई अधिकार नहीं रहा था।[११२]

इस प्रकार उत्तर वैदिक काल ही स्त्रियों की हीन अवस्था का वपन काल है। यहीं से स्त्रियों की निन्दा और उनका पतन प्रारम्भ हुआ, जो सूत्र, स्मृति, पुराणों एवं संस्कृत काव्यों में अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूत्र, स्मृति और पुराण साहित्य में नारी

उत्तर वैदिक काल से ही समाज में स्त्रियों की स्थिति क्रमशः अपकर्ष की ओर उन्मुख होती गई।[११३] सूत्र, स्मृति, पुराण और धर्म शास्त्रों में स्त्री की हीन अवस्था को दिग्दर्शित करने वाले उल्लेखों की और भी बहुलता है। अल्तेकर के अनुसार स्त्रियाँ अपने पूर्व सम्मान एवं पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक अधिकारों से पूर्णतया वंचित की जाने लगीं।[११४]

सूत्र, स्मृति तथा पुराण साहित्य में यद्यपि कन्या के प्रति स्नेह और उदारता,[११५] सती साध्वी स्त्रियों एवं पति परायणा पत्नी के लिए सम्मान[११६] तथा माता के प्रति आदर एवं श्रद्धा से युक्त व्यवहार का आदेश दिया गया है, तथापि साधारणतः नारी मात्र के लिए की गई गर्हित, निन्दनीय और अपमान सूचक उक्तियां इतनी प्रचुरता से अभिव्यंजित की गई हैं कि उपर्युक्त आदेश केवल कहने भर के लिए प्रतीत होते हैं।

वास्तव में स्त्रियों की इस अपमानजनक अवस्था का उत्तरदायित्व उन ब्राह्मण ग्रन्थों पर है जिन्होंने वैदिक आख्यानों को उनकी मूल भूमि से तोड़कर मनवांछित रूप दे दिया तथा कर्म काण्ड का जटिल और विस्तृत जाल फैलाकर पुरोहितों को ही यज्ञादि का एकाधिकार दे दिया। साथ ही रूढ़ पावनता की वृद्धि करके (स्वाभाविक मासिक धर्म युक्त रजस्वला) स्त्री तथा ब्राह्मणेतर वर्ग को भी वेदों के सुनने के अधिकार से भी वंचित कर दिया।[११७] फलस्वरूप अशिक्षा और उपनयन संस्कार के अभाव ने स्त्रियों को शूद्रों की श्रेणी में ला बिठाया।[११८]

मीमांसा सूत्र के अनुसार स्त्रियों को सामाजिक अधिकार से भी वंचित कर दिया गया[११९] क्योंकि यज्ञों के अधिकारी केवल पुरुष थे और यज्ञों के लिए धन की आवश्यकता होती थी और धनाधिकारी पुरुष वर्ग ही था। फिर स्त्रियों का क्रय विक्रय होता था अतः उसकी स्थिति सम्पत्ति की स्वामिनी नहीं सम्पत्ति जैसी ही थी। यद्यपि जैमिनी ने इसका विरोध किया है तथापि स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता न मिल सकी और उनकी दशा गिरती ही गई।[१२०]

पुनः अन्तर्जातीय विवाह एवं बहुपत्नी प्रथा के कारण भी स्त्रियों के अधिकार छिने तथा परिवार और समाज में पत्नी-प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा, क्योंकि अनार्य जाति की स्त्रियाँ असंस्कृत और असभ्य होती होंगी जिससे समाज और धर्म में प्रतिष्ठा न पा सकीं। वशिष्ठ धर्म सूत्र के अनुसार कृष्णवर्ण (अनार्य) स्त्री धर्म के लिए नहीं अपितु रमण के लिए होती थी।[१२१] अतः विवाह में धर्म की भावना घटी और विलास प्रधान हो गया। अब धर्म सूत्रों में अनुलोम विवाह की व्यवस्था के साथ-साथ प्रत्येक वर्ण के पुरुष को अपने वर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.
54119

की कन्या व्याहने के बाद अपने से निम्न वर्णों से क्रमानुसार एक एक कन्या व्याहने की आज्ञा दे दी गई,[१२२] तथा अनेक धर्मशास्त्रकारों ने पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह (अधिवेदन) धर्म संगत ठहराया।[१२३] यही नहीं "इस से भी सन्तुष्टि न होने पर दासियों और अपरिणीताओं (रखैलों) की भी अपने लिए सुविधा कर ली, इसके बाद भी इतिश्री न हुई। ब्राह्मणों को सैकड़ों श्रेष्ठ कन्याओं के दान विहित किए गए। शिव पुराण में मंदिरों के लिए नृत्य गीतादि की कलाओं में प्रवीण हजारों कन्याओं का होना नियम बद्ध कर दिया गया।"[१२४] यह स्थिति नारी की हीन अवस्था का प्रबल प्रमाण है।

दूसरी ओर वैराग्य भावना की वृद्धि के साथ ही साथ प्रव्रज्या और त्याग पर बल देने वाले परिव्राजकों, सूत्र, स्मृति और पुराणकारों तथा अन्य धर्म शास्त्रकारों ने विरक्ति पथ पर अग्रसर होने के लिए विषयासक्ति की प्रधान केन्द्र स्त्री के निन्दनीय, त्याज्य और अत्यधिक घृणित एवं गर्हित रूप का अंकन किया। उनकी दृष्टि में स्त्री सम्पूर्ण दुःखों का मूल,[१२५] पापी पुरुषों से भी हीन,[१२६] झूठ, विनाश, आपत्ति या मृत्यु के देवता से सम्बद्ध,[१२७] अनृत, साहस, (बिना सोचे समझे काम करने वाली) छल, (करने वाली) मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता और निदर्यता का स्वाभाविक प्रतीक वन गई।[१२८] यही नहीं और अनेक सम्भव असम्भव सभी दुर्गुणों-(चांचल्य, अस्थिर प्रेम, अविश्वसनीयता, कामासक्ति, निर्लज्जता और विलासिता, मूर्खता) का आरोपण स्त्री मात्र पर करके, उसकी उपमा अग्नि व सर्पिणी से देकर उसे कुल नाशिनी की उपाधि दी गई।[१२९]

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' के आदर्श वाक्य को कहने वाले मनु भी स्त्रियों को अविश्वसनीय मानते हैं। उनके मत में स्त्रियों को घर के कामों में भी स्वतन्त्र नहीं होना चाहिए[१३०] और नीतिकारों की टिप्पणी 'स्त्री चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्, देवो न जानति कुतो मनुष्य।।' पर ही जैसे मनु दो टूक भाषा में 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' का निर्णय देते हुए व्यवस्था दे डालते हैं कि स्त्रियों को बाल्यावस्था में पिता के, यौवनावस्था में पति के तथा पति की मृत्यु पर पुत्र के अधीन रहना चाहिए।[१३१] नारद स्मृति के अनुसार तो प्रजापति ने ही स्त्रियों के लिए पराधीनता की व्यवस्था दी है, क्योंकि स्वतन्त्रता से कुलीन स्त्रियाँ भी भ्रष्ट हो जाती हैं,[१३२] जिनकी पुष्टि वशिष्ठ, व्यास और याज्ञवल्क्य द्वारा और भी तीव्र स्वरों में की गई है।[१३३] ऐसी ही व्यवस्थाओं से विक्षुब्ध आधुनिक लेखिका रमाबाई ने व्यंग किया कि "हिन्दू स्त्री केवल एक ही स्थान नरक में स्वाधीन रह सकती है।"[१३४] ऐसा प्रतीत होता है कि इस दीन-हीन और पराधीनता की शृंखलाओं से जकड़ी नारी को उसके एक मात्र कर्त्तव्य पति के अन्धानुकरण एवं श्रेष्ठतम धर्म पति सेवा और उसके चरणोदक मान की स्वतन्त्रता धर्म शास्त्रकारों ने अवश्य प्रदान की है—

Sri Pratap Singh
Library
SRINAGAR

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न दानैर्शुध्यते नारी नोपवासशतैरपि।।
न तीर्थसेवया तद्वत् भर्तुः पादोदकैर्यथा।।

डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार भी ऐसे स्थल पुरुषों की स्वार्थ-वृत्ति के परिचायक हैं।[१३५] मनु तो पत्नी के अप्रियवादिनी होने पर ही पति को दूसरे विवाह की अनुमति देते हैं तथा इसका विरोध करने वाली नारी के लिए व्यवस्था देते हैं कि—"ऐसी स्त्री को रस्सी से बाँधकर घर में बन्द कर दिया जाना चाहिए अथवा पितृकुल में छोड़ दिया जाना चाहिए।"[१३६]

तत्पश्चात बृहदारण्यक उपनिषद् में सर्व प्रथम पत्नी को छड़ी या हाथ से पीटने का विधान बनाया गया।[१३७] पुनः कौटिल्य ने भी पत्नी की पीठ पर प्रहार करने की आज्ञा दी और गर्ग संहिता के अनुसार तो स्त्रियों को सत्कार के स्थान पर केवल ताड़ना के ही योग्य समझा गया।[१३८] स्कन्दपुराण की आज्ञा है कि पति द्वारा भर्त्सित अथवा पिटने पर भी स्त्रियों को हँसमुख रहना चाहिए।[१३९] मनु का विचार है पति के दुःशील होने पर भी पत्नी को साध्वी रहना चाहिए। जिसके लिए पातिव्रत्य की गरिमा के अनेक गीत गाए गए।[१४०] पुरुषों की स्वार्थ साधना यही थी—स्त्री नेत्र मूंद कर पतिव्रत धर्म का पालन करे। अतः स्वार्थवश अनेक कपोल कल्पित कथाएँ (गान्धारी, शांडिली तथा भोज प्रबन्ध की अनेक कथा)[१४१] गढ़ीं जिससे नारी प्रतारणा और अत्याचारों को सहर्ष सहन करती रहे तथा प्रत्येक दशा में पति को देवता मानने को विवश हो जाये। डॉ० राधाकृष्णन् ने कहा है कि "स्त्रियों के प्रति मनु का अन्याय तब बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है जब वह कहता है कि अच्छी पत्नी को अपने बुरे पति की भी पूजा करनी चाहिए।"[१४२] यहाँ तक कि पत्नी को विक्रय कर देने और त्याग देने पर भी पति से विमुख नहीं होना चाहिए।[१४३]

इस युग में एक वाराह मिहिर ऐसे सज्जन थे जिन्होंने शास्त्रकारों के स्वार्थ तथा वैराग्य वृत्ति के कारण नारियों की निन्दा करने वालों का विरोध किया और पुरुषों को बड़े कड़े स्वर में फटकारते हुए कृतघ्न[१४४] कहा। स्त्रियों की श्रेष्ठता के तर्क दिए और उनके माता, पत्नी एवं कन्या रूप के सुन्दर स्वरूपों का अंकन किया लेकिन अरण्य रोदन के समान वह व्यर्थ ही गया तथा स्त्रियों की निन्दा होती ही रही। वे घृणा और निन्दा की पात्र ही बनी रहीं। उनके लिए पति सेवा ही एक मात्र धर्म बना। सतीत्व के आदर्शों (जो धर्मशास्त्रकारों ने बनाए थे) पर चलकर ही वे जैसे जीवित रहने की अधिकारिणी थीं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक युग की ब्रह्मचारिणी और स्नेहाधिकारिणी कन्या कष्ट और आपत्ति मानी जाकर उपेक्षा की पात्र बनी तथा गृहसम्राज्ञी पत्नी तिरस्कृत होकर दीन-हीन बन गई और सम्पूर्ण नारी-जाति समस्त अवगुणों का मूल समझी जाने लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संस्कृत महाकाव्यों में नारी

प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के सर्वाधिक लोक प्रिय काव्य रामायण और महाभारत ही हैं। श्री दिनकर का विचार है कि वेदों और उपनिषदों के सच्चे ज्ञान का विस्तार इन्हीं दो कवियों ने किया है।[१४५] सभी संस्कृत कवि वाल्मीकि और व्यास के ही ऋणी भी प्रतीत होते हैं। नारी जीवन की आदर्श महानारियाँ अहल्या, सीता, तारा, मन्दोदरी और द्रौपदी में से प्रथम चार तो रामायण ही में तथा अंतिम एक महाभारत में अवतरित है। श्री नानूराम व्यास तो रामायण को नारी प्रधान काव्य कहते हुए इसे "स्त्री प्रसंग के नाम से अभिहित किए जाने को सार्थक मानते हैं।[१४६] वास्तव में ये ही दो काव्य संस्कृत साहित्य में नारी की स्थिति के पर्यावलोकन के लिए पर्याप्त हैं। नारी जीवन के तीनों प्रमुख स्वरूपों—पुत्री, पत्नी और माता तथा साधारण नारी मात्र के वांछित-अवांछित, निन्दनीय एवं प्रशंसनीय, भर्त्सनीय तथा सम्माननीय, सत् एवं असत् दोनों ही स्वरूपों का विस्तृत विश्लेषण संस्कृत काव्यों में हुआ है, जिस पर वेद एवं उपनिषद् तथा सूत्र, स्मृति और पुराण सभी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

वैदिक काल की भाँति महाकाव्य काल में भी गुणवती कन्या की प्राप्ति माता-पिता की दीर्घ तपस्या और पुण्य कर्मों की परिचायक है।[१४७] कन्या असीम ममता और स्नेह की केन्द्र तथा घर की समृद्धि की वृद्धि का कारण है[१४८] तथा कुमारी कन्याएँ मंगल सूचक शुभ शकुन तथा सौभाग्य का प्रतीक मानी गई हैं।[१४९] धार्मिक कृत्यों यज्ञादि, सन्ध्योपासन तथा मंत्रों की जानकारी उन्हें दे दी जाती थी[१५०] तथा राजधर्म की शिक्षा भी राजकन्याओं को दी जाती थी।[१५१] इसके अतिरिक्त कालिदास के काव्य में मालविका जैसी स्त्रियाँ ललित कलाओं में पारंगत तथा औषधि विज्ञान में कुशल थीं।[१५२] कैकेयी युद्ध भूमि में एक वीरांगना तथा शस्त्र-ज्ञान में कुशल दिखलाई पड़ती है। नैतिक शिक्षा संभवतः माताएँ ही कन्याओं को देती थीं।[१५३]

स्त्रियों में यद्यपि पर्दा-प्रथा नहीं थी,[१५४] तथापि पति वरण की पूर्ण स्वतन्त्रता का अभाव था क्योंकि कन्याओं के विवाह का प्रस्ताव पिता के सम्मुख ही रखने की प्रथा थी।[१५५] कभी-कभी वर प्राप्ति में कठिनाइयाँ पड़ जाती थीं और कन्या कष्ट तथा चिन्ता का कारण हो जाती थी।[१५६] कन्या के पिता को, भले ही वह इन्द्र के समान समर्थ क्यों न हो, समान और निम्न श्रेणी वाले लोगों से भी अनादर ही मिलता था।[१५७] इसके अतिरिक्त अनेक प्रमाण हैं जिनसे कन्याओं की उपेक्षा और कुमारिकाओं पर अनाचार सिद्ध होता है।[१५८] यद्यपि व्यास ने औरस पुत्र के अभाव में दुहिता का स्थान माना है,[१५९] तथापि पुत्रों को विशेष महत्त्व दिया जाता था।[१६०]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पत्नी रूप में स्त्रियों को सिद्धान्त रूप में उच्च स्थान दिया गया है। पत्नी-पति की सहधर्मचारिणी के रूप में प्रतिष्ठित की गई है।[१६१] यज्ञादि धर्म-कर्म उसके बिना पूर्ण नहीं माने जाते थे, क्योंकि कर्म फल पति-पत्नी संयुक्त रूप से ही मांगते हैं। पति-पत्नी, शब्द और उसके अर्थ की भाँति सम्बद्ध और अभिन्न कहे गए हैं।[१६२] कालिदास ने इन्दुमती के पत्नी रूप पर विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है—

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ"

वाल्मीकि रामायण में कौशल्या दशरथ के लिए सभी कुछ थीं—

यदा यदाहि कौशल्या दासीवत् सखी व च भार्यावद् भगिनीवत् य मातृवच्चोपतिष्ठते।।[१६३]

महाभारतकार का विचार है कि जिसके घर साध्वी और प्रियवादिनी भार्या न हो उसे वन चले जाना चाहिए क्योंकि पत्नी बिना महल भी वीहड़ वन है, भार्या के समान कोई बन्धु, आश्रय अथवा धर्म कार्य में सहायक नहीं है।[१६४] उनके विचार में स्त्रियाँ पूज्य हैं तथा पापी घर में ही स्त्रियों को ताड़ना दी जाती है।[१६५] बड़े भाई की पत्नी तथा गुरु-पत्नी सर्वत्र आदरणीय हैं तथा सज्जन लोग स्त्री मात्र के प्रति सभ्यता का व्यवहार करते हुए प्रदर्शित किए गए हैं।[१६६] लेकिन फिर भी स्त्रियों की वास्तविक अवस्था हीन ही दिखलाई पड़ती है। वाल्मीकि रामायण में कैकेयी के लिये सभी कटु-वचनों का प्रयोग करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। यही नहीं सीता के लि। प्रयुक्त राम की शब्दावली तथा अग्नि परीक्षा के पश्चात् भी सती साध्वी सीता का त्याग पति की निरंकुशता का ही परिचायक है।

बहु-पत्नी प्रथा भी स्त्रियों की हीन अवस्था का प्रमाण है। वही कौशल्या जो किसी दिन राजा के लिए उसका सर्वस्व थी, राजा द्वारा सुन्दरी कैकेयी से विवाह कर लेने पर दीन हीन हो जाती है और पुनः कैकेयी से रुष्ट होकर राजा कैकेयी का भी त्याग कर देते हैं।[१६७] इसी प्रकार राज्याभिषेक पर एक ही पत्नी (पटरानी) को महत्त्व दिया जाता था, शेष पत्नियाँ स्वतः ही तुच्छ सिद्ध हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को उपहार में भी दिया जाता था।[१६८] स्त्री दान से बड़ा अन्य कोई दान नहीं था।[१६९] राम की दृष्टि में भी स्त्री सर्व सुलभ और उपभोग की साधारण वस्तु है।[१७०] व्यास भी मनु की भाँति ही स्त्री को सम्पत्ति समझते हैं तथा स्वतन्त्रता की अधिकारिणी नहीं समझते।[१७१]

केवल महाभारत काव्य में ही स्त्रियों की अपमान-जनक अवस्था के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सती शिरोमणि द्रौपदी ही तुच्छ भौतिक पदार्थ की भाँति जुए के दाँव पर लगाए जाने वाली सम्पत्ति के सदृश थी। अपने झूठे अहम् की तृप्ति तथा क्रीड़ा कौतुक के लिए भी नारी के प्रति नृशंस अत्याचारों के ज्वलन्त प्रमाण जरत्कारू और जमदग्नि की कथाओं में उपलब्ध हैं।[१७२] महाभारत में पत्नी को पति की धर्मानुकूल अथवा धर्म विरुद्ध कही गई बातों के अनुसार काम करने का आदेश दिया गया है।[१७३] मदयन्ती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को अपने पति की प्रसन्नता के लिए ही वशिष्ठ का अभिगमन करना पड़ा।[१७४] लेकिन फिर भी शास्त्रकारों ने स्त्रियों के प्रति इतनी उदारता दिखलाई कि प्रत्येक दशा में उन्हें अबध्य माना। अपराध पर केवल मारना, पीटना, नाक-कान काटना और स्तन काट डालने का दंड पर्याप्त समझा गया।[१७५] स्त्री को दासत्व का जीवनग्रहण करते हुए भी प्रत्येक दशा में पति के घर ही रहने का निर्देश दिया गया, भले ही वह उसे न चाहे।[१७६] संस्कृत काव्यों में अनेक स्थलों पर स्त्री केवल पुरुषों की काम-वासना की तृप्ति का साधन मात्र है।[१७७] उपाध्याय ने अनेक उदाहरणों द्वारा पुष्ट करते हुए कहा कि कालिदास के काव्य में ही स्त्रियों के प्रति सद्भावना रहित विचारों की कमी नहीं है।[१७८] यदि पति पत्नी की बात माने तो उसे स्त्रीजित (हेंड पैक्ड) कहकर तिरस्कृत करने की प्रथा तो पुरानी ही[१७९] थी। महाभारत में ऐसे पुरुष को नरकगामी कहा गया है।[१८०] राम को सीता के लिए व्याकुल देखकर सुग्रीव उन्हें तिरस्कृत करता है।[१८१] राजा दशरथ की भी इस प्रसंग को लेकर अत्यधिक भर्त्सना की गई है। कालिदास ने 'भोज-प्रबन्ध' में स्त्रियों द्वारा अनुशासित घर के चौपट हो जाने की बात कही है।[१८२]

संस्कृत काव्यों में यद्यपि ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ पुत्र, माता की भी जी भर कर भर्त्सना करता हुआ दिखलाई पड़ता है तथापि मातृ रूप की स्तुति विस्तार से हुई है।[१८३] महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है कि "दस आचार्यों से बड़ा उपाध्याय दस उपाध्याय से बड़ा पिता और दस पिताओं से बड़ी माता है जिससे बड़ा कोई नहीं है।[१८४] कालिदास के रघुवंश में भी मातृत्व की महत्ता का वर्णन है। परन्तु स्त्री मात्र के लिए कहे गए कटु वचनों का संस्कृत महाकाव्यों में अभाव नहीं है।[१८५] धर्मदेव विद्यावाचस्पति के मतानुसार संस्कृत काव्यों, नाटकों विशेषतः वेदान्त विषयक ग्रन्थों में सम्पूर्ण स्त्री जाति के विषय में जिन हीन भावों का प्रकाशन किया गया है वे सभ्य देशों के आगे भारतीय नारी के पतन के प्रमाण हैं।[१८६] इनमें नारी नरक का द्वार, राक्षसी एवं पिशाची, बन्धन की शृंखला, अत्यधिक अविश्वसनीय और विष तुल्य कही गई है।[१८७] नारी मात्र के प्रति आक्रोश और भर्त्सना की अभिव्यंजना के लिए संस्कृत काव्य का निम्नांकित उदाहरण ही पर्याप्त है—

आवर्तः संशयानामविनयन वनं पत्तनं साहसानां,
दोषाणां सन्निधानं कपटशतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्।
दुर्ग्राह्यं यन्महद्भिर्नरवृषभैः सर्वमायाकरण्डम्,
स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतयुतं धर्मनाशाय सृष्टम्।।[१८८]

यह श्लोक स्त्रियों की निन्दा का ज्वलन्त प्रमाण है, जिसके अनुसार स्त्री जाति सभी अवगुणों की खान है। महाकवि वाल्मीकि ने भी कोई दोष शेष नहीं छोड़ा जिसे स्त्रियों में न दिखलाया हो।[१८९] महाभारतकार का कथन है कि यदि किसी की सौ जिह्वाएँ हों और वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सौ वर्ष तक जिए तथा उसे स्त्रियों के दोष बखान करने के अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य न हो तो भी वह उसके दोषों को बिना कहे ही मर जाएगा।[१६०] साथ ही उन्होंने स्त्रियों को वीभत्स रूप में असंयमित माना है।[१६१] भीष्म के शब्दों में भी कठोर वचन, बंधन, क्लेश, अथवा ताड़ना किसी प्रकार से भी स्त्रियों को पाप कर्म से रोका नहीं जा सकता, क्योंकि वे सदा असंयत हैं।[१६२]

इस प्रकार संस्कृत महाकाव्य काल में स्त्रियों की स्थिति अत्यधिक अपमान-जनक थी। केवल माता रूप में उसके आदर और सम्मान के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। कहीं-कहीं पत्नी और पुत्री के लिए प्रशंसात्मक उल्लेख भी मिलते हैं। अतः एक ओर नारी यदि अपने पुत्री, पत्नी और माता रूप में सम्मान की पात्री है तो दूसरी और सम्पूर्ण स्त्री जाति समस्त अवगुणों की भंडार और दोषों की खान है।

बौद्ध साहित्य में नारी

भगवान् बुद्ध ने यद्यपि स्त्रियों को भी बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान करके, उस युग की सर्वाधिकारों से वंचित, लांछित, प्रताड़ित एवं पतित समझी जाने वाली नारी जाति के लिए उद्धार का मार्ग प्रशस्त किया।[१६३] तथापि नारी ! जिसे समाज ने सब दोषों का मूल मान लिया था, विशेष सम्मान की अधिकारिणी न बन सकी।[१६४] फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध काल में स्त्री जाति के प्रति संवेदना का स्वर ध्वनित हुआ।[१६५]

आरम्भ में बुद्ध देव स्त्रियों के संघ में प्रवेश के पक्ष में नहीं थे,[१६६] परन्तु उनके शिष्य दयालु आनन्द ने स्त्रियों की दुरवस्था तथा सास-ननद के अत्याचारों से पीड़ित[१६७] वधुओं की दारुण व्यथा से द्रवित होकर स्त्रियों को मठों में शरण देने की प्रार्थना की। "बुद्धम् शरणं गच्छामि, धर्मम् शरणं गच्छामि, संघम् शरणं गच्छामि" का अमृत मंत्र मानव मात्र के उद्धार का मूल मंत्र था। अतः विवाहिता-अविवाहिता, विधवा, वेश्या और पतिता, प्रत्येक दुःखिनी के लिए संघ का द्वार खोल देना पड़ा, क्योंकि नर्क तुल्य गृह की सीमाओं के बंधन से मुक्त होने के लिए स्त्रियों के लिए बौद्ध मठ ही एक मात्र आधार थे।[१६८] परन्तु फिर भी बौद्ध धर्म में स्त्रियों को दीक्षित करने का बुद्धदेव को खेद ही रहा।[१६९] सम्भव है बुद्ध का ध्यान आगे होने वाले भिक्षु-भिक्षुणियों के भ्रष्टाचार की ओर रहा हो जिसके निराकरण के लिए उन्होंने भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए कठोर नियम भी बनाए थे,[२००] लेकिन बौद्ध विहारों में स्त्री पुरुषों के संसर्ग से उत्पन्न दोषों को रोका न जा सका और बौद्ध धर्म के पतन का यह भी एक कारण बना। यही कारण है कि निवृत्ति पथ पर आरूढ़ संन्यासी बौद्ध धर्मावलम्बियों ने जिन बौद्ध गाथाओं का चित्रण जातक साहित्य में किया उसमें स्त्री मात्र के प्रति सीमातीत घृणा, अविश्वास एवं अपमान का स्वर ध्वनित होता है।[२०१]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को अपने पति की प्रसन्नता के लिए ही वशिष्ठ का अभिगमन करना पड़ा।[१७४] लेकिन फिर भी शास्त्रकारों ने स्त्रियों के प्रति इतनी उदारता दिखलाई कि प्रत्येक दशा में उन्हें अबध्य माना। अपराध पर केवल मारना, पीटना, नाक-कान काटना और स्तन काट डालने का दंड पर्याप्त समझा गया।[१७५] स्त्री को दासत्व का जीवनग्रहण करते हुए भी प्रत्येक दशा में पति के घर ही रहने का निर्देश दिया गया, भले ही वह उसे न चाहे।[१७६] संस्कृत काव्यों में अनेक स्थलों पर स्त्री केवल पुरुषों की काम-वासना की तृप्ति का साधन मात्र है।[१७७] उपाध्याय ने अनेक उदाहरणों द्वारा पुष्ट करते हुए कहा कि कालिदास के काव्य में ही स्त्रियों के प्रति सद्भावना रहित विचारों की कमी नहीं है।[१७८] यदि पति पत्नी की बात माने तो उसे स्त्रीजित (हेंड पैक्ड) कहकर तिरस्कृत करने की प्रथा तो पुरानी ही[१७९] थी। महाभारत में ऐसे पुरुष को नरकगामी कहा गया है।[१८०] राम को सीता के लिए व्याकुल देखकर सुग्रीव उन्हें तिरस्कृत करता है।[१८१] राजा दशरथ की भी इस प्रसंग को लेकर अत्यधिक भर्त्सना की गई है। कालिदास ने 'भोज-प्रबन्ध' में स्त्रियों द्वारा अनुशासित घर के चौपट हो जाने की बात कही है।[१८२]

संस्कृत काव्यों में यद्यपि ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ पुत्र, माता की भी जी भर कर भर्त्सना करता हुआ दिखलाई पड़ता है तथापि मातृ रूप की स्तुति विस्तार से हुई है।[१८३] महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है कि "दस आचार्यों से बड़ा उपाध्याय दस उपाध्याय से बड़ा पिता और दस पिताओं से बड़ी माता है जिससे बड़ा कोई नहीं है।[१८४] कालिदास के रघुवंश में भी मातृत्व की महत्ता का वर्णन है। परन्तु स्त्री मात्र के लिए कहे गए कटु वचनों का संस्कृत महाकाव्यों में अभाव नहीं है।[१८५] धर्मदेव विद्यावाचस्पति के मतानुसार संस्कृत काव्यों, नाटकों विशेषतः वेदान्त विषयक ग्रन्थों में सम्पूर्ण स्त्री जाति के विषय में जिन हीन भावों का प्रकाशन किया गया है वे सभ्य देशों के आगे भारतीय नारी के पतन के प्रमाण हैं।[१८६] इनमें नारी नरक का द्वार, राक्षसी एवं पिशाची, बन्धन की शृंखला, अत्यधिक अविश्वसनीय और विष तुल्य कही गई है।[१८७] नारी मात्र के प्रति आक्रोश और भर्त्सना की अभिव्यंजना के लिए संस्कृत काव्य का निम्नांकित उदाहरण ही पर्याप्त है—

आवर्तः संशयानामविनयन वनं पत्तनं साहसानां,
दोषाणां सन्निधानं कपटशतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्।
दुर्ग्राह्यं यन्महद्भिर्नरवृषभैः सर्वमायाकरण्डम्,
स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतयुतं धर्मनाशाय सृष्टम्।।[१८८]

यह श्लोक स्त्रियों की निन्दा का ज्वलन्त प्रमाण है, जिसके अनुसार स्त्री जाति सभी अवगुणों की खान है। महाकवि वाल्मीकि ने भी कोई दोष शेष नहीं छोड़ा जिसे स्त्रियों में न दिखलाया हो।[१८९] महाभारतकार का कथन है कि यदि किसी की सौ जिह्वाएँ हों और वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सौ वर्ष तक जिए तथा उसे स्त्रियों के दोष बखान करने के अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य न हो तो भी वह उसके दोषों को बिना कहे ही मर जाएगा।[१६०] साथ ही उन्होंने स्त्रियों को वीभत्स रूप में असंयमित माना है।[१६१] भीष्म के शब्दों में भी कठोर वचन, बंधन, क्लेश, अथवा ताड़ना किसी प्रकार से भी स्त्रियों को पाप कर्म से रोका नहीं जा सकता, क्योंकि वे सदा असंयत हैं।[१६२]

इस प्रकार संस्कृत महाकाव्य काल में स्त्रियों की स्थिति अत्यधिक अपमान-जनक थी। केवल माता रूप में उसके आदर और सम्मान के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। कहीं-कहीं पत्नी और पुत्री के लिए प्रशंसात्मक उल्लेख भी मिलते हैं। अतः एक ओर नारी यदि अपने पुत्री, पत्नी और माता रूप में सम्मान की पात्री है तो दूसरी और सम्पूर्ण स्त्री जाति समस्त अवगुणों की भंडार और दोषों की खान है।

बौद्ध साहित्य में नारी

भगवान् बुद्ध ने यद्यपि स्त्रियों को भी बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान करके, उस युग की सर्वाधिकारों से वंचित, लांछित, प्रताड़ित एवं पतित समझी जाने वाली नारी जाति के लिए उद्धार का मार्ग प्रशस्त किया।[१६३] तथापि नारी ! जिसे समाज ने सब दोषों का मूल मान लिया था, विशेष सम्मान की अधिकारिणी न बन सकी।[१६४] फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध काल में स्त्री जाति के प्रति संवेदना का स्वर ध्वनित हुआ।[१६५]

आरम्भ में बुद्ध देव स्त्रियों के संघ में प्रवेश के पक्ष में नहीं थे,[१६६] परन्तु उनके शिष्य दयालु आनन्द ने स्त्रियों की दुरवस्था तथा सास-ननद के अत्याचारों से पीड़ित[१६७] वधुओं की दारुण व्यथा से द्रवित होकर स्त्रियों को मठों में शरण देने की प्रार्थना की। "बुद्धम् शरणं गच्छामि, धर्मम् शरणं गच्छामि, संघम् शरणं गच्छामि" का अमृत मंत्र मानव मात्र के उद्धार का मूल मंत्र था। अतः विवाहिता-अविवाहिता, विधवा, वेश्या और पतिता, प्रत्येक दुःखिनी के लिए संघ का द्वार खोल देना पड़ा, क्योंकि नर्क तुल्य गृह की सीमाओं के बंधन से मुक्त होने के लिए स्त्रियों के लिए बौद्ध मठ ही एक मात्र आधार थे।[१६८] परन्तु फिर भी बौद्ध धर्म में स्त्रियों को दीक्षित करने का बुद्धदेव को खेद ही रहा।[१६९] सम्भव है बुद्ध का ध्यान आगे होने वाले भिक्षु-भिक्षुणियों के भ्रष्टाचार की ओर रहा हो जिसके निराकरण के लिए उन्होंने भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए कठोर नियम भी बनाए थे,[२००] लेकिन बौद्ध विहारों में स्त्री पुरुषों के संसर्ग से उत्पन्न दोषों को रोका न जा सका और बौद्ध धर्म के पतन का यह भी एक कारण बना। यही कारण है कि निवृत्ति पथ पर आरूढ़ संन्यासी बौद्ध धर्मावलम्बियों ने जिन बौद्ध गाथाओं का चित्रण जातक साहित्य में किया उसमें स्त्री मात्र के प्रति सीमातीत घृणा, अविश्वास एवं अपमान का स्वर ध्वनित होता है।[२०१]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निवृत्ति पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहन हेतु बौद्ध साहित्य में स्त्री मात्र पर हीनतम, वीभत्स, घृणित तथा पतनकारी कुकृत्यों के लांछन लगाए गए हैं।[२०२] अब तक स्त्रियों की चाहे कितनी ही भर्त्सना क्यों न हुई हो परन्तु अपने मातृ रूप में वह सदा पूजनीय ही रही, जातक कथाओं में माता को पुत्र के साथ व्यभिचार के लिए उद्यत[२०३] तथा एक अन्य वृद्ध आचार्य की अति वृद्धा तथा अन्धी माता का एक युवक शिष्य (जो उसकी सेवा करता था) पर आसक्त होकर अपने पुत्र का वध करने की अभिलाषा करते हुए दिखाया है, जिससे वह निश्चिन्त होकर भोग-विलास कर सके।[२०४]

इस प्रकार जातकों में स्त्रियों को अस्वाभाविक रूप से असाध्वी तथा दीप शिखा की भाँति सबको भस्म कर देने वाली कहा गया है।[२०५] काम विकल हो जाने पर स्त्रियों में असंयम अमर्यादा और असन्तुष्टि की कोई सीमा नहीं रह जाती।[२०६] जो व्यक्ति स्त्रियों का विश्वास करें, वे नराधम हैं।[२०७] सभी नदियाँ टेढ़ी हैं, सभी वनों में लकड़ी हैं, मौका मिल जाने पर सभी स्त्रियाँ पाप कर्म करती हैं।[२०८] अंडभूत जातक के अनुसार स्त्रियाँ चोर-अतिबुद्धि, असत् युक्त तथा दुर्ज्ञेय हैं जिनके लिए झूठ सत्य और सत्य झूठ है। वे कठोर सर्पिणी जैसी हिंसक, लुढ़कने वाले कंकर की भाँति चंचल, धोखा देने वाली और सभी कलाओं (कुकृत्यों) को जानने वाली हैं।[२०९] इससे विदित होता है कि बौद्ध साहित्य में स्त्री निंदा पराकाष्ठा पर पहुँची हुई है।

शिव पूजन सहाय का अनुमान है कि बौद्ध काल में स्त्रियों की वैसी दशा नहीं रही होगी जैसी जातकों में प्रदर्शित की गई है। केवल स्त्रियों को त्याग और तपस्या में बाधा स्वरूप मानने के कारण उन्हें कोसा गया है तथा धर्म-प्रचार के मार्ग को निष्कंटक बनाने के अभिप्राय से ही ब्राह्मणों और स्त्रियों पर लांछन लगाए गए हैं और उनका दोष-दर्शन कराया गया है।[२१०] बौद्ध साहित्य में स्त्रियों की प्रशंसा में कहे गए वाक्य हैं, जो अति नगण्य हैं।[२११]

हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध और जैनियों में स्त्रियों की स्थिति पर एकत्रित की गई टिप्पणियों में स्त्रियों के प्रति जननी रूप में कुछ आदर सूचक उल्लेखों पर प्रकाश डाला गया है।[२१२] इसके अनुसार "संसार का सुख जननी की मृदु मुस्कान है।" वृद्धावस्था में माता-पिता की सेवा न करने वाला जातिच्युत है तथा माता-पिता की प्रसन्नता, सृष्टि का एक बड़ा वरदान कही गई है। इसके अतिरिक्त कतिपय उल्लेख और हैं जो स्त्रियों के प्रति नम्रता का व्यवहार करने का भाव प्रकट करते हैं।[२१३] पति की मृत्यु पर राज्य करने वाली[२१४] तथा पति के अत्याचार पर न्याय की मांग करके निर्दोष घोषित की जाने वाली[२१५] स्त्रियों के भी कुछ उदाहरण हैं। श्री बेनी प्रसाद के अनुसार जातकों में विवाह बहुधा बालपन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के बाद ही होता था तथा युवक-युवती कभी-कभी अपनी इच्छानुसार विवाह कर लेते थे।[२१६] परन्तु स्त्रियों के प्रति न्याय और सहृदयता के ये कतिपय उल्लेख उसकी विस्तृत कटु निन्दा के समक्ष मूल्यहीन से प्रतीत होते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भले ही भगवान् बुद्ध और उनके आनन्द जैसे कुछ शिष्यों ने स्त्रियों के उद्धार का प्रयास किया और उनके प्रति उदारता का दृष्टिकोण रखा परन्तु उस युग के समाज और साहित्य दोनों में ही नारी की स्थिति शोचनीय तथा अपमानजनक थी।

जैन साहित्य में नारी

जैन और बौद्ध दोनों धर्मों के दार्शनिक सिद्धान्त लगभग एक समान ही हैं। दोनों ही धर्मों में मोक्ष का साधन संन्यास माना गया है। श्री दिनकर ने कहा है कि जैन महात्मा तो ऐन्द्रिय सुखों के घोर शत्रु हैं। उनका विचार है कि "पाप करने से ही जन्म होता है, अधिक पाप करने से मनुष्य को विवाह करना तथा गृहस्थी के अनेक जंजालों में पड़ना पड़ता है। अतः भोगासक्ति ही पाप है।[२१७] जैन धर्म के मतानुसार मोक्ष का साधन केवल संन्यासी ही कर सकते हैं। दिगम्बर पंथ वालो ने तो स्पष्ट ही घोषित कर दिया था कि मुक्ति नारियों के लिए है ही नहीं। नारियों को चाहिए कि वे सीमित धर्म (सम्भवतः पुराण के पति-सेवा धर्म) का पालन करें जिससे पुरुष होकर पुनर्जन्म लें क्योंकि मोक्ष लाभ उसी दशा में मिल सकता है।[२१८] इस स्थिति से स्पष्ट है कि स्त्रियों की जो अवस्था बौद्ध साहित्य में है लगभग वही जैन साहित्य में भी है।

माता के रूप में नारी जाति को यहाँ भी आदर मान मिला है। माता का भरण-पोषण और उसकी सुरक्षा कर्त्तव्य कहा गया है। जैन तीर्थंकरों में मल्लीनाथ का (जो उच्च वर्ग की सुशिक्षित स्त्री थी) उल्लेख मिलता है। कुछ श्राविकाओं का वर्णन भी आया है। उमाकान्त प्रेमानन्द शाह ने 'जक्कय वे नगर' खंड की अधिकारिणी का वर्णन किया है जो पति की मृत्यु पर नियुक्त की गई थी।[२१९] परन्तु ये कुछ गिने-चुने उल्लेख नारी मात्र की सुदृढ़ स्थिति के प्रमाण नहीं माने जा सकते, क्योंकि निवृत्ति मार्ग की अवरोधक नारी जाति के प्रति जैन मतावलम्बियों के विष बुझे वाक्य-बाण नारी मात्र की स्थिति को हीन बनाने वाले हैं।

जैन आचरांग सूत्र के अनुसार स्त्रियों को सुख का साधन समझना पुरुषों की मूर्खता है क्योंकि स्त्रियाँ अज्ञान, दुःख, मृत्यु और नरक का द्वार हैं।[२२०] जैन धर्म के ग्रन्थों में स्त्रियों का प्रेम अस्थायी, स्त्री रूपी हाथी वासनाओं का गढ़, तीक्ष्ण विष तथा उसका सुख प्रवंचना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भर ही माना गया है तथा स्त्री मात्र को एक जहरीला पत्थर कहा गया है, जो लगते ही मृत्यु को बुलाता है, अतः उसके प्रकोप से बचना चाहिए।[२२१] किसी भिक्षु के लिए तो स्त्रियों का सामीप्य ऐसा ही है जैसे चमकती हुई आँख वाली बिल्ली के सामने चुहिया का बिल बनाना।[२२२] यही नहीं उनके अनुसार स्त्री में जब वासना भड़कती है तो वह अपने सम्बन्धों को भूल जाती है। उस समय उसका हृदय काठ की लकड़ी के समान हो जाता है। नारी संसार के लिए अभिशाप है। स्त्रियों की इच्छाओं का अंत नहीं है। वह लम्भ है, पाप है और अन्त में झगड़ों की मूल यह नारी ही है।[२२३]

दिनकर के मतानुसार बौद्ध और जैन मतावलम्बियों के (इन घृणात्मक और निवृत्ति सूचक विचारों से पुष्ट) मतों का भीषण प्रभाव यह हुआ है कि समाज में संसार के प्रति घृणा और विरक्ति उत्पन्न हुई तथा उसका दृष्टिकोण अमानुषिक अर्थात् इस जीवन के सुखों के स्थान पर मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाले सुखों की प्राप्ति पर विचार करने का बन गया।[२२४]

इस प्रकार जैन साहित्य में भी कटु वाणी में नारी की निन्दा का उद्घोष हुआ है।

नाथ सम्प्रदाय के साहित्य में नारी

नाथपंथियों का मुख्य सम्प्रदाय गोरखनाथी योगियों का है। गोरखनाथ विशुद्ध ब्रह्मचारी को ही उस मार्ग का पथिक स्वीकार करते हैं। श्री हजारी प्रसाद जी के मतानुसार "इस मार्ग की सबसे बड़ी कमी उसकी शुष्कता और गृहस्थ के प्रति अनादर है।"[२२५] योगी लोग गृही को बहुत ही दयनीय जीव समझते थे। उनकी धारणा थी कि काम-क्रोध का दास गृही होता है। गृहस्थाश्रम के बन्धन से बँधा व्यक्ति ज्ञान की बात करने का अधिकारी नहीं माना जाता था। गृहस्थ का ज्ञान, नशेबाज का ध्यान, बूचे का कान, वेश्या का मान और वैरागी का माया बटोरना इनके मत में समान भाव से निरर्थक है।[२२६] गृहस्थ और गृहियों के प्रति यह दुर्भावना गृह की केन्द्र नारी के प्रति अनादर की ही सूचक है।

जैन धर्मावलम्बियों के कठोर निवृत्ति मार्ग से, जो सर्वसाधारण के लिए असाध्य था, जनता शीघ्र ही ऊब गई और सहज मार्ग खोजने को आतुर हो उठी। अतः अब निवृत्ति, त्याग और तप के स्थान पर—"स्वेच्छा पूर्वक खाने पीने और सुख से रमण करने से ही परलोक बनता है और सांसारिक भय मिट जाते हैं"[२२७] की भावनाएँ प्रचलित हो गईं। दिनकर ने भी कहा है कि तपस्या और संयम के जो प्रबल भाव थे वे ढीले पड़ गये थे "हीन से महान्, महान से मंत्र, और मंत्र से वज्र तथा वज्र से सहज, यह प्रक्रिया ही बतलाती है कि संयम और तपस्या से लोग आज़िज़ आ गये थे।"[२२८]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अब भोग विलासरत गृही भी नाथ योगी होने लगे। कुंडल धारण करके विधवा स्त्रियाँ सम्प्रदाय में दीक्षित होती थीं और गृहस्थ योगियों की पत्नियाँ भी कुंडल धारण करने लगीं।[२२९] लेकिन स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक नहीं थी स्वयं गोरखपंथी भी यह विश्वास करते थे कि मुद्रा धारण करने के लिए चीरे गए कान का घाव स्त्री दर्शन से पक जाता है।[२३०]

वज्रयानियों का लक्ष्य था कि मन की प्रसन्नता के अनुरूप ही आचरण करना चाहिए। साथ ही उन्होंने बोधिचित्त के शून्य से मिलन अवस्था के आनन्द की उपमा नर-नारी के समागम से देनी प्रारम्भ कर दी।[२३१] इस स्थिति में जब कि मंत्रयान की प्रसिद्ध पुस्तक 'मंजुश्री मूलकल्प' और 'वज्रयान की पोथी' 'गुह्य समाज तंत्र' में धर्म के नाम पर घृणित आचरणों का समर्थन हो रहा था और अनोखे-अनोखे हठयोगी साधन (जिनमें निम्न वर्ग की स्त्रियों को मुद्रा बनाकर साधना का आयोजन था) जनता को चकित कर, आकर्षित कर रहे थे, ब्राह्मण और सुसंस्कृत वर्ग सजग हुआ और उसे हीन दृष्टि से देखता हुआ छुआछूत तथा ऊँच नीच की भावना को और भी दृढ़ता से अंगीकार करने लगा। साथ ही शूद्रों और स्त्रियों की निन्दा भी बढ़ने लगी।

इस प्रकार नाथ-सम्प्रदाय में वामाचार को प्रोत्साहन मिला, भ्रष्टाचार बढ़ गया तथा ढोंगी साधुओं की संख्या में वृद्धि हुई। स्वयं मत्स्येन्द्रनाथ के मृत राजा के शरीर में प्रविष्ट होने तथा रानी मंगला के साथ आनन्द विहार और अन्य रानियों के साथ भोग की कथा[२३२] एवं गोरख के गुरु मीननाथ का सौलह सौ सेविकाओं द्वारा परिव्रता मंगला और कमला आदि पटरानियों के साथ भोग विलास की कथाएँ[२३३] इस बात की परिचायक हैं कि ये मार्ग के प्रवर्त्तक स्वयं भी स्त्रियों के साथ अबाध संसर्ग से युक्त थे। इन सब कथाओं का प्रभाव भी नारियों की स्थिति के सम्बन्ध में स्वस्थकर नहीं था। स्त्रियों की कामवासना तथा अन्य अवगुणों को अभिव्यक्त करने वाली अनेक कथाएँ हैं तथा—

त्रिया चरित्र जानै नहिं कोय, पति मार के सती होय।

जैसी 'बानियां' स्त्रियों के प्रति हीन भावना की द्योतक हैं। इस प्रकार नारियों की स्थिति अपकर्ष की ओर ही अधिक रही।

निष्कर्ष

पूर्व प्रस्तर युग में समाज मातृसत्तात्मक था और नारी की अवस्था श्रेष्ठ ही रही है। नूतन प्रस्तर युग में समाज पितृसत्तात्मक बना जिससे सामाजिक मान्यताएँ बदलीं और समाज पुरुष प्रधान हो गया। फलस्वरूप तुलनात्मक दृष्टि से स्त्रियों की अवस्था हीन हो गयी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इण्डो-यूरोपीय परिवारों में स्त्रियों को अपहरण अथवा शुल्क से प्राप्त किया जाने लगा फलतः बहुपत्नी-प्रथा का प्रचलन हुआ। स्त्रियों की अवस्था सुदृढ़ न रह सकी।

इण्डो-ईरानी काल में भी बहुत कुछ स्थिति समान ही रही परन्तु सम्भवतः सभ्यता और संस्कृति कुछ परिष्कृत हुई। बहुपत्नी प्रथा के प्रमाण प्राप्त होने पर भी एक पति-पत्नी के आदर्श रखे गए और विवाह धार्मिक भावना से युक्त होकर पावन प्रथा बना। नारी का महत्त्व बढ़ा और विशिष्ट अधिकारों को प्राप्त कर वह समाज में सम्मान की अधिकारिणी बनी।

इस पूर्व पीठिका पर अवस्थित वैदिक संस्कृति नारी उत्थान के गौरवमय विहान को लेकर प्रकट हुई जिसमें निःसन्देह नारी अपने सम्पूर्ण गौरव एवं गरिमा से युक्त गृहस्वामिनी के पद पर अवस्थित सम्राज्ञीवत् पुरुष की चिर सहचरी बनी।

पुत्री, पत्नी और माता रूप में उसे सभी वांछित अधिकार और स्नेह, आदर मान एवम् स्वतन्त्रता मिली। समाज पितृसत्तात्मक था परन्तु माता का स्थान पिता से दूसरा तथा महत्त्वपूर्ण था।

पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह अथवा सती प्रथा जैसी प्रथाओं का समाज में प्रचलन नहीं था, नारी शिक्षा प्राप्त कर ज्ञानमयी विदुषी दिखलाई पड़ती है, परन्तु बहु-पत्नी प्रथा का प्रचलन अधिक न होने पर भी उच्च वर्ग में यह विद्यमान थी। अतः सपत्नी (सौत) के विनाश की अभिलाषा व्यक्त करने वाले मंत्रों से भी स्पष्ट है कि इस दृष्टि से नारी उपेक्षित जीवन व्यतीत करती थी।

उत्तर वैदिक काल में नारियों की अवस्था अपेक्षाकृत हीन दृष्टिगत होती है। स्त्रियों की स्वतन्त्रता नियन्त्रित हो गई। फलस्वरूप स्त्री शिक्षा पर भी अपेक्षाकृत बन्धन लगे। स्त्रियों के धार्मिक अधिकार कम हो गए और नारी के प्रति निन्दा के स्वर मुखरित हुए। अतः उत्तर वैदिक काल को ही स्त्रियों की हीन अवस्था का प्रारम्भिक काल कहा जा सकता है।

सूत्र, स्मृति और पुराण काल में स्त्रियों की अवस्था हीनतर होती गई। नारी के प्रति एक ओर यद्यपि आदर सूचक उक्तियाँ भी कही गईं तथापि दूसरी ओर नारी के प्रति निन्दात्मक स्वर की उग्रता अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई।

स्त्रियों को ताड़ना देना, पीटना और रस्सी से बांध रखने के विधान बनाए गए साथ ही स्त्रियों के लिए एक मात्र धर्म पतिव्रत धर्म को कठोरता और दृढ़ता से स्त्रियों पर लाद दिया गया। कन्या आपत्ति मानी जाने लगी, पत्नी दीन हीन अवस्था में स्थित हुई और नारी जाति समस्त अवगुणों की मूल समझी जाने लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संस्कृत महाकाव्यों में भी नारी के दोनों रूपों सत् और असत् (प्रशंसनीय और भर्त्सनीय) का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। पुत्री, पत्नी और माता रूप में वह यद्यपि स्नेह सम्मान और आदर की पात्री है तथापि नारी मात्र के रूप में वह अपार घृणा, भर्त्सना और निन्दा की अधिकारिणी मानी जाने लगी।

बहुपत्नी प्रथा को बहुत अधिक प्रश्रय दिया गया जिससे स्त्रियाँ उपेक्षित हो गईं साथ ही स्त्रियों की स्थिति हीन और अपमानजनक ही रही। नारी जाति अवगुणों का भण्डार और दोषों की खान मानी जाने लगी।

बौद्ध साहित्य में नारी अत्यधिक शोचनीय और अपमानजनक एवं गर्हित रूप में चित्रित की गई है यद्यपि भगवान् बुद्ध ने समाज में स्त्रियों के उद्धार का प्रयास किया परन्तु जातक साहित्य में नारी जीवन के विडम्बना पूर्ण घृणित और पतित स्वरूपों के चित्र अंकित किए गए जिसमें मातृत्व को भी लांछित किया गया।

जैन साहित्य की वाणी भी समान रूप से ही नारी निन्दा का कटु और उग्र स्वर में उद्घोष करती है।

नाथ सम्प्रदाय में भी वैराग्यपरक प्रवृत्ति होने के कारण स्त्रियों को अनादर की दृष्टि से देखा गया। नारियों के अवगुणों (कामवासना आदि) की परिचायक अनेक कथाओं का उल्लेख किया गया। गुह्य उपासना पद्धति तथा हठयोगियों के अनोखे तंत्र विधानों ने नारी की स्थिति को हीन ही बनाया। अतः पूर्व वैदिक काल में उत्कर्ष के श्रेष्ठतम शिखर को छूकर उत्तर वैदिक काल से नारियों की स्थिति अपकर्ष की ओर ही अग्रसर होती गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : बेनी प्रसाद, पृ० २० (१९३१ प्रयाग)
२. इंसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स, खंड-आठ, पृ० ८५८-९
३. ग्रेट वीमैन ऑफ इंडिया में संग्रहीत इवोल्यूशन ऑफ मदर वरशिप पृ० ४९-०
४. इंडिया फ्रोम प्रिमिटिव कम्यूनिज्म टू स्लैवरी : ए० एस० डांगे (१९४९ बम्बई), पृ० ११८-८
५. पोजीशन ऑफ वोमैन इन हिन्दू सिविलिजेशन : ए० एस० अल्तेकर पृ० ३३-६
६. हिन्दू परिवार मीमांसा : हरिदत्त वेदालंकार (सं० २०११ इलाहाबाद) पृ० ५-९
७. शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ मैरिज़ : वैस्टरमार्क, पृ० १३-१४
८. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध : प्रोफेसर शिवराज शास्त्री, पृ० २४-५
९. बायोग्राफी ऑफ वर्ड्स : प्रोफेसर मैक्समुलर, पृ० ८९-०
एक नृवंशीय समुदाय (स्थनिक गुप) के रूप में इण्डो-यूरोपियन नाम की कोई जाति नहीं थी, इण्डो-यूरोपीय केवल भाषा परिवार का नाम है और फाइस्ट ने (कल्चर- पृ० ५०२ पर) विचार अभिव्यक्त किया है कि इण्डो-यूरोपीय जाति से केवल ऐसे लोगों के समुदाय से अभिप्राय है जो किसी निश्चित भू-भाग में रहते थे और जिनकी भाषा एक समान थी।
१०. प्री हिस्टोरिक एन्टीक्यूइटीज़ ऑफ दि आर्यन पीपिल्स : श्राडर, पृ० ४०६
११. मैक्समुलर : बायोग्राफी ऑफ वर्ड्स, खंड XIVII
१२. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स, पृ० ८५६
१३. (क) प्री हिस्टोरिक-एन्टीक्यूइटिज ऑफ दि आर्यन पीपिल्स : श्राडर, पृ० ३१८
(ख) डायोनीसियस ऑफ हेलिकार्नेसस, पृ० २-३०
(ग) इलियड, पृ० २४४
१४. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध : प्रो० शिवराज शास्त्री
ऋग्वेद और होमर में ... पत्नी के अतिरिक्त दासियाँ भी रखते थे।
१५. प्री हिस्टोरिक एन्टीक्यूटीज़ ऑफ दि आर्यन पीपिल्स : श्राडर, पृ० ३२०
१६. वही
१७. हेरोडोट्स खंड पाँच, पृ० ३९
१८. प्री हिस्टोरिक एन्टीक्यूटीज़ ऑफ दि आर्यन पीपिल्स : श्राडर खंड आठ : पृ० ३३०
१९. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध : प्रो० शिवराज शास्त्री, पृ० ६९-७१
२०. शतपथ-खंड ५, २, १, ८
२१. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध : प्रो० शिवराज शास्त्री, पृ० ७५
२२. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : बेनी प्रसाद (प्रयाग-१९३१), पृ० ५९८
"जर्मनी के प्रख्यात दार्शनिक शापन हावर ने कहा था कि उपनिषदों से मुझे अपने जीवन में शान्ति मिली है और उपनिषदों से ही मुझे अपनी मौत में शान्ति मिलेगी! मैक्समुलर ने कहा था कि मानवीय मस्तिष्क ने सबसे बड़े सिद्धान्त और सबसे बड़ी युक्तियाँ हिन्दुस्तान में ही निकालीं।" हाउस्टन स्टुअर्ट चैम्बर लेन इत्यादि जर्मन लेखक भी मानते हैं कि तत्त्वज्ञान में हिन्दुओं की बराबरी कोई नहीं कर सकता।
२३. हिन्दू सिविलिज़ेशन : राधा कुमुद मुकर्जी, पृ० २७
२४. ऋग्वेद १०/८५/४६
२५. ऋग्वेद ५/४/१० "प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्"
२६. ऋग्वेद ८/३१/८
२७. ऋग्वेद १/१६२/२२, ५/२५/५, १०/८५/२५, ६/१६/२९, ७/४/६, ८/९८/१० तथा अथर्ववेद— ३/२३/३-५।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२८. ऋग्वेद १०/१५६/३
२९. अथर्ववेद १०/३/२० तथा १२/१/२५
३०. एनल्स ऑफ भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट : बीस, पृ० ६२
३१. अथर्ववेद ११/५/१८
३२. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध : प्रो० शिवराज शास्त्री, पृ० १६४
३३. ऋग्वेद १/११७/७ (में घोषा नाम की स्त्री के बड़ी आयु तक कुमारी रहने का उल्लेख है।)
३४. ऋग्वेद २/१७/७
३५. वेद में स्त्रियाँ : विद्या वाचस्पति गणेश दत्त शर्मा गौड़, पृ० ६२
३६. ऋग्वेद १/११७, ६/१०/२ - विश्वरा, लोपामुद्रा, सिक्ता और घोषा आदि स्त्रियाँ ऋग्वेद की कवयित्रियाँ हैं।
३७. पोजीशन ऑफ वीमैन इन हिन्दू सिविलिज़ेशन : ए० एस० अल्तेकर, पृ० १२
३८. हिन्दू सिविलिज़ेशन : राधा कुमुद मुकर्जी, पृ० ६७
३९. वृहदारण्यक उपनिषद-३/३/१, ३/७/१
४०. मेरा धर्म : प्रियव्रत वेद वाचस्पति, पृ० २३ पर अथर्ववेद ७/३८/४ और २/३/५२ का उल्लेख करते हुए ऐसी स्त्रियों का वर्णन किया है।
४१. ऋग्वेद - १०/२७/१२।
४२. विमेन इन ऋग्वेद : भगवत शरण उपाध्याय, पृ० ४५
४३. ऋग्वेद ८/६६/४, १/६०/५ तथा ६/३२/५
४४. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध : प्रो० शिवराज शास्त्री, पृ० १६१
४५. ऋग्वेद ३/३१/२ को यास्क ने भ्रातृमती पुत्री के दाय अधिकार के विरोध में उद्धृत किया है। इसी प्रकार अल्तेकर पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन पृष्ठ २८६ पर कहते हैं कि "एक वैदिक ऋषि स्पष्ट रूप से भाई को सूचित करता है कि उसे बहिन को कोई भाग नहीं देना चाहिए क्योंकि अन्ततः उसे दूसरे कुल में चले जाना है।" इसके विपरीत जैमिनी-(जैमिनी सूत्र ६/१/३ के अनुसार) स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार का समर्थन करते हैं। प्रियव्रत वेद वाचस्पति - 'मेरा धर्म' पृष्ठ २२ ऋक् २/१७/७ को उद्धृत करते हुए पिता के घर रहने वाली कन्या को भाई के समान ही पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी मानते हैं। परन्तु द्वारकानाथ मित्तर-पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू ला, पृ० ४४८ पर बोधायन तथा परवर्ती धर्म शास्त्रकारों को इसका विरोधी मानते हैं।
४६. १/१०६/२ "अश्रवं हिमूरिदावत्तरा वां विजामातु सतवाधा स्यालात्।"
४७. अथर्ववेद : १४/१/५०
४८. (क) विद्या वाचस्पति गणेश दत्त शर्मा गौड़ 'वेद में स्त्रियाँ' : अजमेर सं० १९८६, पृ० ७०
"सखे सप्तपदे...हि सुनते।
(ख) अथर्ववेद : १४/२/७१—"अमोऽहमस्मि सात्वं सामाहमस्म्यृतवं द्योरहं पृथिवी त्वम्।"
४९. अथर्ववेद २/३६/५
५०. वही ३/२८/३ तथा ११/१/१७, तथा ऋग्वेद ३/४८/३, १०/६/२
५१. ऋग्वेद १०/१५६/२
५२. वही २/३६/७
५३. अथर्ववेद १४/१/२१, १४/२/२७ तथा १२/२/३१
५४. ऋग्वेद १/१२४/४ तथा १/६६/३
५५. वही ३/५३/४
५६. विमेन इन ऋग्वेद : भगवत शरण उपाध्याय, पृ० २१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५७. अथर्ववेद १४/१/४३, १४/१/४४

५८. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : वेनी प्रसाद, पृ० ६५
तथा ऋग्वेद १/१३१/३, ५/४३/१५ स्त्रियों द्वारा सोम रस के बनाने और पान करने का उल्लेख है।

५९. पोजीशन ऑफ वीमैन इन हिन्दू सिविलिज़ेशन : ए० एस० अल्तेकर, पृ० २३३-२३४
तथा ऋग्वेद ४/३१/५, ८/३१/६

६०. अथर्ववेद १४/२/२४

६१. अथर्ववेद १४/२/२

६२. मेरा धर्म : प्रियव्रत वेद वाचस्पति, पृ० १५

६३. तैत्तरीय ब्राह्मण : १/६/५ तथा शतपथ ब्राह्मण २५/२/२०

६४. ऋग्वेद १/८७/३

६५. वही १०/४०/१०

६६. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : बेनी प्रसाद, पृ० ५२ तथा ऋग्वेद १०/१८/८, अथर्ववेद १८/३/१-२

६७. विमेन इन ऋग्वेद : भगवत शरण उपाध्याय, पृ० ६२

६८. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : वेनी प्रसाद, पृ० ५२

६९. वही, पृ० ५७

७०. ऋग्वेद १०/६१/२०

७१. तैत्तिरीय उपनिषद्

७२. ऋग्वेद ८/६८/११-"त्वंहिनः पिता वसोत्वं माताशत क्रतो वभूविथ।"

७३. वही १०/८६/१०

७४. वही ७/१०४/१५

७५. अथर्ववेद २/३६/३

७६. ऋग्वेद १०/१५६//४-६ में सौतों से रहित होने तथा अपनी प्रभुता बढ़ाने की प्रार्थना की गई है तथा १०/१४५/१-६ में भी स्त्री सौत के विनाश और पति पर एकाधिकार की प्रार्थना करती है।

७७. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध : प्रो० शिवराज शास्त्री, पृ० २२५

७८. ऋग्वेद ३/२६/३, ४/४२/४, ७/४१/२, १०/१०१/१२

७९. वही ५/४२/२, ५/४३/२

८०. ऋग्वेद ४/१८/११

८१. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध : प्रो० शिवराज शास्त्री, पृ० २२६

८२. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : बेनी प्रसाद, पृ० ७५.. पर ऋग्वेद का दसवां मंडल सामवेद तथा कुछ उपनिषद एवं संहिताएं (तैत्तिरीय, मैत्रायणी आदि) तथा यजुर्वेद संहिता अथर्ववेद के कुछ अंश, शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण आदि इस युग के प्रमुख साहित्य ग्रन्थ माने हैं।

८३. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : बेनी प्रसाद, उत्तर वैदिक काल, पृ० ८२

८४. वही, पृ० ८६

८५. ऋग्वेद १०/३०/६

८६. शतपथ ब्राह्मण ५/२/१/१० तथा १४/४/२/४-५

८७. ऋग्वेद १०/१०२ तथा मैत्रायणी संहिता १/५/८ पति के दोषों के लिये पत्नी को भर्त्सना करने का अधिकार भी था।

८८. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : बेनी प्रसाद, पृ० ८६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

८६. ऐतरेय ब्राह्मण ३/२४/७ तथा वृहदारण्यक उपनिषद् ३/३/१, ३/७/१ स्त्री शिक्षकों का वर्णन भी मिलता है।

९०. वृहदारण्यक उपनिषद् ३/४/१, ४/५/१

९१. वैदिक इन्डैक्स : मैक्डॉनल और कीथ, पृ० १५६-१६०

९२. पंचविश ब्राह्मण : १४/६/६ वत्स को शूद्र स्त्री का पुत्र होने के कारण दोषी कहा गया तथा ऐतरेय ब्राह्मण २/१६/१ में ऐलूस को दासी पुत्र होने के कारण नीच ठहराया गया है।

९३. ऋग्वेद ४/५/५

९४. वैदिक इन्डेक्स : मैक्डॉनल और कीथ, पृ० ३६५

९५. सम आस्पैक्टस ऑफ दि अरलियस्ट सोशल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, डॉ० एस० सी० सरकार, पृ० १०४

९६. ऋग्वेद : ४/१६/६, ४/३०/१६ में अवैध सन्तानों का उल्लेख है।

९७. (क) विमेन इन ऋग्वेद, बी० एस० उपाध्याय, पृ० ३७
(ख) ऋग्वेद - दो, विल्सन, पृ० १४८ पर - अविवाहित कन्या केवल भरण पोषण की मांग कर सकती थी!

९८. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनी प्रसाद, पृ० १०४

९९. पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलिज़ेशन, ए० एस० अल्तेकर, पृ० ४११

१००. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनी प्रसाद, पृ० १०१

१०१. मैत्रायणी संहिता : १/१०/११

१०२. तैत्तिरीय संहिता : ६/५/१०/३, एतरेय ब्राह्मण २/१६/१ तथा कोषीतकि ब्राह्मण २/३

१०३. ऐतरेय ब्राह्मण : ७/१३ तथा मैत्रायणी संहिता ४/६/४ तथा का० सं० २७/६ में उल्लेख है कि कन्या उत्पन्न हो तो उसे पड़ा रहने दो यदि पुत्र होता है तो उसे हर्ष से गोद में ले लिया जाता है।

१०४. अथर्ववेद : ८/६/२५

१०५. अथर्ववेद : ३/२३ तथा ६/११

१०६. ऐतरेय ब्राह्मण : ५/२६ तथा कौ० ब्रा० २/६

१०७. मैत्रायणी संहिता : १/५/८ में राजा की चार स्त्रियों का उल्लेख है तथा मन की दस पत्नियों का वर्णन भी आता है।

१०८. ऋग्वेद : ८/३३/१७

१०९. ऋग्वेद : १०/६५/१५

११०. ऋग्वेद

१११. ऋग्वेद : १०/६५/१५

११२. तैतिरीय संहिता : ६/५/८-२ में स्त्रियों को निर्बल तथा दाय की अनाधिकारिणी कहा गया है। मैत्रायणी संहिता ४/६/४ में पुरुष दायाद और स्त्रियाँ अदायाद कही गई हैं।

११३. हिन्दू परिवार मीमांसा : हरि दत्त वेदालंकार, पृ० १३३-१४२

११४. पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलिज़ेशन : अल्तेकर, पृ० २३

११५. मनु स्मृति ४/१८५ में कहा गया है कि कन्या कभी अनुचित भी कर ले तो पिता को क्रोध न करके उसे सहन कर लेना चाहिए।
तथा कल्याण नारी अंक 'स्मृति ग्रन्थों में नारी', पृ० ११२,
और हिन्दू परिवार मीमांसा - हरिदत्त वेदालंकार, पृ० २५४

११६. "ब्रह्म-वेवर्त पुराण में कहा गया है कि पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं वे सभी सती साध्वी स्त्री के चरणों में निवास करते हैं, सम्पूर्ण देवताओं और मुनियों का तेज भी सती स्त्रियों में स्वभावतः ही रहता है। सती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नारियों की चरण रज से पृथ्वी पवित्र हो जाती है। जिस दुष्ट के व्यवहार से नारी के आंसू बहते हैं वह देवता के क्रोधानल से भस्म हो जाता है। प्रत्येक शुभ कर्म तथा उत्सवों पर स्त्रियों का भलि भाँति सम्मान करना चाहिए। जिस कुल में पति पत्नी एक दूसरे से सन्तुष्ट रहते हैं वहाँ सदा कल्याण होता है।" इसकी पुष्टि मनु स्मृति ३/५५-६० से की गई है। ...कल्याण नारी अंक संख्या १ में पं० श्री राम गोविन्द त्रिवेदी का लेख-"स्मृति ग्रन्थों में नारी'- पृ० १११

११७. भागवत पुराण : १/४/२५।। "स्त्री शूद्रा द्विज बन्धू नां त्रयी नं श्रुति गोचरा।"

११८. हिन्दू परिवार मीमांसा, हरिदत्त वेदालंकार, पृ० १३७

११९. मीमांसा सूत्र : ७/१/१०।।

१२०. हिन्दू परिवार मीमांसा : हरिदत्त वेदालंकार - पृ० १३८

१२१. वही, पृ० १३६

१२२. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता -बेनी प्रसाद - प्रयाग १९३१ - पृ० १४८

१२३. मनु-९/८१।। याज्ञ-१/७३।। नारद १२/१९।। बोधा २/४/५/६

१२४. धर्म और समाज - डॉ० राधाकृष्णन्- पृ० २२१ पर उद्धृत वायवीय संहिता (उत्तर खंड) २०/११४

१२५. योग वसिष्ठ १/२१/३५

१२६. तैतिरीय संहिता ६/५/८/२

१२७. मैत्रायणी संहिता १/१०/११

१२८. पंचतंत्र मित्र भेद श्लोक २०७

१२९. वही, श्लोक २०६/२०९, में स्त्रियों का स्वभाव समुद्र की तरंगों के समान चंचल और प्रेम संध्या के बादलो के रंग सा क्षणिक कहा गया है तथा १४६/१४८-९२।। में कहा गया है कि स्त्रियाँ एक पुरुष से बात करने, दूसरे को कटाक्ष से देखने वाली, तीसरे को चित्त से स्मरण करने वाली एवं पर पुरुषों के लिए लालायित तथा कुलनाशिनी हैं जो लोक निन्दा की चिन्ता नहीं करतीं। हितोपदेश सुहृद भेद श्लोक १२० में कहा गया है कि स्त्रियों का आहार दुगना, बुद्धि (चालाकी) चौगुनी, साहस (अविचारपूर्ण कार्य) छः गुना और काम भाव आठ गुना होता है। वृद्ध चाणक्य में स्त्रियों की सर्प और अग्नि से तुलना करते हुए कहा गया - "अग्निरामः स्त्रियों मूर्खः सर्पो राजकुलानि च। नित्यं यत्नेन सेव्यानि सधः प्राणहराणि षट्।।

मनु स्मृति ९/१४-१५ में चंचल स्वभाव तथा अति कामना वाली और रक्षित होने पर असती स्त्रियों का वर्णन किया है।

१३०. मनु- १/१४६-१४८

१३१. मनु स्मृति ५/१४७ तथा १/१४६-१४८

१३२. नारद स्मृति १६/३०

१३३. बौद्धायन २/२/५२, विष्णु पुराण २५/१३ तथा महाभारत १३/२०/२१।।

१३४. दि हाई कास्ट हिन्दू विमेन - पृ० ४१

१३५. धर्म और समाज : राधा-कृष्णन् - (अनुवाद), पृ० २२१

१३६. मनु स्मृति ९/८३

१३७. बृहदारण्यक उपनिषद् ६/४/७

१३८. "तुलसी और उनका साहित्य" : राम नरेश त्रिपाठी, पृ० १६२ - "दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टश्च पटहाः स्त्रियः।

ताड़िता मार्दवं यान्ति न ते सत्कार भाजनम्।।

१३९. "आकृष्टापि नाक्रोशेताडितापि प्रसीदति।" स्कन्द पुराण ब्रह्म खण्ड ७/१८-१९

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

१४०. मनु स्मृति ५/१६५-६।। याज्ञवल्क्य स्मृति १/८७।।, स्कन्द पु० ब्र० स० धर्माण्य ७/५४/५६

१४१. गान्धारी जो अपने पति के अन्धे होने पर स्वयं अपनी आँखों पर पट्टी बांध लेती हैं, शांडिली कोढ़ी और लंगड़े पति को उसकी इच्छा पर कन्धे पर चढ़ाकर वैश्या के घर ले जाती है और भोज प्रबन्ध की कथा के अनुसार-पत्नी जंघा पर सोए पति की निद्रा भंग हो जाने के भय से अग्नि कुंड में गिरते हुए अपने शिशु को देखती है लेकिन उठती नहीं।
-सुतं पतन्त प्रसभीक्ष्य पावकेन बोधयामा सपति पतिव्रता। विद्यावाचस्पति गणेश दत्त शर्मा गौड़ द्वारा लिखित वेद में स्त्रियाँ-पृ० ६१-६२ पर उद्धृत- सं० १९८६ वि०

१४२. धर्म और समाज : डॉ० राधाकृष्णन

१४३. मनु स्मृति ६/४६

१४४. जाया वा जनयित्री वा, सम्भव स्त्री कृति नृणाम्।
हे कृतघ्नाः तयनिन्दा कुर्वता वःकृतः।" (भगवत शरण उपाध्याय) - कालीदास का भारत पृ० २६७

१४५. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ० १६७

१४६. रामायणकालीन समाज : शान्ति कुमार नानूराम व्यास, पृ० १४६

१४७. वाल्मीकि रामायण १/२५/५-६।।

१४८. वाल्मीकि रामायण २/११८/३०/३१।। तथा कालिदास कुमार सम्भव ७/१६।।

१४९. वाल्मीकि रामायण ६/१२८/३८/२/१४/३६, ७/१२८/६२ तथा महाभारत ७/८२/२१-२२

१५०. वाल्मीकि रामायण २/२०/२५।। में कौशल्या का अग्नि मंत्रों सहित उपाहुति देना। ५/१४/१६ में सीता का सन्ध्योपासना करना। ४/१६/१२ में तारा का मंत्र विद् होना और २/२६/८६।।, ६/४८/२, २/२६/१७।। २/३०/६, ५/५४/६१।, ३/६/१३-२३ - में सीता का पारस्परिक ज्ञान में पारंगत होना तथा पौराणिक ज्ञान की विलक्षणता।

१५१. महाभारत वन पर्व ६०।। आदि पर्व १०२

१५२. कालिदास का भारत - भगवतशरण उपाध्याय -पृ० ३४

१५३. वाल्मीकि रामायण २/२७/१०

१५४. मेघदूत ३३, तथा रघुवंश १६/६४, १६/७०, ६/१८ में कालिदास ने ऊख के खेतों की रखवाली करती हुई आनन्द से गाती हुई स्त्रियों का चित्रण किया है। वाल्मीकि रामायण २/६७/१७, २/६०/६-१०, ७/२/१० में भी स्त्रियों की स्वतन्त्र अवस्था का वर्णन है।

१५५. वाल्मीकि रामायण १/३२/२१-२, १/६६/१५-६

१५६. महाभारत १/१५६/११ तथा १२। २४३/२०।। - रामायण उत्तर कांड १२

१५७. वाल्मीकि रामायण २/११८/२४-२५

१५८. महाभारत ५/२८/२, २/११८/२८-२६ में कुंती का सूर्य से कर्ण का गर्भ उसकी विवशता थी, द्रौपदी भी पाँच पति वरण के लिए विवश की गई थी। माधवी की कथा तो बड़ी दयनीय है जहाँ उसका पिता ययाति गालब को माधवी का दान कर देता है जो दिवोदास विश्वामित्र आदि अनेक व्यक्तिओं को ८०० घोड़ों की प्राप्ति के हेतु माधवी को भोगने के लिए दे देता था। तथा महाभारत ५/१७५/१६ में अम्बा का त्याग भी ऐसा ही उदाहरण है।

१५९. महाभारत १३/८०/११

१६०. रघुवंश - कालिदास के प्रथम सर्ग के ७ श्लोकों में पुत्र के महत्त्व का विस्तार पूर्वक उल्लेख है।

१६१. वाल्मीकि रामायण २/२७/५ में सीता के अभाव में राम को यज्ञ पूर्ति के लिए सीता की स्वर्ण प्रतिमा स्थापित करनी पड़ी।

१६२. रघुवंश : कालिदास १/१

१६३. वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड-१२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१६४. महाभारत १२/१४५/६
१६५. वही १३/१२७/६
१६६. वाल्मीकि रामायण २/४५/२८, ४/३३/३६
१६७. वही २/४२/६-६
१६८. वही ७/३६/११, २/३२/१५-१६
१६९. वही ७/३४/४१, २/३०/८, ४/२४/३८, ६/१२५/४४-४५
१७०. वाल्मीकि रामायण ५/१०१/१४
१७१. महाभारत २/६१/२४ तथा २/१०१/१८, ७/६/११
१७२. महाभारत (१/४५/४८ अ०) में जरत्कारू अपनी पत्नी को, जो निर्दोष है, रोता बिलखता हुआ छोड़ कर चला जाता है। इसके साथ ही साथ देखिए—महाभारत (१३/६५-६६ अ०) में रेणुका को जमदग्नि कड़ी धूप और तपी बालू पर केवल अपने क्रीड़ा कौतुक के लिए ही तीर छोड़कर लौने के लिए निरन्तर दौड़ाता रहता है।
१७३. महाभारत १/१२२/२७/२८
१७४. वही १/१२२/२३
१७५. वाल्मीकि रामायण ७/७६/३७, ६/८१/२२, २/७८/२१-३०
१७६. कालिदास शाकुन्तलम् ४/१७, ५/२७
१७७. कालिदास रघुवंश १/४/३५
१७८. कालिदास का भारत : भगवत शरण उपाध्याय, पृ० २६७
१७९. मनु स्मृति ४/२२७
१८०. हिन्दू परिवार मीमांसा - हरिदत्त वेदालंकार, पृ० १२६
१८१. वाल्मीकि रामायण - ४/७/५
१८२. हिन्दू परिवार मीमांसा - हरिदत्त वेदालंकार, पृ० १३०
१८३. महाभारत २/१०८/१८ तथा १५/२२/१ और ३/२/८८ में मातृवध को महापाप तथा मातृघाती को सप्तम नरक में प्रविष्ट होने वाला कहा गया है।
१८४. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता - बेनी प्रसाद पृ० १६५
१८५. रघुवंश-कालिदास ३/२-६
१८६. भारतीय समाज-शास्त्र - धर्मदेव विद्या वाचस्पति पृ० १७८
१८७. वही पृ० १७६
१८८. 'मेरा धर्म' - प्रियव्रत वेद वाचस्पति - उद्धृत पृ० ३
१८९. वाल्मीकि रामायण २/३५/८-२६, ३/४३/११, १/४८,४६
१९०. महाभारत २/७४/६
१९१. वही १३/३८/२०२
१९२. वही १३/४०/१४-१५
१९३. विमेन इन वैदिक एज़ - शकुन्तला राव शास्त्री - पृ० ६८ (१६५४ बंबई)
१९४. द वंडर दैट वाज़ इंडिया - ए० एल० बाशम - (१६५४-लंदन), पृ० १७७
१९५. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर - (१६५६-दिल्ली), पृ० १५५
१९६. वही, पृ० १४६
१९७. पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलिज़ेशन : अल्तेकर, पृ० १०७ पर उल्लेख है कि बौद्ध काल में सास बहू को मूसल से मारते-मारते जान ले लेती थी, तथा थेरी गाथा ४४४ के अनुसार स्त्रियाँ निर्जीव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वस्तु की भाँति बेची जा सकती थीं और महाजन के घर गिरवी रखी जा सकती थीं जहाँ महाजन मनमाने अत्याचार करने का अधिकारी था।

१९८. हिन्दू परिवार मीमांसा - हरिदत्त वेदालंकार - पृ० २७०

१९९. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ० १४६ पर उल्लेख है कि भगवान बुद्ध ने आनन्द से कहा कि "आनन्द मैंने जो धर्म चलाया था वह पाँच हजार वर्ष तक टिकने वाला था लेकिन अब वह केवल पाँच सौ वर्ष ही चलेगा क्योंकि हमने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित होने की अनुज्ञा दे दी है।"

२००. हिन्दू सिविलिज़ेशन - राधा कुमुद मुकर्जी - (१९५०), पृ० २५३

२०१. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता (प्रयाग १९३१) - बेनी प्रसाद, पृ० २८१
'संन्यास के कारण ग्रन्थों में स्त्रियों की निंदा बढ़ गई है।'

२०२. अनुभिरत जातक ६५ में स्त्री-नदियों, पथों, शराबखानों, प्याऊ या पानशालाओं के समान सार्वजनिक उपभोग की वस्तु कही गई है। समग्ग जातक ४३६ में दानव राक्षस द्वारा निगल कर कोख में छिपा लेने पर भी स्त्री के व्यभिचार का वर्णन करके उपदेष्टा स्त्रियों को सदा अविश्वसनीय, चंचल बुद्धि तथा अनेक चित्त वाली, अरक्षणीय तथा पहाड़ से पाताल में गिरने वाले झरने के समान सर्वदा पतनोन्मुख मानता है, जिसका ऊपर उठना असम्भव है। बंधन मोक्ख जातक १२० में ६४ नौकरों के साथ व्यभिचार करने वाली स्त्री का वर्णन है। थम्मद जातक -२२० के अनुसार स्त्री जाति का अनाचार करना ऐसे ही स्वाभाविक कहा गया है जैसे खाये अन्न का पच कर विष्टा बन जाना।
चुल्ल पदुम जातक - १९३ में एक स्त्री हाथ, पैर, नाक, कान कटे चोर से भोग करने के लिए अपने पति को पर्वत से धकेल देती है।

२०३. महापदुम जातक ४७२ में सौतेली माता को पुत्र के साथ अनाचार करने को व्यग्र दिखाया है।

२०४. असात मन्त जातक - ६१।

२०५. भदन्त आनन्द कौशल्यायन जातक प्रथम खंड - अनुवाद असात मन्त्र जातक पृ० ३७० 'स्त्रियाँ असाध्यी पाणिनी होती है।'

२०६. अंडभूत जातक, पृ० ३७८ "स्त्रियों में काम प्रगल्भता, वाक् प्रगल्भता, मन प्रगल्भता होती है।

२०७. असात मन्त जातक - ६१।

२०८. अंडभूत जातक - ६०।

२०९. अंडभूत जातक - ६०

चोरी न बहुबुद्धीनं यासु सच्चं सुदुल्लभं।
धीनं भावो दुराजानों भटघस्सेबोदके गतं।।
मुसतास यथा सच्च सच्चं तासं यथा मूसा,
गावो बहुतिणस्सेव ओम सन्तिवर वर।।

२१०. जातक कालीन भारतीय संस्कृति का शिव पूजन सहाय द्वारा लिखित वक्तव्य- मोहन लाल मेहता वियोगी

२११. जातक कालीन भारतीय संस्कृति पृ० १६६ "जातक कथाओं में स्त्रियों का एक से एक गंदा चित्र आया है। कहीं-कहीं प्रशंसा की गई है, मगर वह दाल में नमक के बराबर भी नहीं है।

२१२. नोट्स ऑन दि पोजीशन ऑफ विमेन अमंग हिन्दूज, मुस्लिम्स, बुद्धिस्ट एंड जेन्स - एथनोग्रैफिक सरवे ऑफ इंडिया, पृ० २० (१९१० कलकत्ता)

२१३. जातक ५/४२१

२१४. जातक ४/१०५

२१५. जातक दाम्मपद ४/८

२१६. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता - बेनी प्रसाद, पृ० २८३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२१७. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर, पृ० १२०
२१८. वही, पृ० १४७
२१९. ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया में संग्रहीत ग्रेट विमेन इन जैनिज्म-उमाकान्त - प्रेमानन्द शाह, पृ० २८४ (१९५३ कलकत्ता)
२२०. आचरांग सूत्र १/२/४/३
२२१. एथेनोग्रेफिक सर्वे ऑफ इंडिया - नोट्स ऑन दि पोजीशन ऑफ विमेन अमंग हिन्दूज़, मुस्लिम्स, बुद्धिस्ट एंड जैनस् पृ० २३-२४
२२२. वही, पृ० २३-२४-२५
२२३. वही, पृ० २७-३०
२२४. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर, पृ० १५९
२२५. नाथ सम्प्रदाय - हजारी प्रसाद द्विवेदी - (१९५०-इलाहाबाद), पृ० ७५
२२६. वही, पृ० ७७
२२७. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर, पृ० १९४
२२८. वही, पृ० १९९
२२९. नाथ सम्प्रदाय - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १५
२३०. वही, पृ० १५
२३१. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर, पृ० १९८
२३२. नाथ सम्प्रदाय - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ५१
२३३. वही, पृ० ४७

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अध्याय 3

वीर-काव्य तथा सन्त-काव्य में नारी

१. वीर-काव्य में नारी चित्रण

हिन्दी साहित्य का अभ्युदय-काल युद्ध देवता की प्रसन्नता का महापर्व था। केन्द्रीय सुदृढ़ शक्ति के छिन्न-भिन्न होने पर भारत खंड-खंड होकर विभिन्न छोटे-बड़े रजवाड़ों में बिखर गया था। अपनी पृथक् सत्ता की सुरक्षा तथा शौर्य प्रदर्शन के हेतु राजागण परस्पर युद्धरत थे। चारण और भाट आदि कवि भी अपने-अपने आश्रयदाताओं के परम्परागत प्रशस्ति-गान में लीन थे।

आन एवं मर्यादा पर मर मिटने वाले इन वीर चौहानों, राठौरों, राजपूतों आदि के प्रशस्तिगान की पावन पयस्विनी में उनकी वीर ललनायें भी अमृत स्नान कर गौरव और महत्त्व के पुण्य को प्राप्त कर रही थीं। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य ऐसे वीर पति का वरण था, जो युद्ध में लड़ते-लड़ते प्राणों का उत्सर्ग भले ही कर दे, परन्तु शत्रु को पीठ दिखाकर घर लौट, सखियों में उन्हें लज्जित तथा अपमानित न करे।[1] वीर ललनाओं के इस आदर्श ने जहाँ नारी के वीर रूप की झाँकी प्रस्तुत की वहाँ वीरों की, तेज घोड़े सजाने, खड्ग की धार से सुभटों के सिर काटने और सुन्दरी के गले लगने में ही जीवन की सार्थकता देखने के कारण[2] नारी के शृंगारिक रूप को भी साहित्य में प्रमुख स्थान मिला।

वीर गाथाओं का विषय, प्रेम और युद्ध था। किसी राजा की कन्या के रूप का सम्वाद पाकर दल-बल सहित चढ़ाई करके प्रतिपक्षियों को पराजित कर उनकी कन्याओं का हरण वीरों के गौरव और अभिमान का विषय था।[3] इसका परिणाम यह हुआ कि मन-मुटाव, ईर्ष्या एवं द्वेष के वशीभूत ये राजागण अपनी कुल मर्यादा और मान के लिए शोणित की तप्त धाराओं से युद्ध का महोत्सव मनाकर आपस में ही वीर रक्त से होली खेलते रहे और दूसरी ओर विदेशी आक्रांता इस स्थिति से लाभ उठाकर भारतीय राजाओं को एक-एक कर पतन के गर्त में धकेलते गए। फलस्वरूप वीर क्षत्रिय राजा अपूर्व शौर्य एवं वीरता का प्रदर्शन करने पर भी, एकता के अभाव में पूर्ण पराभव और पराजय को अंगीकार करने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के लिए विवश हो गए। ऐसी स्थिति में उनके सम्मुख संताप, क्षोभ और ग्लानि को भुलाने का एक ही मार्ग शेष रह गया था—सुरा और सुन्दरी। हारे थके विवश सेनानी की वीर भार्या ने भी उसका साथ दिया और वह भी शृंगार एवं भोग-विलास में निमग्न हो गई। इस प्रकार समाज में नारी के विभिन्न स्वरूप दृष्टिगत होते हैं—नारी के शौर्य के तेज से प्रदीप्त वीर रूप, भोग-विलास में लिप्त शृंगारिक रूप, उसका सामाजिक रूप आदि।

(क) नारी का वीर रूप—अपभ्रंश काल में ही कायर पति के घर (भागकर) लौट आने के स्थान पर युद्ध में वीरता से मृत्यु का आलिंगन करने में ही वीर पत्नी भलाई देखती थी।[४] वीर नारी की यह परम्परा वीर काव्य में अक्षुण्ण बनी रही। गोरा की पत्नी रण में पति की वीर गति का समाचार सुनकर परितुष्ट होती हुई ही दृष्टिगत होती है—

भला हुआ जो भिड़ भुजा, कलंक न आया काई।
जस जपे सब जगत में, हिवरण ढूंढ्यो जाई।।[५]

और वह स्वयं भी अपूर्व उत्साह से भरकर प्रज्वलित अग्नि शिखाओं का चुम्बन कर लेती है। यही वीर युग की नारी का तेज से प्रदीप्त वीर रूप है।

युद्ध और शृंगार, प्रेम और वीरता यहाँ सच्चे सहचर बन कर आए हैं। ऐसे ही प्रेम और वीरता के आगार अपने पति का वर्णन, एक नवोढ़ा अपनी अंतरंग सखी से करती है—"हे सखि आश्चर्य की बात कहूं, वे (पति) घर में तो मेरी भुजाओं में समा जाते हैं परन्तु युद्ध का नाद सुनते ही वे मरण प्रेमी इतने फूलते हैं कि कवच में भी नहीं समाते।"[६] इसी प्रकार नव-परिणीता वीर पति की हथेली में तलवार की मूठ के चिह्न की चुभन अपने हाथ में अनुभव कर आश्वस्त होती हुई सोल्लास कहती है—"हे माता ! मैं समझ गई कि युद्ध में अकेले हो जाने पर वे मेरे चूड़े को नहीं लजायेंगे।"[७] यही नहीं समर भूमि को प्रस्थान करने वाला पति भी पूर्ण विश्वस्त है कि उसकी पत्नी उसका तभी स्वागत कर सकती है जब वह विजय लेकर आए, अन्यथा यदि पति पराजित होकर जीवित घर आएगा तो वीर राजपूत कन्या पग-पग पर चूड़ियाँ तोड़ फोड़ कर बिखेर देगी,[८] क्योंकि वीरांगना की सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि विवाह के समय जो स्वामी डोली के आगे होकर उसे लाए थे उनके वीरगति को प्राप्त होने पर सती होने के लिए वह उसके शव के आगे-आगे चलने वाली हो।[९] इसके विपरीत युद्ध भूमि से घर लौट आने वाले कायर पति वीर पत्नी के अपार क्षोभ और ग्लानि का कारण तथा व्यंग और भर्त्सना का पात्र बनता है—

कंत भला घर आविया, पहरीजै भी बेस।
अब धण लाजीं चूड़ियां भव दूजै भेटेस।।[१०]

कविराज सूर्यमल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रकार के निकम्मे, स्वाभिमान को विनष्ट करने वाले पति के लिए वीरांगना हा-हा कार कर उठती है—"घर आवे थें कियों, हणियां बलती हाय" क्योंकि उसने उसको सती होने के गौरव से वंचित कर दिया।[११] वीर पत्नी के स्वाभिमान को मिटा देने वाला पति का ऐसा जीवन वीर ललना के लिए निरर्थक है।[१२]

इस युग के शूरवीरों में वीरत्व और सतियों में सतीत्व की दृढ़ता है। शूरवीर तलवार से भिड़ते हैं और सतियाँ अग्नि की प्रज्वलित शिखाओं का चन्दनवत् आलिंगन करती हैं।[१३] इसके अतिरिक्त और भी अनेक स्थलों पर नारी के इस वीर स्वरूप की सुन्दर झाँकी मिलती है।[१४]

वीर-पत्नियों की भाँति ही वीर काव्य में वीर माताएँ धन्य हैं, जो गर्भ में ही पुत्रों को शौर्य की और कन्याओं को धैर्य की ऐसी शिक्षा देती हैं कि नवजात शिशु (बालक) नाल काटने की छुरी की ओर हाथ लपकाता है और कन्या अंगीठी की प्रज्वलित अग्नि को एक टक देखकर हर्षित होती है।[१५] वीर राजपूत माता नन्हे बालक को पालने में ही यह दीक्षा देती है—

रण खेती रजपूत री, वीर न भूलै बाल।
बारह बरसा बापरो, लहै बैर लंकाल।।

बांकीदास

तथा अपनी धरती किसी को न देने के भाव पूर्ण गीतों को गाती हुई पुत्र को मरने की महत्ता सिखा देती है—

इला न देणी आपरी, हालरियां हुलराय।
पूत सिखावे पालणे मरण बड़ाई मायें।।[१६]

सूर्यमल

वीर-काव्य में वीरांगना के लिए सभी कुछ सह्य है, सभी कुछ ग्राह्य है लेकिन यदि युद्ध में कायर बनकर, उसका पति उसके वलय (चूड़े) को और पुत्र दूध को लजाए तो वह उसके हृदय को विदीर्ण करने वाला और दारुण दाह उत्पन्न करने वाला है—

सहणी सबरी हूं सखी, दो उर उलटी दाइ।
दूध लजाने पूत सम, वलय लजाणै नाह।।

सूर्यमल

इसके विपरीत कहीं-कहीं नारियों के दुर्बल चरित्र भी अंकित हुए हैं जैसे जटमल की 'गोरा बादल' की कथा में बादल की माता स्नेह से प्रेरित होकर उस समय वीर क्षत्राणी के गौरव से च्युत होती हुई दिखलाई पड़ती है जब वह बादल की पत्नी से बादल को युद्ध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विरत करने के लिए कहती है। वीर कर्त्तव्य परायण माताओं और पत्नियों के मध्य आदर्शों से च्युत अपने निजी स्वार्थ में संलग्न कुछ ऐसी हीन नारियों के भी चित्रण तिरस्कार के पात्र ही बने हैं। 'वीरसिंह देवचरित्र' में कल्याण दे और 'क्षात्र प्रकाश' में हीरा देवी ऐसी ही नारियों के उदाहरण हैं।[१७] अन्यथा वीर काव्य में सर्वत्र ही कर्त्तव्य परायण, प्रतिष्ठा और मर्यादा के लिए मर-मिटने का संदेश देने वाली माता और वीर पत्नी के परम् पावन एवं वन्दनीय उज्ज्वल रूपों का अंकन हुआ है।[१८] कवि लाल के काव्य में छत्रसाल की माता लाल कुंवरि की वीरता, धैर्य और आत्मोत्सर्ग का उदाहरण महिमामयी वीर नारी के रूप की उज्ज्वल झाँकी प्रस्तुत करता है।[१९]

गोरा बादल की कथा में पद्मिनी और बादल की नव-विवाहिता वीर पत्नी की ओजस्विनी वाणी सुनाई देती है, जिसमें प्रतिष्ठा और मर्यादा की रक्षा के लिए पति को प्राणोत्सर्ग का प्रोत्साहन दिया गया है।[२०] हम्मीर-रासो में हताश हठी हमीर को उसकी रानी ही ओजपूर्ण वाणी में मरण का संदेश देती है।[२१] साथ ही परम तेजस्विनी हांडी रानी की कथा तो मन-प्राणों को रोमांचित कर देने वाली है।[२२]

वस्तुतः वीर काव्य में नारी के जैसे तेजस्वी और शौर्य की दीप्ति से मंडित, भारतीय वीर ललनाओं के ज्वलन्त उत्सर्ग एवम् त्याग की विभा से आभासित, पतिव्रत एवं सतीत्व की प्रज्वलित शिखा के आलोक से दीप्तिमान स्वरूपों के चित्रण हैं वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं।

(ख) नारी का शृंगारिक रूप—विलासिता और पराभव के सामंतवादी युग के आरम्भिक दिनों में तो कुछ वीर कवियों ने राजपूतों के शौर्य के साथ वीर क्षत्राणियों के सतीत्व की मर्यादा और जौहर के विलक्षण गीतों को गाया परन्तु वीर काव्य के उत्तर-काल में धीरे-धीरे मुगल साम्राज्य सम्पूर्ण भारत पर छा गया और एक-एक करके सब रजवाड़े समाप्त होने लगे तब राजपूत राजा स्वयं ही अपने सुख-चैन तथा कन्याओं के भविष्य को बनाने के लिए अपनी पुत्रियों का शाही महलों में विवाह करने लगे। ऐसी स्थिति में क्षत्राणियों का वीर रूप स्वतः ही विलुप्त हो गया। वीर चारण जो राजाओं के साथ युद्ध क्षेत्र में जाकर समान रूप से तलवार भी उठाना जानते थे, अब केवल अपने आश्रय दाताओं की विरुदावली का गान तथा उनकी विलास वृत्ति को उद्दीप्त करने के लिए नारी के शृंगारिक रूप (नख-शिख वर्णन, नायिका भेद, काम केलि आदि) का चित्र अंकित करने लगे।

ऐसी स्थिति में नारी का परिगणन अनेकानेक विलास वस्तुओं में किया जाने लगा। अब एक के पश्चात् दूसरी अनेक सुंदरियों को हस्तगत करना और कामोन्मत्त रहना यही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजाओं और सामंतों का एक मात्र कार्य शेष रह गया था। सूरदास के सुजान चरित्र, केशव के 'वीरसिंह देव चरित' और मान के राजविलास में नारियों के सौन्दर्य तथा उनकी काम-कलाओं के चित्रणों की भरमार है।

नारी के इस भोगमय स्वरूप ने उसके तेजस्वी रूप को धीरे-धीरे मिटा डाला और अब वीर रमणियाँ सुकोमल कामिनियाँ बन गईं, जिनका कार्य केवल विविध कलाओं में पारंगत होकर रत्न जड़ित शैयाओं की शोभा बढ़ाना, विभिन्न काम क्रीड़ाओं द्वारा प्रिय को प्रेमोन्मत्त बना देना, नित नूतन शृंगार और सज्जा से सज्जित होकर प्रिय को आकर्षित करना तथा उसके साथ-साथ जल क्रीड़ाओं में संलग्न रहना, शुक-सारिकाओं को पढ़ाना तथा मान मनौवल के खेल खेलना ही उसका एक मात्र कर्त्तव्य रह गया था।[२३] संक्षेप में नारी वैभव और विलास की दासी मात्र शेष रह गई प्रतीत होती है।

वीर रस के श्रेष्ठ कवि भूषण ने शिवा और छत्रसाल के शौर्य का तो विस्तृत चित्रण किया है परन्तु डिंगल काव्य में उद्भूत वीर क्षत्राणियों को वे भी विस्मृत कर बैठे हैं। नारी का चित्रण उन्होंने यदि किया भी है तो वह केवल उसके विलास की दासता से दीन-हीन दुर्बल रूप की अभिव्यंजना मात्र ही है। शिवा जी के भीषण आक्रमणों में उनके शौर्य से भयभीत मुगल हरमो की सुकोमलाओं की दुरवस्था का चित्रण ही उनका लक्ष्य बना है।[२४] वे कोमलांगनाएँ जो कभी विभिन्न सुगन्धित—सुवासो से सिंचित रत्नजड़ित पलंगों से पग नीचे नहीं रखती थीं जो भोग-विलास आमोद-प्रमोद एवं विभिन्न खान-पान में लीन रहने वाली थीं, अब सुध-बुध बिसराकर अनावृत्त अंगों और मुरझाये मुखों के साथ बिलखती हुई फूल फल खाती वन-वन डोल रही हैं।[२५] अतः स्पष्ट है कि तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं जिसमें नारी के दूसरे गौरवमय तथा महत्त्वशाली रूप की अभिव्यंजना सम्भव न हो सकी।

(ग) नारी का सामाजिक रूप—वीर-काव्य में चित्रित नारी के दो रूपों—वीर रूप और शृंगारिक रूपों में—से प्रथम में नारी की सामाजिक अवस्था, वीरत्व एवं सतीत्व की गरिमा से युक्त प्रतिष्ठित और सम्माननीय तथा द्वितीय में दीन-हीन परवशता की शृंखलाओं में जकड़ी कामुकता से परिपूरित हेय और तुच्छ है।

वीर-काव्य के प्रारम्भिक काल में वीर पत्नीत्व, तेजस्वी मातृत्व की गरिमा से युक्त नारी, समाज में प्रशंसनीय और आदरणीय स्थिति की अधिकारिणी है। वे वीर राजपूतों की वीर कन्याएँ आन पर मर-मिटने वाले सपूतों की माताएँ और रणबांकुरे पौरुष से दीप्त पुरुषों की सती पत्नियाँ हैं। अतः वह अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा में दीक्षित दिखलाई पड़ती हैं। अनेक क्षत्राणियों के रणकौशल से इस युग का इतिहास गौरवान्वित है। वीरांगना कर्मदेवी,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राणा हम्मीर की वीर पत्नी, प्रण पर दृढ़ता से आरूढ़ सती संयोगिता, सती पद्मिनी, गोरा की वीर भार्या, वीर दुर्गावती तथा हांडी रानी के निःस्वार्थ उत्सर्ग, त्याग और शौर्य की गाथाएँ[२६] आज भी उस युग में नारी के वीर रूप की महिमामय स्थिति की घोषणा करती हैं। निश्चय ही ये वीरांगनाएँ अपने धर्म, कर्त्तव्य और शौर्य के ज्ञान से अभिहित, पूर्ण शिक्षिता और घर परिवार तथा समाज में सम्माननीय स्थिति की अधिकारिणी थीं। उन्हें पूर्ण अधिकार था कि पिता की इच्छा के विरुद्ध अपने वीर जीवन साथी का वरण करें, परन्तु जैसे ही वीर राजपूतों और चौहानों ने सामन्ती युग के भोग-विलास मय जीवन में प्रवेश किया, यह गरिमामयी नारी भी अपने पद से पतित हो गई। अब वह केवल क्रीत दासी और रत्न जड़ित शय्याओं की शोभा भर शेष रह गई।

शासक वर्ग की स्वेच्छाचारिता तथा आपसी द्वेष के कारण भी अपनी प्रतिष्ठा के नष्ट होने के भय से नौ-दस वर्ष की अल्पायु में ही कन्या का विवाह कर देने की प्रथा का प्रचलन हो गया। कभी-कभी भयभीत राजपूत राजा कुल मर्यादा के विनष्ट होने के भय से शैशवावस्था में ही बालिकाओं की निर्मम हत्या कर देते थे।[२७]

फलतः नारी शिक्षा का स्वतः ही अभाव हो गया। उपनयन संस्कार भी नाममात्र के लिए विवाह संस्कार के साथ ही साथ किया जाने लगा। सुन्दरी स्त्रियाँ विदेशियों एवं दुष्ट सजातियों द्वारा भी अपमानित एवं हरण की जाने लगी थीं, अतः पर्दा प्रथा का भी कठोरता से पालन किया जाने लगा। मुगल बादशाहों के हरमों की भाँति राजपूत राजाओं ने अपने महलों को विवाहिता, रक्षिता एवं दासियों से भर लिया था, जहाँ जल-क्रीड़ाएँ आदि विलास लीलाएँ होती रहती थीं। महलों की शोभा बढ़ाने वाली ये सुन्दरियाँ जीवन पर्यन्त, ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य के व्यापारों में संलग्न रहती थीं और राजा की मृत्यु पर असुरक्षित, असमर्थ और विवश सभी सुकोमलाओं के लिए एक ही मार्ग शेष रह गया था कि वे अपने सम्पूर्ण दुरावों के साथ पति की चिता पर भस्मीभूत हो जाएँ।

इस युग में एक मात्र पति ही स्त्रियों का आश्रयदाता, स्वामी और गुरु है।[२८] स्पष्ट है कि आर्थिक रूप में भी पुरुषों पर निर्भर ये नारियाँ दयनीय जीवन व्यतीत करती थीं। माता-पिता के द्वारा असीमित दहेज (द्रव्य, वस्त्र, हाथी, घोड़े और गाँवों के रूप में)[२९] पाने पर भी उनका जीवन सदा उपेक्षित रहता था। जीवनपर्यन्त पुरुष की प्रसन्नता के लिए आकुल-व्याकुल, उसे अपने आकर्षण-पाश में बांध लेने के लिए आतुर उन्हें अपनी सौंदर्य वृद्धि में सतत् प्रयत्नवान् रहना पड़ता था। इस पर भी पुरुष अन्यत्र आकर्षित होकर उनकी उपेक्षा कर निःसंकोच अनेकानेक विवाह करता रहता था। सामंती युग की नारी का जीवन सचमुच अभिशाप था। ऐसी ही नारी की पीड़ा का मार्मिक चीत्कार और उन्मुक्त स्वच्छन्द जीवन की उत्कट लालसा वीर काव्य में अभिव्यंजित हुई है। रानी राजमती शिव को उलाहना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देती हुई कहती है कि हे शिव यह स्त्री जन्म मुझे क्यों दे दिया ?। देने को और अनेक जन्म थे—जंगल का जन्तु, गौरी गाय अथवा वन खंड की काली कोयल ही बना देते, जहाँ आम और चम्पा की डाल पर बैठ फुदक सकती।[३०] ऐसे प्रसंग उस युग में नारी की विवश, नीरस, असमर्थ और परतन्त्र अवस्था के प्रमाण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सामंती युग में महलों में निवास करती रानी महारानियों के जीवन से साधारण मध्यम अथवा निम्न वर्ग की नारियों की अवस्था अधिक सुख व उल्लास से पूर्ण और सन्तोषप्रद थी तभी रानी एक साधारण आंजनी के रूप में जीवन प्राप्त करने की प्रार्थना करती हुई दृष्टिगत होती है, क्यों कि वहाँ वह अपने भरतार (पति) की सच्ची सहयोगिनी बनकर उसके साथ खेत कमाती, अच्छी लोवड़ी (लोमपटि) पहनती , तुंग तुरंग के समान अपना गात स्वामी के गात से भिड़ाती, स्वामी को अपने सामने होकर लेती और हँसकर प्रिय से बात पूछती।[३१] ऐसा प्रतीत होता है कि निम्न वर्ग की स्त्रियाँ अधिक सुदृढ़ स्थिति में थीं। पति की मृत्यु होने अथवा सम्बन्ध विच्छेद पर सम्भवतः वह दूसरा विवाह कर सकती थीं। लेकिन यह कुलीन बेटियाँ शील की शृंखला में बंधी यौवन को विनष्ट करने वाले पति को पग-पग पर केवल पाप लगने का अभिशाप ही दे सकती थीं।[३२] इस प्रकार समाज में स्त्री विलास सामग्री मात्र थी जिसे जब चाहा खरीद लिया और मन से उतरीं तो त्याग दिया।

सामंती युग में विलास लालसा के आधिक्य ने समाज में प्रतिबन्धहीन वेश्यावृत्ति को भी अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। संगीत, नृत्य आदि में निपुण गणिकाओं की राजा और दरबारियों में मांग बढ़ गई थी। फलस्वरूप कुल ललनाओं का जीवन और भी उपेक्षित और दीन-हीन हो गया था। इसके अतिरिक्त नारी की अन्य आर्थिक और सामाजिक अवस्थाओं का चित्रण वीर काव्य में नहीं है।

(घ) नारी का धार्मिक रूप—सूत्र, स्मृति और पुराण काल में ही नारी सम्पूर्ण धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दी गई थी। उपनयन आदि के संस्कार समाप्त हो चुके थे। वीर काव्य में थालों में पूजा सामग्री सजाकर मंदिरों में जाती हुई कन्याओं के चित्रण प्राप्त होते हैं। जहाँ सखी सहेलियों के सहित राजकुमारियाँ—देवी गौरी से जन्मों के लिए श्रेष्ठ, सुन्दर और वीर वरों की कामना करती हैं।[३३] इसके अतिरिक्त विवाह संस्कार के समय यज्ञ की वेदी पर बैठ नारी यज्ञ-आहुतियों के मध्य जीवन पर्यन्त पति के प्रति सच्ची रहने की प्रतिज्ञा करती हुई दृष्टिगत होती है। तत्पश्चात् केवल पति सेवा में ही अपने जीवन को अर्पित कर देना उसका एक-मात्र धर्म है। यह धर्म उसकी आत्मा को इस प्रकार आवृत्त किए है कि पतिव्रत धर्म में निष्ठावान पत्नी पति के दोषों को सुनना भी नहीं चाहती, ऐसी ही एक धर्म प्रवण नारी कहती है कि "हे सखी यदि प्रिय सदोष है तो मुझसे एकांत में इस प्रकार कहो कि उसका पक्षपाती मेरा मन न जान सके।[३४]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पतिव्रत धर्म इतना रूढ़ रूप में दृष्टिगत होता है कि यदि कन्या अपने मन में भी किसी को पति रूप में वरण कर ले तो भले ही वह कुमारी हो और पति दुष्ट भी हो, उसकी मृत्यु के साथ मरण के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है।[३५] वेद पति को परमेश्वर मानने के जिस धर्म का निर्देश कर चुके थे, स्मृतियाँ, पौराणिक धर्म कथाओं के आधार पर जिस कठोर सतीत्व पूर्ण जीवन की आज्ञा दे चुकी थीं, वही धर्म और भी रूढ़ होकर नारी के मन प्राणों, का आधार बन गया। राजनीतिक परिस्थितियों की अनिश्चित विडम्बनापूर्ण स्थिति के फलस्वरूप कन्यायें पत्थर की मूर्ति के गले में माला डालती थीं तथा कभी-कभी अस्त्र-शस्त्रों (तलवार और भालों) के साथ भाँवरें ले परिणय सूत्र में बंध कर आजीवन पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अनदेखे पति के लिए मरण को प्राप्त होती थीं। अपने शौर्य एवं वीरता से परिपूरित गरिमावान् रूप में और भोगविलास से युक्त कामिनी रूप में भी नारी का एक मात्र धर्म पति की मृत्यु शय्या पर सहगमन ही था। जौहर और सती प्रथाएँ इस का प्रमाण हैं।

राजनीतिक पराभवों ने तो इस प्रथा को और भी रूढ़ बना दिया था। वीर केसरिया बाना धारण कर युद्ध क्षेत्र में अवश्यम्भावी मरण को वरण करने चले जाते और विधर्मियों की लोलुपता से बचने के लिए युद्ध के परिणाम की सूचना के पूर्व ही हाथों में गोला आदि पूजन की शुभ सामग्री लेकर सौभाग्यवती स्त्रियाँ, अन्तिम बार सम्पूर्ण शृंगार करके प्रज्वलित अग्नि कुंडों में प्राणों की आहुति देकर अपने जीवन का अंतिम धर्म पूर्ण करती थीं। वीर काल में इसके अतिरिक्त नारी का अन्य कोई धार्मिक स्वरूप दृष्टिगत नहीं होता।

(ङ) वीर काव्य में नारी का आदर्श—इस युग में चित्रित नारी के वीर, शृंगारिक, सामाजिक तथा धार्मिक रूपों में जिस आदर्श की स्थापना की गई है वह एक मात्र यही है कि प्रत्येक दशा में पति का सहगमन करें। यदि वह वीर भार्या है तो पति को अपने हाथों से युद्ध के लिए सुसज्जित करके स्वयं नारियल हाथ में रख कर सती होने के गौरवपूर्ण महोत्सव का स्वागत करें अथवा समर्थ है तो युद्ध क्षेत्र में जाकर शौर्य प्रदर्शन करें। वीर माता वीर पुत्रों की जननी बनकर उन्हें मर्यादा और प्रतिष्ठा के लिए मर मिटना सिखाकर गौरवान्वित बनें। यदि नारी केवल निरीह क्रीत दासी, पति के भोग-विलास की सामग्री मात्र है तब भी उसका आदर्श यही है कि सुमन शैयाओं की संगिनी वह कुसम कोमला नारी सब कुछ त्याग कर सस्मित मुख चिता की ज्वालाओं का चुम्बन करती हुई परलोक में प्रतीक्षा करते पति की सेवा में जा उपस्थित हो। संक्षेप में प्रत्येक दशा में पति का अनुगमन ही नारी का आदर्श है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहीं-कहीं ऐसे विलक्षण आदर्श भी देखने को मिले हैं कि जब पति नवविवाहिता पत्नी को छोड़कर युद्ध में जाना नहीं चाहता तब वह वीरांगना अपना मस्तक काटकर पति को मोह शंका और मद से एक साथ ही मुक्त कर देती है।[३६]

इस युग में नारी के उपर्युक्त आदर्श को (अब प्रत्येक मूल्य पर पुरुष का सन्तोष ही उसका धर्म बन गया था) देखकर नारी निन्दक सम्भवतः आश्चर्य चकित और स्तम्भित रह गए होंगे लेकिन पूर्व परम्परानुसार नारी निन्दा की तीव्र धारा रुक न सकी अतः नारी निन्दा के तीव्र स्वर भी यत्र तत्र सुनाई पड़ते हैं जैसे बत्तीस हृदय, साठ मन और सौ चित्त वाली स्त्रियों पर जो मनुष्य विश्वास करते हैं वे मूर्ख हैं।[३७] अन्य स्थलों पर भी नारियों की असती और गणिकाओं की कुकरी से उपमा दी गई है। उनका विचार है कि गंगा जल प्रक्षालित कुकरी जैसे पवित्र नहीं हो सकती उसी प्रकार सुन्दर वेश धारण करने वाली स्त्री भी सदा अपवित्र है,[३८] परन्तु फिर भी ऐसे उदाहरण अत्यल्प हैं। सम्भवतः युद्ध और प्रेम के युग में कविगण नारी निन्दा के लिए अवकाश ही न पा सके हों। लेकिन फिर भी अवसरानुसार शत्रु पक्ष की भयभीत स्त्रियों की अस्त-व्यस्त भाव भंगिमाओं का वर्णन कवियों के मनोरंजन का विषय बना है।

वीर माताओं के प्रति असीम आदर की भावना सर्वत्र ही अभिव्यक्त हुई है। माता के चरणों में नमन करने वाला प्रति दिन गंगा स्नान के पुण्य का भागीदार कहा गया है।[३९] ऐसा प्रतीत होता है कि नारी निन्दा का अवकाश न पाकर ही यह कार्य भार उन्होंने संत कवियों के लिए छोड़ दिया था। जिन्होंने उसका (नारी निन्दा) सम्पूर्ण निष्ठा से निर्वाह किया।

२. सन्त काव्य में नारी

सन्त शब्द के अर्थों की परिधियाँ विस्तृत होती जा रही हैं। आज संत शब्द सगुण, निर्गुण तथा सूफी आदि सभी कवियों के लिए प्रयुक्त किया जाता है, लेकिन रानाडे के विचार से संत शब्द का प्रयोग उन्हीं भक्तों के लिए होता था जो विट्ठल अथवा वाराकरी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते थे।[४०] इन्होंने मुख्यतः निर्गुण भक्ति के आधार पर ही अपनी साधना की। इसके अन्तर्गत सन्त तुकाराम, ज्ञानदेव आदि मुख्य हैं। अपनी दार्शनिक चिन्तन पद्धति तथा अन्य व्यवहारिक सादृश्यों के आधार पर विशेषतः कबीर तथा अन्य निर्गुण शाखा के भक्तों के लिए भी 'सन्त' का प्रयोग किया गया है। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने निर्गुण भक्ति शाखा के काव्य को सन्त काव्य के अन्तर्गत रखा है।[४१] अतः यहाँ पूर्व मध्यकाल के सन्त युग में (राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में उद्भूत) नारियों की अवस्था का विश्लेषण ही पर्याप्त होगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(क) सन्त युग का जीवन और परिस्थितियाँ—यह युग राजनीतिक दृष्टि से भारतीय राजाओं के पूर्ण पराभव, सामाजिक दृष्टि से विवशता पूर्ण निराशाओं, धार्मिक दृष्टि से नूतन क्रांति और नैतिक दृष्टि से समाज के घोर पतन का काल था। मुगल साम्राज्य की दृढ़ स्थिति के कारण पराभूत राजाओं के लिए गर्व अहंकार अथवा उत्साह का कोई मार्ग शेष नहीं रह गया था।[१२] चारण तथा कवियों के लिए भी अब यह सम्भव न था कि वे वीरता और शौर्य के गीतों को गाते। अतः सामंती युग के भोग-विलास में लिप्त राजाओं ने मदिरा के तीखे घूंटों के साथ-साथ अपनी लज्जा एवं ग्लानि को पीना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार वीर गाथाओं का युग समाप्त हो चला और कामिनी कंचन के मध्य अति शृंगारिक काव्य की रचना ही शेष रह गई।

राजनीतिक क्षेत्र में मुसलमानों का प्रभुत्व सर्वत्र व्याप्त हो गया था। उनके राजनीतिक जीवन में नारियों का कोई महत्त्व नहीं था। सुलतानों के राज्य में नारी एक दम उपेक्षिता थी। यदि रज़िया जैसी एक आध नारी राज्य कार्य करती हुई दिखलाई भी पड़ती है तो वह केवल अपवाद मात्र है। सामान्यतः ये सुल्तान राजनीतिक क्षेत्र में नारी के किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं करते थे। आगे चलकर यद्यपि चाँद बीबी, नूरजहाँ, अहल्याबाई, दुर्गावती, जीजाबाई आदि नारियों के राजनीति में प्रशासकीय कार्यों एवं अस्त्र-शस्त्र संचालन में दीक्षित होने के प्रमाण हैं तथापि सर्व साधारण नारी राजनीति से कोई नाता न रखती थी। वह केवल राजनीति का शिकार बनाई जाती थी। सुन्दरियों का अपहरण और अपमान साधारण बात थी।

धर्म के क्षेत्र में जनता अत्यधिक विशृंखलित जीवन व्यतीत कर रही थी। हिन्दू धर्म (वैष्णव) से आस्था उठ रही थी। मुसलमानों ने अनेक आक्रमण किए। मन्दिरों को ध्वंस कर मूर्तियों को तोड़ा, भक्तों और पुजारियों को मौत के घाट उतारा और असीमित धन के अतिरिक्त स्त्रियों की मान-मर्यादा और धर्म भी लूटा। अब वे ही विधर्मी सुख चैन से राज कर रहे थे, न तो भगवान ही और न उनके भक्त ही किसी प्रकार से सहायक हो रहे थे। अतः वैष्णव धर्म में जनता की आस्था विनष्ट हो रही थी। नाथ सम्प्रदाय की कठोर साधना एवं गुह्य उपासना पद्धतियों पर से भी विश्वास उठ रहा था। हिन्दू और मुसलमान दो पृथक्-पृथक् धर्म दृष्टि पथ में आकर जनता को भ्रम में डाल रहे थे। एक ओर मुसलमान सूफी कवि प्रेम साधना पद्धति का निरूपण कर रहे थे तो दूसरी ओर प्राचीन सगुणोपासना का काव्य क्षेत्र भी सक्रिय हो रहा था। सिद्धों का हठयोग तो प्रचलित था ही। ऐसे समय में एक धर्म की आवश्यकता थी जो सबका सम्मिलित रूप हो और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के लिए ग्राह्य हो। निर्गुण पंथ धर्म का वही सहज मार्ग था, जिस में नाथ पंथियों की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाह्य आडम्बरों से रहित अंतस्साधना, सूफियों का प्रेमतत्त्व, वेदान्तियों का एकेश्वरवाद और वैष्णवों की रामनामी महत्ता का समावेश कर, हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े सबके लिए एक सहज सामान्य भक्ति मार्ग का निरूपण किया गया। इसमें निम्न वर्ग को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। परन्तु नारी यहाँ भी उपेक्षिता एवं निन्दनीय ही रही। निर्गुण भक्ति के निवृत्ति मार्ग पर अग्रसर सन्तों के आध्यात्मिक जीवन के लिए नारी का भोगमय रूप निन्दा और आलोचना का विषय ही हो सकता था। अतः इन परिस्थितियों में उद्भूत सन्त काव्य में नारी जीवन के सामाजिक रूप तथा उसके प्रति धार्मिक दृष्टिकोण को पृथक्-पृथक् समझना ही सुविधाजनक होगा।

(ख) सन्त काव्य में नारी का सामाजिक रूप—उत्तर वैदिक काल से ही नारी की सामाजिक अवस्था हीनतर होती चली गई। अल्तेकर के विचारानुसार ५०० ई० के उपरान्त स्त्रियों की सामाजिक अवस्था पतन की ओर ही अग्रसर होती गई।[४३] सन्त काव्य में नारी के दो रूपों का चित्रण हुआ है—प्रथम पतिव्रता नारी और द्वितीय अध्यात्म साधना के मार्ग की अवरोधक माया रूपी नारी। निश्चय ही पतिव्रता नारी को सन्त कवियों ने सम्मान की दृष्टि से देखा है।[४४] निवृत्ति मार्ग की अवरोधक नारियाँ परम्परानुसार निन्दा और भर्त्सना की पात्र ही बनी रहीं। फिर भी युग-युगों से धार्मिक अधिकारों से वंचिता नारी को भक्ति का वरदान मिला और सन्त चरणदास की शिष्याएँ सहजोबाई, दयाबाई सन्त काव्य में योगदान करके सम्मान की अधिकारिणी बनीं।[४५]

सन्त काव्य में अनन्य भक्त के लिए पतिव्रता तथा परमात्मा के लिए माता के प्रतीकों[४६] को देखकर कहा जा सकता है कि पतिव्रता का एकनिष्ठ पत्नीत्व तथा वात्सल्य पूर्ण मातृत्व सन्तों के लिए आकर्षण का केन्द्र था। अन्यथा स्त्री मात्र पर दृष्टिपात नरक कुंड में गिराने वाला और नारी का स्नेह रसातल को प्रेषित करने वाला कहा गया है।[४७] सन्त कवियों ने केवल पति सेवा में रत पति पूजा को ही ज्ञान-ध्यान, पूजा-अर्चना और भक्ति एवं मोक्ष समझने वाली एकनिष्ठ पतिव्रता को ही मान्यता प्रदान की है।[४८] गृह की सुख शान्ति भी सुहृद (पति की आज्ञानुवर्तिनी) स्त्रियों पर ही निर्भर है।[४९] पतिव्रता नारी भले ही मैली-कुचैली, काली और कुरूप हो उसके स्वरूप पर करोड़ों रूप न्यौछावर किए जा सकते हैं।[५०] पतिव्रत की गरिमा से युक्त नारी आभूषण रहित होने पर भी सखियों में रवि-शशि सी दीप्तिमान रहती है।[५१] ऐसी पतिव्रता स्त्री की सुख-सुविधा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसके पति पर ही है—"पतिव्रता नांगी रहे, तौ उस ही पुरिस कौ लाज"[५२] इस प्रकार समाज में पतिव्रता और सुहागिन स्त्रियों के प्रति सम्मान और आदर प्रदर्शित किया गया है। लेकिन समाज में विधवाएँ दूसरों का पीसना पीस कर उपेक्षित और अपमानित जीवन व्यतीत करने को, विवश दिखलाई पड़ती हैं।[५३]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रकार स्त्रियों का अपना पृथक् कोई अस्तित्व (व्यक्तित्व) दिखलाई नहीं पड़ता। यहाँ तक कि समाज में सती साध्वी पत्नियों का त्याग एवं पर-स्त्री अनुगमन भी प्रचलित था, क्योंकि कबीर दशानन रावण के विनाश का कारण पर-स्त्री हरण को घोषित करते हुए ऐसे पुरुषों को फटकारते दिखलाई पड़ते हैं।[५४] ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में केवल सन्त तथा अन्य कुछ सज्जन व्यक्ति ही स्त्रियों को माता तथा भगिनी के समान पावन रूप में देखने में समर्थ हो सकते थे।[५५] साधारण व्यक्तियों का तो स्त्री मात्र को देख पतनोन्मुख होना ही स्वाभाविक था।[५६] अतः पुरुषों के इस दौर्बल्य को ध्यान में रखकर, स्त्रियों से विमुख करने के हेतु ही, नारी जाति सन्तों द्वारा भी निन्दित ही रही है। आर्थिक दृष्टि से भी नारी पुरुष पर ही निर्भर प्रतीत होती है, क्योंकि उसके पालन-पोषण का उत्तरदायित्व पुरुष पर ही है।[५७] नारी का यह रूप समाज में उसकी हीनावस्था की ही घोषणा करता है।

(ग) सन्त काव्य में नारी के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण—संत कवयित्रियों (दयाबाई, सहजोबाई आदि) का सम्मानपूर्ण स्थान, इसका प्रमाण है कि धर्माधिकारों से वंचिता नारी, भगवान की भक्ति का वरदान पाकर, सन्तों के समकक्ष बैठने का अधिकार पा सकी।[५८] यही नहीं सन्त धमनीदास ने तो हरिजनों (भक्तों) से स्नेह करने वाली वे वेश्या को भी पत्नी से श्रेष्ठ माना और धार्मिक क्षेत्र में भक्त स्त्रियों को उच्च स्थान दिया है।[५९] इसके अतिरिक्त संतों ने माता, प्रेयसी और पतिव्रता पत्नी के सरस प्रतीकों के माध्यम से गूढ़ धार्मिक अनुभूतियों को अभिव्यंजित करके, अपने अनजाने में ही नारी के पावन, स्निग्ध रमणीय एवं गौरवशाली स्वरूपों का अंकन किया है। संत कवियों ने कहीं 'तू जननी हौं बालक तेरो'[६०] कहकर प्रभु के क्षमाशील मातृत्व के आँचल की छाया से स्वयं को आवृत्त कर, अपने सभी अपराध क्षमा करा लिए और कहीं प्रेयसी के प्रेम की मनोहरता के आकर्षण में राम की दुल्हिन का रमणीय साज सजा अध्यात्मिक विवाह ही रचा डाला है।[६१] लेकिन फिर भी धर्माधिकारियों के दृष्टिकोण की दिशा में ही सन्तों ने भी कामिनी को मोह और माया का सबसे बड़ा बंधन मानकर साधना पथ की अवरोधक के रूप में परम्परानुसार ही नारी निन्दा एवं भर्त्सना की है। अतः संत काव्य में नारी के प्रति दो विषम दृष्टिकोणों के कारण उसके सत् और असत् दो स्वरूपों की अभिव्यंजना हुई।

(i) नारी का सत् रूप—संत काव्य में नारी का सत् रूप (सूत्र, स्मृति और पुराण साहित्य में निरूपित) एक निष्ठा एवं आत्मोत्सर्ग की दृढ़ भावना से परिपूरित पतिव्रत धर्म सम्मत स्वरूप ही है संत काव्य में पतिव्रत धर्म का दो अर्थों में प्रयोग किया गया है—प्रथम लौकिक रूप से नारी की पति सेवा में दृढ़ता, द्वितीय आध्यात्मिक पक्ष में भक्त की समस्त देवी-देवताओं को त्याग कर परमात्मा में एकनिष्ठ भक्ति। अध्यात्मिक पक्ष के अन्तर्गत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतीक रूप में नारी के जिस सत् स्वरूप की विवेचना संत कवियों ने की है, उसका विस्तृत विश्लेषण 'संत साहित्य में प्रतीक रूप में नारी' शीर्षक के अन्तर्गत करना ही उपयुक्त होगा। यहाँ केवल नारी के लौकिक सत् स्वरूप का दिग्दर्शन प्रस्तुत है।

सत्व युक्त नारी के लिए पति ही गुरु-गोविन्द और देवता है, पति सेवा ही उसकी सम्पूर्ण पूजा-अर्चना, ज्ञान-ध्यान, तीर्थ-व्रत, मुक्ति तथा मोक्ष है।[६२] जीवन पर्यन्त अपने अहम् को मिटा कर सदा पति के अधीन रहने वाली और मृत्यु पर पति के शव के साथ भस्मीभूत होकर उसके साथ ही साथ परलोक गमन करने वाली कुल कलंक रहित स्त्री ही सती नारी है।[६३] उनके विचारानुसार सच्ची पतिव्रता नारी कभी भी अन्य पुरुष में आसक्त नहीं हो सकती, जैसे सिंह का बच्चा लंघन (उपवास) करने पर भी घास नहीं खा सकता।[६३अ] मुख से पति के नाम का उच्चारण न करने पर भी पतिव्रता नारियों का अन्तर्मन उसके हितचिन्तन में लगा हुआ उसी का भजन करता रहता है।[६४] दादू दयाल पतिव्रत धर्म विहीना परम सुन्दरी नारी को निरर्थक, इसके विपरीत पति सेवा में रत नारी को कुल हीन और असुन्दर होने पर भी सच्ची सुहागिन मानते हैं।[६५] ऐसी स्त्री पर करोड़ों रूप न्यौछावर किए जा सकते हैं।[६६] संत सुंदर दास तथा अन्य संतों ने भी सती नारी को पतिव्रत धर्म के उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर प्रशंसनीय, पूजनीय, वन्दनीय तथा पति के प्रेम एवम् समाज के सम्मान की अधिकारिणी माना है।[६७] कबीर पतिव्रता नारी को सूर और दानी के समान उच्च एवम् अभिनन्दनीय कहते हुए उसे सही रूप न मानकर आत्मवत् मानते हैं जो अपने प्रिय में ही वसती है।[६८]

इस प्रकार संत कवियों से पतिव्रता नारी को बड़ा समर्थन मिला है। धर्मानुकूल आचरण करने वाली, पतिव्रत को सब धर्मों की भूमि मानकर, इसी का साधन करने वाली नारी ही संत काव्य में सत् रूप के अन्तर्गत अभिव्यंजित हुई है।

(ii) नारी का असत् रूप—सन्त युग में जबकि शृंगारी कवि, नारी के नखशिख वर्णन तथा नायिकाओं के विभिन्न भेदों के सूक्ष्म चित्रण द्वारा, भोग वृत्ति को प्रोत्साहित कर रहे थे और सिद्ध योगी गुह्य उपासना एवं वामाचार आदि के घृणित तथा पतित पथ का निर्देशन कर, समाज को पथ भ्रष्ट कर रहे थे, तब तीव्र प्रतिक्रियात्मक रूप से त्याग और तपस्या की आधार भूमि पर स्थिति, विरक्त संतों ने सदाचार की प्रतिष्ठा के लिए निवृत्ति मार्ग का प्रतिपादन किया। आध्यात्मिक क्षेत्र में लगभग सभी संतों ने स्त्रियों को साधना पथ की अवरोधक मानकर माया रूपी नारी की उग्र स्वर में निन्दा की है।

संत कवियों ने रसिक-प्रिया, रस मंजरी आदि शृंगार काव्यों की कटु आलोचना की।[६९] उनके विचार से यह शृंगार ग्रंथ कामवासना को उद्दीप्त करने के लिए रोगी के रोग का विस्तार करने वाले मिष्ठान्न के समान ही है।[७०] संत सुन्दर दास ने भर्तृहरि की भाँति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही नारी के अशुद्ध, मलीन तथा घृणास्पद रूप की व्यंजना करते हुए[७१] नारी के अंग प्रत्यंगों को नरक-कुंड कहा है।[७२] ऐसे निन्दनीय रूप की सराहना करने वाले (शृंगारिक-कवि) उनकी दृष्टि में बड़े गंवार हैं।[७३] कबीर के विचारानुसार कनक और कामिनी सांसारिक फन्दे तथा विष फल के समान हैं। जिसे देखने से ही विष चढ़ जाता है, और खाने से (भोग) तो मृत्यु निश्चित ही है।[७४] यही नहीं नारी विषाक्त सर्पिणी,[७५] नूतन शृंगार से संयुक्त बाघिन,[७६] विष बेलि,[७७] घातक छुरी तथा अपने सामीप्य से (पुरुष के) त्रयो गुण विनाशिनी कही गई है।[७८] स्त्री की दूषित छाया से विषधर भी अंधा हो जाता है।[७९] अतः कबीर ने—"सुन्दरि थै सूली भली विरला वांचे कोई। लोह निहाला अग्नि में, जलि बलि कोयला होई।"[८०] का निर्णय देकर पराई अथवा अपनी स्त्री को भोगने वाले को भी नरक का भागी कहा है।[८१] इस प्रकार लगभग सभी संतों ने नारी को त्याज्य घोषित किया है। वैरागी संतों के मतानुसार राम भक्ति मार्ग में सांसारिक माया मोह का बंधन तथा नारी स्नेह कठोरता से वर्जित किया गया है।[८२]

संत कवियों ने गौरवशालिनी जननी, एवं गरिमामयी पत्नी के रूपों में भी नारी की विडम्बना की है। चरनदास पर-स्त्री तथा अपनी भार्या दोनों को ही आपत्ति मानते हैं,[८३] कबीर पत्नी को जूठन न मानकर उसके त्याग का आदेश देते हैं।[८४] यही नहीं वे नारी मात्र के समीप बैठने का भी निषेध करते हैं, भले ही वह स्वर्ण निर्मित अपनी जननी ही क्यों न हो।[८५] संत सुन्दरदास ने तो सघन वन के सांग रूपक द्वारा नारी का भयंकर चित्रण प्रस्तुत किया है।[८६] ऐसा प्रतीत होता है कि संत कवि नारी के कामिनी रूप से अत्यधिक भयभीत हैं, क्योंकि उनके वैरागी मन की सर्वाधिक प्रबल दुर्बलता सम्भवतः नारी ही रही होगी। अतः अपने अंतर्मन की विरक्ति को दृढ़ करने के लिए लगभग सभी संत कवियों—कबीर दास, सुन्दर दास, दादूदयाल,[८७] मलूक दास,[८८] धरनी दास,[८९] दरिया साहब (बिहार वाले),[९०] चरन दास[९१] और पलटू साहब[९२] आदि ने नारी के वीभत्स और घृणित असत् रूपों के चित्रण में ही अपनी तथा अपने वैराग्य मार्ग की कुशल समझी। इसके विपरीत भक्त कवयित्रियों —सहजो बाई, दया बाई, मीरा बाई आदि ने नारी निन्दा की आवश्यकता ही नहीं समझी, क्योंकि उनकी साधना की बाधा पुरुष हो सकता था, नारी नहीं। कामी पुरुषों या नर नागों की निन्दा वे कर सकती थीं, परन्तु उस युग की नारी इतनी निशंक (बोल्ड) हो ही नहीं सकती थी कि अपने निन्दकों की ताड़ना करती।

विचारवान् सहृदय सन्त कवियों ने इस दिशा में सोचा और स्पष्ट ही नारी निंदकों को सचेत करते हुये उन्हें नर नाग आदि की उपाधि प्रदान की।[९३] और कहा कि स्वयं अपनी साधना में पुष्ट रहने पर माया कहीं नहीं है, स्वयं के दुर्बल होने पर ही सब माया रूप है।[९४]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दरिया साहिब के मतानुसार नारी अपार प्रेम का आगार है। उसे माँ, भगिनी तथा पुत्री तुल्य जानकर हितोपदेश देना ही श्रेयस्कर है।[६५] नारी सम्पूर्ण संसार की जननी है, पालन पोषण करके वह पुष्ट बनाती है। अतः हे मूर्ख स्वयं राम को भुलाकर जगत जननी नारी पर दोष लगाना व्यर्थ है,[६६] परन्तु ऐसे भाव विरले ही प्राप्त होते हैं। सन्तों ने साधना पथ की बाधक, निवृत्ति मार्ग की अवरोधक और काम वासना की आधार नारी के असत् रूप की सर्वत्र भर्त्सना और निन्दा ही अधिक की है। फिर भी यह निन्दा नारी के केवल असत् रूप की ही है। इसे सम्पूर्ण नारी समाज के लिये मानना सन्तों के साथ अन्याय करना होगा क्यों कि सन्तों ने पतिव्रता नारियों तथा दांपत्य भाव के सरस प्रतीकों के माध्यम से नारी के सत् रूपों की प्रतिष्ठा भी की है।

(घ) सन्त साहित्य में प्रतीक रूप में नारी—सन्त कवियों ने सिद्ध और नाथों के नीरस, शुष्क, रहस्यमय, हठयोग, क्लिष्ट मंत्र-तंत्र और असाध्य गुह्य उपासना पद्धति के स्थान पर सहज भक्ति मार्ग को अपनाया है, जिसकी आधार शिला (सूफियों के प्रेम सिद्धान्त पर) आध्यात्मिक प्रेम और परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ अनुराग था। इस प्रकार यद्यपि सन्तों का प्रेम अलौकिक एवं आध्यात्मिक (परमात्मा के प्रति आत्मा का) प्रेम है, तथापि उनके साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक और अभिव्यंजना शैली लौकिक प्रेम की मनोरम विध ाओं की सूचक है, क्योंकि सन्तों ने जिस निराकार, अनुभूति के परे शून्य तत्त्व (नान एग्जेसटेन्ट) अव्यक्त सत्ता का साक्षात्कार किया था, उसकी अभिव्यक्ति केवल प्रतीक और रूपक योजना से ही सम्भव थी। अतः सन्तों ने अपनी गूढ़ आध्यात्मिक अनुभूतियों को दाम्पत्य भाव (स्वकीया नायिका और पतिव्रता) आदि के सरस प्रतीकों के माध्यम से रोचक, रमणीय और कलात्मक अभिव्यक्ति दी है।

(i) दांपत्य भाव के प्रतीक—मानव मन के तारों को झंकृत कर, उसमें सरस एवं मधुर रागिनी भर देने वाली भावना प्रेम है। यद्यपि प्रेम भावना के अनेक पक्ष हैं, तथापि प्रेम की जैसी सम्पूर्ण और सरस व्यंजना, जितनी सार्थक और विस्तृत व्याख्या, दाम्पत्य भाव में अन्तर्निहित है, वैसी अन्यत्र नहीं, क्योंकि प्रेम के सभी पक्ष (मित्रत्व, भार्यात्व, मातृत्व आदि) इसकी विशाल परिधियों में समा गये हैं। जैसी एकात्मता और एकनिष्ठ आत्मलीनता और आत्मोत्सर्ग, एकाधिकार और निस्सीम अनुराग यहाँ प्राप्त हो सकता है वह अन्यत्र नहीं। सम्भवतः यही कारण है कि प्रेम साधना के तत्त्वों पर आधारित सन्त कवियों ने आत्मा (पत्नी या स्त्री) और परमात्मा (पति अथवा पुरुष) के परिचय की सम्पूर्ण आध्यात्मिक अन्तर्दशाओं तथा प्रेम की तीव्रतम अनुभूतियों का निरूपण बहुत ही सरल, सरस तथा स्वाभाविक दाम्पत्य भाव के लौकिक प्रतीकों के आधार पर किया है। सन्त काव्य में आत्मा की प्रतीक नारी के प्रमुख चार भेद मिलते हैं–कुमारी कन्या, सुन्दरी (विवाहिता), विरहिणी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(स्वकीया) और सती पतिव्रता।[९७] इन्हीं के आधार पर स्वकीया नायिका और पतिव्रता के प्रतीक के अन्तर्गत सन्तों की प्रतीक योजना का विश्लेषण प्रस्तुत है।

(अ) स्वकीया नायिका का प्रतीक—भक्ति भावना की सिद्धि के लिये सन्त कवियों ने स्वकीया प्रेम को ही अपनाया है। परकीया भाव को अपनाना उनके लिये न सम्भव था न वांछनीय ही, क्योंकि प्रेमाभक्ति की पावन पयस्विनी के लिये जिस एक निष्ठ मधुर एवं पवित्र प्रेम की उन्होंने अभिलाषा की थी, केवल पवित्र कुल ललना की भाँति अपने आराधक (एक पति) के चरणों में ही समर्पित की जा सकती थी। अतः कबीर आदि सन्तों की साधना प्रेम मूलक माधुर्य रस से सिंचित होते हुये भी मर्यादित स्वकीया प्रेम के पावन उपकुलों को ही स्पर्श करती रही है। डा० रामकुमार वर्मा का विचार है–अपनी आशायें, आकांक्षायें, अभिलाषायें और सब कुछ आराध्य के चरणों में समर्पित कर देने की भावना आये बिना प्रेम में सहृदयता नहीं आती। प्रेम की सारी व्यंजना और व्याख्यायें एक पति-पत्नी के सम्बन्ध में ही निहित हैं। ... आत्मा परमात्मा के एकीकरण की कल्पना की स्वस्थ अभिव्यक्ति सन्तों ने स्वकीया नायिका को आत्मा का प्रतीक बनाकर की। स्वकीया नायिका (आत्मा) के निस्सीम माधुर्य भावों के अनेक रूप सन्त काव्य में चित्रित हुये हैं।

कुँवारी कन्या के प्रतीक के रूप में भोली भाली बालिका (निश्छल आत्मा) साहचर्य के माधुर्य से नितान्त अपरिचिता, अपने प्रिय के (परमात्मा के) साक्षात्कार की सम्भावना से असीम उत्साह और उमंग की अनुभूति तो करती है किन्तु अन्य अनजानी कल्पनायें उसे कठिनाई में डालकर एक अकुलाहट, व्याकुलता और भय की सिहरन से उसके मन प्राणों को विकम्पित कर देती हैं।[९८] इस प्रकार के औत्सुक्य की अत्यधिक मनोरम और स्वाभाविक झाँकी सन्त काव्य में अनेक स्थलों पर मिल सकती है।[९९]

विवाहिता (सुन्दरी) के परिचय के सिहरन भरे क्षणों में हृदय की संकोच भरी झिझक का चित्रण भी सुन्दर रूप से किया गया है।[१००] परन्तु प्रियतम के इंगित पर सम्पूर्ण भय एवं संकोच को पार कर सुन्दरी प्रिय से जा मिलती है,[१०१] तब प्रेम के निर्मल प्रवाह में सब कुछ निर्मल हो जाता है—

दादू निर्मल सुन्दरी, निर्मल मेरा नांह।
दून्यौ निर्मल मिलि रहे, निर्मल प्रेम प्रवाह।।[१०२]

दादूदयाल

तत्पश्चात् अनन्त सुख की पयस्विनी में निमज्जित चिर आनन्द की लालसा में प्रेयसी (आत्मा) भारतीय नारी की अटूट निष्ठा, गहन सम्वेदना, चिर दृढ़ सम्बन्ध और कठोर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पातिव्रत धर्म को गौरवान्वित करने वाले प्रेम की मादक अनुभूतियों को मुक्त भाव से उस पति (ब्रह्म) के चरणों में निवेदित करने लगी।[१०३] अतः पति ही उसका सर्वस्व बन गया, उसका धर्म-कर्म, तीर्थ-व्रत, पूजन-अर्चन, और सम्पूर्ण सेवाओं का एक मात्र केन्द्र भी वही बन गया।[१०४] तब एकाधिकार के लोभ से परिपूरित प्रेयसी, प्रियतम को अपने नयनों में मूंद लेने की अभिलाषा करती हुई मधुर आसक्ति में लीन हो जाती है–

नैना अन्तर आव तू ज्यों हों नैन झँपेऊ।
ना मँ देखूं और कूं ना तुझ देखन देऊं।।[१०५]

कबीर

दृढ़ आसक्ति और सरस प्रेम की मनोभूमि पर विचरण करती हुई स्वकीया नायिका अपने प्रियतम के सहवास से जिन अनुपम सुखों की अनुभूति करती है उनका वर्णन करना कठिन है—

प्रेमलहरि की पालकी, आतम वैसे आई।
दादू खेले पीव सों यह सुख कहा न जाई।।

दादूदयाल

औ पिय कौ व्रत लै रहे कन्त पियारी सोय।
अंजन मंजन दूरि करि, सुन्दर सनमुख होइ।।[१०६]

सुन्दरदास

इस प्रकार सरस सुख की उत्तुंग लहरों पर क्रीड़ा करती स्वकीया नायिका अपने प्रिय से पतिव्रत ठान कर अन्य सभी को तृणवत् त्याग देती है।[१०७] इस एकनिष्ठ प्रेम पर उसका अमिट विश्वास है—

कबीर प्रीतड़ी तो तुझ सौ, बहु गुणियाले कन्त।
जो हंसि बोलो और सूं तो नील रंगाऊ दन्त।।[१०८]

प्रिय के इस व्रत को धारण करने वाली पति की प्रिया ही सच्ची सौभाग्यशालिनी है। जिसके श्रेष्ठ अथवा निम्न कुल और सुन्दरता असुन्दरता आदि का विचार किये बिना ही प्रियतम ने उसे सौभाग्य दिया है।[१०९]

सन्त कवियों की यह स्वकीया नायिका जो अपने पति के प्रगाढ़ आलिंगन की पावन मृदुलता में अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है उसे विरहावस्था की दारुण पीड़ा विकल बना देती है। अब विरहिणी (स्वकीया) प्रेम पंथ के ऊँचे जोड़ पर खड़ी मधुर विरह की स्थिति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में अनोखे उन्माद, व्याधि, जड़ता और विरह की मार्मिक व्याकुलता से ओत प्रोत है।[११०] विरहिणी प्रिय को सन्देश भेजती है। उसके सन्देश के लिये आकुल व्याकुल होकर पथिक से पूछती है—

विरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझे धाई।
एक सबद कहि पीव का, कबरे मिलेंगे आई।।[१११]

कबीर

उसकी अवस्था प्रिय के बिना जल विहीन मछली के समान है।[११२] प्रिय मिलन की आशा में जीव रूपी पपीहा, पिउ-पिउ की रट लगाये है और नेत्रों से निरन्तर झड़ी लगी हुई है।[११३] लेकिन प्रियतम लौटता नहीं और शंकाकुल नायिका "मेरो पिय परदेश लुभानो री।"[११४] में आकुल व्याकुल होकर मृत्यु की आकांक्षा करने लगती है।

कै विरहिन कूं मीच दै कै आपहि दिखलाई।
आठ पहर का दाझणाँ, मौपे सह्या न जाई।।[११५]

कबीर

रात-दिन प्रिय का पथ निहारती हुई विरहिणी तन का दीप और प्राणों की बाती बनाकर तिल-तिल कर जल रही है।[११६] ऐसी स्थिति में केवल प्रिय ही प्रेमामृत से जीवित रख सकता है।[११७]

विरह वेदना की मार्मिक व्यंजना लगभग सभी सन्त कवियों ने विस्तार से की है। विरह के सभी अंगों का विस्तृत चित्रण 'विरह को अंग' तथा 'विरह और प्रेम को अंग' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत की गयी है।[११८] कहीं-कहीं तो यह विरह व्यंजना इतनी मार्मिक बन पड़ी है कि जायसी के विरह वर्णन के समकक्ष रखी जा सकती है।[११९]

इस प्रकार संत कवियों ने स्वकीया नायिका के प्रतीकों में, आत्मा-परमात्मा के मिलन और विरह की माधुर्य से ओत-प्रोत, प्रेम की उद्दाम भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। जिनके द्वारा नारी के स्नेहाभिसिंचित हृदय तथा त्याग और पति की अनन्य प्रेमिका (स्वकीया नायिका) के महत्त्व का परिचय स्वतः ही मिल जाता है।

(ब) पतिव्रता का प्रतीक—सन्त कवियों के स्वकीया नायिका के प्रतीक की पूर्ण परिणति पतिव्रता के प्रतीक में होती है। स्वकीया नायिका के मधुर प्रेम की पीड़ा मिलन की सिहरन और विरह की तड़पन पतिव्रता के संयत हृदय की गहरी सम्वेदना दृढ़ प्रतीति और अटूट लगन में मिलकर ही अपने चरमोत्कर्ष की प्राप्ति करती है। भक्त हृदय के अनोखे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यक्तित्व की मादक और मधुर अभिव्यक्तियाँ पतिव्रता अथवा सती साध्वी के सस्मित मुख, चिता में प्रविष्ट हो जाने वाली आत्मबलिदान की गौरवमयी भावधारा में ही पूर्णता की प्राप्ति करती हैं। भक्त और पतिव्रता को समकक्ष रखते हुये हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा–कबीर भक्त और पतिव्रता को एक कोटि में रखते थे। दोनों का धर्म कठोर है, दोनों की वृत्ति कोमल है, दोनों के सामने प्रलोभन का दुस्तर जंजाल है, दोनों ही कंचन धर्मी हैं। बाहर से मृदु और भीतर से कठोर, बाहर से कोमल भीतर परुष। सबकी सेवा में व्यस्त पर एक की आराधिका पतिव्रता ही भक्त के साथ तुलनीय हो सकती है।[१२०] अतः यदि भक्त के आत्म बलिदान की झलक कहीं दीख सकती है तो वह सती और शूर में ही दीखती है।[१२१] फलस्वरूप सभी सन्तों ने पतिव्रता के गौरवमय अनुराग, प्रेम और प्रतीति का विभिन्न प्रकार से उल्लेख किया है।[१२२] लगभग सभी ने अपने को राम की बहुरिया मान कर ब्रह्म पति के सम्मुख पावन प्रेम की श्रद्धांजलि अर्पित की है।[१२३]

भक्ति मार्ग पर आरूढ़ सन्तों को अनेक बाधाओं, कष्टों और दाहक पीड़ाओं को लेकर उसी प्रकार अपने पथ पर अग्रसर होना है–जैसे सती साध्वी पतिव्रता को पति की अन्तिम अग्नि शय्या पर निःसंकोच पति की सहगामिनी बनना पड़ता है। भक्त मन में दृढ़ प्रतीति है कि शूरवीर मरण से नहीं डरते और सती सत से नहीं डिग सकती।[१२४] वास्तव में सती की गति उसका सत्व ही है। उसका अविचलित मन निर्द्वन्द्व है; क्षणमात्र में वह अपने को भस्मीभूत कर देती है।[१२५] इसी प्रकार शूरवीर भी अपना पराया भुलाकर प्रहार झेलता हुआ रण में जूझ जाता है।[१२६] सती का यही सत्व और दृढ़ता तथा शूर का धैर्य भक्त के लिए वांछनीय है। सांसारिक मोह आदि षट्रिपुओं से जूझ जाना सन्त भक्तो का आदर्श है। श्री द्विवेदी जी के विचारानुसार भी कबीर के प्रेम का आदर्श सती और शूर ही हैं।[१२७] इसीलिए पतिव्रत धर्म तथा उसमें दृढ़ नारी, संत के लिए अभिनन्दनीय बनकर भक्त का प्रतीक बन गई है। निर्गुण संत कवियों के लिए अनेकानेक देवी-देवताओं की साधना उसी प्रकार वर्जित है जैसे सती के लिए पर पुरुष का चिन्तन। पतिव्रता अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुष की ओर दृष्टिपात भी नहीं करती, उसके लिए किसी दूसरे के अस्तित्व की सम्भावनाएँ ही नहीं हैं।[१२८] पतिव्रता के इस धर्म का पालन हँसी खेल नहीं है।[१२९] इसी आधार पर भक्ति मार्ग का अवलम्बन भी सरल नहीं है। पतिव्रता का सर्वस्व उसका पति ही है अतः उसकी छत्र-छाया में वह निशंक और निश्चिंत है। उसके सुख दुःख का सम्पूर्ण भार उस पर ही है—

उस समरथ का दास हो, कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नांगी रहे, तो उसही पुरिस कौ लाज।।[१३०]

कबीर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसका वह स्वामी भी उसे पल भर के लिए भी निरावलम्ब नहीं छोड़ता।

जो सुंदरि सांई भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहू परि हरै, पलक न छाड़े पास।।[१३१]

कबीर

तब फिर ऐसे प्रियतम की विरहिणी उसके अभाव में जीवित रहने का कल्पना भी कैसे कर सकती है—

विरहणि थी तो क्यूं रही, जली न पिय के साथि।
रहु रहु मुगध गहेलड़ी, प्रेम न लाजूं मारि।।[१३२]

कबीर

इस प्रकार पतिव्रत के इस कठोर धर्म कर निर्वाह करने वाली सती स्त्री को संत कवियों ने भक्ति से परिपूरित दृढ़ आत्मा का प्रतीक माना है। पतिव्रता नारी का यह रूप संतों की दृष्टि में परम पूजनीय था। अतः लगभग सम्पूर्ण संत काव्य में पतिव्रता के प्रतीकों की कोई गणना नहीं है। प्रत्येक कवि ने 'पतिव्रता को अंग' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत प्रभु के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का उद्घोष किया है।

(ii) माता का प्रतीक—संत कवियों ने माता के स्वरूप को वन्दनीय और पूजनीय माना है, अतः उनके काव्य में अनेक स्थलों पर माता को परमात्मा का प्रतीक मानकर माता की महत्ता, क्षमाशीलता, उदारता, वत्सलता, अगाध ममता आदि भावों की व्यंजना से परम् प्रभु के औदार्य एवं महानता का चित्रण किया है। कबीर के इस एक ही पद में माता के समस्त ममत्व और वत्सलता का स्वाभाविक अंकन हुआ है—

हरि जननी हौं बालक तेरो, काहे न औगुण बकसहु मेरो।
सुत अपराध करै दिन केते जननी कैं चित रहैं न तेते।।
कर गहि केस करे जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता।।
कह कबीर एक बुद्धि विचारी, बालक दुखा, दुखी महतारी।।[१३३]

कबीर

दादूदयाल ने भी स्वयं को हरि जननी का बालक कहा है।[१३४] माता का बालक पर सहज अनुराग होता है। बालक की तनिक सी पीड़ा माता के हृदय में अपार वेदना बन जाती है। माता का हृदय प्रत्येक दशा में बालक का हितकारी ही होता है, भले ही वह माता को कष्ट क्यों न दे। बालक के समस्त अपराध माता की दृष्टि में नगण्य और क्षम्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः यही दुहाई देकर कबीर परमात्मा से (जो सम्पूर्ण विश्व की माता है) अपने अवगुणों की पैरवी करते हुए सभी अपराध क्षमा करा लेते हैं।

इस प्रकार संत काव्य में विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से नारी के सत् स्वरूपों का अंकन हुआ है, जिनमें अप्रत्यक्ष रूप से ही सही नारी के प्रति प्रशंसा के स्वर ध्वनित हुए हैं।

निष्कर्ष

वीर काव्य और संत काव्य में नारी के सत् और असत् दोनों ही रूपों का विश्लेषण हुआ है। वीर काव्य में नारी के दो रूप—वीर और शृंगारिक ही प्रमुख रहे हैं।

वीर रूप में नारी शौर्य एवम् सतीत्व के तेज से परिपूरित, प्रज्वलित दीपशिखा सी दीप्तिमान रही है। पति की जीवितावस्था में पति के वीरत्व की प्रेरणा बनना तथा मृत्यु पर अन्तिम शृंगार से सुसज्जित होकर सस्मित मुख चिता की प्रज्वलित शय्या पर पति का चिर सहगमन ही उसका आदर्श रहा है। नारी का यह सत् स्वरूप समाज में आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा गया।

शृंगारिक रूप में नारी वैभव और विलासिता की साम्रगी के रूप में चित्रित हुई है। राजनीतिक, सामाजिक एवम् धार्मिक परिस्थितियों के फलस्वरूप भी नारी महलों में आबद्ध परतंत्र जीवन व्यतीत करने को बाध्य हुई।

कामुकता की परिसीमाओं से घिरी नारी नित नूतन शृंगार से अपना नखशिख संवारने, उत्तेजक काम-क्रीड़ाओं से प्रिय को प्रेमोन्मत्त बनाने और मान मनौवल के खेल खेलने में ही अपना जीवन सार्थक समझने लगी है।

पति की सुमन शय्याओं की संगिनी यह सुकोमल नारी-पति की मृत्यु पर चिता के अंगारों का चुम्बन करने के लिए बाध्य रही है। इसके अतिरिक्त उसकी कोई गति नहीं है।

शृंगारिक रूप में नारी कामुकता की प्रतिमूर्ति, दीन-हीन, परवशता की शृंखलाओं में जकड़ी हुई पति का अनुगमन करने पर भी तुच्छ और हेय ही चित्रित की गई है।

सामंती समाज में, विलास लालसा के आधिक्य से बहु पत्नी प्रथा को प्रोत्साहन और गणिकाओं को पोषण मिला, फलस्वरूप कुल ललनाओं का जीवन दीन-हीन और उपेक्षित ही रहा। कुछ कवियों ने इस विवश, अभिशप्त नारी की स्वच्छन्द जीवन के लिए उत्कट लालसा भरी मार्मिक अभिलाषाओं को अभिव्यंजित किया है, जिससे पता चलता है समाज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में निम्न वर्ग के नारी समाज को महलों की रानियों से अधिक स्वतन्त्रता थी। सती के सतीत्व (दृढ़ पति भक्ति) और वीरांगना के दुर्लभ साहस ने कवियों को, सत्व के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने को बाध्य किया है, परन्तु फिर भी कवि नारी निन्दा के परम्परागत लोभ का संवरण न कर सके और कुछ नारी निन्दक उग्र स्वर यहाँ भी प्रतिध्वनित हुए हैं।

संत जीवन तप, त्याग, वैराग्य और निवृत्ति पथ का अनुगामी है। अतः वैरागी जीवन की अर वरोधक नारी पूर्ण कटुता से उनकी निन्दा और भर्त्सना की पात्र बनी है।

स्त्री मात्र का रूप और उसका शृंगारिक चित्रण करने वाले कवि दोनों ही सन्तों की निन्दा का विषय रहे हैं। अतः संत कवियों ने शृंगारिक कवियों की प्रतिक्रिया में नारी के अंगो-प्रत्यंगों का गर्हित और घृणित रूप से चित्रांकन किया।

उनकी दृष्टि में नारी मात्र पतन की ओर प्रेरित करने वाली, नागिन, बाधिन, विषफल, विषबेलि, त्रयोगुण विनाशिनी, साक्षात् नरक की कुंड ही है। अतः वह सर्वथा त्याज्य है। नारी निन्दा की उस झाँकी में कवि नारी के मातृत्व की भी विडम्बना कर बैठे हैं।

उग्र वाणी में नारी निन्दा करने पर भी संत कवि सतीत्व की गरिमा और पतिव्रत की दृढ़ता से अभिभूत नारी के सत् रूप के प्रति आकर्षित हुए हैं। फलतः उनकी वाणी प्रतीक रूप में स्वयं (भक्त) को प्रभु की प्रेयसी, पत्नी और स्वकीया नायिका मानकर दाम्पत्य भाव के (एक निष्ठ प्रेम के परिचायक) सरस और मनोहर स्वरूपों की मधुर अभिव्यंजना में मुखरित हुई है।

नारी के मातृत्व के उदार-क्षमाशील पक्ष के प्रकाश में संतों ने परमात्मा को माता और स्वयं को बालक का प्रतीक मानकर नारी हृदय के मातृ पक्ष का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है।

भक्ति के क्षेत्र में नारी को अधिकार दिया गया है परन्तु समाज में साधारण नारी उनकी उपेक्षा, घृणा और निन्दा की पात्र ही अधिक रही है। अतः नारी सामाजिक दृष्टि से हीन स्तर पर चित्रित हुई और कवियों द्वारा निन्दनीय ही रही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१. "भल्ला हुआ जू मारिया बहिणि महारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जह भग्गा घरु एंतु।।"-हेमचन्द
हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २१

२. "एउ जम्मु नग्गुहं गिउ भड़सिरि खग्गु न भग्गुं।
सिक्खां तुरियं न माणियों, गोरी गलीं न लग्गुं।।"
-वही, पृ० २४ पर उद्धृत।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३२

४. वही, पृ० २१

५. "गोरा बादल की कथा" जटमल, पृ० ३३

६. हूं हेली अचरज कहुं, घर में वाथ समाय।
होली सुपतां हूलैसे, मरणो कौच न माय।।" डिंगल में वीर रस, पृ० ११६
सम्पादक---मोती लाल मेनारिया - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग १९९७।

७. वही, पृ० १०३

८. "बिण मरियां बिण जीवियां, जो धन आवें धाम।
पग-पग चूड़ी पाछटू, तो रावत री जाम। वही, पृ० २०

९. वही, पृ० १०७

१०. वही

११. वही, पृ० ११४

१२. "घव जीवे भव खोवियों, मो मन मरियां आज।
मौनू औछे कचुवै, हाथ दिखाता लाज।। सूर्यमल - वही, पृ० १००

१३. डिंगल में वीर रस - सम्पादक मोती लाल मेनारिया- कवि बांकीदास कृत पद, पृ० ७४

१४. वही, पृ० १०८-१०९

१५. हूं बलिहारी राणियां, प्रण सिखावण भाव। नालो वाढण री छुरी, झपटे जाणियों साव।।
हू बलिहारी राणियां, सांचा गरम सिखाय। जंचा हदै तापणै, हरत, धी दृग लाय।। वही, पृ० १०९

१६. वही, पृ० ११०

१७. 'वीर सिंह देव चरित' केशव - (प्रयाग सं० २०१३) पृ० ६६ तथा लाल छत्र प्रकाश - पृ० ५५-६८

१८. लाल-छत्र प्रकाश (सं० श्याम सुन्दर दास), पृ० ५७ तथा ६३-६५

१९. "की हो तुम आवत बाढ़े चंपति को हम तजैन लाढै।
जौहर पहिले हमरै हवै और छांह तब इनकी छूवै है। - वही, पृ० ६०
और तब वह स्वयं हाथ में कटार लेकर वीरता से शत्रुओं का सामना करती हुई रुग्ण पति की सुरक्षा में प्राणोत्सर्ग कर देती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२०. गोरा बादल की कथा, पृ० २३, २८ और ३३।

२१. राखि सरन शंख न तजो, तजो शीश गढ़ वेगि।
हठ न तजो पत साह सो, गहि कर तजो न तेगि।
कहा जैव कहें सूर प्रथि, जिन गह गौरी शाह।
होतव जग में प्रबल है, चिंता वर्ज्जिय काह।। (जोधराज वीर काव्य संग्रह)- उदयनरायण तिवारी, प्रयाग, १९४८।

२२. मेवाड़ गौरव - पदमूराज जैन, पृ० १३८

२३. 'वीर सिंह देव चरित'- केशव, पृ० २५१-७०

२४. भूषण ग्रन्थावली - हरिऔध, पृ० ५-१०

२५. "तनियां न तिलक सुधनियां पगनियां में
धामै घुमरात छोड़ सेजियां सुखन की
भूषण मनत पति बाह बहिया नतेऊ
छहियां, छबीली ताकि रहियां सुखन की।
वालियां विधुर जिमि आलिया नलिन पर
तालिया मलिन मुगलानियां मुखन की। - भूषण विमर्श
-भगीरथ प्रसाद दीक्षित - इलाहाबाद सं० १९९५ पृ० २३१

२६. कल्याण नारी अंक - पृ० ५९०

२७. पंजाव की १९११ की जनगणना रिपोर्ट खंड १, पृ० २५० पर उद्धृत कांगड़ी की राजकुमारी के विवाह की कथा।

२८. पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलिज़ेशन : ए०एस० अल्तेकर, (१९३०-बनारस) पृ० ४२९

२९. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - डॉ० नामवर सिंह, पृ० २५५

३०. वही, पृ० २५६

३१. आंजणी काइं न सिरजीय करतार
क्षेत कमावती स्यउं भरतार
पहिरण आछी लोवड़ी
तुंग तुरीय जिम भीड़ती गात
सार्हय लेती सामुह
हँसि हँसि बूझती प्रिय की बात। - वही, पृ० २५८

३२. 'सा क्यउं दूर थी मेल्हियइ, कुल कीरे वेटीय सील जंजीर
जीवन राषउं मई चोर जिउं, पगि-पगि तो नइ पुहंचरे पाप।
हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - डॉ० नामवर सिंह, पृ० २५८ पर उद्धृत

३३. वही, पृ० ३१ पर उद्धृत हेमचन्द का पद।

३४. वही, पृ० ३१३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३५. कल्याण 'नारी अंक', पृ० ५७० (वीरमति की कथा)

३६. कल्याण नारी अंक - वीरांगना हांडी रानी, पृ० ५६०

३७. "सउचित सटठी ग्रणह, वत्तीसऊ हियांह

अम्भी ते नर ढइढसी जे बीससई तियोह-।। हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग- डॉ० नामवर सिंह, पृ० ३०२ पर संग्रहीत।

३८. वही, पृ० ३००

३६. वही, पृ० ३१२

४०. मिस्टिसिज़्म इन महाराष्ट्र - आर० डी० रानाडे, पृ० ४२

४१. मध्यकालीन धर्म साधना - हजारी प्रसाद द्विवेदी, (प्रथम संस्करण १६५५), पृ० ८७

४२. "उनके सामने ही उनके देव मन्दिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न लज्जित हुए सुन ही सकते थे।" -हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - सं० २००३ वि०, पृ० ६०

४३. आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ

ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया, ए० एस० अल्तेकर, पृ० ४६ (१६५३ कलकत्ता)

४४. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल (सं० २००३), पृ० ८८

४५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - राम कुमार वर्मा (इलाहाबाद - १६३८) पृ० २८६

४६. संत सुधासार - सम्पादक - वियोगी हरि (१६५३ - नई दिल्ली) पृ० १७८ तथा ६३७

४७. "देखत ही सब परत हैं हो, नरक कुण्ड के मांहि।

वा नारी के नेह सौ हो, बेगि रसातल जाहिं।।

संत सुन्दरदास, वही, पृ० ६६३

४८. वही, संत दादुदयाल, पृ० ४६६

४६. संत सुधसार, पृ० ७०७

५०. वही, पृ० १३०

५१. "पतिव्रता मैली भली गलै कांच की पोत,

सब सखियन में यों दिपैं ज्यों रवि ससि की जोत।" - कबीर

संतबानी संग्रह, पृ० ४०

५२. कबीर वचनामृत (साखी भाग)- सम्पादक मुंशीराम शर्मा, पृ० ६४ पद १७

५३. "साधू भीख न मांगई जो मांगै सौ भांड।

सती न पीसै पीसना जो पीसै सौ रांड।"

कबीर- कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५४

५४. वही, पृ० ५५-५६

५५. सन्त सुधासार-कबीर साहब, पृ० ७८

५६. दही - सुंदरदास पृ० ६६३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५७. कबीर वचनामृत (साखी भाग), पृ० ६४

५८. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय - पीताम्बरदास वड़थ्वाल - पृ० २८८

५९. संत बानी संग्रह - संत धरनीदास, पृ० ११६

६०. कबीर ग्रंथावली - कबीर दास, पृ० १२३ पद १११

तथा दादू कहें नहीं बस मोरा, तू जननी मैं बालक तोरा।" दादू दयाल की वाणी, पृ० ७५ पद १७८

६१. "दुल्हिन गावहु मंगलाचार,

हमारे घर आए राजा राम भरतार। - कबीर - कबीर ग्रंथावली- सं० श्याम सुन्दर दास, १९३८ प्रयाग, पृ० ८७ पद १

६२. संत सुधासार-सम्पादक वियोगी हरि १९५३ नई दिल्ली, दादू दयाल, पृ० ४६९

६३. वही, संत गरीबदास, पृ० ५०९

तथा संत कबीर दास के हृदय में ऐसी नारी के प्रति अपार आदर तथा सहानुभूति है-

"सती विचारी सत् किया कांटो सेज बिछाय।

ले सूती पिया आपने चहुं दिसि अग्नि लगाय।।" कबीर- वही, पृ० १३१

६३ क. वही, पृ० १३१

६४. वही

६५. वही, दादूदयाल, पृ० ४९६

६६. वही, कबीर साहब, पृ० १३१

६७. सन्त दर्शन-त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० १२५

६८. सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहि।

पतिव्रता के तन नहीं, बसे पिउ माहि।। कबीर साहब, संत सुधासार, पृ० १३२

६९. 'रसिक प्रिया' 'रस-मंजरी' और सिंगारहि जानि।

चतुराई करि बहुत विधि-विषै बनाई आनि।। —संत सुन्दरदास, संत सुधासार - पृ० ६६३

७०. "जागे मदन प्रचण्ड सराहे नख-शिख नारी।

ज्यों रोगी मिष्ठान खाई रोगहि विस्तारै।

सुन्दर यह गति होई जुती रसिक प्रिया धारै।। सुन्दर दास

वही, पृ० ६६३

७१. "कामिन कौ अंग अति मलीन महां अशुद्ध, ..., और उन उदर माहिं विविध विकार हैं।" —संत सुन्दरदास, वही, पृ० ६६४

मिलाइए-भृतृहरि कृत वैराग्य शतक—"रतनो मांस ग्रन्थी...सर्पद्धां जंघन।।"

७२. सुन्दर कहति नरक को कुंड यह, नरक में जेई परै सौ नरक पाती है।।

—संत सुन्दरदास, वही, पृ० ६६५

७३. सुन्दर कहत नारी नख शिख निंद रूप, ताहि जो सराहे ते तो बड़ेई गंवार हौ।।

—संत सुन्दरदास, वही, पृ० ६६४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

७४. "एक कनक अरुकामिनी, विष फल की एऊ पाई।
देखें ते विष चढ़े - खाये सूं मरि जाई।"
कबीर वचनामृत - पृ० ११६

७५. संत बानी संग्रह (प्रथम भाग) कबीर-साखी ३

७६. वही, साखी-४

७७. "विष ही की भूमि मांहि, विष के अंकुर भये।
नारी विष बेलि बड़ी नख-शिख देखिए।।
—सुन्दरदास-(सुन्दरदास ग्रन्थावली), पृ० ४३८

७८. "नारी नसावै तीन गुन, जो नरपासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, पैठ सके न कोय।।" —संत बानी, संग्रह भाग १, कबीर—पृ० ५८

७९. वही, साखी, पृ० ५८

८०. कबीर वचनामृत, पृ० ११६

८१. "नारी पराई आपणी, भुगत्या नर कहिं जाई।
आगि-आगि सबरो कहै, तामे हाथ न बाहि।।" —वही पृ० १२०

८२. संत सुधासार —दादूदयाल पृ० ४४२

८३. संत बानी संग्रह —चरणदास पृ० २६ तथा १०६

८४. कबीर ग्रन्थावली (सम्पादक श्यामसुन्दर दास), पृ० ४० साखी १४

८५. संत बानी संग्रह —प्रथम भाग —साखी ७

८६. "कुंजर है गति कटि केहरि को भय जामै,
वेनी काल नागिनीऊ फन कौ धरतु है।
कुच है पहार कामचोर रहै जहाँ,
सांयिकै कटाक्ष बान प्रान को हरतु है।
सुन्दरदास एक ओर डर तामै।
राक्षस बदन षाऊँ षाऊँ, ही करतु है।"
—सुन्दरदास - सुन्दरदास ग्रन्थावली, पृ० ४३७

८७. 'संत बानी संग्रह' भाग १, पृ० ६१

८८. वही, पृ० १०३

८९. संत बानी संग्रह, भाग १, पृ० ११५

९०. वही, पृ० १२४

९१. वही, पृ० १४६

९२. वही, पृ० २२३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

९३. कबीर ग्रन्थावली - दोहा २१, पृ० २१

९४. संत सुधासार-सम्पादक वियोगी हरि- दरियासाहब, पृ० ११३ तथा

"करो विचार विकार परिहरौ, तरन तारनै सोई।

कह कबीर भगवन्त भजन करु द्वितीय और न कोई।।" कबीर वचनावली, पृ० १४८ पद १२५

९५. "नारी आवै प्रीत कर सतगुर परसे आप।

दरिया हित उपदेश दे, माय बहिन धी जान।।" वही, पृ० ११३ पद ३

९६. "नारी जननी जगत की, पाल पोस दे पोष।

मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष।। वही, पृ० ११३ पद ४

९७. कबीर का रहस्यवाद, —डॉ० रामकुमार वर्मा, (१९३२-प्रयाग), पृ० ६६

९८."निसदिन खेलत रही सखियन संग, मोहि वड़ा डर लागै।।"

मोरे साहिब की ऊँची अटरिया, चढ़त मैं जिमरा काँपै।।" – कबीर

संत सुधासार, पृ० ९४

तथा—"करो जतन सखि सांई मिलन की...लरिकैयां खेलन की।।" कबीर —वही पृ० ९४

बाबुल कैसे बिसरा जाई।

जदि में पति संग रल खेलूँगी आपा धर्म समाई।। —दरिया साहब, वही, पृ० ११८

९९. जब लग पीव परचा नहीं, कन्या कुंवारी जाणि।

हथ लेवा हाँसे लिया, मुसकल पड़ी पिछाणि।। —कबीर, संत सुधासार पृ० ९४

१००. मन प्रतीत न प्रेम रस, ना इस तन में ढ़ंग।

का जाणै उस पीव से, कैसे रहसी रंग।।

जा कारणि मैं ढूंढ़ती सनमुख मिलिया आई।

धन मैली पिव उजला लागी सको न पाई।। —कबीर

१०१. संत सुधासार—दादूदयाल, पृ० ४९७

१०२. वही

१०३. आतम-नारि सुहागिन, सुन्दर आप संवारि।

पिय मिलने को उटि चली, चौमुख दियरा बारि।। यारी साहिब, संत सुधासार, पृ० ७६

तथा —निरखत रहो पलक नहिं लाओ, सूतों सत्त सेजरिया री।

रहो तेहिं रग रस माति, डारो सकल बिसरिया री।

जग जीवन सखि पायन परिके, मांगि लेऊं तिन सनियारी।।

—जगजीवन संत सुधासार पृ० ५९

१०४. 'निहकर्मी पतिव्रता को अंग' —कबीर, संत सुधासार, पृ० १३०-३१

१०५. 'कबीर वचनामृत' —मुंशी राम शर्मा, पृ० ६०

१०६. संत सुधासार, पृ० ४९६ तथा ४६३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१०७. एक पिया मोरे मन मान्यो पतिव्रत ठान्यौ हो।

अवरो जो इन्द्र समान तो त्रन करि जान्यौ हौ।।

—धरनीदास, वही, पृ० ४२

तथा—परपरिखा सब परिहरै सुन्दरि देखै जागि।

आपण पिछाणि करिं, दादू रहिये लागि —दादू, वही, पृ० ४६६

१०८. कबीर वचनामृत, पृ० ६०

१०९. दादु नीच ऊँच कुल सुन्दरी सेवा सारी होय।

सोई सुहागिन कीजिये, रूप न पीजै धोई।।

—दादूदयाल, संत सुधासार, पृ० ६३८

११०. मार्ग जोवै विरहनी, चित्वें पिय की ओर।

सुन्दर जियरै जक नहीं, कल न परत् निस भोर। —सुन्दरदास, वही, पृ० ६३५

१११. संत सुधासार, पृ० १२१

११२. वही, पृ० १२५ पद १८

११३. नैनन नीझरि लाइया, रहट बहै निसबास।

पपिहा ज्यौ पिउ-पिउ रटै, पिया मिलन की आस।। —कबीर, वही, पृ० १२५

११४. वही, पृ० ६६०

११५. वही, पृ० १२४

११६. वही

११७. वही —सुन्दरदास, पृ० ६३५ पद १,२

११८. वही —सुन्दरदास, पृ० ६३५, ६५३, ६५६, ६६० तथा धरनीदास —पृ० २, ७ और ८ तथा दरियासाहब पृ० १०५

११९. सुन्दर विरहनि अध जरी, दुक्ख कहै मुख रोई।

जरी बरिकै भस्मी भई, धुवाँ न निकसै कोई।। —सुन्दरदास, वही, पृ० ६३६

१२०. कबीर —डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी (१९४७-बम्बई), पृ० १६१

१२१. वही, पृ० १९४

१२२. संत सुधासार —कबीर, पृ० १३०-१३१

—दादूदयाल, पृ० ४६६-४७२

—सुन्दरदास, पृ० ६२४-६३८

—धरनीदास, पृ० ४२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१२३. संत बानी संग्रह, भाग २ जगजीवन, पृ० १३४

वही—धरनीदास, पृ० १२७

वही—दरियादास, पृ० १५४

१२४. डगमग छाँड़ि दे मन बौरा।

अब तो जरै बरै बनि आवै...सती न संचे भांडौ।। —संत सुधासार (कबीर), पृ० ७१

१२५. सती सत गति साचा बोलै मन निहचल कदे न डोले।

वाकै सांच पांच जिय न आवै, जन देखत आप जलावै।। —दादूदयाल, संत सुधासार, पृ० ४३७

१२६. वही —दादूदयाल, पृ० ४३६

१२७. "कबीरदास के प्रेम का आदर्श सती और शूर है। भक्त का संग्राम शूर के संग्राम से भी बढ़कर है, सती के आत्म बलिदान से भी श्रेष्ठ है परन्तु फिर भी यदि भक्त के आत्मबलिदान की झलक कहीं दीख सकती है तो वह सती और शूर में ही दीखती है" (बम्बई १९४७), पृ० १९४

१२८. "कबीर रेख सिंदूर की, काजल दिया न जाय।

नैनू रमइया रमि रहया, दूजा कहाँ समाय।। —कबीर, संत सुधासार, पृ० १३०

१२९. संत सुधासार —सुन्दरदास, पृ० ६३८

१३०. कबीर वचनामृत (साखी भाग) संपादक —मुंशी राम शर्मा, पृ० ६४

१३१. वही, पृ० २२४

१३२. कबीर वचनामृत, पृ० २९

१३३. संत सुधासार —कबीर दास, पृ० ६८

१३४. वही —दादूदयाल, पृ० ७५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

४ अध्याय

तुलसी की नारी भावना पर साहित्यिक परम्परा, समकालीन साहित्य एवं परिस्थितियाँ तथा उनके व्यक्तित्व और जीवन का प्रभाव

यह संसार अभिन्न, अटूट, अनन्त तथा अनादि रूप से प्रवाहित एक ऐसी धारा है, जो सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परम्पराओं की अबाध एवम् अविच्छिन्न गति से गतिमान रहती है। लगभग सभी व्यक्ति इस तीव्र प्रवाह में बहा करते हैं, परन्तु कुछ प्रतिभा सम्पन्न विशिष्ट और महान् व्यक्तित्व अपनी इच्छानुसार ही संसार के प्रवाह को प्रवाहित करने का सफल प्रयास करते हैं। समाज की परम्परागत मान्यताओं से परे वे नये मानों को स्थापित कर नूतन समाज के सृष्टा बनते हैं।

महाकवि तुलसीदास का ऐसा ही प्रतिभावान् व्यक्तित्व था, जिसने समाज को अपनी इच्छानुसार नूतन प्रवाह की ओर उन्मुख करने का सफल प्रयास किया। फिर भी, प्रत्येक कवि अपने जाने-अनजाने में सामाजिक मान्यताओं, राजनीतिक और धार्मिक प्रेरणाओं तथा चली आती हुई साहित्यिक परम्पराओं से किसी न किसी अंश में प्रभावित होता ही है। महाकवि तुलसीदास भी इसके अपवाद नहीं थे। तुलसी असाधारण प्रतिभा सम्पन्न महान् कवि होने के साथ ही साथ बहुत बड़े लोकनायक भी थे, जिनके सम्पूर्ण साहित्य का एक मात्र लक्ष्य लोकहित एवम् जन-कल्याण ही था। इसी कारण उन्होंने समाज का सूक्ष्म निरीक्षण किया, पूर्ववर्ती सम्पूर्ण साहित्य का गूढ़ अध्ययन और मनन किया। तत्पश्चात् एक नूतन कल्याणकारी समाज की कल्पना करते हुए अपने श्रेष्ठतम ग्रन्थ रामचरितमानस में आदर्श भावी समाज का सृजन किया।[1] इस आदर्श समाज में उसके अर्द्धांग नारी के प्रति उनकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्या भावनाएँ थीं, यही विश्लेषण का विषय है। इस अध्याय में केवल यही जानने का प्रयास है कि तुलसी की नारी भावना पर साहित्यिक परम्परा, समकालीन साहित्य एवं परिस्थितियों तथा उनके व्यक्तित्व और जीवन का क्या और कितने अंशों में प्रभाव पड़ा है।

१. साहित्यिक परम्परा का प्रभाव

महाकवि तुलसीदास ने राम कथा सम्बन्धी सभी ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन और गम्भीर चिन्तन किया था।[२] यही कारण है कि उनके रामचरितमानस तथा अन्य ग्रन्थों में भी अनेक संस्कृत ग्रन्थों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार तुलसीदास ने यदि अपनी कथा का दृष्टिकोण 'अध्यात्म रामायण' से लिया है तो कथा का विस्तार वाल्मीकि रामायण के अनुरूप किया है। हनुमन्नाटक और प्रसन्न राघव के अनुसार 'लक्ष्मण परशुराम सम्वाद' तथा 'पुष्पवाटिका' का वर्णन किया है और उनकी अनेक सुन्दर सूक्तियों का चयन श्रीमद्भागवत से किया गया है।[३] यही नहीं गोस्वामी तुलसीदास जी ने शास्त्र सम्मत और काव्य-परम्परा सम्मत अनेक तर्कहीन रूढ़ियों एवम् शकुन विचारादि को भी अपने काव्य में प्रतिष्ठित किया है।[४] लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन सब में तुलसी की निष्ठा थी अथवा तुलसी इन सबसे सहमत थे; क्योंकि ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ तुलसी ने रूढ़िगत मान्यताओं का स्पष्ट विरोध किया है।[५] अतः केवल यही कहा जा सकता है कि जगत् में प्रचलित रूढ़ियों को भी तुलसी कठोरता से इसलिए नहीं मिटाना चाहते थे जिससे सर्व साधारण उनके काव्य को सहज स्वाभाविक रूप से ग्रहण करते हुए रामोन्मुख हो जाये। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे बहुत अनोखी बात माना है कि तुलसी अपनी उपमाओं, रूपकों और उत्प्रेक्षाओं में अनेक स्थलों पर काव्यगत रूढ़ियों का पालन करते हुए पाये जाते हैं, जबकि उनकी प्रतिभा की इच्छा करने पर अनेकानेक नूतन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की कमी नहीं रह सकती थी। उन्होंने इसका कारण तुलसी की समन्वयात्मिका प्रतिभा के अन्तर्गत नूतनता और प्राचीनता के सामंजस्य के विधान को ही माना है।[६] इस सम्बन्ध में महाकवि कालिदास की यह मान्यता द्रष्टव्य है कि विद्वान् लोग विचार पूर्वक पुरातन और नूतन का सामंजस्य करते हुए चलते हैं।[७] प्राचीनता के इस महत्त्व को अनुभूत करने के कारण ही तुलसी की नारी भावना पर प्राचीन साहित्यिक परम्पराओं का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

(क) संस्कृत-साहित्य की परम्परा का प्रभाव—महाकवि तुलसीदास ने अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही अपने महाकाव्य को वेद, शास्त्र, पुराण, रामायण तथा अन्य ग्रन्थों से सम्मत कहकर,[८] संस्कृत साहित्य के प्रभाव की स्वीकारोक्ति स्वयं ही दे दी है। रामनरेश त्रिपाठी के विचारानुसार संस्कृत के दो-सौ से भी अधिक ग्रन्थों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के श्लोकों को चुनकर और रूपान्तरित करके मानस में संगृहीत किया है।[९] अपने इस कथन की पुष्टि के लिए उन्होंने मानस के लगभग १२० और कवितावली के दो स्थलों के पदों की अनेक संस्कृत ग्रन्थों के श्लोकों से तुलना करके बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव साम्य की अभिव्यक्ति की है।[१०] इसके अतिरिक्त त्रिपाठी जी ने और भी अनेक संस्कृत ग्रन्थों की सूची दी है जिनके बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव मानस में मिलते हैं।[११] बाबू श्यामसुन्दर दास का विचार है कि केवल रामचरितमानस में ही नहीं अपितु तुलसीदास जी ने प्रायः सब ग्रन्थों में संस्कृत से सामग्री ली है।[१२] इससे स्पष्ट होता है कि तुलसी जितने अधिक संस्कृत साहित्य से प्रभावित थे, इतने सम्भवतः अन्य किसी भी भाषा काव्य से नहीं थे।

तुलसी की नारी भावना पर संस्कृत साहित्य का यह प्रभाव और भी अधिक परिलक्षित होता है, क्योंकि नारी निन्दा वाचक जितने भी प्रसंग हैं, जिन्हें लेकर विद्वान् आलोचक तुलसी पर नारी निन्दा का घोर लांछन लगाते हैं और जिसके लिए किसी प्रकार भी उन्हें क्षम्य नहीं मानते, लगभग वे सभी कथन संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद-मात्र हैं।[१३] उदाहरण के लिए कुछ पद निम्नांकित हैं—

शुक्रनीति	रामचरितमानस
शास्त्रं सुचिन्तितमथोपरिचिन्तनीय	सास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि देखिय।
मारावितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः।	भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ।
क्रोड़े कृतापि युवती परिरक्षणीया	राखिय नारि जदपि उर माहीं।
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्।	जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं।।
गर्ग संहिता	
दुर्जनाः शिल्पिनो दासा	ढोल गंवार सूद्र पसुनारी।
दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः।	सकल ताड़ना के अधिकारी।।
ताडिता मार्दवं यान्ति	
न ते सत्कारभाजनम्।।	
अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।	नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं
असौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः	अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।
स्वभावजाः।।	साहस अनृत चपलता माया।
	भय अविवेक असौच अदाया।।
हितोपदेश	
सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा	भ्राता पिता पुत्र उरगारी।
भ्रातरं यदि वा सुतम्।	पुरुष मनोहर निरखत नारी।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

योनिः विलयति नारीणां	होइ विकल सक मनहिं न रोकी।
सत्यं सत्यं हि नारद।।	जिमि रविमनि द्रव रविहिं विलोकी।।
प्रस्ताव रत्नाकर[१४]	**रामचरितमानस**
अविवेक्या भृत्यजनाः शठानि	सेवक शठ नृप कृपिन कुनारी
मित्राण्यदायकः स्वामी।	कपटी मित्र सूल सम चारी।
अविनयवती भार्या	
मस्तकशूलानि चत्वारि।।	
भर्तृहरि शतक[१५]	
कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति यस्य	नारि नयन सर जाहि न लागा।
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः।	घोर क्रोध तम निसि जो जागा।।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-	लोभ पास जेहि गर न बंधाया।।
लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः।।	सो नर तुम्ह समान रघुराया।।

उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ भाव की दृष्टि से समता दृष्टिगत होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि तुलसी की नारी भावना पर संस्कृत साहित्य की परम्परा का जो प्रभाव पड़ा है, वह कहाँ तक उचित है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने संस्कृत के सामग्री चयन के एक स्थल (शास्त्र सुचिन्तित) को अनुचित कहा है।[१६] लेकिन सोचने की बात यह है कि तुलसी ने ऐसे अनेक स्थलों पर पूर्व परम्पराओं के वशीभूत जिन नारी निन्दक उद्‌गारों की अभिव्यक्ति कर दी है क्या उन पर उनकी वैसी ही निष्ठा थी ? बाबू श्यामसुन्दर दास के विचारानुसार इसके अनौचित्य का कारण रूप, शील, व्रत, नियम आदि में पवित्र गुणों की आगार सीता को उद्देश्य करके —"जुवती.....बस नाहि" उक्ति का कहना ही है। क्योंकि सीता जी स्वयं अपनी इच्छा से रावण के साथ नहीं गई थीं।[१७] इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जैसे उन्होंने (श्यामसुन्दर दास) स्वयं ही "नारी स्वभाव सत्य कवि कहहीं—अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।" को अवसर विशेष पर कही गई उक्ति कहकर, प्रसंग, वक्ता, श्रोता, प्रयोग, अवस्था आदि पर ध्यान रखते हुए शब्दों और वाक्यों का अर्थ लगाने का निर्देश दिया है।[१८] उसी के अनुरूप यहाँ भी सभी बातों पर विचार करना आवश्यक है। सर्व प्रथम प्रसंग के लिए निम्नांकित पंक्तियों पर ध्यान दें—

विरही इव प्रभु करत विषादा	।	कहत कथा अनेक संवादा ।।
लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा	।	देखत केहि कर मन नहि छोभा ।।
नारि सहित सब खग मृग वृंदा	।	मानहुं मोरि करत हहिं निंदा ।।
हमहि देखि मृग निकर पराहीं	।	मृगीं कहहिं तुम्ह कहं भय नाहीं ।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम्ह आनंद करहु मृग जाए । कंचन मृग खोजन ए आए ।।
संग लाइ करिनीं करि लेहीं । मानहुं मोहि सिखावनु देहीं ।।
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ।।
राखिअ नारि जदपि उर माहीं । जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं ।।
देखहु तात बसंत सुहावा । प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ।।[१८]

बिरह विकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित विपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल ।।[२०]

इस कथन के वक्ता राम यहाँ पर साधारण विरही की भाँति अत्यधिक दीन अवस्था में स्थित हैं। अतः विचारणीय प्रश्न है कि यह विरही का प्रलाप है, कंचन मृग के पीछे-पीछे दौड़े चले जाने की ग्लानि है अथवा भयंकर वन में जहाँ हाथी भी हथिनियों को एकाकी नहीं छोड़ते—सीता को छोड़कर चले जाने का क्षोभ है, या फिर विरह विकल, प्रियाहीन एवम् बलहीन राम को—मदनाक्रमण का भय अथवा स्त्री मात्र की निन्दा या सीता की भर्त्सना ? जहाँ तक राम द्वारा सीता की भर्त्सना का प्रश्न है—राम का सीता पर पूर्ण विश्वास था, उनकी दृष्टि में सीता परम पवित्र हैं—

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप ससि व्रत नेम पुनीता।।[२१]

यदि राम सचमुच ही सीता को "जुवती... बस नाहिं" के दृष्टिकोण से देखते तब वे ऐसा प्रण कदापि न करते—

एक बार कैसेहुं सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुं आनों।।
कतहुँ रहउ जौं जीवति होई। तात जतन करि आनउं सोई।।[२२]

और न ही सीता को आदर्श दांपत्य प्रेम का अभिव्यंजक यह मधुर एवं गूढ़ प्रीति संयुक्त संदेशा भेजते—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।
सो मनु सदा रहत तोही पाहीं। जान प्रीति रसु एतनोहि माहीं।।[२३]

अतः स्पष्ट है कि उपर्युक्त उद्‌गार 'जुवति.....बस नाहि' केवल विरह विदग्ध राम के विषाद पूर्ण मन का प्रलाप मात्र ही है, जो उनकी अवस्था और परिस्थिति विशेष के संदर्भ में क्षम्य है।[२४]

"ढोल गंवार शूद्र पशु नारी" गर्ग संहिता का अनुवाद मात्र तो है ही, साथ ही तुलसी से पूर्व—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" की बात कहने वाले मनु की ही व्यवस्था है कि भार्या दासादि को रस्सी से बांधकर लकड़ी से मारना चाहिए[२५] और शंख स्मृति के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुसार लालन और ताड़ना से ही स्त्री—श्री अर्थात् घर की शोभा बनती है,[२६] की बात कही गई है। अतः तुलसी का अपराध नगण्य ही रह जाता है। पुनः पात्र, अवस्था, प्रसंग आदि के प्रकाश में देखने पर ज्ञात होता है कि यह उक्ति जड़ एवं भयभीत समुद्र के द्वारा अपना अपराध क्षमा कराने के लिए कही गई है। डॉ० रामकुमार वर्मा का भी मत है कि "यह उक्ति सागर अपनी क्षुद्रता बतलाने के लिए राम से कहता है। अतः ये कथन तुलसी के न होकर परिस्थिति विशेष में पड़े हुए व्यक्तियों के समझने चाहियें।"[२७] इस प्रकार यह कथन तुलसी का न समझकर जड़ सागर का समझना चाहिए।

नारी हृदय में स्थित आठ अवगुण—साहस, अनृत, चपलता, माया, भय, अविवेक, असौच, अदाया—भी संस्कृत आचार्यों के गिनाए हुए ही हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने इसके लिए भी यही कहा है कि यह उक्ति भी रावण अपनी महत्ता बतलाने के लिए मन्दोदरी से कहता है। अतः इसे भी हमें तुलसी का कथन नहीं मानना चाहिए।[२८] स्पष्ट है, नारियों के इन अवगुणों की उद्भावना तुलसी की अपनी नहीं है और न ही वे स्त्रियों को इन अवगुणों से आवंटित ही देखते हैं। इसके विपरीत जिसको लक्ष्य करके ये पंक्तियाँ कही गई हैं वह मन्दोदरी तो तुलसी की अपनी दृष्टि में बड़ी ही विनम्र नीति-निपुण,[२९] निर्बुद्धि रावण को सुबुद्धि देने वाली[३०] और पतिव्रता स्त्री है। जब कि रावण अभिमानी, मदान्ध, महामूर्ख[३१] और दुष्ट[३२] है तब ऐसे व्यक्ति की उक्ति उनकी अपनी उक्ति कैसे मानी जा सकती है। पुनः रावण भी अपनी पत्नी को ऐसी नही समझता था अन्यथा वह अपने भाई विभीषण और मंत्री की भाँति पत्नी पर भी क्रुद्ध हो जाता, परन्तु इसके विपरीत रावण मंदोदरी की सीख सुनकर हँसता हुआ ही ये अवगुण गिनाता है। अतः यह उसका विनोद ही है।[३३] मंदोदरी के मन का यह निश्चय—कि पति को कालवश मतिभ्रम हो गया है[३४]—भी यह प्रकट करता है कि यह उक्ति काल के वशीभूत, भ्रमित बुद्धि रावण का उद्गार मात्र है। अतः इस प्रसंग में बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार प्रसंग, वक्ता, श्रोता, प्रयोग, अवस्था आदि पर ध्यान देने[३५] पर तुलसी निर्दोष ही सिद्ध होते हैं।

'भ्राता पिता पुत्र उर गारी' की भावना अपने मूल रूप 'सुवेषं.....नारदः' की तुलना में (उग्रता की दृष्टि से) बहुत हल्की है। इसके अतिरिक्त ये पंक्तियाँ शूर्पणखा जैसी दुष्ट हृदया और कामासक्त नारी के प्रसंग में प्रस्तुत की गई हैं और केवल उसी को लक्ष्य करके कही गई हैं, नारी मात्र के लिए नहीं।

'सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी' में तो स्पष्ट ही कुनारी शब्द प्रयुक्त हुआ है। अतः यह असत् नारियों के लिए ही है। ऐसे कितने पुरुष हैं, जो नारी के असत् रूप की उपासना करने को तत्पर होंगे ? पुरुष तो पुरुष, स्त्रियाँ भी असती स्त्रियों की निन्दा ही करती हुई देखी जाती हैं। अतः यह नारी मात्र की निन्दा हो ही नहीं सकती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी प्रकार 'नारि नयन सर जाहि न लागा' में भी नारी निन्दा का स्वर नहीं, वरन् क्रोध, लोभ, मोह आदि मानवीय दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने वाले राम सदृश परम पुरुषों की प्रशंसा का स्वर ही ध्वनित होता है।

इनके अतिरिक्त और भी ऐसे अनेक स्थल हैं जो संस्कृत श्लोकों के अनुवाद हैं अथवा भाव की दृष्टि से उनके समान हैं; जैसे "महावृष्टि जल फूटि किआरी। ज्यों सुतंत्र भई बिगरहिं नारी।।"[३६] की उपमा देने पर आलोचकों को तुलसी स्वतन्त्र नारी के मार्ग भ्रष्ट हो जाने की घोषणा करते हुए दिखलाई देते हैं।[३७] तब उन्हें देखना चाहिए कि यह घोषणा और भी कठोरता के साथ बहुत पहले नारद ही कर चुके थे कि "स्वतन्त्रता से कुलीन स्त्रियाँ भी बिगड़ जाती हैं, अतः प्रजापति ने उनकी पराधीनता की व्यवस्था की है।[३८] यही नहीं और भी अनेक धर्माचार्यों ने—'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति, अस्वतन्त्रा धर्म स्त्री, तथा 'न स्वातन्त्र्य क्वचित्स्त्रयः'[३९] आदि वाक्य कह कर स्त्रियों को परतन्त्रता की शृंखलाओं में जकड़ दिया था। तब क्या तुलसी का तात्पर्य भी नारी को परतन्त्र बनाए रखना था ? ऐसा प्रतीत नहीं होता—

कत विधि सृजीं नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहुं सुखु नाहीं।।[४०]

और—"जगदीस जुवति जिनि सिरजहि"[४१] आदि वाक्यों में परवश नारी के प्रति जितनी सहानुभूति तथा करुणा की मार्मिक भावना तुलसी ने अभिव्यक्त की है, ऐसी उनके युग में अथवा उनके पूर्व भी कोई अन्य कवि नहीं कर सका है। इसी प्रकार पार्वती को विदा करते समय रुदन करती माता और पुत्री की विरहावस्था और पराधीन स्थिति से तुलसी द्रवित हुए हैं—'नारि जनमु जग जाय सखि कहिं सोचहिं'[४२] में नारी के प्रति तुलसी की सहानुभूति स्पष्ट ही अभिव्यक्त हुई है। स्पष्ट है, तुलसी नारी को अनुचित बन्धनों में रखना नहीं चाहते थे। केवल क्यारियों को तोड़ने वाली महावृष्टि के समान, मर्यादा भंग करने वाली उच्छृंखलता उन्हें मान्य नहीं थी। बाबू श्यामसुन्दर दास, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार भी इस प्रसंग में द्रष्टव्य हैं।[४३] उनका मत भी यही है कि तुलसी नारी स्वातन्त्र्य के विरोधी नहीं थे। इसके अतिरिक्त यह बात इससे भी सिद्ध होती है कि उन्होंने अपने पात्र विधान में कहीं भी किसी नारी की स्वतन्त्रता का हरण नहीं किया है। तुलसी की नारी उत्सव और पर्वों पर, मन्दिरों और महलों में, वाटिकाओं और यज्ञ स्थलों पर, नगर वीथिकाओं और वन-पथ पर तथा युद्ध स्थलों और आकाश मार्गों पर, सर्वत्र ही स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करती हुई दृष्टिगत होती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब तुलसी 'जदपि जोषिता नहीं अधिकारी'[४४] कहकर स्त्रियों को वेद शास्त्रादि की अनधिकारिणी घोषित करते हुए प्रतीत होते हैं, तब निश्चय ही यह उनका अपना मत नहीं है। स्पष्ट रूप से यह कथन भागवत पुराण के —"स्त्री शूद्र द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा"[४५] तथा 'वसिष्ठ धर्मसूत्र में निरूपित वक्तव्य[४६] का अप्रत्यक्ष प्रभाव ही है, क्योंकि तुलसी का अपना उदार मत तो इस चौपाई की अगली पंक्ति में अभिव्यक्त होता है कि— 'गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहं पावहिं।' यद्यपि यह पंक्ति भी अध्यात्म रामायण—का अनुवाद है[४७] परन्तु यहाँ इसकी स्थापना का तात्पर्य ही यह है कि तुलसी प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष यदि उसमें आर्त भाव है तो धर्माधिकार दिलाना चाहते थे। निश्चय ही तुलसी नारीमात्र को धर्म ग्रन्थ सुनने का अधिकारी समझते थे तभी तो शिवजी रामचरित्र सुनने की अभिलाषिणी पार्वती को धन्य-धन्य कहते हुए[४८] प्रेम सहित उमंगित होकर सम्पूर्ण रामकथा सुनाते हुए दृष्टिगत होते हैं।[४९]

सूक्ष्म खोजपूर्ण दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है—कि तुलसी के समय तक संस्कृत धर्माचार्यों द्वारा नारी को सम्पूर्ण धार्मिक अधिकारों से वंचित कर उनके लिए केवल एक ही धर्म—दृढ़ता पूर्वक पति सेवा—की कठोरता के साथ स्थापना कर दी गई थी।[५०] ऐसी स्थिति में तुलसी सब धर्माचार्यों के विरुद्ध धर्म की स्थापना करके, धर्म विद्रोही वनना नही चाहते थे। यदि वे ऐसा करते तो निश्चय ही उनका रामचरितमानस उतना लोक प्रिय न होता और वे अपने लक्ष्य 'लोक कल्याण' से वंचित रह जाते। अतः उन्होंने भागवत पुराण के अनुसार परम्परागत धर्म 'जोषिता नहीं अधिकारी' की बात कही तो सही परन्तु उसका तर्कपूर्ण खंडन भी (गूढ़उ तत्व....पावहिं') अध्यात्म रामायण से प्रस्तुत कर दिया। स्पष्ट है, नारी मात्र को तुलसी के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने धार्मिक परम्पराओं का विवेकोचित ग्रहण और परित्याग करके नारी जाति को भक्ति के क्षेत्र में अधिकार दिला कर समाज में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाया।

इसी प्रकार सीता को नारी धर्म का उपदेश देते हुए देवी अनसूया के मुख से जो नारी धर्म सम्बन्धी सूत्र वाक्य मुखरित हुए हैं—

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं।।
मध्यम परपति देखई कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।।
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।[५१]

और जिनके लिए मिश्रबन्धुओं ने कहा है कि—"इन्होंने स्त्रियों की जांच की कसौटी बड़ी कड़ी रखी थी इसीसे विदित होता है कि ये उनसे असन्तुष्ट थे।"[५२] इस प्रसंग में मुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इतना ही कहना है कि स्त्रियों की जाँच की यह कड़ी कसौटी तुलसी द्वारा निर्मित नहीं है, इसका मूल रूप अक्षरशः अनुवाद रूप में शिवपुराण (पार्वती खंड) में देखा जा सकता है।[५३] इसके साथ ही साथ अनसूया ने जो पति सेवा की महत्ता और नारी की सहज अपावनता सम्बन्धी सूत्र वाक्य कहे हैं,[५४] जिन्हें लेकर आलोचक तुलसी पर दोषारोपण करते हैं लगभग वे सभी संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद मात्र हैं।[५५] ये सभी स्थल काव्य परम्परा सम्मत होने के कारण अवसरानुकूल अनायास ही तुलसी में अवतरित हो गए हैं, परन्तु इनमें तुलसी की निष्ठा बस इतनी ही है कि वे चाहते हैं कि संसार में स्त्रियाँ पतिव्रता धर्म का पालन करें। इसे तो सभी मानेंगे कि स्वस्थ समाज का आधार पवित्र परिवार होता है, जिसकी धुरी परम पावन नारी ही है। यही नहीं, तुलसी ने तो एक पतिव्रत के साथ एक पत्नीव्रत की महत्ता पर भी अनेक स्थलों पर प्रकाश डाला है—

पारवती मन सरिस अचल धनु चालक
gkSjh ikgkj rsa ,d ukjh&oz ikydAA[५६]

साथ ही तुलसी ने अपने रामचरितमानस में जिस आदर्श समाज की कल्पना की है उसमें भी सभी पुरुषों को एक पत्नी-व्रती कहा है—

एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी।।[५७] इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसी जिस आदर्श समाज की स्थापना चाहते थे उसमें भावों की पवित्रता परम आवश्यक थी, जिसके लिए उन्होंने केवल असती स्त्रियों के लिए चिर परिचित नारी धर्म का निरूपण किया था। उनका यह लक्ष्य तब पूर्णतया परिलक्षित होता है जब उपदेश देने वाली अनसूया स्वयं ही कहती हैं—

सुन सीता तव नाम सुमिरि, नारी पतिव्रत करहि।
तोहि प्रान प्रिय राम कहिउं कथा संसार हित।।[५८]

अतः पतिव्रत धर्म की यह कथा संसार के कल्याण हेतु असती स्त्रियों के लिए ही है, अन्यथा सीता तो, जिन्हें यह धर्म उपदेश दिया गया था, स्वयं आदर्श रूप हैं। इसमें नारीमात्र के प्रति तुलसी का असन्तोष देखना कहाँ तक न्यायसंगत है इसे आलोचक स्वयं सोच सकते हैं।

ठीक इसीप्रकार शबरी का कथन—

अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महं मैं मति मंद अघारी।।[५९]

भी है, जिसके विषय में डॉ० नगेन्द्र और माताप्रसाद गुप्त का मत है कि तुलसी के नारी पात्र भी अपने विषय में ऐसी धारणा रखते हैं।[६०] सर्वप्रथम ध्यान देने की बात यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है कि उपर्युक्त कथन शूद्र जाति की भक्त स्त्री शवरी का भगवान के सम्मुख आर्त निवेदन है। भक्त तुलसी ने स्वयं को भी अनेकानेक स्थलों पर पापी, दुष्ट, अधम और महामूर्ख कहकर अपने पापों का उल्लेख किया है।[६१] साथ ही मानसकार ने अनन्त काव्य गुणों से परिपूरित रामचरितमानस की सृष्टि से पूर्व अपनी मति को अति नीच,[६२] लघु[६३] तथा मन्दबुद्धि को रंक[६४] कहते हुए घोषणा की है—

कवित विवेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउं लिखि कागद कोरे।।

रामचरितमानस —बालकाण्ड।। ८।। ६

और "भनिति मोरि सबगुन रहित"[६५] इन उक्तियों की वास्तविकता और सत्यता को सभी जानते हैं, कि ये अनन्य भक्त तुलसी की विनम्रता और दास्य भाव की भक्ति के उद्घोष के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। ठीक यही दास्य भाव की विनम्रता शबरी के उपर्युक्त कथन का कारण है।

इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि नारी की अधमता और अपावनता का उल्लेख संस्कृत धर्मग्रन्थों में अनेकानेक स्थलों पर किया जा चुका था।[६६] फलस्वरूप सामाजिक हीनता के कारण यह कुंठित नारी की वाणी भी हो सकती है, जो अवसर पाकर अभिव्यक्त हो गई है, परन्तु तुलसी या उनके राम की आस्था इस पर नहीं है, क्योंकि शबरी के उपरोक्त कथन के साथ ही साथ राम कहते हैं—

कहं रघुपति सुनु भामिनी बाता। मानउं एक भगति कर नाता।।

अतः तुलसी की दृष्टि में न तो शबरी और न सम्पूर्ण नारी जाति ही अधम है वरन् शबरी तो भगवान् राम के मुख से नवधा भक्ति का ज्ञान पाकर योगियों को भी दुर्लभ गति की अधिकारिणी बना दी गई है।[६७] तुलसी की अपनी उदार भावना तो यही है कि भक्ति के क्षेत्र में स्त्री हो या पुरुष, जड़ हो अथवा चेतन, सभी मोक्ष के अधिकारी तथा भगवान् राम को अत्यधिक प्रिय हैं।[६८]

इसके अतिरिक्त तुलसी पर दोषारोपण किया जाता है कि तुलसी ने पत्नी को अति तुच्छ माना तथा उसकी उपलब्धि अति सहज और सुलभ मानी है—

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलै न जगत सहोदर भ्राता।।[६९]

यह उक्ति भी आदिकवि वाल्मीकि की रामायण से अनुवादित है।[७०] पुनः शोक विह्वल राम की उक्ति है, जिसे गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए, फिर उनके युग में नारी सर्व सुलभ पदार्थ थी ही, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। अतः तुलसी साहित्यिक परम्परा और युग एवं समाज के सम्मिलित प्रभाव से दब गए प्रतीत होते हैं जिसके लिए वे क्षम्य ही माने जायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्य स्थलों पर भी जब कैकेयी के प्रसंग में—"सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगहु अगाध दुराऊ।।"[७१] तथा "विधिहुन न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी।।"[७२] की उद्‌भावना की गई है तब भी कोई नई बात नहीं है। नीतिकारो के—'स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्, देवो न जानति कुतो मनुष्यः' के अतिरिक्त ऋग्वेद तक में नारी के हृदय को सालावृको (भेड़ियो) के हृदय के समान बतलाते हुए उन पर चंचलता और पाषाणहृदयता के स्पष्ट आरोप लगाए गए हैं।[७३] महाकवि तुलसी ने तो उपर्युक्त पंक्तियाँ केवल कैकेयी के कुटिल हृदय की भर्त्सना के लिए परिस्थितिवश विभिन्न पात्रों के माध्यम से कही हैं—

इसके अतिरिक्त संस्कृत महाकवियों के कथन—

"आवर्तः संशयानामविनयम वनं पतनं साहसानां,
दोषाणां सन्निवानं कपटशतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्।।
दुर्ग्राह्यं यन्महद्‌भिर्नरवषभैः सर्वभायाकरण्ड्म।
स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतयुतं धर्मनाशाय सृष्ट्म"।।[७४]

की तुलना में तो तुलसी की उक्ति बहुत हल्की है जो प्रसंग पात्र और परिस्थिति की दृष्टि से विशिष्ट मनः स्थिति की अभिव्यक्ति मात्र है। यह परिस्थिति कुछ ऐसी ही है जैसे जब क्रुद्ध नारद भगवान् विष्णु को ईर्ष्यालु, कपटी, धोखेवाज, स्वार्थी, ठग और मनमानी करने वाला कहकर शाप देते हैं,[७५] तब निश्चय ही तुलसी का तात्पर्य यह नहीं है कि भगवान् विष्णु इन सब दुर्गुणों से युक्त हैं। यहाँ केवल रुष्ट नारद की मनः स्थिति की अभिव्यंजना हुई है अतः उपर्युक्त कथन भी सिद्धान्त रूप न होकर भरत और अयोध्यावासियों की मनः स्थिति की अभिव्यंजना मात्र है।

माताप्रसाद गुप्त प्रत्येक युग के कलाकारों को नारी चित्रण में उदार कहते हुए तुलसी को बेहद अनुदार बतलाते हैं और उनकी अनुदारता का कारण रहस्य के गर्भ में छिपा हुआ समझते हैं।[७६] परन्तु तुलसी नारी चित्रण में कहीं-कहीं यदि कुछ अनुदार प्रतीत होते भी हैं, तो यह कोई रहस्य नहीं है। ऐसे स्थलों पर स्पष्ट ही परम्परागत, साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक भावनाओं का प्रभाव देखा जा सकता है। रामबहोरी शुक्ल के मतानुसार तुलसी साहित्य में पुरातन विचारधारा के अनुकूल ही भाव विचार और सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं। अतः पाठकों को उन्हें गोस्वामी जी का व्यक्तिगत मत न मानकर, भारतीय परम्परानुकूल वेद शास्त्र का मत मानना चाहिए। इसी प्रकार डॉ० नगेन्द्र ने भी कहा है—"वास्तव में तुलसी की कई उक्तियाँ उनकी अपनी न होकर संस्कृत नीति वचनों का सीधा अनुवाद हैं—उस समय का वातावरण ही कुछ ऐसा था, संस्कृत के मध्यकालीन नीतिग्रन्थ,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्मृतियाँ, पुराण, संतवाणी यहाँ तक कि संस्कृत और हिन्दी के घोरतम शृंगारिक कवियों ने भी इस परम्परा का विचार अथवा अविचार पूर्वक पालन किया है।"[७७]

इसके अतिरिक्त डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल ने तो वाल्मीकि और तुलसी दोनों में ही नारी जाति के प्रति पुरुष जाति के प्राकृतिक एवं परम्परागत विचारों का प्रतिनिधित्व माना है। साथ ही उनका विचार है कि मध्ययुग के वातावरण के कारण तुलसी के साहित्य में तथा मध्ययुगीन साहित्य में ही नारी निन्दा का स्वर विशेष उग्र रहा है।[७८] लेकिन हमारा मत है कि तुलसी का स्वर न कहीं विशेष उग्र रहा है और न ही वे नारी के प्रति अधिक अनुदार हैं। तुलसी में कुछ अनुदारता परिलक्षित होती भी है तो उसका कारण डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल के अनुसार यह माना जा सकता है कि—"रामकथा की ही चिर प्रचलित परम्परा में नारी को विशेष सम्माननीय स्थान नहीं मिला है"[७९] परन्तु उसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि तुलसी ने अपने साहित्य में नारी को सम्माननीय स्थान नहीं दिया है। यदि इन गिने चुने कुछ नारी निन्दक स्थलों को छोड़ दिया जाय (जो अन्य धर्मशास्त्रकारों की तुलना में नगण्य ही हैं) तो तुलसी साहित्य में नारी की स्थिति वैदिक युगीन संस्कृत के उच्चतम धरातल पर अवस्थित देखी जा सकती है।

वैदिक काल की भाँति ही तुलसी ने राजा दशरथ को पुत्र की कामना करते हुए दिखलाया है[८०] परन्तु वेदों की भाँति पुत्री जन्म को उन्होंने उपेक्षा अथवा कष्ट का कारण नहीं माना[८१] अपितु कन्याओं (सीता और पार्वती) का जन्म परिवार के लिए मंगलमय ऋद्धि-सिद्धि तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य का दाता माना है।[८२] इस दृष्टि से नारी की स्थिति वैदिक युगीन स्थिति से भी श्रेष्ठ मानी जा सकती है। ऋग्वैदिक माता के समान अपनी तेजस्विनी कन्या के लिए राजा जनक भी गर्व की अनुभूति करते हुए देखे जा सकते हैं।[८३] वैदिक काल की भाँति ही तुलसी को भी कन्याओं के अल्पायु विवाह वांछनीय नहीं हैं, तथा माता-पिता योग्य वरों को ही अपनी कन्या समर्पित करने का प्रण करते हुए देखे जा सकते हैं।[८४] यही नहीं वैदिक काल में समन और मेलों में कन्या मनवांछित वर खोजने का प्रयास करती है तो तुलसी साहित्य में कन्या (पार्वती) अप्राप्य और दुर्लभ पति (शिव) को भी अपनी तपस्या और लगन के बल पर प्राप्त करती हुई देखी जा सकती है।

तुलसी के प्रेम, सौहार्द और एकनिष्ठता से परिपूरित दांपत्य भाव की अभिव्यंजना में भी वैदिक युगीन संस्कृति की झलक है। ऋग्वेद जब पति-पत्नी के एकत्व की घोषणा करता हुआ दोनों के एक मन प्राण होने की बात कहता है—"तू ऋक है मैं साम हूँ, मैं द्यौं हूँ, तू पृथ्वी है, मैं मन हूँ तू वाणी है।"[८५] तब तुलसी भी—"गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।"[८६] कहकर पति पत्नी की अभिन्नता घोषित करते हैं। इस दांपत्य प्रेम के महत्त्व को समझने वाला कवि जब—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तत्व प्रेम कर मम अरुतोरा। जानत प्रिया एक मनु मोरा।।

मानस —सुन्दर काण्ड।। १४/३।।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहिं।।

वही।। १४/४।।

के भाव भीने आदर्श दांपत्य की सुन्दर उद्भावना करता है तब उसका सरस मन प्रसन्न राघव (नाटक) के—

जात्यकं शशधरमुखि प्रेम तत्वं मनो मे,
त्वामेवैतत चिरमनुगतं तत् प्रिये किं करोमि।।

में रसार्द्र होता हुआ दिखलाई देता है। साथ ही दृढ़ और तिल मात्र भी न डिगने वाले शिव धनुष का उपमान-सती नारी का दृढ़ और अडिग हृदय भी (जो कामी के वचनों से तिल मात्र भी विचलित नहीं होता) इसी नाटक से चुन लेता है।[८७]

माता का महत्त्व भी तुलसी ने वैदिक काल से चली आती हुई मातृ महिमा की परम्परा से ही लिया है। मानस में माता को पिता से श्रेष्ठ माना गया है और उसी की आज्ञा पालन का स्पष्ट आदेश दिया गया है।[८८] यद्यपि वैदिक युग की माता, पिता द्वारा त्यागे पुत्र को क्षमा करने का अधिकार नहीं रखती थी।[८९] तथापि राम को वनवास दिए जाने पर कौशल्या अधिकार पूर्ण स्वर में कहती है कि यदि यह आज्ञा तुम्हारे पिता की है तो माता को बड़ी जानकर तुम वन मत जाओ।[९०]

इस प्रकार तुलसी की नारी पुरातन परम्परा की श्रेष्ठतम अवस्था, वैदिक युग की नारी के समकक्ष और कहीं-कहीं उससे श्रेष्ठ भी अंकित की गई है। स्पष्ट है कि तुलसी प्राचीनतम साहित्य में चित्रित नारी के अच्छे-बुरे सभी रूपों से प्रभावित होते हुए भी अपनी विवेक बुद्धि से परित्याग और ग्रहण की मौलिकता को बनाए रखकर नारी के जिस मंजुल, मर्यादित एवं लोक कल्याणकारी स्वरूप की अभिव्यंजना कर सके हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि तुलसी साहित्य पर संस्कृत साहित्य के सैकड़ों ग्रन्थों की छाप देखी जा सकती है। इसका कारण भी पूर्णतः स्पष्ट है कि अद्वितीय धारणा शक्ति और अपूर्व मेधा के कारण तुलसी को अनेक संस्कृत सूत्र कंठाग्र थे जो प्रसंगानुकूल मुखरित हो गए हैं।[९१] ऐसी स्थिति में नारी निन्दक वचनों का अवतरण स्वाभाविक बात ही है, अस्वाभाविकता तो तब होती जब उस युग में जब कि नारी की अवस्था हीनतम थी, संस्कृत, पाली, प्राकृत अपभ्रंश, जैन तथा बौद्ध साहित्य में नारी के प्रति विष उगला जा चुका था और सूफी तथा कृष्ण काव्य भी नारी निन्दा में पीछे नहीं थे तथा संत कवि तो नारी को एकदम ही भर्त्सनीय एवं त्याज्य घोषित कर रहे थे, तब तुलसी अपने विरक्त जीवन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और प्रमुखतः भक्त एवं संत व्यक्तित्व को लेकर भी आधुनिक काल के "नारी तुम केवल श्रद्धा हो" के स्वर में स्वर मिलाते,। तुलसी से ऐसी अपेक्षा करना उनके साथ अन्याय करना है, क्योंकि नारी के अनन्त गुणों का गान करने वाले नव युग के कवि प्रसाद और पंत भी नारी निन्दा के अपराध से वंचित न रह सके, फिर तुलसी ने तो तत्कालीन वातावरण और परिस्थितियों में भी जिस नीर-क्षीर विवेक से काम लिया वही सराहनीय है। उनके परित्याग और ग्रहण में जिस मौलिकता के दर्शन होते हैं, वह अपने में अनूठी है। तुलसी साहित्य में, संस्कृत ग्रन्थों से चयनित सामग्री उनकी प्रबन्धपटुता, प्रसंगों, संदर्भों, पात्रों और परिस्थितियों के मध्य इस सुन्दरता से अवतरित की गई है कि उसके अनर्थ करना चाहें तभी वह खटकती है, अन्यथा यदि तुलसी के अन्तर्मन की भावना को समझकर उसकी व्याख्या की जाए तो वह सार्थक ही है।

(ख) पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य की परम्परा का प्रभाव—सामान्यतः पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा साहित्य के अन्तर्गत बौद्ध, जैन, नाथ तथा सिद्ध साहित्य की परम्परा को रखा जा सकता है। पाली में सम्पूर्ण बौद्ध धर्म की जातक गाथाएँ, सूक्त तथा बुद्ध देव के अमूल्य विचार हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार—"बौद्ध धर्म आश्चर्यजनक रूप से उद्‌भूत हुआ। इसकी धारा का प्रभाव अधिक से अधिक तीव्र तथा वेगमय होकर विश्व व्यापी बना परन्तु अति अल्प समय में ही खंड-खंड होकर बिखर गया और आगे चलकर तंत्र मंत्रों में ऐसा खोया कि इसके वास्तविक रूप को भी खोजना कठिन पड़ गया।[६२] अतः तुलसी की नारी भावना पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव खोजना निरर्थक-सा ही है।

यद्यपि भगवान् बुद्ध ने स्त्रियों को भिक्षुणी बनाकर उन्हें धर्म का अधिकार दिया था, तथापि जातक कथाओं में नारी के जिस वीभत्स रूप का दिग्दर्शन होता है वह अत्यधिक घिनौना है। अतः तुलसी पर इसका प्रभाव तो क्या इन विचारों की छाया भी परिलक्षित नहीं होती। कहाँ तो पुत्री, पत्नी और मातृ रूप में अपने सम्पूर्ण गौरव, गरिमा और महिमामय पथ पर अधिष्ठित तुलसी की नारी और कहाँ दीन, हीन तुच्छ और गर्हित अवस्था में पड़ी जातक कथाओं में वर्णित नारी।

इसीप्रकार जैन साहित्य की भाव धारा से भी तुलसी की विचारधारा का कोई नाता दिखलाई नहीं पड़ता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विमलसूरिकृत पउमचरियु (पदम् चरित) नामक प्राकृत काव्य का उल्लेख किया है, जिसका रविषेण द्वारा संस्कृत में रूपान्तर भी किया गया है। इसके अनुसार राम की कथा हिन्दुओं की रामायण से बहुत भिन्न है तथा इसमें वाल्मीकि को मिथ्यावादी कहा गया है।[६३] ऐसी स्थिति में तुलसी पर इनके प्रभाव को खोजना व्यर्थ सा ही है। इसके अतिरिक्त दिगम्बराचार्य अमितगति के सुभाषितरत्न 'योग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सार' धर्म-परीक्षा आदि ग्रन्थों का उल्लेख भी द्विवेदी जी ने किया है, जिनका प्रिय विषय वैराग्य, स्त्री निन्दा, ब्राह्मण-निन्दा, त्याग इत्यादि है।[६४] अतः प्राकृत और अपभ्रंश का यदि कोई सम्बन्ध है भी तो वह प्रतिक्रियात्मक विरोध का ही हो सकता है। जैन धर्म और वैष्णव धर्म के मूल सिद्धान्त ही एक दूसरे के विपरीत पड़ते हैं। जैन मत के अनुसार मोक्ष का साधन एक मात्र संन्यास है। उनके विचार में पाप करने से जन्म और अधिक पाप करने से विवाह एवं गृहस्थ धारण करना पड़ता है, जो स्वयं भोगमय होने से पाप ही है।[६५] स्त्रियों के लिए तो इनके मत में मोक्ष है ही नहीं इसके लिए उन्हें पुरुष होकर जन्म लेना आवश्यक है।[६६] इसके अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन दोनों मतावलम्बी, वर्णाश्रम धर्म तथा ब्राह्मणों के विरोधी थे। जब कि तुलसी की विचारधारा इनके विल्कुल ही विपरीत है। तुलसी भक्ति के लिए घर और वन के बीच अर्थात् मध्यम मार्ग को चुनते हैं।[६७]

नारी भावना के सम्बन्ध में बौद्धों की भाँति ही जैन साहित्य में भी स्त्रियों की कोई प्रतिष्ठा न थी। जैन आचरांग सूत्र के अनुसार अज्ञान, दुःख, मृत्यु और नरक की द्वार स्त्रियों को सुख का साधन समझना पुरुषों की मूर्खता है किन्तु तुलसी ने विन्ध्याचल के वैरागी ब्रह्मचारियों को भी नारी के बिना दुःखी होते हुए तथा (अहिल्या उद्धार के प्रसंग में राम के वन में आने पर) प्रत्येक शिला के चन्द्रमुखी स्त्रियों के रूप में परिणत हो जाने की कल्पना से मुनियों को सुख से अभिभूत होते दिखलाया है।[६८] तुलसी की नारी भावना पर इसका भी कोई प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित नहीं होता।

अपभ्रंश भाषा साहित्य के अन्तर्गत सिद्धों, नाथों और योगियों के साहित्य तथा वीरगाथा काव्य को भी लिया जा सकता है। इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव इस रूप में देखा जा सकता है कि इन्हीं सिद्धों और हठयोगियों की विचारधारा को कबीर आदि संत कवियों ने ग्रहण किया था। संत साधकों ने जिस सहज धर्म की स्थापना करके गृहस्थों के लिए भी सरल मार्ग का अन्वेषण किया उसकी आधारशिला गोरखनाथ की वाणी में ही प्राप्त हो जाती है, जिनमें गृहस्थ के लिए भी अनुकरणीय सहज जीवन का आदर्श प्रस्तुत करके शीलवान् गृही को भी परम पवित्र उद्घोषित किया था[६९] और कबीर आदि संतों की इन्हीं भावनाओं का प्रभाव आंशिक रूप से तुलसी पर भी पड़ा था। अतः कहा जा सकता है कि तुलसी अप्रत्यक्ष रूप से गोरखनाथ से प्रभावित थे। लेकिन जहाँ तक तुलसी की नारी भावना पर उनके प्रत्यक्ष प्रभाव का प्रश्न है वह कहीं लक्षित नहीं होता। नाथ पंथियों के प्रमुख आचार्य गुरु गोरखनाथ विशुद्ध ब्रह्मचारी को ही इस मार्ग का पथिक स्वीकार करते हैं जिससे स्पष्ट ही गृहस्थ के प्रति अनादर का स्वर ध्वनित होता है,[७०] जो तुलसी के सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ता है। अतः तुलसी की नारी भावना इनसे अप्रभावित ही रही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी पर इनके प्रत्यक्ष प्रभाव न होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय में अधिकतर निम्न वर्ग के (शूद्र, मछुआरे, चमार, धोबी, डोम, कहार आदि) व्यक्ति आए जो अशिक्षित थे और जिन्हें किसी प्रकार का शास्त्र ज्ञान भी नहीं था।[१०१] अतः सम्भव है शास्त्रज्ञ तुलसी ने इनकी ओर कोई ध्यान ही न दिया हो।

वीर काव्य की नारी के दो प्रमुख रूप हैं—उसका शौर्य से परिपूरित वीर-रूप और और दूसरा शृंगारिक रूप। तुलसी साहित्य में ये दोनों ही रूप अवांछित रहे हैं। उस पूर्ण पराभव और राजनीतिक पतन के समय जबकि कविगण घोर शृंगारिक रचनाओं में तल्लीन थे और समाज विलासमय जीवन व्यतीत कर रहा था, नारी तो क्या पुरुष के वीर रूप का दिग्दर्शन भी उसका मखौल ही प्रतीत होता। अतः इस युग की नारी की विशेषताएँ उसका सौकुमार्य एवं सौन्दर्य ही हो सकते थे, वीरता नहीं। अतः 'भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु' के स्थान पर स्त्रियाँ अपने पतियों को युद्ध विरत करके अपने सुख सुहाग की रक्षा के हेतु प्रार्थना करती हुई दिखलाई देती हैं। तारा और मंदोदरी ऐसे ही चरित्र हैं जो पति को युद्ध विरत कर ईश्वरोन्मुख होने का पाठ पढ़ाती हुई दिखलाई पड़ती हैं।[१०२] इसी प्रकार माताएँ पुत्रों की वीरता पर गर्व के स्थान पर आश्चर्य चकित और आशंकित होती हुई भी अधिक दिखलाई पड़ती हैं।[१०३] इसी प्रकार अपनी मर्यादा और सतीत्व रक्षा के लिए मरने मारने को तत्पर वीर क्षत्राणी के स्थान पर असमर्थ विवश और सहायता के लिए पराश्रित नारी का चित्रण ही सम्भव हो सका है। इसका कारण सम्भवतः रामकथा की परम्परा का निर्वाह और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव भी रहा होगा।

वीर काव्य की नारी की मर्यादा और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए दृढ़ पतिव्रत को धारण कर प्रज्वलित अग्नि शिखाओं में जल मरने वाले प्रखर रूप ने तुलसी को अवश्य आकर्षित किया होगा, जिसमें से पतिव्रत धर्म की दृढ़ता ही तुलसी ने अंगीकार की है। सती प्रथा को वे अपने साहित्य में प्रश्रय नहीं दे पाए हैं। तारा और मन्दोदरी अपने-अपने पतियों की मृत्यु पर सती नहीं होतीं, दोनों ही वैदिककालीन संस्कृति के अनुरूप अपने देवरों के साथ सुखपूर्वक रहने लगती हैं। यदि इसे असुर संस्कृति कहकर छोड़ भी दिया जाये तब भी राजा दशरथ की मृत्यु पर उसकी पत्नियाँ सती होने की अभिलाषा तो प्रकट करती हैं, परन्तु भरत के रोकने पर रुक जाती हैं। सम्भवतः इसका कारण वाल्मीकि रामायण का वही कथानक हो जिसे तुलसी ने ज्यों-का-त्यों अपनाया है। अतः वीर काव्य की नारी का वीर रूप तुलसी की नारी भावना को प्रभावित नहीं करता।

इसीप्रकार वीर काव्य की नारी का शृंगारिक रूप भी तुलसी के अति मर्यादावादी सिद्धान्तों तथा आदर्श रामकथा की परिमित सीमाओं के कारण ग्रहण नहीं किया गया है। जब-जब भी तुलसी की लेखनी सीता, पार्वती अथवा अन्य नारी के शृंगारिक रूप का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चित्रण करने को उठती है तभी जैसे वे उनके जगत् जननी रूप का स्मरण कर उसे वर्जित कर देते हैं।

इसी प्रकार वीर काव्य की नारी के शृंगारिक रूप का भी कोई स्पष्ट प्रभाव तुलसी पर नहीं है केवल नारी के मर्यादित सौन्दर्य का चित्रण तथा उसकी सुकुमारता और चित्र में चित्रित बन्दर को देखकर भयभीत हो जाने वाले स्वभाव का दिग्दर्शन मात्र ही हो सका है।[१०४] अतः वीर काव्य की नारी के वीर रूप तथा शृंगारिक रूप दोनों का ही कोई प्रत्यक्ष प्रभाव तुलसी की नारी भावना पर परिलक्षित नहीं होता।

(ग) **पूर्वतर हिन्दी साहित्य की परम्परा का प्रभाव**—हिन्दी साहित्य की भाषा, अपभ्रंश के प्रभाव से कब विमुक्त हुई, इसका कोई निश्चित समय निर्धारित नहीं किया जा सकता। नाथूराम प्रेमी का कथन है कि जैन साहित्य में दिगम्बर सम्प्रदाय की रचना हिन्दी में हुई थी।[१०५] डॉ० रामकुमार वर्मा का विचार है कि गौतम बुद्ध की भाँति (जैसे उन्होंने अपने धर्म प्रचारार्थ संस्कृत के स्थान पर जनसाधारण की भाषा पाली को अपनाया) गोरखनाथ ने भी अपने नाथ पन्थ के प्रचार के लिए जन समुदाय की भाषा हिन्दी को अपनाया होगा।[१०६] जो भी हो तुलसी की नारी भावना पर सिद्ध एवं नाथ सम्प्रदाय के साहित्य का प्रभाव देखा जा चुका है। अतः यहाँ निर्गुण भक्ति की, संत एवं सूफ़ी प्रेम काव्य की परम्परा के प्रभाव का विश्लेषण ही अभीष्ट है।

(i) **संत काव्य की परम्परा का प्रभाव**—तुलसी अपने युग के सबसे बड़े लोकनायक थे, जिनकी सफलता का आधार समन्वयात्मक प्रवृत्ति है। सिद्धान्त रूप में सगुण और निर्गुण भक्ति दो पृथक् मार्ग हैं अतः निर्गुण संतों की विचारधारा तुलसी से सर्वथा भिन्न ही है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का विचार है कि निर्गुणियों पर वे मन ही मन झुंझलाए हुए थे, परन्तु उनका पथ भी श्रुति सम्मत था अतः तुलसी उनका खुलकर विरोध भी नहीं कर सकते थे।[१०७] इसलिए अपनी समन्वयकारी प्रवृत्ति के अनुसार जो कुछ भी वे उनसे ले सकते थे उन्होंने ग्रहण किया और अपने धर्म से सम्बद्ध कर लिया। संत कवि राम नाम की महत्ता को मानते थे, यद्यपि उनके राम निराकार ही थे। तुलसी ने इसे आत्मसात् करने में कोई संकोच नहीं किया और 'ब्रह्म राम ते नाम बड़' कहकर रूप की अपेक्षा नाम को महत्ता दी, परन्तु फिर भी प्रसंगानुकूल सगुण रूप और सगुण भक्ति को ही महत्त्वपूर्ण बताते रहे।

इसी प्रकार जिस शुद्धाचरण की नींव पर वाह्याडम्बरों से रहित चारित्रिक दृढ़ता, मानसिक शुचिता एवम् आत्मिक पावनता से परिपूरित संत काव्य का भवन निर्मित हुआ, इसी के अनुरूप तुलसी ने छल कपटरहित शील और संयम से युक्त शुद्धाचरण का निरूपण नवधा भक्ति के अन्तर्गत किया है।[१०८] संत कवियों ने विरक्त धर्म और गृहस्थ धर्म को अन्योन्याश्रित तथा एक दूसरे का रक्षक कहकर दोनों को समान धरातल पर रखते हुए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी[१०६] वैरागी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है जिससे गृही के अनादर का स्वर ध्वनित होता है।[११०] तुलसी ने दोनों को जोड़कर एक मध्यम मार्ग घर और वन के बीच राम-प्रेम पुर की स्थापना की।[१११]

तुलसी की नारी भावना पर भी संत परम्परा का कुछ इसीप्रकार का अप्रत्यक्ष प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। जिस प्रकार संत काव्य में भक्त महिलाओं को सम्मान प्रदान करके संत सम्प्रदाय में दीक्षा का अधिकार मिला उसी प्रकार तुलसी साहित्य में भी शूद्र जाति की (अधम) स्त्रियों को भी भक्ति के नाते मुनियों को दुर्लभ परम गति की अधिकारिणी घोषित कर दिया गया है।

नारी के निन्दनीय और प्रशंसनीय दोनों रूप ही प्राचीनतम साहित्य (वेदों) से परम्परागत रूप से चले आ रहे हैं। संत भक्त क्योंकि निवृत्ति पथ की ओर उन्मुख थे, अतः उनके त्याग और तपस्या मार्ग की अवरोधक नारी, उनकी साधना खंडित करने वाली होने के कारण सर्वत्र निन्दनीय, उपेक्षणीय और त्याज्य ही रही है।[११२] तुलसी ने भी चली आती हुई इस परिपाटी के अनुसार ही बार-बार 'कहं वेद पुराण श्रुति संता' और 'सत्य कवि कहहिं' की दुहाई देते हुए भक्ति पथ की अवरोधक नारी को यौवन रूपी ज्वर में कुपथ्य के समान सन्निपात (कामोन्माद) का कारण समझा।[११३] यद्यपि नारी निन्दा का जैसा तीव्र और उग्र स्वर संत कवियों की वाणी में उद्घोषित हुआ है, वैसा मर्यादाहीन और असंयत स्वर तुलसी की समन्वयात्मक तथा शील निरूपक वाणी में खोजना असंगत सा ही है तथापि नारी के असत् रूप की निन्दा तुलसी में भी यत्र-तत्र उपलब्ध है।

नारी संसर्ग से बचे रहने का उपदेश देते हुए जब संत कवि नारी शरीर को दीपक और उसके रूप को प्रज्वलित शिखा कहकर नारी सामीप्य का निषेध करते हैं, क्योंकि वह सबका नाश करने वाली है, जिसमें पड़कर कोई निकल नहीं सकता,[११४] तब अनायास ही तुलसी के दोहे—

"दीप सिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहिं सदा सत संग।।"

दोहावली ।। २६६।।

पर ध्यान चला जाता है, परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि जहाँ संत दीपक रूपी स्त्री का दोष प्रकट कर रहे हैं, वहाँ तुलसी केवल अपने मन को सचेत करते हुए काम मद त्याग तथा सत्संग और रामभक्ति की ओर उन्मुख करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। संत कबीर तो नारी को ऐसी अग्नि बताते हैं, जिसमें उत्तम लोहा भी जल कर कोयला हो जाता है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"सुन्दरि तै सूली भली, बिरला बंचे कोई।
लोह निहाला अग्नि में, जलि बलि कोइला होई।।"[११५]

कबीर दास

स्पष्ट है उपर्युक्त दोहे में पुरुष की दुर्बलता के स्थान पर नारी निन्दा का स्वर ही प्रबल है।

संत कवि कबीर जब विषाक्त वाणी में स्वर्ण निर्मित जननी के समीप भी बैठने का निषेध करते हैं,[११६] और पराई-तो-पराई अपनी पत्नी के उपभोग को भी नरक का कारण मान, आग-आग कहकर नारी मात्र की परिसीमाओं से निकल भागने का स्पष्ट आदेश देते हुए नारी को नितान्त परित्यक्त मानते हैं,[११७] तब मर्यादावादी तुलसी ऐसे थोथे और असम्भावित सिद्धान्तों के स्थान पर केवल परस्त्री-गमन का निषेध करते हुए 'जननी सम जानहु परनारी' कहकर जननीत्व की पावनता का निरूपण करते हैं। साथ ही बहिन, पुत्र-वधू और अनुज-वधू को कन्या के समान समझने का आदेश देकर कन्या के साथ-साथ उपर्युक्त सभी सम्बन्धों की शुचिता पर प्रकाश डालते हैं। यही नहीं उनको कुदृष्टि से देखने वाले के लिए कठोर दंड का विधान निरूपित करते हैं—

अनुज वधू, भगिनी, सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहि कुदृष्टि विलोकई जोई। ताहि बंधे कछु पाप न होई।।[११८]

वास्तव में संत कवियों ने काम की प्रतीक नारी की, जो उनके आध्यात्मिक मार्ग की बाधा है, अत्यधिक कटु आलोचना की है, जिसके अनुसार नारी डाकिनी के समान सबको खा जाने वाली,[११९] ज्ञानी, अज्ञानी सबको विमोहित करने वाली,[१२०] नागिन के समान सबको डस लेने वाली,[१२१] संसार को आबद्ध करने के लिए फन्दे लिए हुए पापिणी रूपा,[१२२] और सत्पथ से हटाकर कुमार्ग पर अग्रसर कराने वाली तथा प्रभु से विमुख कराने वाली है।[१२३]

महाकवि तुलसी ने भी यद्यपि अविद्या माया रूपी नारी के अवगुणों का बखान किया है,[१२४] प्रमदा नारी उनके द्वारा भी अवगुणों की मूल और शूल प्रद कही गई है,[१२५] तथापि ध्यान देने की बात यह है कि नारी का यह रूप केवल संतों और मुनियों के लिए प्रस्तुत किया गया है, जो गृहस्थ को त्याग भक्ति का मार्ग अपना चुके हैं। अन्यथा नारी का सत् स्वरूप सर्वत्र ही वन्दनीय और सम्माननीय है।

संत कवियों ने भी संसार में माया के दो रूपों की उद्भावना की है, एक सत्य और दूसरी मिथ्या।[१२६] सत्य माया भक्तों की सहायक है,[१२७] जिसे कबीर ने त्रिगुणात्मक कहा है, जो संसार का जन्म, पालन और संहार करने वाली है।[१२८] तुलसी में भी विद्या माया का यही रूप अंकित किया गया है।[१२९] परन्तु संतों ने पतिव्रता नारी के जिस सत् स्वरूप का दिग्दर्शन कराया है, वह केवल भक्त को पतिव्रता का प्रतीक मानकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भगवान् के प्रति अपनी एकनिष्ठ भक्ति की अभिव्यक्ति के रूप में ही है। अतः इसे शुद्ध रूप में नारी मात्र के सत् स्वरूप का अंकन नहीं कहा जा सकता। संत काव्य में नारी को नारी मानकर जहाँ चित्रित किया गया है, वहाँ अधिकतर उसका मिथ्या रूप ही प्रमुख है, जो अत्यधिक भर्त्सनीय और निन्दनीय है। तुलसी ने नारी के असत् रूप की ही निन्दा की है, अथवा संतों या भक्तों के मार्ग को अवरुद्ध करने वाली माया रूपी नारी को उनके लिए त्याज्य कहा है। इसके अतिरिक्त संतों और तुलसी में जो समता कही जा सकती है, वह यह है कि दोनों ने ही कनक और कामिनी को संसार का सबसे बड़ा आकर्षण और आसक्ति का साधन माना है। इनसे अप्रभावित व्यक्ति को श्रेष्ठ मानते हुए कबीर स्वयं को उसका दास स्वीकार करते हैं—

एक कनक अरु कामिनी जग में दोई फंदा।
इनपै जो न बंधावई ताका मैं बंदा।।

संत सुधासार, पृ० ७५

और तुलसी एक पग और आगे बढ़कर ऐसे व्यक्ति को ब्रह्म तुल्य ही मानते हैं—

कंचन कांचहि सम गनै कामिनी काठ पषान।
तुलसी ऐसे संत जन पृथ्वी ब्रह्म समान।।

वैराग्य संदीपनी।। २७।।

लेकिन जब तुलसी—"बिरले-बिरले पाइए माया त्यागी संत। तुलसी कामी कुटिल कलि केकी काक अनन्त।।" कहकर संतों के महत्त्व का संकेत देते हैं तो कबीर—

नारी कुंड नरक का, बिरला थामै बाग।
कोई साधू जन ऊबरै, सब जग मूवा लाग।।

में साधु महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए भी नारी की भर्त्सना करने से नहीं चूकते।

इस प्रकार तुलसी और संत काव्य में कहीं-कहीं समता होते हुए भी एक सूक्ष्म विषमता है जो दोनों के दृष्टिकोणों में स्पष्ट विभेद उत्पन्न कर देती है, जिससे तुलसी पर संत काव्य के किसी प्रमुख प्रभाव का परिलक्षण नहीं किया जा सकता।

(ii) सूफी काव्य की परम्परा का प्रभाव—सूफी काव्य वास्तव में प्रेम काव्य है, जो मुसलमान कवियों के सौजन्य का परिचायक है। जब तलवार की धार पर इस्लाम धर्म के प्रचार का युग समाप्त हो गया और हिन्दू धर्म के प्रति उदारता का भाव प्रदर्शित करने वाले मुसलमान शासक हिन्दुओं के धार्मिक आदर्शों को भी सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देखने लगे[३३०] तब प्रेम काव्य की रचनाएँ, हिन्दुओं की आकर्षक प्रेम कथाओं के माध्यम से सूफी सिद्धान्तों का निरूपण करने लगीं। सूफी प्रेम कथाओं में अत्यधिक लौकिकता होते हुए भी किसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकार की उपदेशात्मकता परिलक्षित नहीं होती, केवल कहानी के अन्त में कथा के अंगों और पात्रों को सूफी सिद्धान्तों पर घटित कर देने से समस्त कथा में एक आध्यात्मिक अभिव्यंजना निहित हो जाती है।[१३१] इस प्रकार के काव्य हिन्दू एवं मुसलिम दोनों संस्कृतियों के सम्मिलन स्थल हैं, जहाँ सूफी सिद्धान्तों के प्रचार के साथ-ही-साथ हिन्दुओं की धार्मिक मान्यताओं, हिन्दू जीवन की रूढ़ धर्म परम्पराओं तथा उनके देवी-देवताओं के प्रति भी सम्मान सूचक शब्दावलियाँ प्रस्तुत करके उनको भी आदर से देखा गया है।[१३२] इनके साथ ही साथ अन्य मुसलमान तथा हिन्दू कवियों द्वारा भी सिद्धान्त विहीन केवल कौतूहल प्रधान, प्रेम कथाएँ लिखी गईं, जिनका लक्ष्य मनोरंजन मात्र था। इनके चरित्र नायक ऐतिहासिक या कल्पित व्यक्ति हुआ करते थे। सम्भवतः इसी कारण रामोपासक मर्यादावादी तुलसी ऐसी कथाओं के लिए जिनमें संसारी मनुष्यों का गुणगान हो, वाणी का प्रयोग सरस्वती के क्षोभ और ग्लानि का हेतु समझते हैं।[१३३] तुलसी के विचार से राम नाम विहीन अनूठी व सुन्दर कविता भी सब आभूषणों से विभूषित उस सुन्दर चन्द्रमुखी स्त्री के समान अशोभनीय है, जो वस्त्रहीन हो।[१३४]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि तुलसी से पूर्व सूफी कवियों ने कथानक काव्यों के लिए दोहा चौपाइयों की शैली को अपनाया था। साथ ही संभव है कि संत कवियों में से किसी ने कुछ पौराणिक ढंग से उपाख्यान भी रचे हों, जिन्हें देखकर तुलसी को खेद हुआ था कि—

साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहि अधम कविं निंदहि वेद पुरान।।

आचार्य द्विवेदी ने सम्भावना व्यक्त की है कि 'कहनी' प्रेमाख्यानक काव्य है या विद्यापति की 'कीर्तिलता' के समान प्राकृत जन गुनगान मूलक 'पुष्णु कहाणी' है।"[१३५] इसप्रकार देखा जा सकता है कि जिस काव्य को तुलसी मूल रूप में ही हेय और तुच्छ समझते हैं तथा सिद्धान्त रूप में भी जो तुलसी की विचारधारा से मेल नहीं खाते, तुलसी साहित्य को प्रभावित कैसे कर सकते हैं। फिर सूफी प्रेम काव्य हिन्दी साहित्य की एक प्रमुख शाखा है जिसका महत्त्व अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। सम्भव है परोक्ष रूप में उसका कुछ प्रभाव तुलसी साहित्य पर परिलक्षित हो अथवा तुलसी की नारी भावना के विश्लेषण में ही सहायक हो। अतः सूफी प्रेमाख्यान काव्य में नारी भावना का विश्लेषण अनुचित नहीं है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने प्रेम कथाओं पर आश्रित सूफी काव्य को इन श्रेणियों में विभक्त किया है—प्रथम आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ लिखे गए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

काव्य, द्वितीय विशुद्ध लौकिक प्रेम काव्य तथा तृतीय अर्द्ध ऐतिहासिक प्रेम कथाएँ।[१३६] इसके अनुरूप ही नारी चित्रण भी तीन रूपों में देखा जा सकता है। प्रथम परम शक्ति की प्रतीक अलौकिक एवं दिव्य रूप में प्रतिष्ठित नारी का चित्रण जो लौकिक प्रेम कथाओं के बीच आध्यात्मिक विचार की अभिव्यक्ति का साधन है।[१३७] द्वितीय में साधारण लौकिक नायिकाओं का चित्रण है, जिन्हें आचार्य हजारीप्रसाद ने सस्ते ढंग के प्रेम सम्बन्धी उपन्यासों के समान कहा है।[१३८] तीसरा इतिहास सम्मत व्यक्तियों से सम्बद्ध परिचित नायिकाएँ—जैसे 'ढोला मारू' की कहानी में राजा पिंगल की कन्या मारवणी, ये भी साधारण रूप में कुछ श्रेष्ठ प्रेम कथाएँ हैं।

सूफी संतों ने अपने हृदय की उत्कट प्रेमाभिव्यक्ति दांपत्य भाव के प्रतीक द्वारा की है। ऐसा संतों ने भी किया था, परन्तु अन्तर यह है कि संतों ने अपने को राम की बहुरिया मानकर पतिव्रता के प्रतीक द्वारा परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ भक्ति की अभिव्यंजना की और सूफियों ने परमात्मा को स्त्री मानकर तथा आत्मा को प्रेमी या पुरुष मानते हुए उपासना की, क्योंकि इब्न अरबी में ईश्वर को स्त्री मानकर इबादत करना ही वांछित है।[१३९] अतः नारी स्नेह एवम् उपासना की वस्तु बन गई फिर भी उसका लौकिक रूप संतों की भाँति ही निन्दनीय रहा है। अतः सूफी काव्य की नारी भावना को समझने के लिए उसके अलौकिक एवं लौकिक स्वरूपों की पृथक्-पृथक् विवेचना ही उपयुक्त है।

अपने अलौकिक रूप में नारी परमात्मा का प्रतीक है, जो समस्त संसार को आकर्षित करने वाली कही गई है। उसमान की चित्रावली के अलौकिक और तेजस्वी स्वरूप के सम्मुख देवगण भी नत मस्तक हैं। देवगण सदा उस तेज पुंज की वंदना करने को उत्कंठित रहते हैं।[१४०] तुलसी की सीता का पारलौकिक स्वरूप भी ऐसा ही प्रतीत होता है। परम शक्ति के प्रतीक के रूप में वह भी ब्रह्मादि देवताओं द्वारा वंदिता है,[१४१] जिसके कृपा कटाक्ष की अभिलाषा समस्त देवतागण करते हैं।[१४२] जिस प्रकार सूफी कवियों ने सम्पूर्ण सृष्टि में उसी परम शक्ति के अस्तित्व का परिलक्षण किया है[१४३] उसी प्रकार तुलसी ने भी सारे संसार को सिया-राममय ही जाना है,[१४४] जिस प्रकार पद्मावती अतुलित छवि और अलौकिक नख शिख युक्त है जिसके भृकुटि संचालन से सम्पूर्ण विश्व अभिभूत दिखलाई पड़ता है और सम्पूर्ण संसार जिसके रूप से रूपवान् है[१४५] ठीक उसी प्रकार आदि शक्ति सीता के अंश से ही लक्ष्मी, उमा और ब्रह्माणी उत्पन्न हुई हैं तथा उसी के भृकुटि विलास से संसार की उत्पत्ति होती है।[१४६]

आध्यात्मिक दृष्टि से उपर्युक्त समता होने पर भी सूफी काव्य और तुलसी साहित्य में स्पष्ट अन्तर है, क्योंकि सूफी काव्य में परमात्मा स्वयं ही स्त्री रूप है, जबकि तुलसी विद्या माया रूपी नारी को परम् प्रभु की आज्ञानुवर्तिनी मानते हैं, जो उनकी इच्छानुसार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही सृजन, पालन और संहार आदि कार्य करती है।[१४७] अतः तुलसी पर सूफी काव्य की नारी भावना का प्रभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। अलौकिक दृष्टि से उन पर आदि कवि के प्रभाव को मानना ही उपयुक्त होगा क्योंकि आदिकवि वाल्मीकि ने भी सीता के चरित्र के आध्यात्मिक पक्ष का निरूपण इसी प्रकार किया है।

सूफी मत के आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ लिखे गए ग्रन्थों में से कुछ प्रतीकों और रूपकात्मक स्थलों को छोड़ देने पर वे साधारण प्रेम कथा के रूप में नितान्त लौकिक प्रतीत होते हैं—जैसे पद्मावत काव्य में रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम व्यापार का उद्भव और विकास साधारण स्त्री-पुरुष की प्रेम कथा मात्र रह जाती है तथा नागमती की विरह व्यथा तो साधारण परित्यक्ता विरह विदग्धा के मर्मस्पर्शी रोदन की कथा ही है। इस प्रकार लगभग सम्पूर्ण सूफी साहित्य में नारी के लौकिक स्वरूप में सत् और असत् दोनों रूपों का दिग्दर्शन हुआ है।

सूफी काव्य के अन्तर्गत अपने सत् स्वरूप में नारी हिन्दू गृहिणी के आदर्शयुक्त मर्यादित एवं सात्त्विक रूप में चित्रित की गई है, जहाँ दृढ़ पतिव्रत धर्म पर आरूढ़ निश्छल प्रेम से अभिभूत, कर्तव्यपरायण और उत्सर्गमयी नारी के दर्शन होते हैं। इन आदर्श नारी चरित्रों के जीवन की परम उपलब्धि प्रेम ही है। प्रेयसी रूप में वह दृढ़ और अचल है। समाज का कोई बन्धन उन्हें प्रेम पथ से विचलित नहीं कर पाता। अतः प्रेम का पर्यवसान विवाह में ही होता है। पति का वियोग अपार पीड़ा का कारण है और सपत्नी के प्रति स्वाभाविक ईर्ष्या होते हुए भी नारी के सत् स्वरूप में सपत्नी के प्रति स्नेह और शुभेच्छा की प्रधानता मिलती है।[१४८] प्रेम की वेदी पर सर्वस्व अर्पण करने वाली पद्मावती रत्नसेन के साथ विवाहोपरान्त सद्गृहिणी के कर्तव्यों का पालन करती हुई दृढ़ पति भक्ति का आदर्श प्रस्तुत करती है और अन्त में पति की मृत्यु पर महामिलन के हेतु सती होकर नागमती और पद्मावती दोनों ही भारतीय नारी के अंतिम कर्तव्य का पालन करके सतीत्व के आदर्श की परम्परा का निर्वाह करती हैं। तुलसी साहित्य में सतीप्रथा को प्रश्रय नहीं मिला है परन्तु हिन्दी साहित्य की परम्परा के अनुसार सूफी काव्य तथा तुलसी साहित्य दोनों में ही पत्नी के दासी रूप की प्रधानता दिखलाई गई है। जल और कुश सहित कन्यादान देकर माता-पिता पति से उसे दासी रूप में अंगीकार करने की प्रार्थना करते हैं।[१४९] परम्परागत रूप से सूफी साहित्य और तुलसी साहित्य में भी युवती कन्या यद्यपि चिन्ता का कारण समझी गई है तथापि कन्या का जन्म मंगलकारी और कन्यादान पुण्य कर्म माना गया है।[१५०] नारी सर्वत्र अवध्य मानी गई है तथा नारी की रक्षा पुण्य कर्म कहा गया है।[१५१]

सूफी काव्य में नारी का यह आदर्श रूप हिन्दू संस्कृति के आधार पर अभिव्यंजित हुआ है,[१५२] जिसमें प्रेम और माधुर्य (रति) भाव की जो अधिकता है वह सूफी प्रेम तत्त्व

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की प्रधानता के कारण है। अतः तुलसी ने जिस मर्यादित एवं दृढ़ पतिव्रत धर्म की आधारशिला पर अपने चरित्रों का निर्माण किया है वह सूफी काव्य के तत्त्वों से दूर केवल भारतीय आदर्शों पर ही आधारित है। इतना अवश्य है कि विविध जाति की स्त्रियों के वर्णन में नायिका भेद का जैसा दिग्दर्शन सूफी काव्य में है कुछ वैसा ही तुलसी में दिखलाई पड़ता है। 'रामललानहछू' में तुलसी द्वारा अंकित लोहारिन, तमोलिन, नाइन आदि के चित्र 'इन्द्रावती' में वर्णित सुनारिन, हलवाइन, नाइन आदि के समान ही हैं।[१५३]

नारी के असत् रूपों का चित्रण भी सूफी काव्य में हुआ है। जैसे कुमुदिनी तथा देवपाल की दूती छल-कपट और पाखंड की प्रतीक है। तुलसी की मन्थरा इनके समकक्ष रखी जा सकती है, जो सत् पात्रों को कर्तव्यच्युत करके कुमार्ग की ओर प्रेरित करने वाली है। कहीं-कहीं क्षत्रिय धर्म से च्युत बादल की माता और पत्नी बादल को युद्ध से विरक्त करने का प्रयास करती हैं लेकिन इन रूपों का तुलसी की नारी भावना पर कोई प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता है।

यह अत्यधिक आश्चर्य की बात है कि सूफी धर्म में यद्यपि परमात्मा को स्त्री मानकर उपासना करने का आदेश दिया गया है, जिसका पालन सूफी काव्य में किया भी गया है, फिर भी स्त्री स्नेह, सम्मान और उपासना की वस्तु न रह सकी, वरन् नारी मात्र की निन्दा का वही तीव्र स्वर, जो अब तक प्रत्येक पुरुष कवि द्वारा उद्घोषित किया गया था यहाँ भी अपनी सम्पूर्ण उग्रता के साथ ध्वनित हुआ है।

ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि नारी परम् प्रभु की प्रतीक है, तथापि तत्कालीन साहित्य, समाज, धर्म और राजनीति में नारी की हीन स्थिति के फलस्वरूप साधारण नारी का मूल्यांकन करते हुए सूफी कवियों ने भी निन्दा व्यंजक उक्तियों का प्रयोग परम्परागत रूप में ही किया है। सूफी कवियों ने विलासमयी प्रवृत्ति से संयुक्त समाज में नारी को भोग की सामग्रियों में ही गिना है।[१५४] वीर काव्य की भाँति पत्नी को शौर्य का लाभ ही माना गया है। खड्ग की धार पर जैसे पृथ्वी को जीता जा सकता है वैसे ही स्त्री को भी जीतना पौरुष का प्रमाण है।[१५५] सूफी काव्य में भी परम्परानुसार नारी परतंत्र, मतिहीन, मूर्ख एवं हीन बुद्धि मानी गई है।[१५६] यही नहीं वह पैर की जूती है जो जिधर पुरुष जायेगा वहीं उसका अनुगमन करेगी।[१५७] तत्कालीन समाज की बहुपत्नी प्रथा के अनुसार रत्नसेन की नौ लाख और गंधर्वसेन की सोलह सहस्त्र रानियों का उल्लेख है।[१५८]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सूफी काव्य में नारी को हीन, तुच्छ, निर्बुद्धि, भोग की सामग्री समझने तथा जड़ वस्तुवत् उपहार में दिए जाने की सामग्री मानकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परम्परागत रूप से निन्दनीय एवं भर्त्सनीय उक्तियाँ कही गई हैं, जिनके प्रभाव से तुलसी भी अछूते नहीं रह सके हैं।

२. समकालीन साहित्य का प्रभाव

कृष्ण भक्ति और राम भक्ति शाखा दोनों ही समकालीन हैं। ऐसा माना जाता है कि महाकवि सूर और तुलसी की भेंट हुई थी तथा सूरदास ने अपना सूरसागर तुलसीदास जी को दिखलाया था, तत्पश्चात् तुलसीदास ने रामगीतावली और कृष्णगीतावली के पदों की रचना की थी।[१५८]

राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा दोनों ही विष्णु के सगुण रूपों को लेकर चली हैं। एक के इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा दूसरे के प्रेम और लीला के देवता मुरली मनोहर कृष्ण हुए हैं। दोनों विष्णु के अवतार होते हुए भी आदर्श की दृष्टि से भिन्न हैं।

तुलसी के राम काव्य की परम्परागत कथा का स्रोत आदि कवि वाल्मीकि की रामायण है, जिसमें राम लौकिक होते हुए भी आदर्शोन्मुख और दिव्य गुणों से विभूषित पुरुषोत्तम हैं, जब कि तुलसी के समकालीन कृष्ण काव्य को जो पृष्ठाधार मिला, वह जयदेव का गीतगोविन्द तथा विद्यापति की शृंगार रस सिंचित पदावली है। जयदेव का गीतगोविन्द राधा-कृष्ण की माधुर्य पूर्ण रति लीलाओं तथा प्रेम की कामोन्मादक अनुभूतियों का संग्रह है। इसी प्रकार परम्परागत प्रभाव को लेकर विद्यापति ने श्री राधा-कृष्ण के प्रखर वासनात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति की, जिसमें भक्ति भाव की अपेक्षाकृत उपेक्षा है।[१६०] जहाँ राधा-कृष्ण के जीवन का तत्त्व प्रेममात्र ही है।[१६१] कृष्ण काव्य की ऐसी परम्परा से प्रभावित होकर यद्यपि सूरदास जी ने भी राधा-कृष्ण को साधारण नायक-नायिका के समकक्ष रखकर उद्दीपन विभाव में ऋतु वर्णन और नख-शिख वर्णन किया तथापि उन्होंने धार्मिक भावना को भी महत्त्व दिया। सूर ने शृंगार और माधुर्य भाव की पवित्र अभिव्यंजना की है। लेकिन उनके परवर्ती कवि उस उच्च मापदंड को स्थिर न रख सके और सूर के बाद राधा-कृष्ण के नाम पर कलुषित शृंगार प्रादुर्भूत हुआ।[१६२] आचार्य शुक्ल के विचारानुसार—तुलसी की राम भक्ति, श्रद्धा-प्रेम के समन्वित रूप में धर्म या सदाचार के नित्य लक्षणों से युक्त है, जब कि कृष्ण भक्ति शाखा कृष्ण भगवान् के धर्म स्वरूप (लोकरक्षक और लोकरंजक) को छोड़ कर केवल मधुर स्वरूप और प्रेम लक्षणा भक्ति को लेकर चली।[१६३]

कृष्णकाव्यकार सख्यभाव को धारण कर अपने इष्टदेव के मधुर प्रेम रस के सहचर बने हैं लेकिन राम भक्त तुलसी दास्यभाव से अनुप्राणित हो अपने प्रभु के शृंगार वर्णन का अधिकारी भी स्वयं को नहीं मानते। भावनात्मक दृष्टि से इतने बड़े वैषम्य के कारण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सैद्धान्तिक दृष्टि से मर्यादावादी तुलसी के आदर्शोन्मुख साहित्य पर कृष्ण काव्य का प्रभाव खोजना व्यर्थ सा ही है। वल्लभ सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक परिसीमाओं से पृथक् विनय के पदों में तथा अन्यत्र भी कृष्ण काव्य में सामान्य नारी को लेकर संतों के समान ही नारी निन्दा का उद्घोष तीव्र स्वरों में किया गया है। आश्चर्य की बात यह है कि सम्पूर्ण कुल मर्यादाओं को भंग करने वाली राधा और गोपिकाओं को भी जिन कवियों ने परम पवित्र माना, नारी निन्दा की परम्परा को वे भी खंडित न कर सके।

कृष्णकाव्य में नारी चित्रण के दो रूप प्रकट हुए हैं—एक सामान्य नारी तथा दूसरी कृष्ण भक्ति संयुक्त विशिष्ट नारी। इसी को सत् या असत् भी कहा जा सकता है। अपने विशिष्ट अथवा सत् स्वरूप में नारी के लिए किसी कुल मर्यादा अथवा सामाजिक बंधन का निरूपण नहीं किया गया है। कृष्ण की मधुर मुरली की धुन पर गोपिकायें सब कुछ बिसरा कर मधुर लीला में तल्लीन हो जाती हैं और वे वेद की ऋचाओं के समान पावन हैं,[१६४] क्योंकि गोपी भगवान् की आनन्दप्रसारिणी शक्ति है। यह नारी स्वच्छन्द और उन्मुक्त रूप से विहाररत है और यह रास क्योंकि आध्यात्मिक भावना से परिपूरित है अतः परम ब्रह्म के संसर्ग के कारण दोष रहित है।[१६५] कृष्णभक्त कवियों के अनुसार भक्तिभाव से प्रेरित कोई भी नर नारी कृष्ण की उपासना करने के लिए पूर्ण निर्भयता के साथ स्वतन्त्र है।[१६६] इस प्रकार भक्ति का अधिकार भी सबको समान रूप से दिया गया है। मीरा कुलमर्यादा त्याग कर गिरिधर के आगे नर्तन करने पर भी पूजनीय और सम्माननीय है। नारी के इस विवेचन को कृष्ण काव्य में विशिष्ट नारियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

सामान्य नारी विवेचन के अन्तर्गत कृष्ण कवियों ने भी परम्परानुसार पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली नारियों को ही श्रेष्ठ माना है।[१६७] कृष्णभक्त कवियों ने भी दांपत्य कर्तव्यों के पालन का निर्देश उसी प्रकार दिया है, जैसा तुलसी साहित्य में परिलक्षित होता है। नारी के लिए पतिसेवा के उसी कठोर नियम का निरूपण किया गया है जिसे युग-युग के पुरुषों ने नारी के लिए निर्धारित किया था कि भाग्यहीन, पतित, मूर्ख, वृद्ध, रोगी एवम् दीन-हीन पति की भी सेवा और छलहीन पूजा ही नारी का धर्म है,[१६८] क्योंकि संसार से उद्धार का उसके लिए कोई अन्य उपाय नहीं है।[१६९] पति को त्यागने और पर पुरुष से प्रीति करने वाली नारी अपयश की पात्री और नरकगामिनी होती है।[१७०] परन्तु सामाजिक मर्यादा के ये उपदेश सामान्य नारी के लिए ही हैं, विशेष (गोपिकाओं) के प्रसंग में नहीं हैं। अपने विशिष्ट रूप में नारी किसी प्रकार के बंधनों की अपेक्षा नहीं रखती। मातृ रूप में नारी अपूर्व वात्सल्य से युक्त परम ममतामयी है।

कृष्णकाव्य में नारी निन्दक उक्तियों को देखकर आश्चर्य होता है कि कृष्ण लीला के प्रसंग में नायिकाभेद एवम् नख-शिख वर्णन को सरस शैली में अभिव्यंजित करते हुए तथा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गोपिकाओं को मर्यादाविहीन कृष्णलीला की सहचरी के रूप में परम् पावनी नारियों के रूप में चित्रित करने पर भी अपने सामान्य रूप में नारी संत एवं सूत्र और स्मृति साहित्य के समान ही उग्र स्वर में निन्दनीय और भर्त्सनीय घोषित की गई है।

यहाँ भी नारी-नागिन से भी भयंकर कही गई है—

सुखदेव कह्यो सुनो हो राव, नारि नागिन एक सुभाव।
नागिन के काटे विष होइ, नारी नागिन चितवत नर रह मोइ।।[१११]

नारी की हृदयहीनता और कठोरता का चित्रण सूत्र, स्मृति और पुराण साहित्य की नारी निन्दा की समता करता है। माधुर्य भाव के मनोरम चित्रों का अंकन करने वाले कवि सूर ने भी नारी द्वारा प्रेमी पुरुष को भी नृशंसता से त्याग करते देखा है।[११२] संत कवियों के समान ही नारी को निवृत्ति पथ की अवरोधक मानते हुए मिथ्या माया माना गया है, जो भक्ति पथ को कुंठित करने वाली है। साथ ही सूर ने नारी को काली भुजंगिनी के समान विषाक्त और अविश्वसनीय भी कहा है।[११३] इसप्रकार कृष्णकाव्य में भी परम्परागत रूप से नारी हीन, तुच्छ, उपेक्षणीय और गर्हित रूप में प्रदर्शित की गई है। कृष्ण भगवान् स्वयं भी नारी को अधिक सिर चढ़ाने के पक्ष में नहीं हैं।

"कबहूं बालक मुंह न दीजियो, मुंह न दीजियो नारी।
जोइ मन करै, सोई करि डारै, मूढ़ चढ़त है भारी ।।"

ऐसा प्रतीत होता है कि यह नारी निन्दा की भावना युग-युग से चली आ रही है और सभी पुरुष कवियों के मन में ऐसी दृढ़ता से जम गई है कि वे इसे छोड़ना ही नहीं चाहते। तुलसी भी इसके प्रभाव से अछूते न रह सके। इस प्रकार साहित्यिक परम्पराओं के प्रभाव के विश्लेषण से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी की नारी निंदक वाणी पर अधिकतर संस्कृत साहित्य की परम्परा का प्रभाव पड़ा है। पूर्वतर हिन्दी साहित्यकारों (संतों) की वाणी भी नारी निन्दा के विषय में अत्यधिक उग्र रही है और कृष्णकाव्य में भी नारी निन्दक वचनों की कमी नहीं है। इसी प्रकार जब विचारशील लेखक—

वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना ।
ऐसेहू पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।[११४]

को पढ़कर तुलसी के पुराणपन्थी और पोंगापंथी होने की ओर संकेत करते हैं[११५] तथा आलोचक इसे स्त्रियोचित धर्म के आदर्श का स्वनिर्मित नैतिक नियम कहकर तुलसी पर दोषारोपण करते हैं,[११६] तब सम्भवतः वे भूल जाते हैं कि यह धर्म उनका स्वनिर्मित नहीं है। यह तो भारतीय धर्मग्रन्थों और साहित्य में परम्परागत रूप से चला आता हुआ नारी धर्म ही है। सर्वप्रथम मनु ने व्यवस्था दी थी—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रियासाध्व्या सततं देववत्पतिः।

पुनः शिवपुराण में (पार्वती खंड) यह भाव साम्य देखिए—

क्लीवं वा दुखस्थं वा व्यावितं वृद्धमेवच।
सुखितं दुःखितं वापितमेकन्न लंघयेतू।।

यही भाव महाकवि सूर ने अपने काव्य में तत्सम रूप में ग्रहण कर लिया है। साथ ही उन्होंने पतित पति को भी न त्यागने का और भी कठोर बंधन लगाया है—

विरंध अरु बिनु भागहूं को, पतित जो पति होई।
जऊ मूरख होइ रोगी, तजै नाही जोई।।[७७]

अतः स्पष्ट है कि तुलसी साहित्य में जितने भी नारी निन्दक स्थलों की गणना की गई है वह केवल साहित्यिक परम्पराओं का प्रभाव है जो तुलसी तथा उनके पूर्वतर और समकालीन साहित्य में समान रूप से अवतरित हुए हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदास समकालीन नारी जीवन की पतितावस्था एवं राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियोंवश नारी की हीन अवस्था तथा अपने संत एवं साधु (निवृत्ति पथ के पथिक) तथा भक्त व्यक्तित्व के अन्तःकरण की प्रेरणा से नारी निन्दक वचनों को उद्धृत कर बैठे हैं, परन्तु उनका विवेकी मन और सन्तुलित बुद्धि ऐसे उपदेशों को अन्तःकरण से ग्रहण न कर सके होंगे। यही कारण है कि उनकी स्वनिर्मित पात्री मन्दोदरी भी, जो तुलसी की दृष्टि में बुद्धिमती, नीतिज्ञ और शील संयुक्त सद्चरित्र है, इसका पालन न कर सकी। मन्दोदरी सर्वत्र ही अपने मदान्ध, अभिमानी, निर्बुद्धि और हठी पति का विरोध करती हुई प्रदर्शित की गई है। कोढ़ी और लंगड़े पति की इच्छा पर वेश्या के यहाँ ले जाने वाली शाण्डिली के थोथे आदर्शों को आज के युग में कौन मान सकता है। इसके विपरीत आज की उद्बुद्ध नारी कुमार्गगामी पति को रोकने और उसकी भर्त्सना करने के अधिकार की मांग अवश्य करेगी। मन्दोदरी के चरित्र के माध्यम से तुलसी ने यही अधिकार नारी जाति को दे दिया है। इस पर मन्दोदरी के चरित्र को गिरा हुआ समझना और यह मानना कि "स्वतः कवि अपने स्त्रियोचित धर्म के आदर्श का उल्लंघन करता है और स्वनिर्मित नैतिक नियम के अनुसार अक्षम्य अपराधी है।" अनुचित सा प्रतीत होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि तुलसी साहित्यिक परम्पराओं से प्रभावित होते हुए भी अपनी विवेक बुद्धि के कारण ग्रहण और त्याग की अपूर्व क्षमता धारण किए हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३. समकालीन जीवन और परिस्थितियों का प्रभाव

प्रत्येक प्रतिभावान् व्यक्ति अपने समकालीन जीवन की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित होता ही है, तभी तो तुलसी जैसा प्रतिभा सम्पन्न एवं ज्ञानवान् कवि भी, जिसने उस पतनकालीन युग में भी पुरातन वैदिक युगीन संस्कृति की उच्चतम भाव भूमि पर विचरण करके नूतन आदर्श समाज के निर्माण का श्रेष्ठतम दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, न बच सका। अपने समय के प्रभाव के कारण ही तुलसी वैदिक युग के राम के मस्तक पर रामानन्दी तिलक और राक्षस नगरी में विभीषण के गृह-द्वार तथा ऋषियों के आश्रमों में तुलसी के पौधे रोपना दिखा बैठे हैं। अतः तुलसी भी अपने युग की समकालीन परिस्थितियों से प्रभावित रहे हैं।[१०८] इसी प्रकार तुलसी के काव्य में समकालीन जीवन में नारी की जो वास्तविक अवस्था थी उसका चित्रण भी उनके जाने अनजाने में राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव के कारण अंकित हो गया है।

तुलसी आदर्शवादी समाज सुधारक थे, उन्होंने संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया था और वे उससे प्रभावित भी थे। अतः उनकी आदर्शवादी मान्यताओं के विपरीत विशृंखलित, पतित और वैयक्तिक हीन आचरणों से परिपूरित सामाजिक जीवन की परिस्थितियों ने उन्हें आन्दोलित और व्याकुल बना दिया था। अतः उन्होंने उन सभी बातों का विरोध किया जो उन्हें खलने वाली थीं और उनकी प्रतिष्ठा की जो उनके विचार में समाज के लिए कल्याणकारी और धर्मानुकूल थीं।

(क) सामाजिक जीवन और परिस्थिति का प्रभाव—तुलसी के जीवन काल का इतिहास अंधकारमय नहीं है। उस युग की सामाजिक जीवन की परिस्थितियाँ स्पष्टतया ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। तुलसी दास ने स्वयं भी जो समाज देखा था उसका स्पष्ट उल्लेख अपने साहित्य में किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तुलसी युग के समाज का विवरण देते हुए कहा कि—"समाज में धर्म की मर्यादा बढ़ रही थी, दरिद्रता हीनता का लक्षण मानी जाती थी, पंडितों और ज्ञानियों का समाज के साथ कोई भी सम्पर्क नहीं था। सारा देश विशृंखलित, परस्पर-विच्छिन्न, आदर्शहीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था।"[१०९] इन सामाजिक परिस्थितियों का तुलसी की नारी भावना पर क्या प्रभाव पड़ा, इसी का उल्लेख यहाँ अभीष्ट है।

उस विशृंखलित आदर्श और लक्ष्य हीन संकुचित वातावरण में स्त्रियों पर भी निश्चय ही बंधन कड़े हो गए होंगे। जब से मुसलिम आक्रमण आरम्भ हुए तभी से स्त्रियों की अवस्था और भी तीव्र गति से पतन के गर्त की ओर अग्रसर हुई। पर्दा प्रथा को कठोरता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से ग्रहण किया जाने लगा था क्योंकि स्त्रियों के सतीत्वहरण का भय और मर्यादा विनष्ट होने की शंका बढ़ गई थी। मुसलमानों में प्रचलित पर्दा प्रथा का प्रभाव भी समाज पर पड़ा था। सम्भवतः इसी कारण स्त्रियों की अति स्वतन्त्रता उपयुक्त नहीं समझी जाती होगी। फलस्वरूप 'महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी।' की उद्भावना अनायास ही तुलसी साहित्य में हो गई है। इसका तात्पर्य सचमुच स्त्रियों को परतंत्र बनाना नहीं है।

तुलसीकालीन युग में कठोर पर्दा प्रथा के कारण ही स्त्री शिक्षा को भी गहरा धक्का लगा। अधिकांशतः स्त्रियाँ अशिक्षित और अज्ञानी रह जाती होंगी। अतः अनेक स्थलों पर तुलसी ने नारी को 'सहज जड़ अज्ञ' की संज्ञा से विभूषित किया है। बालविवाह की प्रथा पहले ही प्रचलित थी अब और भी बढ़ गई। स्वभावतः स्त्रियों का पद गिर गया। समाज में नारी की भावनाओं की कोई मान्यता न रही। मुसलमान संस्कृति में भी स्त्रियों का कोई महत्त्व न था। वहाँ स्त्रियाँ केवल भोग का साधन थीं, उनका कामिनी रूप ही प्रबल था। व्यभिचार बढ़ रहा था, राजा अनेकानेक विवाह करते थे और दरबारियों सहित भोग विलास में रत रहते थे। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार प्रजा भी राजा का अनुकरण करती थी। यहाँ तक कि महासम्राट अकबर के समय में मीना बाज़ार लगते थे, जहाँ राजकुमार और शासक वर्ग के उच्चस्तरीय व्यक्ति मन वांछित सुन्दिरयों को पसन्द करते थे। यह नारी की दुरवस्था और पतन की घोर पराकाष्ठा थी। राजपूत राजा कभी-कभी अपनी इच्छा से शासकीय महत्त्व को दृष्टि में रखकर अपनी कन्याओं को शाही महलों में भेज देते थे अथवा कभी शासक वर्ग अपनी इच्छा से ही किसी सुन्दरी को देखकर उससे विवाह कर के अथवा वैसे जबरन ले जाते रहे होंगे। इससे हिन्दुओं की विवशता और स्त्रियों की दीनता दोनों का ही परिलक्षण होता है। कभी-कभी दारिद्रय के वशीभूत होकर भी अपनी कन्याओं का विक्रय किया जाता होगा। जिससे क्षुब्ध होकर तुलसी ने कहा है—

ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि ।
पेट ही को पालक, बेचत बेटा बेटकी।।

कवितावली

सर्वत्र विलासिता का वातावरण व्याप्त था। शृंगारिक काव्य का महत्त्व बढ़ रहा था। जनता भी शासकों का अनुगमन कर रही थी। नारी के कामिनी रूप में पुरुष आसक्त हो सब कुछ भूल जाता था। पुरुषों की यह अवस्था भी तुलसी के खेद का कारण बनी—

नारी बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मरकट की नाईं।।

मानस —उत्तरकाण्ड ।।९८।। १

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा *सुत मानहि मातु पिता तब लौं, अबलानन दीख नहीं जब लौं।*
ससुरारि पियारि लगी जब तें, रिपु रूप कुटुम्ब भये तब तें।।

समाज में परिवार की इस अवस्था से क्षुब्ध होकर ही तुलसी ने मर्यादित जीवन की दिशा की और प्रेरित करने हेतु रामचरितमानस के आदर्श परिवार को जनता के सम्मुख रखा। डॉ० रामकुमार वर्मा ने कहा है—"तुलसी दास ने समाज का आदर्श इसलिए और भी लिखा, क्योंकि उन्होंने अपने समय में समाज की दुरवस्था देखी थी।"[१८०] इसी प्रसंग में उन्होंने पुनः कहा है—"तुलसी दास ने मानस के उत्तरकांड में कलियुग का जो वर्णन किया है वह उन्हीं की तत्कालीन परिस्थिति थी। उस अंश को पढ़कर ज्ञात होता है कि कवि के मन में समाज की उच्छृंखलता के लिए कितना क्षोभ था। इसी क्षोभ की प्रतिक्रिया उनके लोक शिक्षक रूप से समाज चित्रण के आदर्श में है।"[१८१] यही कारण था कि उन्होंने उच्छृंखलित और पतित नारी की निन्दा की। उसके उद्धार के लिए कठोर धर्मों के पालन की व्यवस्था दी, तत्पश्चात् पुत्रीत्व, पत्नीत्व एवं मातृत्व आदि के आदर्श स्वरूपों का दिग्दर्शन कराया। साथ ही नारी के लिए सामाजिक जीवन की मर्यादाओं का विवेचन करके उसके पावन रूप की झाँकी प्रस्तुत की।

तुलसी ने समाज में प्रचलित बहुपत्नी-विवाह के दोषों को देखा और परखा। तभी उन्होंने रामराज्य में आदर्श समाज की कल्पना करते हुए लिखा है—

"एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।" तुलसी के सम्मुख यही पावन आदर्श था लेकिन जब उन्होंने समाज में इसके विपरीत आचरण करते हुए स्त्री और पुरुषों को देखा, तब निश्चय ही वे उसे सहन न कर सके होंगे। अतः उसी असत् स्वरूप की भर्त्सना उन्होंने यत्र-तत्र की है, जहाँ परपुरुष में अनुरक्त स्त्री को वे सैकड़ों कल्पों तक नरक में पड़ी रहने वाली समझते थे, वहाँ परस्त्री अनुगमन करने वाले पुरुष को भी उन्होंने पामर नर कहते हुए पापमय और मनुष्य में साक्षात् राक्षस ही माना है[१८२] तथा नर, देवता, राक्षस, प्रेत और पिशाच और सभी को काम का दास मानकर उनकी भर्त्सना की है।[१८३] इसीप्रकार—

कहं हम लोक वेद विधि हीनी।
लघु तिय कुल करतूति मलीनी।। तथा 'सहज अपावनि नारी' और 'नारी सहज जड़ अज्ञ' आदि वाक्यों की उद्भावना भी तत्कालीन पतित, दीन-हीन एवम् मलीन, युग-युग से निन्दित और प्रताड़ित नारी की हीन भावना तथा शिक्षा आदि से वंचित अज्ञानी नारी की कुंठित वाणी की प्रतिध्वनि मात्र ही है। अन्यथा तुलसी ने न तो उन गाँव की वधुओं को कहीं लोक अथवा वेदों की मर्यादा से च्युत ही चित्रित किया है न ही उनका चरित्र मलिन दृष्टिगत होता है। इसके विपरीत सभी भोली भाली ग्राम वधुएँ पावन भावनाओं से परिपूरित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शील संयुक्त हैं। हाँ 'कहं हम लोक वेद विधि हीनी' का 'कहं' शब्द प्रगट करता है कि समाज में उन्हें ऐसा कहा जाता रहा है। अनसूया द्वारा 'सहज अपावनी नारी' वाक्य की उद्भावना भी सम्पूर्ण नारी जाति के लिए न होकर सम्भवतः असती स्त्रियों के लिए ही की गई है, क्योंकि जिसको यह उपेदश दिया गया है वह सीता स्वयं पतिव्रत धर्म का आदर्श है अतः यह उक्ति वास्तव में पतिव्रत धर्म के महत्त्व को न समझने वाली स्त्रियों को लक्षित करके कही गई है। इसके साथ ही पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली स्त्रियों का साधुवाद भी तुलसी ने परम उत्साह के साथ दृढ़ शब्दों में किया है—

धन्य देश सो जहं सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।।[९४]

समाज में सयानी कन्या चिन्ता का विषय मानी जाती थी (ऐसी मान्यता समाज में आज भी प्रचलित है)। माता-पिता की इस चिन्ता को तुलसी ने अनेक स्थलों पर बड़ी सुन्दरता से अभिव्यंजित किया है।[९५] परन्तु माता-पिता की चिन्ता का कारण अपनी लाड़ली पुत्री के लिए योग्य वर की प्राप्ति की कठिनाई प्रतीत होती है। अतः पुत्री को तुच्छ, हीन या दुःख का कारण नहीं माना गया है। केवल उसके सुखद भविष्य की चिन्ता ही प्रमुख है। यद्यपि उस काल के समाज में कन्याएँ कुँवारी नहीं रह सकती होंगी। कन्या का कुँवारी रह जाना महान दुःख और आत्मिक संताप का कारण था, जिसकी व्यंजना तुलसी साहित्य में की गई है।[९६] ऐसी स्थिति में भी यह आश्चर्यजनक बात है कि तुलसी अत्यधिक उदारता से तथा बड़ी ही दृढ़ वाणी में पार्वती माता-मैना के मुख से यह उद्गार अभिव्यक्त करते हैं—

जो घर ब कुलु होई अनूपा, करिअ विवाह सुता अनुरूपा।
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रान पिआरी।।[९७]

यही नहीं मैना शिवजी जैसे बावले वर को देखकर जो उद्गार व्यक्त करती है—

तुम्ह सहित गिरि तें गिरों पावक जरौंजलनिधि महुं परौं।
घरू जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिवाहु न हौं करों।।[९८]

उसमें निश्चय ही तुलसी के उदार दृष्टिकोण की—अयोग्य वर कन्या का विवाह अनुचित है— की झलक है।

भरत माता कैकेयी का अपनी प्रिय और मुँह लगी, कुबड़ी दासी मन्थरा के लिए यह कथन—

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचालि जानि।
तिय विशेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसकानि।।

निश्चय ही उस युग के समाज में प्रचलित विश्वास का परिचायक है (जैसे काने को अशुभ समझना और कंजी आँखों वाले तथा कुबड़े को कुटिल मानना आज के इस वैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युग में भी समझा जाता है।), जो समाज की परम्परा में आज तक चला आया है। कानों, लंगड़ों और कुबड़ों को कुटिल और कुचाली जानना यह केवल कैकेयी के मन की उद्भावना प्रतीत नहीं होती, न ही इस कथन का अभिप्राय नारी निन्दा ही है, क्योंकि कैकेयी (जो स्वयं ही एक स्त्री थी) यहाँ स्त्री जाति को कलंकित करने के अभिप्राय से उपरोक्त वचन नहीं कहती। यहाँ तो केवल मन की मलिन समझकर निम्न वर्ग की हीन दासी को घर फोड़ी कहकर डाँटती है तथा उसके कुबड़ेपन पर व्यंग करके समाज प्रचलित विश्वास से उसकी हीनता एवं तुच्छता—कि निम्न वर्ग की स्त्रियाँ ऐसी ही होती हैं—को पुष्ट करती हैं और यह कहकर जब कैकेयी मुस्कराने लगती है तब तो स्पष्ट हो जाता है कि यह कथन समाज में प्रचलित रहा होगा, जिसका प्रयोग कैकेयी विनोदपूर्वक करती है। उपरोक्त उक्ति जो समाज में प्रचलित थी मुंह से निकल जाने पर और मन्थरा को क्षुब्ध देखकर कैकेयी तुरन्त ही प्रियवादिनी कहकर बात सम्हालने का प्रयास करती है—"प्रिय वादिनि सिख दीन्हेउं तोही। सपनेहुं तो पर क्रोध न मोही।" अतः स्पष्ट है कि उपरोक्त कटूक्ति मन्थरा के नीति विरुद्ध आचरण को देख समाज में प्रचलित विश्वास के आधार पर की गई है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक कथनों की समीक्षा इसी आधार पर की जा सकती है—जैसे "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी" अथवा "नारी स्वभाव सत्य कवि कहहीं, अवगुण आठ सदा उर रहहीं।" वाक्य भी, जो संस्कृत साहित्य के अनुवाद हैं, सम्भवतः उस समाज में प्रचलित विश्वास भी रहे होंगे, जो तुलसी साहित्य में प्रसंगानुकूल अवतरित हो गये हैं। इसलिए इन्हें तुलसी के व्यक्तिगत विचार न मानकर उन पात्रों के विचार ही माना जा सकता है, जो समाज में प्रचलित मान्यताओं के अनुरूप ग्रहण किए गए हैं।

समाज में प्रचलित इन नारी निन्दक वचनों के अतिरिक्त तत्कालीन जीवन में नारियों की विवशता एवं परतन्त्रता से परिपूरित स्थिति की पुष्टि तुलसी की कवितावली की उन पंक्तियों से होती है जब ग्राम वधुएँ राम, सीता और लक्ष्मण को परस्पर बातें करते हुए देखने तथा उनकी बातें सुनने की अभिलाषा व्यक्त करती हुई कहती हैं—

धरि धीर कहें चलुदेखिय, जाई, जहाँ सजनी रजनी रहि हैं।
कहि है जग पोच, न सोच कछु, फल लोचन आपन तो लहि है।।

स्पष्ट है राम, सीता और लक्ष्मण के साथ-साथ जाने पर संसार निश्चय ही उन्हें हीन दृष्टि से देखेगा। अतः स्पष्ट है कि नारी स्वातन्त्र्य को उस युग का समाज बुरा मानता था। इसका प्रभाव तुलसी पर पड़ा और उन्होंने उच्छृंखल प्रवृत्ति पर अंकुश लगाते हुए कहा—"महा वृष्टि चलि फूटि कियारी, जिमि सुतंत्र भएं विगरहि नारी।" कहा जा सकता है कि तुलसी तत्कालीन नारी की परवश, अति नियंत्रित और दासता पूर्ण स्थिति से प्रभावित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुए हैं।[१८६] परन्तु साथ ही तुलसी के हृदय को नारी की इस स्थिति ने करुणार्द्र भी किया होगा। तभी उन्होंने अनेक स्थलों पर नारी की समाजगत पराधीनता से क्षुब्ध होकर–"कत विधि सृजी नारी जग माहीं, पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।" आदि भावनाओं की अभिव्यंजना की है।

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी नारी (पत्नी) को पुरुष (पति) की दासी रूप में अभिव्यंजित करने का कारण तत्कालीन समाज में ऐसी मान्यता का होना ही प्रकट करता है। तुलसी के युग में और उससे पूर्व भी दहेज़ तथा दहेज़ में दासियों को देने की प्रथा रही होगी। अतः तुलसी साहित्य में भी दहेज़ तथा उसके साथ दास-दासियों को देने के वर्णन हैं। इसी प्रकार मंगल अवसरों, विवाह आदि, पर स्त्रियों के सरस गान की प्रथा तथा कन्या को मांगलिक मानना भी समाज में प्रचलित विश्वास ही है, जिसने तुलसी को अत्याधिक प्रभावित किया है। तुलसी के सम्पूर्ण साहित्य में कोई भी शुभ कार्य ऐसा नहीं हुआ है जहाँ सुवासिनी स्त्रियों के सुमधुर गान की उद्भावना करना वे भूले हों। कोहबर के समय जुआ, कंगना आदि खेल तथा लौहकोर खिलाते हुए स्त्रियों द्वारा दुल्हा-दुल्हिन की माताओं को मधुर गालियाँ देना, बरात जीमते समय भी गाली गाने की सामाजिक प्रथा (जो अब भी गाँवों में देखने को मिल जाती है) आदि का सरस चित्रण तुलसी काव्य में सर्वत्र ही किया गया है। विवाह आदि सम्बन्धों की बातचीत करने के लिए स्त्रियों को ही समाज में कुशल माना जाता था, क्योंकि कुलीन कन्याओं को स्त्रियाँ ही अन्तःपुरों में देख सकती होंगी और विवाह आदि सम्बन्धों की बातचीत गृहिणियों में सुभीते से चलती होंगी; इसका चित्रण तुलसी साहित्य में शिवजी के विवाह हेतु ऋषि पत्नी अरुन्धती को ही मैना से बात करने के लिए भेजते हुए किया गया है—

नारि कुसल इहि काजू, काजु बनि आइ हि।।

स्पष्ट ही तुलसी की नारी भावना पर तत्कालीन नारी जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है।

(ख) राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव—किसी भी देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप में उसके धर्म, समाज, कला-कौशल एवं साहित्य को प्रभावित किए बिना नहीं रहतीं। राजनीतिक दृष्टि से देश का समाज दो वर्गों में विभक्त होता है—शासक और शासित, जिसके अनुरूप ही जन समाज उच्च (मान्य) व निम्न (अमान्य) अथवा धनिक और निर्धन दो स्तरों पर स्थित दिखलाई देता है। जब शासक और शासित एक प्रकार की धार्मिक, सामाजिक और मानसिक (आध्यात्मिक) विचारधारा से संयुक्त होते हैं तो इस सम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्थिति में वहाँ का साहित्य भी स्वाभाविक रूप से एक ही दिशा की ओर उन्मुख होता हुआ समान रूप से शासक और शासितों का रस प्रसादन करेगा, परन्तु शासक और शासित वर्ग के धर्म और सामाजिक मान्यताओं, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार आदि में अन्तर होगा तब विषम परिस्थितियों में जो कला कौशल अथवा साहित्य शासक वर्ग का संरक्षण पाकर समृद्ध होगा उस पर उन्हीं की धर्म एवं संस्कृति की छाप होगी और जो उनके प्रभाव से बाहर साधारण जनता के मध्य रहकर पनपेगा वह परम्परागत संस्कृति, धर्म एवं साहित्यिक मान्यताओं को लेकर ही सर्वसाधारण की रसानुभूति का साधन बनता है।

तुलसी का युग राजनीतिक दृष्टि से ऐसी ही विषमताओं का युग था, जहाँ राजा, प्रजा के धर्म उसके सुख-दुःख, आचार-विचार, सुविधा एवम् असुविधाओं से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखता था। अतः जो साहित्य एवं कला शासक वर्ग के संरक्षण में विकसित हुए वह उसके अपने धर्म और अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल ही हैं। जिसके फलस्वरूप सूफी प्रेम काव्य सूफी धर्म को लेकर चला और शृंगार काव्य विलासी राजाओं की प्रवृत्ति के अनुरूप नख-शिख वर्णन, नायिका भेद आदि से युक्त होकर उनकी वासनाओं की तृप्ति का साधन बना। लेकिन तुलसी ने, जो सच्चे अर्थों में लोक नायक, युग द्रष्टा और समाज संस्कर्ता थे, जिनके पीछे आदर्श राम राज्य का पृष्ठाधार था, जिन्होंने संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया था और उसकी मान्यताओं को आत्मसात् किया था—स्वान्तः सुखाय रचना करने का उल्लेख करके[१६०] अपने को राज्याश्रय एवं उसके प्रभाव दोनों से विमुक्त कर लिया है।

स्पष्ट है कि तुलसी का सम्पूर्ण साहित्य पुराण, शास्त्र, रामायण तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों से सम्मत है, जिसकी रचना उन्होंने अपने आत्मिक सुख और लोक कल्याण के हेतु की थी।[१६१] भक्त शिरोमणि तुलसी संसार के उपकार के हेतु सम्पूर्ण लोकों के लिए जगत् को पवित्र करने वाली पयस्विनी स्वरूपिणी रामकथा के प्रवाह को प्रवाहित करना चाहते थे।[१६२] ऐसी स्थिति में उनके साहित्य पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित नहीं किया जा सकता। अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक परिस्थितियों वश तत्कालीन धर्म एवं समाज में जो विषमताएँ उत्पन्न हो गई थीं उन्हीं का कुछ थोड़ा बहुत प्रभाव देखा जा सकता है।

नारी जाति का पतन पहले से ही पर्याप्त मात्रा में हो रहा था। उसके असत् रूप को लेकर तुलसी से पूर्व ही नारी की हीनता, अज्ञता एवं जड़ता का उद्घोष किया जा चुका था। यहाँ प्रश्न विचारणीय है कि तुलसी साहित्य में नारी के जिस महत्त्वपूर्ण राजनीतिक स्वरूप का दिग्दर्शन हुआ है, उसका कारण क्या तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ थीं ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अकबर अपनी हिन्दू रानियों के आचार-विचार से प्रभावित था और तुलसी के तत्कालीन सम्राट् जहाँगीर की प्रिय पत्नी नूरजहाँ का राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान था। एक प्रकार से जहाँगीर के राज्य की शासन व्यवस्था नूरजहाँ के हाथ में ही थी। लेकिन तुलसी की नारी के राजनीतिक स्वरूप में इसका प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। उनकी नारी का जो राजनीतिक स्वरूप प्रकट होता है उसका कारण साहित्य-परम्परा और तुलसी की उर्वर प्रतिभावान कल्पना को ही माना जा सकता है।

तत्कालीन हिन्दू राजा शासकीय वर्ग में अपने महत्त्व को बनाए रखने के हेतु मुगल सम्राटों के महलों में अपनी कन्याओं को भेज देते थे। स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में मुगलों का गुण शक्तिशाली सम्राट होना ही था। अन्यथा हिन्दू कभी भी अपनी कन्याओं को विधर्मी को न देते। इस भावना के प्रभाव का परिलक्षण मयदानव द्वारा अपनी परम् सुन्दरी और श्रेष्ठ कन्या मन्दोदरी का विवाह रावण के साथ किए जाने में देखा जा सकता है। मयदानव शिवजी और ब्रह्मा द्वारा रावण को वरदान दिए जाने की बात जानकर ही अपनी कन्या रादण को दे देता है। क्योंकि उसे आभास हो जाता है कि रावण अपरिमित शक्ति से सम्पन्न होकर अब राक्षसों का राजा हो ज़ायेगा।[१६३]

इसीप्रकार अकबर के हरम में पाँच हज़ार चन्द्रमुखी स्त्रियों की उपस्थिति, जिनमें हिन्दू, पारसी, मुगल तथा आरमीनिया जाति की चुनी हुई श्रेष्ठ स्त्रियाँ थी[१६४] और जहाँगीर के हरम में तीन सौ स्त्रियों की उपस्थिति[१६५] से प्रभावित होकर ही तुलसी ने रावण को अपने बाहु बल से अनेक जातियों की श्रेष्ठ स्त्रियों को अपने महल में एकत्रित करते हुए दिखाया है *'देव जच्छ गंधर्व, नर किन्नर नाग-कुमारि।, जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुन्दर वर नारि।'*

रामचरितमानस —बालकाण्ड।। १८२ ख।।

इसीप्रकार गीतावली में राजा दशरथ की ७०० रानियों का उल्लेख भी मिलता है।[१६६] लेकिन राजमहलों में अनेक सुन्दर स्त्रियों के संग्रह की प्रथा केवल तत्कालीन शासक वर्ग में ही हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। ऐसे उल्लेख वीर-काव्य तथा उसके पूर्व संस्कृत साहित्य में भी मिलते हैं।

तुलसी ग्रन्थावली में संगृहीत लेख में रामचन्द्र दूबे ने कोपभवन में रुष्ट कैकेयी को मनाते समय राजा दशरथ के प्रेमोन्मादित अनुनय विनय में प्रेमी रूपी पतंग जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ के चरणकमलों में प्रेमभिक्षा की उद्भावना करके तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का प्रभाव माना है, तथा—"राखिअ नारि जदपि उर माहीं जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं।" में भी वे तत्कालीन निरंकुश शासन का चित्र ही मानते हैं। दूबे के विचार में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी ने इन गुण-दोषों को देखा था और अपने अनुभूत विचारों को अभिव्यक्त किया था।[१९७] यह परिश्रम यद्यपि दूर की कौड़ी लाने का अथक प्रयास कहा जा सकता है परन्तु दोनों ही बातें तत्कालीन राजनीति से प्रभावित नहीं कही जा सकतीं क्योंकि राजा दशरथ की इस स्त्रैण प्रवृत्ति का दिग्दर्शन संस्कृत महाकाव्य रामायण में ही किया जा चुका था और 'राखिअ.....नाहीं' तो शुक्रनीति के श्लोक का अनुवाद ही है। पुनः तुलसी 'स्वान्तः सुखाय' रचना करने वाले स्वतन्त्र कवि थे। जहाँगीर के हरम अथवा दरबार से उनका कोई नाता नहीं था। अतः कहा जा सकता है कि तुलसी की नारी भावना पर तत्कालीन राजनीति का कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव परिलक्षित नहीं होता।

(ग) धार्मिक परिस्थिति का प्रभाव—राजनीतिक परिस्थिति की विषमता के कारण समाज और धर्म दोनों ही विशृंखलित हो गए थे जिसका चित्रण तुलसी के काव्य में किया गया है। सामाजिक पतन के फलस्वरूप धर्म भी विनष्ट हो गया था। वैदिक ज्ञान से वंचित समाज मनमाने धार्मिक मतों के प्रवर्त्तन और सुधार के नाम पर धर्म में मनोवांछित उलट फेर कर रहा था। अतः लोककल्याण और सामाजिक शान्ति का नियामक, सदाचरण की मान्यताओं पर प्रतिष्ठित, वैदिक धर्म विलुप्त हो रहा था। विवेकहीन नूतन पथों की कल्पना की जा रही थी।[१९८] वेद पुराणों की निन्दा और मनमानी साखी, शब्द, दोहा, कहानी और उपाख्यान आदि कह कहकर भक्ति निरूपण करते थे।[१९९] वर्णाश्रम धर्म को भूलकर सभी नर-नारी श्रुतियों का विरोध कर रहे थे।[२००] ज्ञानहीन नर और नारी ब्रह्मज्ञान की बात के अतिरिक्त दूसरी बात नहीं करते।[२०१] ज्ञान के दम्भ में व्यक्ति अहंकारी हो गए हैं लेकिन तुलसी उन्हें महा गंवार कहते थे—"जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के विचार गंवार महा हैं।" अपनी-अपनी मर्यादाओं को त्याग कर कुमार्गगामी समाज, वर्णव्यवस्था और आश्रमधर्म को त्याग कर दुःख-दोष और दारिद्रय के भागीदार हो रहे थे।[२०२] मर्यादाहीन नर स्त्रियों के वशीभूत होकर माता-पिता एवं कुटुम्ब को शत्रुवत् समझते थे।[२०३] कुलवन्ती स्त्रियों को घर से निकालकर हीन दासियों को व्यक्ति घर में रख लेते थे।[२०४] देवालय, तीर्थ स्थान तथा पवित्र पुरियों में सर्वत्र ही अत्यन्त भ्रष्टाचार फैल रहा था।[२०५] समाज की ऐसी पतित अवस्था तुलसी के क्षोभ का कारण थी।[२०६]

इन धार्मिक परिस्थितियों के मध्य तुलसी ने धर्म के सब पक्षों का सामंजस्य करके एक स्वस्थ और सरल धर्म की स्थापना की, जो सदाचरण पर स्थित सबको सुलभ और हितकारी था। जिसका आधार तुलसी ने चिर परिचित रामकथा को ही बनाया जिसके माध्यम से सदासद् की पूर्ण विवेचना करते हुए मानव के सम्मुख श्रेष्ठ आदर्श स्वरूपों की अभिव्यंजना तुलसी ने की।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पतिव्रत धर्म की उपेक्षा करती हुई नारियों को देखकर ही गोस्वामी जी ने शास्त्र परम्परागत असत् पात्रों के माध्यम से नारी निन्दा करते हुए सती स्त्रियों के स्वरूप और लक्षणों की अभिव्यंजना की। नारी के पतित स्वरूपों को देखकर ही तुलसी ने उस कठोर धर्म की व्यवस्था दी कि पति अपमान से यमपुर में नाना दुःखों को भरना पड़ता है।[२०७] लोकमर्यादा को बनाए रखने के लिए यह अति आवश्यक भी था।

इसी प्रकार जब तुलसीदास ने देव-मन्दिरों और तीर्थों पर अनेक भ्रष्टाचार देखे तो उन्हें यही उपयुक्त प्रतीत हुआ होगा कि स्त्रियों को व्यर्थ ही तीर्थ व्रत के झंझटों में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनके लिए एक ही धर्म और एक ही नियम पति सेवा ही पर्याप्त है।[२०८] लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भक्ति अथवा ब्रह्मज्ञान और धर्मग्रन्थों के अध्ययन से तुलसी नारी जाति को वंचित करना चाहते थे। इस संदर्भ में तो तुलसी में जिस उदारता का दर्शन होता है वह अन्य ग्रन्थकारों में दिखलाई नहीं देती। यद्यपि स्त्रियों के लिए उस समय तक धर्मग्रन्थों के अनाधिकार की घोषणा संस्कृत धर्मग्रन्थों में हो चुकी थी—'यद्यपि जोषिता नहीं अधिकारी' कहकर तुलसी संस्कृत ग्रन्थों की मान्यता ही प्रदर्शित कर रहे हैं परन्तु स्वयं तुलसी ने नारियों को भक्ति का सहर्ष अधिकार दिया है—"अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महं मैं मति मन्द अघारी।।" कहने वाली शवरी भी श्रेष्ठ भक्तों की कोटि में सम्माननीय और परम गति की अधिकारिणी बनी है। साथ ही तुलसी ने स्पष्ट ही कहा है—

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोई।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोई।।

मानस—उत्तर काण्ड। ८७क।।

साथ ही—"जाके प्रिय न राम वैदेही। सो नर तजिये कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।" का उपदेश भी वे सभी भक्तों के लिए देते हैं। ऐसा कहा जाता है कि उपरोक्त पद तुलसी ने मीरा को लिखकर भेजा था।

तत्कालीन समय में स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होती थीं और धर्मग्रन्थकारों ने शूद्रों और स्त्रियों से धर्मग्रन्थों के अध्ययन का अधिकार भी छीन लिया था। अतः जितने भी निम्न वर्ग के (शूद्र जाति के) व्यक्ति थे उन्हें मन्दिरों में भी जाने का अधिकार नहीं था। अतः उनमें विद्रोह की भावना उत्पन्न हो रही थी। यही कारण था कि तत्कालीन प्रतिभावान संत कवि, जो अधिकतर निम्न वर्ग के थे, वेद, शास्त्रों, मन्दिरों और शिवालयों, छापा, तिलक, पूजा और अर्चना आदि का खुलकर विरोध कर रहे थे। उदार तुलसी ने निम्न जाति के निषाद को अनेक स्थलों पर भरत और ऋषिराज को गले लगाते हुए दिखाकर स्पष्ट कर दिया है कि भक्ति पथ पर उच्च अथवा निम्न का कोई विभेद नहीं है। स्त्रियों को भी तुलसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहित्य में मंदिरों में जाने की तथा पूजा अर्चना करने की स्वतन्त्रता दी गई है।[२०६] स्त्रियाँ अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए देवी-देवताओं की मनौतियाँ मानती हुई[२१०] तथा व्रत उपासना आदि में विश्वास करती हुई दिखलाई गई हैं। साथ ही ज्योतिषियों से जन्म-पत्री आदि दिखाकर भविष्य जानने का प्रयास करती हुई देखी गई हैं। यद्यपि उस युग में वन जाकर कठिन तप करने की धर्म भावना पुरुष वर्ग में भी प्रचलित नहीं थी, लेकिन शिव की प्राप्ति के लिए पार्वती वन जाकर कठिन तप करती हैं जिसका सरस और सुन्दर चित्रण तुलसी साहित्य में प्राप्त होता है। इसका कारण सम्भवतः साहित्यिक परम्परा में कथा का वैसा होना ही है जिसे तुलसी ने मौलिक और अनूठा रूप प्रदान किया है।

स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म की शिक्षा देते हुए तुलसी ने सती स्त्री के मन की दृढ़ता का सुन्दर अंकन किया है—

संभु सरासन डगइ न कैसे, कामी वचन सती मन जैसे।

इस शम्भु धनुष के प्रसंग में ही तुलसी स्पष्ट कर देते हैं कि पतिव्रत का पालन जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही पत्नीव्रत धर्म का पालन भी आवश्यक है। सम्भवतः यही कारण था कि वह शिव धनुष राम ही उठा सके और रावण आदि अन्य शक्तिशाली राजागण उसे हिलाने में भी असमर्थ रहे—"पारवती-मन सरिस अचल धनु चालक। होहिं, पुरारि तेउ एक नारि व्रत पालक।।" उस युग में स्त्रियाँ अपने धर्म से ही अनभिज्ञ थीं। अतः तुलसी ने उत्तम, मध्यम और अधम स्त्रियों के लक्षण गिनाते हुए छल छोड़कर पतिव्रत धर्म को धारण करने की प्रेरणा दी तथा स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए पतिवंचक और पराए पुरुष से रति करने वाली स्त्री को रौरव नरक की अधिकारिणी बताया। यह विधान केवल स्त्रियों के लिए ही हो ऐसा नहीं है। गोस्वामी जी ने पुरुष वर्ग के लिए भी अनेक प्रसंगों और अनेक स्थलों पर पर-स्त्री से रति को घोर पाप घोषित किया।[२११] इसी लिए आदर्श राम राज्य में उन्होंने एक नारी व्रती पुरुषों के समाज की ही व्यवस्था दी—"एक नारिव्रत रत सब झारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी।" निश्चय ही राम के एक पत्नी व्रती रूप को देखकर उसे आदर्श माना गया होगा लेकिन सभी पुरुष एक पत्नीव्रत हो जाएँ यह किसी युग में भी सम्भव नहीं रहा है। फिर भी गोस्वामी जी द्वारा उस युग में, जब राजाओं ने हरम में चार-चार हजार और उसी अनुपात से अन्य शासक वर्ग में अनेक पत्नियाँ रखने की प्रथा थी, ऐसे विचार प्रस्तुत करके एक स्वस्थ समाज की रूप रेखा का निर्माण वास्तव में अभ्यर्थनीय प्रयास है।

गोस्वामी जी ने उस धार्मिक ह्रास और पतन के युग में जब स्त्रियों को काम वासना की तृप्ति का साधन मात्र समझा जाता था तथा उनका जीवन उपेक्षा और भर्त्सना का पात्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

था, नारी के जिन सत् स्वरूपों का दिग्दर्शन कराया है, परिवार में, समाज में, धर्म में और यहाँ तक कि राजनीति में भी उनके जिन उच्चतम स्वरूपों की झाँकी प्रस्तुत की है वह उनकी विशाल हृदयता का ही परिचायक है। तुलसी नारी के जिन आदर्श रूपों की कल्पना कर रहे थे उसकी यथार्थ अवस्थिति के लिए आवश्यक था कि तुलसी नारी के अधार्मिक असद् स्वरूप का चित्रण ही नहीं उसकी निन्दा भी करें। अतः जो भी नारी सम्बन्धी निन्दा सूचक उक्तियाँ देखने को मिलती हैं उसका लक्ष्य नारी के सन्तुलित, स्वस्थ, सुन्दर और श्रेष्ठ पारिवारिक, सामाजिक एवम् धार्मिक स्वरूपों की स्थापना ही था। यदि तुलसी ने उस युग में नारी के लिए वे कठोर बंधन न लगाए होते तो निश्चय ही आज भारतीय समाज में भी पति-पत्नी के सम्बन्धों पर व्याख्यान देने वाली किसी मेम साहब की भाव धारा—"कि स्त्री पति के घर में ही रहे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है[२१२]—का प्रचार भारत में भी मान्य होने लगता। अतः धर्म और समाज की मर्यादाओं का जो निरूपण तुलसी ने किया वह भारतीय संस्कृति को बनाए रखने के लिए अत्यधिक आवश्यक था।

इस स्वस्थ समाज की मर्यादाओं को बनाए रखने के लिए तुलसी ने केवल कुनारी को ही वर्जित नहीं किया है वरन् "जननि सब जानहिं पर नारी", 'नयन मलिन पर नारि निरखि' और 'सो पर नारि लिलारू गोसाई तजई चौथ चन्दा की नाईं' आदि के द्वारा पुरुषों पर भी बन्धन लगाए हैं। लेकिन फिर भी जब वह अपने समय में 'नहि मानत कोउ अनुजा तनुजा' की सीमा तक काम का विकट विस्तार देख रहे थे तब उन्हें विक्षुब्ध वाणी में कहना पड़ा—'लछिमन देखत काम अनीका। रहहि वीर तिन्हके जग लीका।' स्पष्ट है कि उपरोक्त कथन नारियों की निन्दा के लिए नहीं वरन् कामाधीन पुरुषों को सचेत करने के लिए है। इसी प्रकार मन को अंकुश लगाने के हेतु ही—"दीप सिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग" आदि वाक्य कहे हैं। इसी प्रकार हास्य या व्यंग में ही 'जन्म पत्रिका बरति कै देखहु मनहि विचारि। दारुन बैरी मीचु के बीच विराजति नारि।' की उद्भावना की गई है। इसका कारण स्त्री को सचमुच ही मृत्यु और शत्रुता का कारण समझना नहीं है वरन् उस युग के उन पुरुषों को सचेत करना है जो अपने सम्पूर्ण कर्तव्यों और धर्मों को भुलाकर, नारी के वशीभूत, उसके इंगितों पर मदारी के बन्दर के सदृश नर्तन करते थे[२१३] और नारी के लिए अपने परिवार को शत्रुवत् समझने लगते थे।[२१४] यदि वास्तव में तुलसी ने पत्नी को मृत्यु अथवा शत्रुता का कारण माना होता तो अपने साहित्य में पत्नी को इतना गरिमा और गौरव युक्त स्थान कदापि न देते जितना महत्त्वपूर्ण पद पत्नी रूप में नारी को दिया है। कहा जा सकता है कि तुलसी की नारी भावना पर तत्कालीन समाज की धार्मिक परिस्थितियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है जिसके कारण उन्होंने नर और नारी के असद् रूपों की निन्दा की तथा आदर्श सत् स्वरूपों का अंकन किया, जिससे समाज अपने आदर्शों को प्राप्त कर सके।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

४. तुलसी के व्यक्तित्व और जीवन का प्रभाव

कवि का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसकी कृतियों में अनुस्यूत रहता है, जहाँ पद-पद पर उसके व्यक्तित्व की अमर छाप लगी रहती है। उसकी भावनाओं की मनोरम भूमि, उसके विचारों की सरल व्याख्या और उसके आदर्शों तथा सिद्धान्तों की सूक्ष्मतम परिभाषा उसकी कृतियाँ ही हैं। फिर उसके सांसारिक जीवन का लेखा-जोखा कुछ बहुत अधिक महत्त्व नहीं रखता। सम्भवतः यही कारण था कि पुरातन कवि अपने जीवन के क्षुद्र व्यापारों के सम्बन्ध में मौन ही रह जाते थे। जिसे उनके आचार-विचार, प्रवृत्ति, प्रकृति, स्वभाव एवम् भावनाओं को जानना हो वह उसे उनकी कृतियों में ही खोज सकता है, और तुलसी का गहन गम्भीर व्यक्तित्व और उनकी पावन भावधारा का प्रत्यक्षीकरण तो उनके अकेले ग्रन्थ रामचरित मानस से ही हो जाता है। फिर भी गोस्वामी जी की नारी भावना के विश्लेषण की सुविधा के लिए तथा परवर्ती पाठकों की सुविधा हेतु तुलसी की नारी भावना पर उनके व्यक्तित्व और जीवन के प्रभाव का पर्यवेक्षण आवश्यक हो जाता है।

(क) तुलसी के जीवन का प्रभाव--पुरातन युग में कविगण अपने जीवन चरित्र की रचना अथवा उसके विषय में उल्लेख को तुच्छ समझते थे, फिर उनमें भी भक्तों को तो अपने इष्ट देव के गुणानुगान से ही अवकाश नहीं मिलता था। तुलसी जैसे आदर्शवादी और दास्य भाव की भक्ति से ओतप्रोत भक्त शिरोमणि के लिए तो अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन तुच्छ ही रहा होगा। बहुत समय तक उनका जीवन चरित्र अंधकारमय ही रहा है। सर्वप्रथम उनके जीवन वृत्त की खोज की ओर दिशा निर्देश किया है, विदेशी सज्जन एच० एच० विल्सन ने जिसका आधार नाभादास के छप्पय, प्रियदास की टीका तथा कुछ जन श्रुतियाँ थीं।[२१५] फिर तो तुलसी के जीवन चरित्र की खोज की जैसे होड़ सी लग गई। अनेक विदेशी सज्जनों, एफ० एस० ग्राउस, डॉ० गियर्सन आदि तथा आधुनिक भारतीय आलोचकों, प्रमुख रूप से शिवनन्दन सहाय, राम किशोर शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, माता प्रसाद गुप्त, रामकुमार वर्मा, रामचन्द्र शुक्ल एवं राजपति दीक्षित आदि ने अपने अथक परिश्रम से उनके वास्तविक जीवन चरित्र की दिशाओं का निर्देश किया। डॉ० रामकुमार वर्मा का मत है कि "कवि के व्यक्तित्व और जीवन पर सम्यक् विचार किसी के द्वारा नहीं हुआ है।"[२१६] अतः तुलसी के ग्रन्थों में जो यत्र-तत्र उनके जीवन का विवरण बिखरा हुआ है, यद्यपि वह उनके दैन्य और निराश हृदय के भावों का प्रकाशन ही अधिक है, तथापि उसे ही सर्वाधिक प्रामाणिक माना जा सकता है।[२१७]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने तुलसी के जीवन सम्बन्धी वृत्त की जानकारी के तीन साक्ष्य बतलाए हैं—अंतर्साक्ष्य (तुलसी की साहित्यिक कृतियों से उपलब्ध सामग्री), बहिर्साक्ष्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(तत्कालीन ग्रन्थों से उपलब्ध सामग्री लेकिन जिनके विषय में अनेक मतभेद हैं) और जनश्रुति। जनश्रुति को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, परन्तु फिर भी इनके अनुसार जो तथ्य सर्वसम्मत और अधिक प्रामाणिक कहे जा सकते हैं—वे इस प्रकार हैं—तुलसी उच्च वंशीय ब्राह्मण थे, उनकी माता की मृत्यु उनके जन्म के बाद ही हो गई थी तथा उनका पालन किसी दासी द्वारा हुआ था जो उनके पाँच वर्ष के होने पर परलोक सिधार गई। उनका बचपन कष्टमय था यहाँ तक कि उन्हें भीख मांग कर जीवन व्यतीत करना पड़ा। बचपन में ही उन्हें रामकथा को बार-बार सुनने का अवसर मिला तथा उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन भी किया। तभी वे सांसारिक बन्धनों में बंधे। उनका विवाह रत्नावली नाम की कन्या से हुआ। कुछ दिन (सम्भवतः दस अथवा पन्द्रह वर्ष) सुख पूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत कर, अत्यधिक आसक्ति के कारण पत्नी द्वारा उपदेश पाकर वे विरक्त संन्यासी बने। तत्पश्चात् तीर्थाटन एवं अत्यधिक अध्ययन करने के उपरान्त अनेक ग्रन्थों का सृजन किया और यशस्वी बने। उनके जीवन काल में ही भयंकर महामारी फैली, जिसके फलस्वरूप उन्हें भी शारीरिक कष्ट उठाने पड़े और उसी से उनकी मृत्यु हुई।

तुलसी दास के इसी जीवन चरित्र को आधार मानते हुए मिश्रबन्धुओं ने कहा है कि "गोस्वामी जी ने स्त्रियों की हर जगह निन्दा की है।"[२१८] तथा "गोस्वामी जी की माता जी इनकी बाल्यावस्था में मर गई थीं और अपनी स्त्री से ये अप्रसन्न हो गए थे, इनके वैरागी होने के कारण उच्च श्रेणी की स्त्रियाँ इन्हें नहीं मिलती थीं और केवल निम्न श्रेणी की स्त्रियों को ये इधर-उधर देखते होंगे। अतः स्त्रियों के विषय में इनका अनुभव अच्छा न था। यही कारण है कि इन्होंने उनकी निन्दा की, परन्तु फिर भी ऐसे महात्मा और महाकवि का बिना सोचे इतनी प्रचंड निन्दा करना अनुचित था।[२१९] आदरणीय मिश्र बन्धुओं ने अत्यधिक स्थूल रूप में तुलसी की नारी भावना पर उनके जीवन की घटनाओं का उपर्युक्त प्रभाव दिखाकर उनकी नारी भावना का विश्लेषण प्रस्तुत करके तुलसी को नारी निन्दक सिद्ध कर दिया है।

यही बात कुछ हेर फेर के साथ बाबू शिवनन्दन सहाय ने 'गोस्वामी जी वृहत् जीवनी' में कही है—"कवि ने नारी से ऋतुओं की उपमा तो अच्छी की परन्तु रामचन्द्र से स्त्रियों को अच्छा सर्टीफिकेट नहीं दिलवाया। स्त्री गुणगायक कवीश्वर तथा स्त्री भक्त पुरुषगण इससे कितना असन्तुष्ट होंगे सो नहीं कहा जा सकता। गोसाईं जी 'प्रमदा' से ऐसे क्यों चिढ़े थे ? कोई कहते हैं कि गोसाईं जी को मातृ वियोग शैशवावस्था में हो गया था, स्त्री का संग चिरकाल तक रहा नहीं, गृह त्यागी हो जाने के कारण इन्हें उच्च श्रेणी की महिलाओं से प्रसंग नहीं हुआ। इसी से इन्होंने स्त्रियों की स्वयं निन्दा की है और रामचन्द्र से भी कराई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। सच पूछिए तो यह समस्या बड़ी कठिन है। इस सम्बन्ध में जैसा जिसका अनुभव है, वह वैसा ही कहेगा.....रामचन्द्र उस समय नारी विरह से दुःखी थे अतएव वे उन्हें दुःखदायिनी कह सकते थे पर गोसाईं जी को तो उनकी स्त्री ही उनके ईश्वर के सम्मुख होने का कारण हुई। उन्हें नारियों से ऐसा नाराज होना नहीं चाहिए था।"

सर्वप्रथम जो मिश्रबन्धुओं ने कहा है कि तुलसी दास जी ने हर जगह स्त्रियों की निन्दा की है यह कथन निश्चय ही न्याय संगत नहीं है। तुलसी की नारी भावना को सभी आलोचकों (डॉ० नगेन्द्र, माताप्रसाद गुप्त, डॉ० रामबहोरी शुक्ल, डॉ० राजपति दीक्षित आदि) द्वारा उद्धृत नारी निन्दक प्रसंगों तथा तुलसी के सभी ग्रन्थों से और भी अनेक स्थलों को एकत्रित करने पर स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्णतः ऐसे नारी निन्दक पदों की संख्या २५ से अधिक नहीं है जो तुलसी के विस्तृत साहित्य को देखकर अधिक नहीं कहे जा सकते। इनमें से भी लगभग १५ स्थल ऐसे हैं जो संस्कृत श्लोकों का अनुवाद मात्र हैं और शेष में से कुछ संत काव्य का तथा कुछ तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के प्रभाव के कारण उद्‌भूत हुए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ स्थल ऐसे हैं जिन पर तुलसी के व्यक्तित्व के कवि, भक्त और समाज सुधारक एवं आदर्शवादी भविष्य सृष्टा के स्वरूपों का स्पष्ट प्रभाव है।

तुलसी का मानस एक प्रबन्ध काव्य है तथा अन्य मुक्तक ग्रन्थों में भी प्रबन्ध की सी एक प्रच्छन्न शृंखला बंधी हुई है। अतः प्रसंग को छोड़कर ऐसे कथनों की विवेचना करना और नारी मात्र के लिए प्रस्तुत किए गए सिद्धान्त वाक्य समझना तुलसी के प्रति अन्याय,[२२०] अनुदारता तथा अपना अविवेक प्रकट करना ही है।

दूसरी बात, तुलसी की माता की मृत्यु और स्त्री से अप्रसन्नता को ही उनकी नारी निन्दा का कारण मानना भी उपयुक्त नहीं है। माता की मृत्यु, माता अथवा मातृ जाति से घृणा अथवा उपेक्षा का कारण नहीं कही जा सकती। वरन् यही देखा जाता है कि जिस वस्तु का जीवन में अभाव होता है उसके प्रति अधिक मोह और अधिक आसक्ति हो जाती है। सन्तानवती माता, दारिद्रय दुःख अथवा क्षोभ की स्थिति में सन्तान को बुरा भला कह सकती है। सन्तान के किसी अपराध पर मानसिक सन्ताप की अवस्था में उसे कोस सकती है। उसकी निन्दा करके पर्याप्त भर्त्सना कर सकती है, परन्तु निःसन्तान माता के लिए सन्तति सदा ही अलभ्य और दिव्य वस्तु रहती है। तुलसी के लिए भी जननी दिव्य वस्तु ही थी जो उनके लिए परम आदर और श्रद्धा की पात्री ही रही है। तभी वे 'जननी सम जानहु परनारी' का आदेश देते हुए दिखलाई पड़ते हैं। तुलसी ने सीता को सर्वत्र जगत्-जननी के रूप में देखा है।[२२१] शिव-पत्नी पार्वती के जननी रूप की भी उन्होंने सर्वत्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभ्यर्थना की है।[२२२] स्त्री का जननी रूप पावनतम भावनाओं का उद्रेक माना गया है। अतः भरत, लक्ष्मण, हनुमान् तथा वानरगण सभी सीता को जननी रूप में देखते हैं[२२३] यहाँ तक कि सीता के स्वयंवर के समय सद्वृत्ति वाले राजा भी सीता के जननी रूप की अतुलित छवि का दर्शन करते हैं।[२२४] तुलसी सीता और पार्वती में जननी रूप की अनुभूति करके ही उनके शृंगारिक पक्ष का चित्रण नहीं करते।[२२५] समस्त देवियों की स्तुति जगदम्बा रूप में ही करते हैं।[२२६] इस प्रकार तुलसी काव्य में जहाँ भी नारी के मातृ रूप का चित्रण हुआ है वहाँ अपने मातृ रूप में नारी महिमामयी, गौरवशालिनी, और महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी बनकर श्रेष्ठतम रूप में अंकित की गई है। उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य को सम्पन्न करते हुए माताएँ अपने विशेष अधिकारों का दृढ़ता से प्रयोग करती हुई देखी गई हैं।[२२७]

इसके अतिरिक्त माता के लाड़ प्यार, दुलार और वात्सल्य सुख से वंचित तुलसी ने, गद्गद् हृदय से माँ की वत्सलता के जैसे मर्म स्पर्शी चित्र अंकित किए हैं वे अद्वितीय और दुर्लभ हैं—उदाहरणार्थ पार्वती को विदा करते समय माता मैना के हृदय की मार्मिक अनुभूति का विवेचन देखिए—

भेंटि विदा करि बहुरि भेंटि पहुंचावहि।
हुंकरि हुंकरि सुलवाई - धेनु जानु धावहिं।।

इस प्रकार राम वन गमन पर—*राम हो कौन जतन घर रहि हौ।*
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सो कहि हों।।

इस प्रकार के अनेकानेक सरस एवं ममत्व पूर्ण अजस्र स्रोत तुलसी साहित्य में उपलब्ध हैं। इस पर भी यह कल्पना करना कि माता की मृत्यु ने तुलसी को मातृ जाति के प्रति अनुदार बना दिया कल्पना मात्र है। इसके विपरीत यही कहना उपयुक्त है कि माता के अभाव ने ही उन्हें मातृ रूप का उपासक बना दिया है।

मिश्रबन्धुओं के मतानुसार नारी धर्म सम्बन्धी नियमों के अवतरण का कारण, नारी मात्र के प्रति तुलसी का असन्तोष नहीं माना जा सकता। वास्तव में तत्कालीन सामाजिक पतनावस्था ने आदर्शोन्मुख तुलसी के समाज सुधारक स्वरूप को प्रेरित किया, जिसके फलस्वरूप उन्होंने विशृंखलित पारिवारिक मर्यादाओं को पुनः स्थापित करने के प्रयास में नारी धर्म निरूपक नियमों को उद्धृत किया है। तुलसी भारतीय परम्परागत आदर्शों के आधार पर ही नूतन समाज की सृष्टि करना चाहते थे। जिसके लिए उन्होंने परम्परागत नारी धर्म सम्बन्धी विवेचन की आवश्यकता समझी। इसे स्त्रियों के लिए जाँच की बड़ी कसौटी न मानकर[२२८] लौकिक पारिवारिक जीवन के सरस संगठन के लिए पति के प्रति पत्नी की निश्छलता और उसकी मानसिक पावनता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर बल देने की अभिलाषा ही मानना चाहिए, जो दांपत्य जीवन के लिए परमावश्यक भी है। आज भी सभी पति अपनी पत्नियों पर एकाधिकार चाहेंगे और उनके तन ही नहीं मन की संपूर्ण शुचिता के भी आकांक्षी होंगे। ऐसा कोई बिरला ही व्यक्ति होगा जो तुलसी द्वारा निरूपित पावन धर्मों का विरोध करना चाहेगा।

तुलसी ने नारी के विभिन्न स्वरूपों का दिग्दर्शन करते हुए साहित्य में पत्नी स्वरूप का सरस चित्रण प्रस्तुत किया है तथा पत्नी की महत्त्वपूर्ण अवस्था का दिग्दर्शन भी किया है। पर्वत राज हिमालय की पत्नी मैना, कौशल्या, सुनयना और मन्दोदरी दर्प से परिपूरित गरिमामयी मर्यादाओं का उदाहरण हैं। यहाँ तक कि निषाद राज केवट राम को बिना पैर धोये इस लिए नदी उतारने को तत्पर नहीं होता कि उसे यही प्रमुख चिन्ता है कि उसकी नौका भी यदि शिला की भाँति सुमुखि स्त्री बन गई तो वह पत्नी को क्या उत्तर देगा।[२२६] स्पष्ट ही यहाँ उत्तरदायित्वपूर्ण प्रेमाभिसिंचित, स्निग्ध और सरस दांपत्य का सूक्ष्म स्वरूप व्यक्त हुआ है।

तुलसी मर्यादावादी भक्त थे और उनकी भक्ति भी दास्य भाव की है। इसी कारण उन्हों ने सीता-राम, शिव-पार्वती अथवा और भी अन्य पति-पत्नी युगलों के दांपत्य भाव के रति-क्रीड़ा सम्बन्धी चित्रण नहीं किए हैं। लेकिन फिर भी दांपत्य के मनोरम माधुर्य रस सिंचित स्वरूपों और मार्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति के लोभ को वे संवरण नहीं कर पाए हैं। पत्नी रूप में स्त्री की कहीं भी अवमानना नहीं की गई है। वरन् सभी स्थलों पर पत्नी को पर्याप्त सम्मान दिया गया है। बालि द्वारा अपना अपराध पूछे जाने पर राम उससे यही कहते हैं—

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।

इस प्रकार पत्नी को तुलसी ने कुमार्ग से हटाकर सद्मार्ग पर चलाने वाली सद्नारी के रूप में ही देखा है। राक्षसराज रावण की पत्नी मन्दोदरी सर्वत्र ही पति को सीख देती हुई दिखलाई पड़ती है। रावण जैसे अभिमानी राक्षस को भी कटु वचन कहती हुई तथा उसके शत्रु राम के बल वीर्य का वर्णन करती हुई मन्दोदरी कहीं भी निन्दनीय नहीं है। रावण राक्षस होते हुए भी अपनी उस पत्नी से घृणा नहीं करता। यद्यपि इसी अपराध पर भाई को लात मारकर घर से निकाल देता है तथापि स्त्री को तो सदा ही आदर देता हुआ दिखलाया गया है। रावण हँसकर स्त्रियों के डरपोक स्वभाव की आलोचना तो करता है परन्तु साथ ही हृदय से लगाकर अपने स्नेह का भी प्रदर्शन करता है—

श्रवण सुनी सठ ताकरि बानी। बिहसा जगत विदित अभिमानी।।
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति कांचा।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अस कहि बिहंसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई।।
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर विधि विपरीता।।

मानस—सुन्दरकांड - ।।३६।। १,३

कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि राक्षस राज रावण की पत्नी उसे विरक्ति का पाठ पढ़ाती हुई पवित्र यश की भागीदार बनाना चाहती है।[२३०] जिसमें तुलसी की पत्नी के उद्देश्य की झलक देखी जा सकती है। जैसे पत्नी के उपदेश से ही तुलसी भगवान् के भक्त बनकर परम् यशस्वी बने, उसी प्रकार मन्दोदरी राम भक्ति की महिमा का वर्णन करके पति से कहती है—

जो पिय मानहु मोर सिखावन, सुजसु होई तिहुं पुर अति पावन।।

रावण यद्यपि राक्षसी प्रवृत्ति से युक्त था फिर भी अपनी पत्नी के उपदेश पर उससे रुष्ट नहीं होता, फिर तुलसी तो राम भक्त थे। जन्म से ही राम नाम पर पले थे अतः पत्नी के उपदेश पर रुष्ट होने का कोई कारण नहीं है। यदि मान भी लिया जाये कि प्रेमासक्ति के वशीभूत होकर जब वे पत्नी के सम्मुख पहुंचे और उसके उपदेश—

अस्थि चर्ममय देह मम, तामे जैसी प्रीति।
तैसी जो श्री राम महँ होति न तौ भव भीति।।

को सुनकर क्षुब्ध असन्तुष्ट और संतप्त हुए होंगे तो यह भी द्रष्टव्य है कि जब उन्हें भगवान् की भक्ति का वरदान मिला और राम के दिव्य प्रेम में आकंठ निमग्न होकर उन्हों ने जब अमर साहित्य की सृष्टि के द्वारा पूर्व यश और भगवत् भक्ति के अलौकिक आनन्द की प्राप्ति की होगी उस समय निश्चय ही वे पत्नी के कृतज्ञ हुए होंगे। तभी तुलसी ने कहा है—"हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस।।"[२३१] इस कथन की सत्यता पर विश्वास कर लेना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं है। तुलसी जैसे विरक्त संन्यासी और भक्त प्रवर के लिए यह भावना रखना कि रति सुख से वंचित किए जाने के कारण कुंठित होकर ही उन्होंने नारी निन्दा की है और निवृत्ति पथ की ओर उन्मुख करने वाली पत्नी से, जिसके कारण उन्हें अमूल्य राम भक्ति का वरदान मिला था, वे असन्तुष्ट थे, अनुचित है क्योंकि तुलसी तो परम वैराग्यवान तप के व्रत को धारण करने वाले विन्ध्याचल वासी ऋषि मुनियों को भी स्त्रियों के बिना परम दुःखी होते हुए देखते हैं तथा चन्द्रमुखी स्त्रियों की प्राप्ति की सम्भावना पर वैरागी मुनियों की सुखानुभूति की सरस कल्पना करते हैं—

विन्ध्य के वासी उदासी तपो व्रत धारी महा बिनु नारि दुःखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भै मुनिवृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्र मुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ही भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust

ऐसी स्थिति में डॉ० नगेन्द्र के अनुसार तुलसी के मन में नारियों के प्रति शेष रहे विष कण देखना, अथवा उनकी दृष्टि में नारी को सदा अक्षम्य समझना या फिर नारी को उनके अधीह मन की प्रतीक मानना और उसमें उनकी घोर ग्लानि तथा लज्जा का कारण खोजना[२३२] कहाँ तक उपयुक्त है ? विवेकशील व्यक्ति इसका स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं। विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब कि तुलसी के मन में राम भक्ति दृढ़ हो चुकी थी और वे एक उच्चतम धरातल पर बैठकर निष्पक्ष भाव से श्रेष्ठतम काव्य तथा लोक प्रिय भक्ति ग्रन्थ की रचना कर रहे थे—पत्नी के प्रति उनके मन में आक्रोश भावना का शेष रह जाना असंगत सा ही जान पड़ता है। इसके विपरीत यही सम्भव है कि उस गौरवपूर्ण स्थिति पर पहुँचा देने वाली पत्नी के प्रति आदर और आभार प्रकट करने की अभिलाषा ही उनके मन में कहीं शेष रही हो जिसे उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री के पत्नी रूप की सम्माननीय और गरिमावान स्थिति की उद्‌भावना करके पूर्ण किया है। निश्चय ही ऐसा करके वे उऋण हुए हैं। नारी के पत्नी रूप के साथ मातृ जाति के सभी स्वरूपों में उन्हों ने नारी का महिमामय चित्रण ही किया है।

जहाँ तक नारी निन्दा का प्रश्न है, वह उन्होंने काव्यात्मक उपलब्धि हेतु, सत् चरित्रों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए, असत् नारी रूपों की स्थापना करके उनकी निन्दनीय स्थिति का दिग्दर्शन कराया है। ऐसे प्रसंग कहीं तो संतों को निवृत्ति पथ पर आरूढ़ करने के लिए अथवा सामाजिक पतन के कारण निरासक्ति की भावना को प्रबल बनाने के हेतु प्रस्तुत हुए हैं और कहीं प्रसंगानुकूल संस्कृत साहित्य की परम्परा के प्रभाव के फलस्वरूप अवतरित हो गए हैं। अतः इसे नारी निन्दा नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त यह एक सिद्ध तथ्य है कि मानव मात्र में काम भावना अत्यधिक प्रबल होती है जो सभी पर अपना समान प्रभाव डालती है। वास्तव में मानव मात्र की यह एक ऐसी दुर्बलता है जिस पर विजय पाना कठिन है। सम्भवतः तुलसी के जीवन का यह अनुभूत तथ्य था जिसकी स्वीकारोक्ति उन्होंने अपने प्रमुख प्रबन्ध ग्रन्थ मानस की समाप्ति पर सबसे अन्तिम दोहे में की है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम।।

मानस—उत्तर काण्ड।। १३० ख।।

मानस का यह अन्तिम दोहा वास्तव में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। एक ओर यह मानस की रचना का अन्तिम लक्ष्य प्रकट करता है तो दूसरी और तुलसी के जीवन वृत की उस परिधि का माप है जिस पर एक आकस्मिक झटके ने उन्हें बार-बार चक्राकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घूमने पर विवश कर दिया था, जिसका एक ही केन्द्र बिन्दु था और वही एक चाप "अस्थि चर्ममय देह मम तामें जैसी प्रीति। तैसी जो श्री राम महं होति न तो भव भीति।" पत्नी के इन कठोर वचनों के साथ-साथ गुरु वचनों का भी स्मरण तुलसी को हो आया होगा[३३३] और सब कुछ एक झटके से छिन्न-भिन्न करके तुलसी ने भक्ति पथ अपनाया होगा। सम्भव है उस सीमातीत कामासक्ति को राम की गूढ़ प्रीति में परिणत करने के लिए उन्हें अनेक संघर्ष करने पड़े हों परन्तु जब सात सोपानों का भव्य मानस उन्हें मिल गया, जिसमें आकंठ निमग्न होकर राम भक्ति का माणिक्य उन्हें प्राप्त हुआ और तुलसी राम भक्ति के राज पथ पर मनमानी मौज में चल पड़े, तब इस निर्मल प्रेम जल से परिपूरित मंगलमय मानस में निन्दा और ईर्ष्या के दाह को स्थान कहाँ ? वरन् इस पथ पर पहुँचने के पूर्व जब-जब भी उनका मन डगमगाया होगा, उसे तुलसी सचेत करते चले हैं। दीप सिखा सम जुवतितन, मन जनि होसी पतंग। भजसि राम तज काम मद, करहि सदा सत्संग।" इस कथन में मन पर अंकुश रखकर सत्संग करते हुए सीधे राम भजन का आदेश है। नारी निन्दा का स्वर जिसके कर्ण कुहरों में सुनाई दे वह उसकी अपनी अनुभूति ही का फल हो सकता है तुलसी की नहीं। सीता के पावन रूप की उत्प्रेक्षा देते हुए भी तुलसी ने यही कहा है—"सुन्दरता कहुं सुन्दर करई। छवि गृह दीप शिखा जनु बरई।"[३३४] अतः यह युवती के तन के उद्दीप्त आकर्षण की अभिव्यंजना हो सकती है, निन्दा नहीं—जिससे वैरागी भक्त के मन को वर्जित करना ही अभीष्ट है।

इसी प्रकार—*लछिमन देखत काम अनीका। रहहि धीर तिन्ह के जग लीका।*
एहि कें एक परम बल नारी। तेहितें उबर सुभट सोइ भारी।।[३३५]
और *"लोभ कें इच्छा दंभ बल, काम कें केवल नारि।*
क्रोध कें परुष वचन बल मुनिवर कहहिं विचारि।[३३६]

आदि पंक्तियों का लक्ष्य भी नारी निन्दा न होकर कामी पुरुषों की दीनता दिखलाना और धीर पुरुषों में वैराग्य भावना को दृढ़ करना ही है जिसको कवि स्वयं अगली पंक्ति में स्पष्ट करता है—

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अन्तरजामी।
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन विरति दृढ़ाई।[३३७]

सम्भव है कि तुलसी को अपने संन्यासी जीवन में वैराग्य को दृढ़ करने के लिए स्वयं भी मन को बार-बार सचेत करना पड़ा हो जिसकी अभिव्यंजना स्वतः ही काव्य में आ गई है। इसके अतिरिक्त तुलसी सब को एक पंक्ति में खड़ा करना नहीं चाहते थे। वे जानते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थे नर-नारी, ब्राह्मण-वैश्य, संन्यासी और गृहस्थ सबके धर्म और कर्तव्य पृथक्-पृथक् हैं। एक ही धर्म—एक के लिए त्याज्य और दूसरे के लिए प्राप्य बन सकता था। नारद मुनि जब भगवान राम से प्रश्न करते हैं कि मेरे विवाह करने की इच्छा पर आपने किस कारण से मुझे अवरुद्ध किया ?[२३८] इसके उत्तर में राम अपने भक्तों की सुरक्षा का भार अपने ऊपर बताते हुए माया रूपी युवती स्त्री (प्रमदा) के अनेक अवगुण गिनाते हैं।[२३९] स्पष्ट है कि यह भी सब आश्रमों और सब व्यक्तियों के लिए नारी मात्र की निन्दनीय स्थिति की घोषणा या बाबू शिव पूजन सहाय के विचारानुसार नारी से ऋतुओं की केवल अच्छी उपमाएं देने का प्रयास नहीं है और न ही राम से स्त्रियों के लिए अच्छे बुरे सर्टीफिकेट लिखाने की भावना।[२४०] यहाँ केवल विरक्त भक्तों, संन्यासियों एवं नारद जैसे मुनियों के लिए—निवृत्ति पथ के अवलम्बनार्थ भक्ति की स्नातकोत्तर उपाधि (डिग्री) देते समय उपकुलपति राम का सन्देश है जिसमें वे भक्ति पथ पर आरूढ़ रहने के लिए, मुनिवर को शपथ दिलाना चाहते हैं कि तुम अपने जीवन में ऐसा समझते हुए आचरण करना, जो भक्ति और संन्यास की डिग्री लेते समय आवश्यक ही था। अतः संत मुनियों के लिए नारी वांछनीय नहीं है, केवल इसी भाव की अभिव्यंजना उपर्युक्त प्रसंग का लक्ष्य है। ध्यान देने की बात यह है कि उपदेश संत मुनि नारद को दिया गया है गृहस्थों को नहीं। गृहस्थी जन तो मुनि नारद की सम्मति की उपेक्षा ही करते हुए दिखाई देते हैं। मैना कहती है—***नारद के उपदेस कवन घर गे नहीं।***[२४१] तथा ***घरघाल चालक कलह प्रिय कहियत परम परमारथी।***[२४२]

स्पष्ट है कि गृहस्थों के लिए चालाक, झगड़ा कराने वाले और घर उजाड़ने वाले नारद के उपदेश गृहस्थी बरबाद करने वाले ही हैं। अतः गृहस्थ के लिए उन्हें त्याज्य समझना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म और आश्रमानुसार ही अपना पथ ग्रहण करना चाहिए अन्यथा वह शोचनीय स्थिति में पड़ जाता है। तुलसी के विचार में वह संन्यासी शोचनीय हो जाता है, जो वैराग्य और ज्ञान को छोड़कर सांसारिक कर्म प्रपंच में फंसता है। साथ ही वह गृहस्थी जो कर्म मार्ग को त्याग कर विरत हो जाये तो वह भी शोचनीय है।[२४३] वानप्रस्थी का भोग में रुचि लेना अशोभन एवम् क्षोभनीय है[२४४] तो गृहस्थी का क्षणिक आवेश (पत्नी की मृत्यु या सम्पत्ति के नाश) की स्थिति में मूंड मुंडाकर संन्यासी वेश बना लेना भी निन्दनीय है।[२४५]

इसी प्रकार गृहस्थ नारी के लिए एक ही व्रत, एक ही धर्म और एक ही नियम—पति सेवा वांछनीय बतलाया गया है[२४६] और कुटिल, कलह प्रिय और पति से छल करने वाली स्वेच्छाचारिणी स्त्री को अशोभनीय कहा है[२४७] परन्तु दूसरी ओर भक्त स्त्री को - भक्ति मार्ग के अवरोधक परम प्रिय व्यक्ति को भी करोड़ों वैरागियों के समान त्यागने का भी आदेश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया है और कृष्ण प्रेम की मतवाली ब्रजांगना कंत को त्यागने पर भी शोभनीय है जो त्याग, आनन्द और मंगलमय कही गई हैं।[२४८]

तुलसी ने इस प्रकार अपने-अपने पथ पर आरूढ़ पथिकों के लिए उनके कर्तव्य के अनुसार भिन्न-भिन्न धर्मों का पृथक्-पृथक् उपदेश दिया है। जो धर्म संत मुनियों का है वह गृहस्थों का नहीं, जो बात उनके लिए कही गयी है, वह सबके लिए सिद्धान्त वाक्य नहीं बन सकती। इसी प्रकार जो लक्षण—काम वासना से संतप्त कुटिल और सर्पिणी सी नारी (शूर्पणखा) के प्रसंग में गिनाए गए हैं,[२४९] वे सती स्त्री, जिसका मन दृढ़ शिव-धनुष का उपमान बन गया है—(संभु सरासन डगई न कैसे। कामी वचन सती मन जैसें) और जिसके मन में स्वप्न में भी अन्य पुरुष की संसार में स्थिति ही नहीं है, अथवा जो पर पुरुष को पिता, भ्राता और पुत्र के समान देख सकती है[२५०]—के प्रसंग में रखकर देखे ही नहीं जा सकते हैं। अतः उन्हें सम्पूर्ण नारी मात्र के लिए लांछन मानना अनुचित है। इस लिए तुलसी न कहीं प्रमदा से चिढ़े हैं और न ही पत्नी से असन्तुष्ट होकर नारी मात्र से रुष्ट हुए हैं। उनकी नारी भावना कोई समस्या या रहस्य भी नहीं है जिसे आलोचको ने विवादास्पद बना दिया है।

मिश्र बन्धुओं द्वारा प्रतिष्ठित चौथा तर्क कि "इनके वैरागी होने के कारण उच्च श्रेणी की स्त्रियाँ उन्हें नहीं मिलती थीं और केवल निम्न श्रेणी की स्त्रियों को वह इधर-उधर देखते होंगे, अतः स्त्रियों के विषय में इनको अनुभव अच्छा न था, यही कारण है कि उन्होंने उनकी निन्दा की।"[२५१] भी सर्वथा कुतर्क पूर्ण है।

सर्वप्रथम तो यही दर्शनीय है कि तुलसी ने अपने वृहद् साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों (पुत्री, माता, पत्नी, कुलवधु, प्रेयसी, सखी आदि) के जो चरित्रांकन किए हैं उनमें निम्न श्रेणी की स्त्रियों की प्रवृत्ति की झलक भी नहीं देखी जा सकती। उनके सभी प्रमुख नारी पात्र राज परिवार से सम्बन्धित हैं, जहाँ की पूर्ण गरिमा और गौरव उनमें विद्यमान है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्थल पर उन्होंने नारियों के चरित्र में जिस शील, संकोच, लज्जा, शुचिता और मर्यादा का संयोजन किया है, वह तुलसी के अतिरिक्त उनके समकालीन अथवा पूर्वतर हिन्दी साहित्य में तो है ही नहीं संस्कृत साहित्य में भी देखने को नहीं मिल सकता। वाल्मीकि रामायण की सीता अधिक दर्पमयी, सचेतन और तर्कशील एवं मुखरा हो सकती है परन्तु अधिक आदर्शोन्मुखी और श्रेष्ठ मर्यादा से सिंचित नहीं। तुलसी के नारी पात्रों में मौन शील की जो अजस्र धारा आदि से अन्त तक प्रवाहित होती है, वह केवल उच्चकुल की गिनी-चुनी स्त्रियों में ही देखने को मिल सकती है। सीता के प्राप्य राम जिनकी पावन प्रीति जन्म-जन्मान्तरों से उनके हृदय में अवस्थित है—पुष्प वाटिका में मिलते हैं—लेकिन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीता का शील है कि "चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखई न कोई" और मनोहर मूर्ति—'राम को मन में धारण कर ससंकोच नेत्र मूंद लेती है, इस पर सखी परिहास करती है—"बहुरि गौरि कर ध्यान करहू। भूप किसोर देखि किन लेहू।" सीता की मर्यादा और संकोच—नेत्र भर राम के दर्शन भी नहीं करने देता और मन की प्रीति दर्शनों के सौभाग्य को छोड़ना नहीं चाहती। फिर भी मर्यादावती कन्या अपने को माता-पिता के अधीन जानकर लौट पड़ती है लेकिन—"देखन मिस मृग विहंग तरु फिरह बहोरि बहोरि।।" इसी प्रकार वन-गमन से पूर्व शील संकोच से संयुक्त सीता जब राम वन-गमन का समाचार पाती हैं—

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाई।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाई

मानस —अयोध्या काण्ड।। ५७।।

आकुल-व्याकुल सीता पति के साथ वन जाना चाहती है परन्तु उनका शील और संकोच वाणी को अवरुद्ध कर देता है—

बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता।[२५२]
चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी।[२५३]

और जब बोलना आवश्यक हो जाता है तब सास के चरण छू कर अविनय के लिए क्षमा मांग लेती है—

उतरू न आव विकल वैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।
बरबस रोकि विलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनि कुमारी।।
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देवि बड़ि अविनय मोरी।[२५४]

ये मर्यादाएँ और शील की सुन्दर सीमाएँ निम्न कुल की स्त्रियों में क्या देखी जा सकती हैं ? और बिना देखे उनका ऐसा सूक्ष्म चित्रण कोई विरला ही कर सकेगा। यह शील संकोच सीता में ही नहीं है ग्राम की गंवार स्त्रियों में भी है सहज उत्सुकता के वशीभूत राम, सीता और लक्ष्मण का परिचय जानने के हेतु ग्राम वधुओं की मर्यादित वाणी, मर्यादित शील, सौजन्य एवं माधुर्य रस से सिंचित उसका उत्तर दोनों ही अद्वितीय हैं—

सीय समीप ग्राम तिय जाहीं। पूछत अति सनेहँ सकुचाहीं।।

रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड।। ११५।।२

बार-बार सब लागहिं पाएँ। कहहि वचन मृदु सरल सुभाएँ।

वही।। ११५।।३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।
सुनि सनेह मय मंजुल बानी। सकुचि सिय मन महुँ मुसकानी।।

वही।। १९६ ।।१

और सीता के उत्तर में जो मर्यादा पूर्ण माधुर्य और जो मनोहर शील सौजन्य से सिंचित सरस चित्रण है वह अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिल सकता—

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी।
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर वचन पिकबयनी।।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे।।
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि
भई मुदित सब ग्राम बधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटी।।[२५५]

इसी भाव की अभिव्यंजना कवितावली में और भी सरस रूप में हुई है।[२५६]

स्वर्ण मृग के प्रसंग में वाल्मीकि की सीता पुत्रवत लक्ष्मण को कटु वचन कहकर जिन शब्दों का प्रयोग करती है वे असहनीय प्रतीत होते हैं। साथ ही असभ्य और अमर्यादित से प्रतीत होते हैं। निरापराध लक्ष्मण पर ऐसे लांछन लगाने से तुलसी ने अपनी सीता को बचा लिया है और—"जाहू बेगि संकट अति भ्राता" के पश्चात् "मरम वचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछमन मन डोला।" कहकर ही तुलसी इस अप्रिय प्रसंग की इतिश्री कर देते हैं।[२५७] राम को नौका से नदी पार कराकर केवट दंडवत प्रणाम करता है और राम संकोच में पड़ जाते हैं कि इसे कुछ दिया नहीं।[२५८] बिना कुछ कहे ही उच्च कुल वधू और श्रेष्ठ कुल की पुत्री सीता जो पारिवारिक नियम और मर्यादा से अपरिचित नहीं है—

पिय हिय की सिय जाननि हारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी।
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरण गहे अकुलाई।।

मानस—अयोध्या काण्ड।। १०१।।२

ये ऐसे मर्यादित महताचरण के उदाहरण क्या निम्न वर्ग की स्त्रियों के हो सकते हैं ? सीता ही नहीं पार्वती के आचरण भी ऐसे ही श्रेष्ठ बन पड़े हैं। जिन शिवजी के लिए पार्वती ने कठोर तप किया उन्हें सम्मुख खड़ा देखकर तथा उनके यह कहने पर कि "अब जो कहो मैं वही करुँ" पार्वती केवल पुलकित होकर उनके चरणों में मस्तक नवाती हैं और संकोच के कारण स्वयं कुछ भी न कहकर सखी द्वारा शिवजी से पिता अधीन होने की बात प्रकट कर देती हैं। क्या ऐसे जीवन की पावन झाँकी कहीं अन्यत्र मिल सकेगी। पार्वती की शील संकोच भरी प्रीति, मर्यादा की दृढ़ नीति और लौकिक जीवन की व्यवहार कुशलता सभी की प्रशंसा करते हुए शिवजी लौट जाते हैं।[२५९]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्पष्ट है ऐसे उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि तुलसी उच्च वर्ग की स्त्रियों से मिले ही नहीं थे वरन् उन्होंने उनके क्रिया कलापों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा भी था। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी पत्नी बहुत ही सात्विक विचारों की तथा मर्यादावादी एवं शील संकोच से संयुक्त उच्च कुल की पुत्री थीं तभी उन्हें तुलसी का अर्द्ध-रात्रि के समय दौड़े चले आना (अपने माता-पिता के परिवार में भाइयों आदि के समक्ष) मर्यादाहीन लगा और वे क्षुब्ध हो गई होंगी अन्यथा कोई स्त्री नहीं चाहेगी कि उसका पति उसे त्याग कर संन्यासी हो जाए। इससे सिद्ध होता है कि देवी रत्नावली श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल के सम्माननीय परिवार की मर्यादा सम्पन्न कन्या थीं। अतः उस स्थिति में उन्हें संकोच और लज्जा की अनुभूति हुई होगी। क्षोभ के कारण अकस्मात ही उनके ये उद्‌गार प्रकट हो गए—

लाज न लागत आपको दौरे आयेहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहौ मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह मम, तामैं जैसी प्रीति।।
तैसी जो श्री राम महं, होती न तो भवभीति।।[२६०]

स्पष्ट है कि तुलसी ने परम मर्यादावादी स्त्री के सम्पर्क में अपना दांपत्य जीवन भोगा था और जीवन की सरस अनुभूतियों के मध्य पत्नी के शील संकोच में, मर्यादा की सूक्ष्म भावनाओं की अनुभूति की होगी, वे ही अनुभूतियाँ उनके काव्य में दृष्टिगत हुई हैं। इसके अतिरिक्त दांपत्य जीवन व्यतीत करते समय वे कुलीन घरों में पुरोहिताई करते थे वहाँ भी उच्च कुल की सुशील स्त्रियों के सम्पर्क में वे आये होंगे। सम्भव है यज्ञोपवीत, नइछू और विवाह आदि संस्कार भी उन्होंने कराये हों, जहाँ नाइन, तंबोलिन, दर्जिन, लोहारिन, मोचिन आदि निम्न श्रेणी की स्त्रियों को भी उन्होंने गाते बजाते तथा नेग मांगते देखा होगा, परन्तु इन निम्न वर्ग की स्त्रियों के भी जैसे सरस, सुन्दर और सूक्ष्म चित्र तुलसी काव्य में अंकित हुए हैं उन्हें देखकर भी यह नहीं कहा जा सकता कि निम्न वर्ग की स्त्रियों को वे निन्दनीय ही समझते थे। रामललानहछू में मातृका पूजन के अवसर पर शृंगार कर-कर के आने वाली सभी वर्ग की स्त्रियों में—हाथ में कंकन लिए विहँसती लुहारिन, शकुन की दही भरी हंडली लिए ग्वालिन, आकर्षक चितवन लिए सलोनी तंबोलिन, हाथ में जोड़ा लिए गौर वर्ण दर्जिन, आँगन में शोभित होती हुई संकुचित गात वाली मोचिन, मधुर भाषिणी मृदु-मृदु मुसकराती मालिन सभी के सुन्दर सरस चित्रण हैं।[२६१] सर्वोपरि परम गुणवती नायन जो अत्यन्त सुन्दर शृंगार करके मन्द-मुसकराती हुई आती है, जिसकी कमर की घुंघरूदार करधनी और बिछुओं की मधुर ध्वनि विमोहित करने वाली है अत्यधिक सलोनी है।[२६२] नाइन, रूप लावण्यमयी ही नहीं है वरन् वाचाल भी है और राम की माता से हास परिहास एवं विनोद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने की अधिकारिणी बनकर सामाजिक स्तर पर छोटे-बड़े सबकी समता का उदाहरण भी प्रस्तुत करती है।[२६३] इन सभी निम्न वर्ग की स्त्रियों का जो सरस चित्रण तुलसी ने किया है उसके आधार पर तो यह नहीं कहा जा सकता कि निम्न वर्ग की स्त्रियों को वे हीन या तुच्छ समझते थे, अथवा उनके अवगुणों से प्रेरित होकर उन्होंने नारी निन्दा की थी, वरन् इसके विपरीत उपर्युक्त चित्रण कवि की यौवन सुलभ स्त्री सौन्दर्यासक्ति तथा रसिकता का परिचायक ही माना जा सकता है।[२६४] रनिवास में एकत्रित ये सभी (उच्च एवं निम्न वर्ग की) स्त्रियाँ तुलसी के प्रभु राम को मन-मानी गालियाँ गाती हैं, राम संकोच में डूबे माता की ओर निहारते रह जाते हैं और तुलसी उमंगित होकर जैसे स्वांग-सभा की रस पूर्ण लीलाओं में आकंठ निमग्न हो जाते हैं—

गावहि सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो।
रामलला सकुचाहि देखि महतारी हो।।
हिल मिल करत स्वांग सभा रस केलि हो।
नाउनि मन हरषाई सुगंधन मेलि हो।।

रामलला नहछू ।।१८।।

स्त्रियों के ये सुन्दर सरस चित्रण और तुलसी की रस-निमग्नता, स्वतः ही इस बात के प्रमाण हैं कि तुलसी के अनुभव विस्तृत थे और उनका दृष्टिकोण विशाल था।[२६५] जिसमें कुंठा अथवा निन्दा को कोई स्थान नहीं था। डॉ० रामकुमार वर्मा के मतानुसार तुलसी साहित्य में नारी जाति के प्रति अत्यधिक आदर भाव की अभिव्यंजना हुई है।[२६६] अतः शैशवावस्था में ही तुलसी की माता का निधन तुलसी के हृदय में जननी रूप में नारी के प्रति सम्मान की भावना को उत्पन्न करने वाला मानना ही उपयुक्त हो सकता है घृणा का कदापि नहीं।

इसी प्रकार पत्नी त्याग की घटना से भी यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि पत्नी आक्रोश के कारण उन्होंने नारी निन्दा की है। यह घटना परिस्थितियों की वह विडम्बना थी, जिसने उनके सरस दांपत्य जीवन को विशृंखलित कर दिया था। इसमें उनकी पत्नी का कोई दोष नहीं था। सिद्धान्त रूप में तुलसी पत्नी त्याग को कभी भी अच्छा नहीं मानते थे। तुलसी भगवत् प्रेम में अति आसक्ति को बाधक मानते थे गृहस्थाश्रम को नहीं। तुलसी घर में ही गृह त्यागी की भाँति रहकर श्री राम जी के प्रेम की पुरी बसाने का निर्देश देते हैं।[२६७]

सीता त्याग के प्रसंग में भी तुलसी सीता की निष्कलंकता और उसे जानते हुए भी राम द्वारा उनके त्याग के विषय में परिस्थिति की विडम्बना की ओर ही संकेत करते हुए खेदपूर्ण वाणी में कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपजस जोग कि जानकी तनि चोरी की कान्ह
तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह।।

दोहावली ।।४६२।।

तुलसी जु पै गुमान को होतो कछू उपाउ।।
तौ कि जानकिहि जानि जियै परिहरते रघुराउ।।

दोहावली ।।४६३।।

निश्चय ही राम के पास जन समाज को समझाने का कोई उपाय होता तो वे निर्दोष जानकी का त्याग कभी न करते। तुलसी के राम क्योंकि लौकिक मर्यादाएँ रखने के लिए बड़े सतर्क थे, केवल इसी लिए विवश होकर उन्हें झूठी निन्दा पर पवित्रात्मा, साध्वी सीता का त्याग करना पड़ा—

बैरि बन्धु निशिचर अधम तज्यों न करै कलंक।
झूठे अघ सिय परिहरी तुलसी साई ससंक।।

दोहावली।।१६६।।

इसी प्रकार शिव द्वारा सती त्याग को भी उन्होंने परिस्थिति की क्रूरता ही माना है। सती ने सीता का वेश धारण किया था। अतः उन्हें पत्नी रूप में भोगना राम भक्त शिव ने अनुचित माना और परम पुनीत सती का त्याग उनके विषाद और संताप का कारण बना।[२६८] परन्तु फिर भी संतप्त शिव भक्ति के प्रण को निभाते हैं—

शिव सम को रघुपति व्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असिनारी।
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को शिव सम रामहि प्रिय भाई।।

मानस—बाल काण्ड।। १०३।।४

ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त कथन तुलसी के जीवन का अनुभूत सत्य है। प्रण पूर्वक राम की भक्ति के निर्वाह हेतु ही उन्हें भी अपनी निरपराध पत्नी को त्यागना पड़ा था। अन्यथा स्त्री का त्याग और निन्दा उनका वांछित सिद्धान्त नहीं है। पत्नी त्याग के अनौचित्य को ध्यान में रखकर ही सम्भवतः उदार और सहृदय तुलसी ने अपने श्रेष्ठतम लोकप्रिय ग्रन्थ मानस से सती सीता के त्याग प्रसंग को बहिष्कृत कर दिया है। तुलसी जिस कल्याणकारी आदर्श समाज की रूप रेखा प्रस्तुत कर रहे थे, उसका वही सुखद, स्वरूप ही उन्हें अभीष्ट था। अतः सीता त्याग के अवांछित और करुण प्रसंग से वे अपने रामचरितमानस को दुखान्त नहीं बनाना चाहते थे। इसीलिए सीता त्याग के परम्परागत काव्यानुमोदित सत्य को भी उन्होंने अपने महाकाव्य रामचरितमानस में स्थान नहीं दिया है।

मिश्रबन्धुओं का विचार है कि तुलसी ने राम निन्दा के भय से ही सीता त्याग के प्रसंग को जान बूझकर उड़ा दिया है।[२६९] इस विषय में सर्वप्रथम यही कहा जा सकता है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि तुलसी ने मानस में सीता त्याग के प्रसंग को न रखने पर भी गीतावली में पर्याप्त विस्तार से इस प्रसंग की विवेचना की है, जिसमें राम निन्दा एवं पत्नी त्याग के दोष परिहार का सफल प्रयास किया गया है।[२७०] निर्दोष एवं निष्कलंक सीता के त्याग के लिए राम के हृदय के अपार संकोच, खेद, विषाद और मार्मिक पीड़ा का तुलसी ने बार-बार उल्लेख किया है। साथ ही तुलसी वाल्मीकि की भाँति सीता को भयानक जंगल में न छुड़वाकर वाल्मीकि आश्रम में पहुँचा आने का आदेश ही, लक्ष्मण को, दिलवाते हैं, जो उनकी सहृदयता का परिचायक है। इस कार्य को करने में लक्ष्मण भी अत्यधिक संतप्त दिखलाई पड़ते हैं। लक्ष्मण स्वयं को दोषी मानते हुए और पिता के लिए कहे गए कठोर वचनों का स्मरण करते हुए उसी पाप का फल मान कर अपनी मृत्यु की कामना करते हुए दिखलाई पड़ते हैं।[२७१] अतः यही कहा जा सकता है कि तुलसी के मन की संपूर्ण सहानुभूति नारी जीवन के विभिन्न प्रसंगों में उदारता से प्रदर्शित की गई है।

वस्तुतः तुलसी के जीवन की घटनाएँ नारी निन्दा का कारण नहीं कही जा सकतीं। निन्दावाचक उक्तियाँ वास्तव में असद् नारी पात्रों के लिए प्रसंगानुकूल ही प्रयुक्त हुई हैं। तुलसी एक आदर्शवादी महान् कवि थे जिनकी सूक्ष्म दृष्टि सद् और असद् चरित्रों का निरीक्षण करने में पूर्ण समर्थ थी। असद् पात्रों के विश्लेषण और भर्त्सना से सद् पात्रों का उत्कर्ष दिखाना तथा सुन्दर आदर्शों का नियोजन करना ही उनका लक्ष्य था, जिससे स्वस्थ समाज का निर्माण सम्भव हो सके। अतः तुलसी काव्य में नारी केवल अपने पतित रूप में ही निन्दित हुई है। तुलसी ने जीवन की किसी कुंठित भावना के कारण नारी जाति पर निन्दात्मक कठोर प्रहार कहीं नहीं किए हैं।

(ख) तुलसी के व्यक्तित्व का प्रभाव—आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसी दास के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए कहा है "तुलसी कवि थे, भक्त थे, पण्डित सुधारक थे, लोक नायक थे और भविष्य स्रष्टा थे। इन रूपों में उनका कोई रूप किसी से घटकर नहीं था। यही कारण था कि उन्होंने सब ओर से समता की रक्षा करते हुए एक अद्वितीय काव्य की सृष्टि की जो अब तक उत्तर भारत का मार्ग दर्शक रहा है और उस दिन भी रहेगा जिस दिन नवीन भारत का जन्म हो गया होगा।"[२७२] तुलसी कवि थे, एक विद्वान् और महान् कवि जिन्होंने श्रेष्ठ गुरु के निरीक्षण में वेद-वेदांग, सूत्र, स्मृति और समस्त संस्कृत शास्त्र पुराणों का गूढ़ अध्ययन और मनन किया था।[२७३] फलस्वरूप इनका जो महिमामय व्यक्तित्व बना वह इनके ग्रन्थों पर सर्वत्र आच्छादित दिखलाई पड़ता है। इनकी नारी भावना भी इससे अछूती न रह सकी, और 'सत्य कवि कहहिं' 'कहं वेद पुराण श्रुति संता' आदि वाक्यों को बार-बार कहकर स्वतः ही यह प्रभाव प्रकट कर दिया है। इसी कारण अनेक स्थल ऐसे हैं जो संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद प्रतीत होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी महाकवि थे परन्तु उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्ष, अनन्य भक्त, आदर्शवादी पंडित, सुधारक और मर्यादित समाज सृष्टा के रूप में लोकनायकत्व रूप भी घट कर नहीं था। साथ ही किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न स्वरूपों को अलग-अलग कक्षों में रखकर नहीं देखा जा सकता और यह भी संभव नहीं है कि किसी रूप पर उसके दूसरे रूप का प्रभाव न हो, यदि ऐसा संभव होता तो तुलसी अपने समकालीन कवियों की भाँति अपने व्यक्तित्व के कवि रूप की अभिव्यक्ति के लिए नख-शिख वर्णन, नायिका भेद, अलंकार सौन्दर्य और अन्य काव्यात्मक तत्त्वों के प्रदर्शन के हेतु एक पृथक् ग्रन्थ लिखते और भक्ति भाव के उत्कर्ष के लिए दूसरा, लेकिन ऐसा नहीं है। उनका एक मात्र ग्रन्थ रामचरितमानस ही उनके कवि, भक्त, समाज सुधारक और लोकनायक रूप के सम्बद्ध व्यक्तित्व का महिमामय प्रदर्शन करने में समर्थ रहा है।

तुलसी के कवि ने यद्यपि अपने सुन्दर प्रबन्ध की रचना के लिए सुविख्यात लोक गृहीत और इतिहासोद्भूत कहानी लेकर उसे सम्पूर्ण काव्यात्मक गुणों से आवेष्टित करके प्रकट किया है तथापि "सत्य कहऊं लिखि कागद कोरे। कवित्त विवेक एक नहीं मोरे।" की विनम्र अभिव्यंजना से वे काव्य से अपनी अनभिज्ञता प्रदर्शित करना चाहते हैं, परन्तु सभी जानते हैं कि यह सत्य कवि का वह मनोहारी असत्य है जो केवल उनकी विनम्रता का परिचायक है। इसी प्रकार उनका भक्त प्रमुख होकर कहना चाहता है 'भनिति मोरि सब गुनि रहित। विस्व विदित गुन एक। एहि महं रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा।।' इसके द्वारा तुलसी केवल यही कहना चाहते हैं कि उनके काव्य का महान उद्देश्य राम गुणानुवाद ही है। इसी प्रकार व्यापक लोक हित की उदार चेष्टा भी उनके काव्य का लक्ष्य है—"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई।" अतः तुलसी के भक्त, कवि, लोकनायक और पण्डित, सुधारक के सम्मिलित व्यक्तित्व के प्रभाव से सुन्दर कविता की वह सरिता प्रवाहित हुई जो राम के यश के जल से परिपूरित, लोक कल्याण की मूल भावनाओं से प्रेरित और वेद की मर्यादाओं से बंधी हुई आदर्शोन्मुखी है।[२७४]

जब तुलसी-सुकवि कृत और सब प्रकार से श्रेष्ठ परन्तु राम नाम से विहीन अनूठी कविता की उपमा सुसज्जित, सुन्दर परन्तु वस्त्रहीन रमणी के समान अभद्र और अशोभनीय कहकर देते हैं,[२७५] तब पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी बाह्य सौन्दर्य के स्थान पर भावनात्मक सौन्दर्य पर विशेष ध्यान देते हैं। स्पष्ट है तुलसी के मन में नारी सौन्दर्य का जो दिव्य आदर्श स्थापित था वह नख-शिख वर्णन, वस्त्राभूषण चित्रण और नायिका भेद निरूपण से पृथक् उसके चिरन्तन शील सौन्दर्य से संयुक्त, आन्तरिक वैभव से सम्पन्न, मर्यादा के आवरण से आच्छादित, सलज्जता और शिष्टता से अभिसिंचित सत् स्वरूप ही था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी के सभी नारी पात्र, केवल शूर्पणखा और मन्थरा को छोड़कर सर्वत्र ही शील से संयुक्त सत् पात्र हैं। तुलसी स्वयं भी नारी चित्रण में एक मर्यादा बनाकर चले हैं। यदि वे चाहते तो उनमें इतनी प्रतिभा थी कि वे इच्छा करते ही नख-शिख वर्णन, नायिका-भेद चित्रण आदि के अनुपम चित्रों के अम्बार लगा सकते थे, जिसका अनुमान बरवैरामायण और रामलला नहछू के छन्दों को देखकर लगाया जा सकता है। लेकिन उन्हें यह अभीष्ट ही नहीं था। अतः सर्वत्र ही उन्होंने अपनी प्रतिभा को मर्यादा के परिधान से मंडित कर दिया है—"सोह नवल तनु सुन्दर सारी, जगत जननि अतुलित छवि भारी।।" जैसे अनेक स्थलों पर मर्यादा भावना के अनेक स्थलों पर इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं में भी परिवर्तन करा दिया है—"सीता चरण चोंच हति भागा" को देखकर यह नहीं कहा जा सकता है कि तुलसी इस तथ्य से कि इन्द्र पुत्र जयन्त कौए के रूप में सीता के वक्ष स्थल पर चोंच से प्रहार करके भागा था—अनभिज्ञ हैं। यह अभिव्यंजना उनकी मर्यादावादिता की भावना का ही प्रत्यक्ष प्रभाव कही जा सकती है। इसी प्रकार सीता हरण के पूर्व वाल्मीकि रामायण की सीता द्वारा लक्ष्मण को कहे गए वचन तुलसी की शील संकोच और मर्यादा से सम्पन्न सीता के मुख से नहीं निकल पाते, केवल सीता ने कुछ मार्मिक वचन कहे[२७६] कहकर वे बात की इतिश्री कर देते हैं। वे वचन क्या थे इसकी कल्पना पाठक स्वयं ही करें तो कर लें। सम्भव है तुलसी की मर्यादावादी प्रवृत्ति यह सहन ही नहीं कर सकती थी कि पावनी सीता को राक्षस रावण स्पर्श करने का अवसर प्राप्त करे। अतः हरण के पूर्व ही राम की आज्ञा से वास्तविक सीता अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है।[२७७] रावण सीता की छाया का ही हरण करता है।

राक्षसों के संहार के पश्चात् विजयी राम-लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वे आदर पूर्वक सीता को ले आयें। सीता के आगमन पर राम पुनः कहते हैं कि सीता पैदल ही चल कर आयें, इसका कारण उनका अपमान करना नहीं, वरन् वानरों को सीता के जननी रूप की झाँकी दिखाना मात्र ही है। तत्पश्चात् तुलसी के राम, वाल्मीकि के राम की भाँति कठोर अपमानजनक और असह्य शब्दों—कि सीता तुम लक्ष्मण, विभीषण अथवा सुग्रीव किसी के साथ चली जाओ, अब मेरे काम की नहीं हो,[२७८]—आदि की बौछार न करके कुछ कठोर वचन कहते हैं जिसका कारण वास्तविक सीता को प्रगट करना ही है—

सीता प्रथम अनल महुँ राखी प्रकट कीन्ह चह अन्तर साखी।।
तेहि कारन करुना निधि कहे कछुक दुर्बाद।।
मानस—लंका काण्ड।। १०८।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रसंग को देखकर तुलसी के उदार हृदय और सुकोमल भावनाओं का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

महाकवि तुलसी ने नारी के प्रेयसी रूप का जितना मधुर और मनोहारी चित्रण किया है, समाज सुधारक और लोकनायक तुलसी ने उसको उतना ही मर्यादित और लोकविहित रूप प्रदान किया है। सखी द्वारा राम का वर्णन सुनकर पुरातन प्रीति से प्रेरित सीता के लोचन दर्शनों को अकुला उठते हैं। उनकी उत्सुकता की कोई सीमा नहीं है परन्तु फिर भी सखी को आगे करके चलने की मर्यादा और शील को वे नहीं भूलतीं।[२७६] इस प्रसंग में सीता के अत्यधिक पावन रूप का दिग्दर्शन तुलसी ने कराया है। राम को देखकर सीता का हृदय हर्ष और स्तम्भ से परिपूरित हो जाता है—

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।

मानस—बाल काण्ड।।२३१।।२।।

थके नयन रघुपति छवि देखे। पलकन्हिहूं परिहरी निमेषें।।

वही ।।२३१।।३।।

अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।

वही।। २३१।।३

परन्तु—*लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।*

वही।। २३१।।४

सयानी सीता की चतुरता और शील प्रेम प्रसंग पर कपाट देकर मर्यादा से उनके पग बांध देती है और—*"धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितु बस जाने।।"*

परन्तु लौटते-लौटते मधुर प्रीति बाध्य कर देती है—

देखन मिस मृग विहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि
निरखि निरखि रघुवीर छवि बाढ़ई प्रीति न थोरि।।

वही।। २३४।।

हृदय में मधुर प्रीति का विस्तार कुछ कम नहीं है परन्तु मर्यादा और शील उसके विस्तृत विकास में बाधक होते हैं। ऐसे ही मर्यादित प्रेम का अवलोकन तब होता है जब पार्वती तपस्या के पश्चात् शिव को सम्मुख खड़े देखती हैं परन्तु समझ नहीं पातीं कि यह स्वप्न है अथवा सत्य है—*पुनि पुनि करै प्रणाम, न आवत कछु कहि।*

देखौं सपन कि सोंतुख ससि सेखर सहि।। ।।७७।।

पार्वतीमंगल

पार्वती के प्राप्य और उनके देवता शिव अमृत रस से सिंचित वाणी में कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमहि आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेऊ।
पार्वती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेऊ।
अब जो कहहु सो करउं विलंब न यहि धरि।

वही।। ८१, ८२।।

लेकिन अद्वितीय है वह मर्यादा कि केवल चरण छूकर सखी द्वारा अपने पिता की अधीनता प्रदर्शित कर पिता का मान बढ़ाकर घर की ओर लौट जाती है। तुलसी के मन में प्रीति की यही नीति प्रशंसनीय है।[२८०] आनन्द के बधावे और मंगल गान के मध्य ही विवाह की वेदी पर पावन मंत्रों के मध्य, ही प्रेयसी-प्रेमी का मिलन ही उन्हें अभीष्ट था।

इसके अतिरिक्त नारी के अन्य प्रेयसी रूप की कल्पना उन जैसे व्यक्तित्व को हो भी नहीं सकती थी। आज के युग की 'आई लव यू' और 'सिविल मैरिज़' की कल्पना वे कर भी कैसे सकते थे। यही कारण है कि मर्यादाहीन स्वेच्छाचारिणी नागिन सी दुष्ट हृदया शूर्पणखा जब कामातुर होकर कभी राम और कभी लक्ष्मण के सम्मुख प्रेम प्रस्ताव रखती है[२८१] तब तुलसी जैसे आदर्शवादी एवम् मर्यादावादी समाज सुधारक के लिए विषाक्त भावनाओं से भर जाना स्वाभाविक ही था।

अतः उनके राम वाल्मीकि के राम की भाँति शूर्पणखा से अधिक देर तक न विनोद कर सकते थे न परिहास ही, यहाँ व्यंग्य प्रधान हो जाता है और इस नारी के उच्छृंखल आचरण से क्षुब्ध तुलसी नारी के प्रति वे उद्‌गार प्रकट कर बैठते हैं, जिनके लिए आलोचक उन्हें किसी प्रकार भी क्षमा करना नहीं चाहते—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।।
होई विकल सक मनहि न रोकी। जिमि रवि मनि द्रव रविहि विलोकि।।[२८२]

इस उक्ति को लेकर लगभग सभी मान्य आलोचकों ने तुलसी की निन्दा की है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त अनेक उद्धरण देकर नारी मात्र के प्रति तुलसी की अनुदारता का परिचय देते हुए उपर्युक्त पंक्तियों पर सर्वाधिक दुःख की अभिव्यक्ति करते हैं क्योंकि इनका प्रतिस्पर्धी वक्तव्य उन्हें संत रचना में अन्यत्र नहीं मिला।[२८३] डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल इस कथन को नारी मात्र पर काम जन्य दुर्बलता का अशोभनीय खुला आक्षेप मानते हैं— उनकी दृष्टि में यह कथन नारी जाति के प्रति तुलसी के अनौदार्य ही नहीं अपितु घृणा भावना का प्रमाण है।[२८४]

डॉ० नगेन्द्र इन पंक्तियों के संदर्भ में अपनी धारणा अभिव्यक्त करते हैं कि—"जहाँ तक कटुता का सम्बन्ध है, मेरी धारणा है कि नारी के प्रति इससे अधिक अन्याय नहीं किया जा सकता। कहाँ नारी का पवित्रतम वात्सल्य भाव कहाँ द्रव शब्द की वीभत्सता ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहा जा सकता है कि यह निन्दा दुष्टा शूर्पणखा की है, साधारण नारी की नहीं परन्तु ऐसा नहीं है। ये पंक्तियाँ शूर्पणखा के प्रसंग में अवश्य कही गई हैं, किन्तु उसके लिए नहीं कही गई हैं। यह नारी व्यक्ति की भर्त्सना नहीं, नारी जाति की भर्त्सना है। और ये एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र को उद्दिष्ट करके नहीं कही गईं। ये तो काक-भुशुण्डि द्वारा गरुड़ से कही गई हैं—दूसरे शब्दों में स्वयं कवि की ही सामान्य टिप्पणी है।"[२८५] साथ ही डॉ० नगेन्द्र का विचार है कि तुलसी की नारी भावना को लेकर—"स्वभावतः ही आधुनिक नारी की उद्‌बुद्ध चेतना ने सहृदयता के न्यायालय में अपने प्रति न्याय की मांग की है।"[२८६]

उपर्युक्त प्रकाण्ड पंडितों द्वारा प्रस्तुत सम्मति से मैं यहाँ अपनी विनम्र असहमति प्रकट करती हूँ और उद्‌बुद्ध चेतनायुक्त आधुनिक नारी की न्याय की मांग के विरोध के लिए संकोच की अनुभूति करती हूँ और मेरी अनुभूति मुझसे अपने प्रति सच्चाई और तुलसी के प्रति ईमानदार होने की मांग करती है।

सर्वप्रथम इस उक्ति के प्रसंग में समस्त आलोचकों से विनम्र निवेदन है कि यह उक्ति भी तुलसी की अपनी न होकर संस्कृत नीति-वचनों का (हितोपदेश से) सीधा अनुवाद है जिसका मूल रूप और उसकी उग्रता द्रष्टव्य है—

सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्।
योनिः बिलयति नारीणां सत्यं-सत्यं हि नारद।।

प्रस्तुत श्लोक को देखकर तुलसी के प्रति आक्रोश और सहृदय पाठकों का दुःख एवं खेद स्वतः ही कुछ कम हो जायेगा। साथ ही डॉ० नगेन्द्र की यह मान्यता—कि तुलसी ने ही कटुता पूर्वक नारी के प्रति सर्वोपरि अन्याय किया है और 'द्रव' शब्द सर्वाधिक वीभत्स है[२८७]—भी छिन्न-भिन्न हो जाती है, क्योंकि उत्प्रेक्षा के आवरण में लिपटी उक्ति 'होई विकल सक मनहि न रोकी, जिमि रवि मनि द्रव रविहि बिलोकी" के स्थान पर (जहाँ केवल मन के द्रवित होने का उल्लेख ही है)—योनि बिलवयति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद' की घृणास्पद गर्हित और नग्न आक्षेप पूर्ण उक्ति कहीं अधिक वीभत्स है। इसके अतिरिक्त प्रसंग और संदर्भ की दृष्टि से भी तुलसी की उक्ति क्योंकि दुष्टा शूर्पणखा को लक्ष्य करके ही कही गई है, इसी लिए इसका भार उपर्युक्त श्लोक की तुलना में पासंग भर ही शेष रह जाता है। यही नहीं सूत्र स्मृति और पुराणों में तथा संत रचनाओं और जैन तथा बौद्ध धर्माचार्यों की धर्म कथाओं में न केवल इसकी प्रतिस्पर्धा वरन् उग्रता और बीभत्सता की दौड़ में इसे बहुत पीछे छोड़ जाने वाली एक नहीं अनेक उक्तियाँ हैं। पंचतंत्र, मित्र भेद (श्लोक १४६, १८५-१६२) के अनुसार नारी एक ही समय में एक पुरुष से बात करने वाली, दूसरे को कटाक्ष से देखने वाली, तीसरे का चित्त से स्मरण करने वाली, एवं पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुरुष के लिए लालायित तथा कुल नाशिनी है, जो लोक निन्दा की परवाह नहीं करती। हितोपदेश सुहृद (श्लोक १२०) में स्त्रियों का आहार दुगना, बुद्धि (चालाकी) चौगुनी, साहस (अविचारपूर्ण) छः गुना और काम भाव आठ गुना अधिक बतलाया गया है।

महाभारतकार महर्षि व्यास का कथन है कि स्त्रियाँ कुबड़े, अन्धे, मूर्ख और बौने के साथ संयुक्त हो जाती हैं, वे लंगड़े तथा अन्य कुत्सित पुरुषों के पास भी जाती हैं। स्त्रियों के लिए कुछ भी अगम्य नहीं है।[२६८] बौद्ध धर्म की जातक कथाओं में एक स्थान पर ६४ नौकरों से अनुचित सम्बन्ध रखने वाली स्त्री का वर्णन आया है।[२६९] जैन आचरांग सूत्र के अनुसार स्त्रियों को सुख का साधन समझना पुरुषों की मूर्खता है, क्योंकि वह अज्ञान, दुःख, मृत्यु और नरक का द्वार है।[२७०] फिर भी अब तक स्त्री के पावनतम स्वरूप मातृत्व को लांछित करने का साहस किसी ने भी नहीं किया था। परन्तु एक जातक कथा में सौतेली माता को पुत्र के साथ अनाचार करने को व्यग्र दिखलाया गया है।[२७१] तो दूसरी जातक कथा में एक वृद्ध आचार्य की अति वृद्धा माता, जो अंधी भी है, का आचार्य के एक युवा विद्यार्थी पर कामासक्त होना दिखलाया गया है जो उसकी सेवा (पैर आदि दबाना) किया करता था। पतन की परिसीमा यहीं समाप्त नहीं होती वरन् वह वृद्धा निर्विघ्न भोग विलास की लालसा में अपने एक मात्र पुत्र उस वृद्ध आचार्य का वध भी करा देना चाहती है।[२७२] संत कवियों ने भी नारी की कम विडम्बना नहीं की है। यहाँ तक कि जननी और वह भी यदि स्वर्ण निर्मित भी हो, तब भी कबीर उसके समीप बैठने का विरोध करते हैं।[२७३] क्या इससे अधिक नारी जीवन की विडम्बना की जा सकती है। जैनधर्माचार्यों के मतानुसार भी—जब स्त्रियों में वासना भड़कती है तो वह अपने सम्बन्धियों को भूल जाती हैं। उस समय उसका हृदय काठ की लकड़ी के समान हो जाता है।[२७४]

जहाँ तक नारी जाति मात्र के प्रति तुलसी की कटुता, अनौदार्य और घृणा का प्रश्न है—यह कहते हुए बहुत खेद होता है कि केवल कुछ उक्तियों को, प्रसंगों से विच्छिन्न करके और उसकी मनमानी आलोचना करके आलोचकगण हिन्दी भाषा के सर्वोत्तम कवि, राम के अनन्य भक्त, सबसे बड़े लोकनायक[२७५] एवं पंडित सुधारक में—घृणा, ईर्ष्या और चिढ़न[२७६] जैसी तुच्छ प्रवृत्तियों को खोजने का प्रयास करते हैं। तुलसी में नारी मात्र के प्रति अनौदार्य की भावना को देखना स्वयं अपने संकुचित दृष्टिकोण और अनुदारता का प्रदर्शन करना है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसी के चरित्र-चित्रण की अतुलनीयता, मधुरता और सुगमता का उल्लेख करते हुए लिखा है—"उनके पात्रों के आचरण में कोई न कोई विशेष लक्ष्य होता है। उससे मानव जीवन के किसी न किसी अंग पर प्रकाश पड़ता है या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किसी न किसी सामाजिक अथवा वैयक्तिक कुरीति की तीव्र आलोचना व्यक्त होती है।"[२६७] इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि शूर्पणखा के आचरण में ये दोनों ही लक्ष्य सिद्ध होते हैं। सर्वप्रथम यह प्रसंग मानव जीवन की प्रबलतम प्रवृत्ति कामवासना पर प्रकाश डालता है कि इस प्रवृति के अधीन मानव इतना वीभत्स हो जाता है कि वह धर्माधर्म को भुलाकर अपने सम्बन्धों की भी विडम्बना कर बैठता है। द्वितीय आसुरी वृत्ति से युक्त शूर्पणखा के वैयक्तिक दुर्गुण कामासक्ति की तीव्र आलोचना ही उपर्युक्त आलोच्य कथन का एकमात्र लक्ष्य है। डॉ० अग्रवाल ने इसको स्वीकार भी किया है कि शूर्पणखा राक्षसी होने के कारण कामरूप है, उसमें अतृप्त वासना है और ये पंक्तियाँ (भ्राता पिता.....विलोकी) उसकी मनःस्थिति को स्पष्ट करने के लिए ही हैं, तथा इनके द्वारा उसकी व्यभिचार वृत्ति भी सिद्ध की है परन्तु फिर भी न जाने क्यों वे तुलसी में नारी जाति के प्रति अनौदार्य ही नहीं अपितु घृणा भावना भी देखते हैं, जिसकी पुष्टि डॉ० माता प्रसाद गुप्त के कथन से करते हुए उपरोक्त कथन को नारी मात्र पर काम जन्य दुर्बलता का खुला और अशोभन आक्षेप मानते हैं।[२६८]

यदि स्थल और प्रसंग विशेष का ध्यान न रखकर तुलसी द्वारा प्रस्तुत की गई समस्त उक्तियों को इसी प्रकार के आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाये तो तुलसी सर्वत्र ही अशोभन आक्षेप करते हुए दृष्टिगत होंगे। इस दृष्टि से तो तुलसी देवता और दनुज, नर और किन्नर, प्रेत और पिशाच, भूत और बेताल सभी को काम का दास मानते हैं। अतः सभी से घृणा करते हैं—

देव दनुज नर किन्नर व्याला, प्रेत पिसाच भूत बेताला।
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी।

मानस—बालकाण्ड।। ८४।।३

और देवता, मनुष्य मुनि सभी को परम स्वार्थी कहते हैं—

सुर नर मुनि सबकी यह रीती। स्वारथ लागि करति सब प्रीती।

मानस—किष्किंधा काण्ड।।११।।१

यही नहीं तुलसी की दृष्टि में सभी नर कामासक्त, लोभासक्त, अति क्रोधी तथा देवता, ब्राह्मण वेद और संतों का विरोध करने वाले हैं—

सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव विप्र श्रुति संत विरोधी।

मानस —उत्तर काण्ड।।६८ख।।२

साथ ही नर मात्र की यह दशा उसके दैन्य, दौर्बल्य, विवशता भरी स्थिति की उद्घोषणा करती है जो पर्याप्त उपहासास्पद और निन्दनीय एवं क्षोभनीय है—

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहि नर मर्कट की नाईं।

वही।।६८ख।।१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्विचित वाले असन्तोषी नरों को देखकर स्वयं राम मन-ही-मन हँसते हैं और युवक (नर) इन्द्र (सर्वत्र ही तुलसी जिसे कामी और स्वार्थी मानते हैं) तथा कुत्ता (जिसकी विशेषताएँ सभी जानते हैं) तुलसी की दृष्टि में समान स्तर पर स्थित हैं—

लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।३०१।।४

साथ ही तुलसी समस्त पुरुषों की आचार विहीन अनीति को वर्णनातीत मानते हैं—

सब नर कल्पित करहि अचारा जाई न बरनि अनीति अपारा।

मानस—उत्तर काण्ड।। ९९ख।।—५

अन्त में एक उक्ति और द्रष्टव्य है जहाँ कामासक्ति की अवस्था में तुलसी नर को भी उसी धरातल पर देखते हैं—*'नहि मानत कोउ अनुजा तनुजा।'* (मानस उत्तरकाण्ड।। १०१ख।।३) निश्चय ही यह 'कोउ' पुरुष मात्र के लिए उपर्युक्त किया गया है। जिस प्रकार कामासक्त स्त्री, पिता पुत्र को नहीं समझती ठीक उसी प्रकार पुरुष पुत्री और भगिनी को नहीं मानता। ऐसी अवस्था में आज के उद्बुद्ध नर को भी क्षोभ होना आवश्यक हो जायेगा और समदृष्टा कवि तुलसी से न्याय की मांग करना अभीष्ट हो जायेगा।

पुरुष मात्र के निन्दा वाचक अनेकानेक उदाहरणों को देखकर यह भ्रम स्वतः ही मिट जाता है कि तुलसी ने पुरुष जाति की कहीं भर्त्सना नहीं की।[२९९] सद्गुरुशरण अवस्थी का भी विचार है कि तुलसी पर पक्षपात का आरोप लगाना अनुचित है।[३००] यदि विस्तृत दृष्टिकोण रखकर उदार हृदय से तथ्यों का विश्लेषण किया जाए और तुलसी के व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर उनका लक्ष्य समझने का प्रयास किया जाए तो स्पष्ट हो जायेगा कि तुलसी का समाज सुधारक व्यक्तित्व चाहता था कि मानव-समाज और व्यक्ति की कामजन्य दुर्बलता पर विजय हो। अतः उस दौर्बल्य का निर्देश कर उसके अधीन होने वाली स्त्रियों को अंग-भंग और पुरुषों को इस दुराचार के लिए वध के कठोर दंड का निर्णय देकर[३०१] वे अपने समाज संस्कर्ता रूप का कर्तव्य पूरा करते हैं। तुलसी का एक मात्र लक्ष्य था कि मानव स्वयं को जीवन की इस बीभत्स स्थिति से बचाता रहे। अतः यह धारणा कि—तुलसी को नारी जाति से घृणा है, वे उससे असन्तुष्ट हैं उसके प्रति उनके हृदय में विष कण है अथवा नारी के लिए उनके मन में चिढ़न है जिसके कारण वे नारी जाति को क्षमा नहीं कर सके—सर्वथा अन्यायपूर्ण और अनुदार दृष्टिकोण है।[३०२] श्री रामनरेश त्रिपाठी का मत भी यही है कि तुलसी की उक्तियों के वास्तविक उद्देश्य को समझ लेने पर हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।[३०३] अन्यथा फिर तो ब्राह्मण और शूद्र, पंडित और कवि, राजा और ठाकुर, सुर-नर-मुनि आदि सभी को तुलसी से न्याय की मांग करनी होगी, क्योंकि सभी के प्रति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी ने कटूक्तियाँ की हैं,[३०४] जिनसे उनके हृदय में भी क्षोभ उत्पन्न होना स्वाभाविक हो जायेगा। यही नहीं विष्णु के अवतार राम के परम भक्त तुलसी ने इस दृष्टि से तो भगवान् विष्णु की भी क्रुद्ध नारद के वचनों में—ईर्ष्यालु, कपटी, धोखेबाज, स्वार्थी और ठग आदि कहकर अत्यधिक भर्त्सना की है।[३०५] यदि ऐसा मान लें तो क्या तुलसी विष्णु की निन्दा करके अप्रत्यक्ष रूप में राम की निन्दा नहीं करते ? वास्तव में किसी प्रबन्ध काव्य की उक्तियों को—प्रसंग, वक्ता, श्रोता, प्रयोग, अवस्था और परिस्थिति से विच्छिन्न करके देखना अर्थ के अनर्थ करना ही है।[३०६] आचार्य शुक्ल के विचारानुसार भी—"अतः स्त्रियों को जो स्थान-स्थान पर बुरा कहा है उसका ठीक तात्पर्य यह नहीं है कि वे सचमुच वैसी ही होती हैं,...वह सिद्धान्त वाक्य नहीं है अर्थवाद मात्र हैं।[३०७]

यदि तुलसी—"भ्राता पिता पुत्र उरगारी" कहते हैं तो यह भी मानते हैं कि—"उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं।" तथा "मध्यम परपति देखई कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।" इसके साथ ही साथ "शंभु सरासन डगई न कैसे, कामी वचन सती मन जैसे।" की उपमा देकर सती स्त्रियों के हृदय की दृढ़ता और निश्चलता का परिचय भी तो तुलसी ही देने में समर्थ हुए हैं। उपर्युक्त दोनों प्रकार की उक्तियों तथा-भ्राता पिता पुत्र की उक्तियों में परस्पर विरोध देखा जा सकता है। लेकिन ऐसा वही समझेंगे जो सिद्धान्त और अर्थवाद में भेद नहीं समझते। इसे समझ लेने पर तथा प्रसंग विशेष में कवि के भीतरी उद्देश्य को शोधपूर्ण दृष्टि से परखने पर, स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगा कि उपर्युक्त प्रथम पंक्ति (भ्राता पिता पुत्र उरगारी) केवल शूर्पणखा तथा उसी के समान नीच, दुष्ट हृदयास्त्रियों की कामुकता की भीषणता को प्रदर्शित करने के लिए ही कही गई है और दूसरी उक्तियाँ सती स्त्रियों की महिमा तथा सात्त्विक प्रवृति की स्त्रियों के लक्षण हृदयंगम कराने के लिए ही कही गई है, जिसका कारण उनके समाज सुधारक व्यक्तित्व का कर्तव्य पूर्ण करना है। अतः डॉ० नगेन्द्र का कथन कि—"ये पंक्तियाँ शूर्पणखा के प्रसंग में अवश्य कही गई हैं, किन्तु उसके लिए नहीं कही गई हैं यह नारी व्यक्ति की भर्त्सना नहीं नारी जाति की भर्त्सना है।" उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। वास्तव में ये पंक्तियाँ शूर्पणखा के प्रसंग में केवल शूर्पणखा या अधिक से अधिक उस जैसी कामुक स्त्रियों के लिए ही प्रयुक्त समझी जा सकती हैं सारी नारी जाति के लिए कदापि नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के अनुरूप ही बात कहने का ढंग अपनाता है। कोई व्यक्ति समष्टि के दोष को देखकर व्यष्टि को लांछित करता है तो कोई व्यक्ति के दोष को देखकर समष्टि पर दोषारोपण कर दिया करता है। सामाजिक मनोविज्ञान के नियम 'फिनोमिनन स्टेरियोटाइप' के अनुसार व्यक्तियों में बात का साधारणीकरण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने की प्रवृत्ति ही अधिक पाई जाती है। सम्भवतः इसी से प्रेरित होकर आज के इस जागृति युग में भी रेल मंत्री श्री जगजीवन राम ने सभी स्त्रियों की नदी से तुलना करते हुए सभी स्त्रियों को चंचल मानकर उन्हें काबू में करने के सतत् प्रयत्न का उल्लेख किया है और स्त्री मात्र में उच्छृंखल प्रवृत्ति की प्रधानता के कारण सभी भारतीय नदियों के स्त्रीलिंग होने की बात कही है।[३०८] निश्चय ही श्री जगजीवन राम सभी स्त्रियों को उच्छृंखल नहीं मानते होंगे केवल कुछ स्त्रियों की चंचल प्रवृत्ति को देखकर उन्हों ने ऐसी उक्ति कर दी है। इसी प्रकार तुलसी के द्वारा जो साधारण उक्तियाँ कही गई हैं वे सभी स्त्रियों के लिए न होकर उसी प्रकार की स्त्रियों के लिए ही समझनी चाहिएँ, अन्यथा मातृ शक्ति के उपासक महा कवि तुलसी के लिए किसी प्रकार भी यह सम्भव नहीं था कि सारी मातृ जाति को वैसा कहते। उनका अभिप्राय असती स्त्रियों से है अन्यथा उनके काव्य में उद्‌भूत पावनतम नारी स्वरूपों का चित्रण कैसे सम्भव होता। एक दृष्टि से इस कथन की परीक्षा और भी की जा सकती है। यदि यह कथन केवल शूर्पणखा के लिए न होकर सम्पूर्ण नारी जाति के लिए है तो देखना चाहिए कि इतने बड़े प्रबन्ध काव्य मानस में कही अन्य स्थल पर इसे खपाया जा सकता है।

सर्वप्रथम पुष्प वाटिका में सीता, राम के मनोहारी रूप को देखती हैं और प्रेम विह्‌वल हो जाती हैं—

थके नयन रघुपति छवि देखें। पलकन्हिहूं परिहरी निमेषें।
अधिक सनेहं देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।

क्या यहाँ पर ये उपर्युक्त पंक्तियाँ (होई विकल सक मनहि न रोकी। रवि मनि द्रव जनु रवि ही विलोकी।) रखकर इनकी उपयुक्तता सिद्ध की जा सकती है। निश्चय ही राम की पत्नी आदि शक्ति सीता के संदर्भ में इन पंक्तियों को रखने की मूर्खता कोई नहीं करेगा तो फिर सीता की सखी जो उनसे पूर्व राम-लक्ष्मण के दर्शन करती है और प्रेम विह्‌वल हो जाती है—

तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई।।
तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।
कहु कारनु निज हरष कर पुछहिं सब मृदु बैन।

क्या यहाँ पर शूर्पणखा के लिए कही गई पंक्तियों को रखकर सार्थक किया जा सकता है ? निश्चय ही नहीं। ये देवी सीता की सात्त्विक सखियाँ हैं—इसे सुनकर सभी सखियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को सात्त्विक हर्ष में लीन दिखाया गया है। फिर क्या उससे भी पूर्व जनकपुरी के राजपथों पर जाते हुए राम-लक्ष्मण को झरोखों से देखती हुई स्त्रियाँ जब अनुराग से भर जाती हैं—

जुवती भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागी।

तथा राम-लक्ष्मण के रूप पर करोड़ों कामदेवों को न्यौछावर करने की भावना रखती हैं—

वय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम।।

इस पर क्या यहाँ भ्राता पिता पुत्र उरगारी' का आरोपण करना सम्भव है ? इसी प्रकार धनुष यज्ञ की भूमि, पर जहाँ स्त्रियाँ हर्षित होकर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार मूर्तिमान शृंगार के रूप में उन्हें (राम) देखती हैं—'नारि बिलोकहि हरषि हिंयं। निज निज रुचि अनुरूप। जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप।' तब भी क्या 'भ्राता पिता पुत्र उरगारी' की कल्पना की जा सकती है ? यहाँ भी वे पंक्तियाँ खपाई नहीं जा सकतीं, क्यों कि यहाँ सभी रानियाँ उन्हें शिशु के समान देखने लगीं। अतः उपरोक्त भावना को कहीं स्थान नहीं है। जनक पुर की सती साध्वी स्त्रियाँ तुलसी की पुनीत सृष्टि हैं।[३०६] अतः इन्हें छोड़ भी दिया जाये तो वन पथ पर जहाँ राम-लक्ष्मण और सीता के वन-गमन के अवसर पर—

सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काजु बिसारी।

स्त्रियों के शरीर पुलकित और नेत्र सजल हो जाते हैं और कोई कोई नारी तो सीता की भाँति ही—"एक नयन मग छवि उर आनी। होहिं सिथिल तनमन बर बानी।" यदि यहाँ पर तुलसी वे पंक्तियाँ रख देते तो सम्पूर्ण स्त्री जाति पर कामुकता का आक्षेप सम्भवतः ग्राह्य हो जाता, लेकिन यहाँ भी गाँव की गंवार स्त्रियाँ राम के समीप न जाकर सीता से ही विनम्र प्रश्न करती हैं—

राज कुअंर दोउ सहज सलोने। इन्ह तो लही दुति मरकत सोने।
स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर सुषमा ऐन

यहाँ पर भी ग्राम वधुएँ न तो शूर्पणखा की भाँति कामुक वासना प्रकट करती हैं और न प्रस्ताव ही। वे सीता से सीधा सा सात्त्विक परिहास ही करती हैं—

कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे।

और सीता भी—*सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महु मुस्कानी।*

अतः 'भ्राता पिता पुत्र उर गारी' को पुनः कहीं स्थान नहीं है।

इन ग्राम की स्वभाव से ही साधु स्त्रियों को छोड़ भी दिया जाए तो राक्षस वंश की अन्य स्त्रियों के प्रसंग में ही यदि ये पंक्तियाँ रखकर देखी जा सकें तो इनका अनौचित्य भी दृष्टिगत न होगा। रावण राक्षसी प्रवृत्ति का अहंकारी, मदान्ध दुष्ट व्यक्ति है। उसकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पत्नी बार-बार राम लक्ष्मण के रूप गुण का बखान करती हुई उसे युद्ध-विरत करना चाहती है—वहाँ तो क्रोधी रावण निश्चय ही कह सकता था कि—

भ्राता पिता उर गारी। पुरुष मनोहर निरखति नारी।
होई विकल सक मनहि न रोकी। रवि मनि द्रव रवि ही विलोकी।।

परन्तु वहाँ भी इन पंक्तियों की उपयुक्तता सिद्ध नहीं की जा सकती। वहाँ रावण विहंस कर परिहास में नारियों के परम्परागत वर्णित अवगुणों का वर्णन करता है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि जो पंक्तियाँ शूर्पणखा को लक्ष्य करके कही गई हैं, वह केवल उसी के लिए हैं और उसी के प्रसंग में खपाई जा सकती हैं। अन्यत्र कहीं नहीं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने नारी की जहाँ भी निन्दा की है वह उसके असत् रूप की ही है, अन्यथा नारी के माता, पत्नी, भगिनी आदि स्वरूपों में वह सर्वत्र ही सम्माननीय—एवं वन्दनीय चित्रित की गई है। इतने पर भी तुलसी के हृदय में नारी मात्र के प्रति अनादर की भावना खोजना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। इन जैसे सरल और शील की मर्यादा से संयुक्त व्यक्ति में ईर्ष्या, द्वेष या बैर-विरोध की प्रवृत्तियों को देखना सब प्रकार से अनुचित है। श्यामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल भी इसकी पुष्टि करते हैं।[३९०] यदि नारी के प्रति उनके हृदय की सच्ची भावनाओं को देखना है तो वह उनके सत् पात्रों के चरित्र के अपार वैभव में खोजना चाहिए, न कि उनके द्वारा प्रस्तुत संत वैरागियों में। आचार्य शुक्ल का विचार है कि यदि कहीं निवृत्ति पथ की अवरोधक नारी की उन्होंने निन्दा की भी है तो—"वैरागी समझ कर उनकी बात का बुरा न मानना चाहिए।"[३९१]

तुलसी के व्यक्तित्व में उनका समाज सुधारक रूप सदा जागरूक रहा है। समाज के गलित अंगों को काट फेंकना उनका लक्ष्य था। अतः जहाँ भी सामाजिक मर्यादाओं और धर्म की सीमाओं को लांघने वाले चरित्र आए उनकी उन्होंने निन्दा की है और उनके लिए कठोर दंडों का विधान प्रस्तुत किया है। उनका आदर्श था कि सभी स्त्री-पुरुष धर्माचरण का दृढ़ता से पालन करते हुए मोक्ष के अधिकारी बनकर सुखपूर्वक जीवन यापन करें। इसकी अभिव्यंजना उन्होंने राम राज्य के आदर्श समाज का निरूपण करते हुए की है—

राम भगति रत नर अरू नारी। सकल परम गति के अधिकारी।
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरू नारि चतुर सब गुनी।
सब उदार सब पर उपकारी विप्र चरन सेवक नर नारी।
एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।

इस प्रकार तुलसी ने अपने उदार व्यक्तित्व के कारण सबको समान अधिकार दिए हैं तथा सभी के हित को ध्यान में रखकर सदुपदेश दिए हैं। बाबू श्यामसुन्दर दास तथा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

डॉ० बड़थ्वाल का कथन है कि—"प्राणिमात्र से उनके हृदय का लगाव था और सभी के हित साधन को वे लक्ष्य में रखते थे.....कोई उनकी प्रशंसा करे अथवा निन्दा, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं रहता था, उन्होंने अपने निन्दकों को लक्ष्य करके स्वयं कहा है—

कौउ कहै करत कुसाज दगा बाज बड़ो,
कौउ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जाने महा साधु खल जानै महाखल,
बानी झूठी सांची कोटि उठत हबूब है।।

साधु संतों को भला बुरा कहने से निश्चय ही लोग अपनी ही वास्तविकता का परिचय देते हैं।"[३९२] अतः तुलसी के संत एवं समाज सुधारक तथा लोकनायक और महाकवि के समन्वित व्यक्तित्व को देखते हुए, उसके प्रभाव को उनके काव्य में देखना तथा उसके बाद निष्कर्ष निकालना ही उपयुक्त हो सकता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से प्रभावित उनके साहित्य में कहीं भी नारी की न निन्दा है और न अपमान।

तुलसी मूलतः भक्त थे।[३९३] उनका सम्पूर्ण साहित्य राममय है। अपने काव्य में उन्होंने राम कथा का वर्णन नहीं किया वरन् मानस रामायण को श्री रघुनाथ के नाम में निरत जानकर अपने अन्तःकरण के अंधकार को मिटाने के लिए और राम की अनन्य भक्ति प्राप्त करने के हेतु ही रामकथा को मानस के रूप में भाषाबद्ध किया है।[३९४] अतः तुलसी के विचार में..."प्राकृत जन कीन्हे-गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछताना" है। उनका ध्येय केवल राम के गुण-गान के द्वारा निर्मल राम भक्ति को पाना ही है। तुलसी का भक्त स्वरूप कहीं भी उनसे पृथक् नहीं होता। कहीं-कहीं तो अत्यधिक सरस और कलात्मक प्रसंगों में राम के ईश्वरत्व की स्थापना करके उन्होंने काव्य की सहजता मनोरमता और तल्लीनता को एक झटके से जैसे समाप्त कर दिया है।

तुलसी का यह भक्त रूप तुलसी के कुछ नारी पात्रों में विशेष रूप से अभिव्यंजित हुआ है। साधारणतः मानस के सभी पात्र रामाश्रित हैं, परन्तु मुख्यतः सुमित्रा, मंदोदरी और शबरी ऐसे नारी पात्र हैं जिनका व्यक्तित्व तुलसी के भक्त से अत्यधिक प्रभावित है जो कहीं-कहीं खटकने भी लगता है। विशेष रूप से मन्दोदरी के चरित्र में यह प्रभाव दुर्गुण बनकर सम्मुख आता है। जहाँ तक रावण को राम के प्रभुत्व और बल का बखान करके उनकी शरण में जाने की, सीता को वापिस करके सन्धि करने की सम्मतियाँ देने का प्रश्न है, मन्दोदरी के लिए उसे उचित कहा जा सकता है क्योंकि खर-दूषण, त्रिशिरा और बालि के वध उसे भयभीत और शंकित बनाए हुए थे। परन्तु रावण की मृत्यु पर विधवा मंदोदरी का विलाप कुछ अनुचित जान पड़ता है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तब बस विधि प्रपंच सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा।
अब तव सिर भुज जंबुक खाही। राम विमुख यह अनुचित नाहीं।।
काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना।।[३१५]

इसके अतिरिक्त और भी—

जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं।।
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तब तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं।।[३१६]
अहह नाथ रघुनाथ सम कृपा सिंधु नहिंआन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान।[३१७]

उपर्युक्त उद्धरण देखकर कोई कह ही नहीं सकता कि यह किसी पत्नी का पति की मृत्यु पर उसके शव के निकट बैठकर किया गया विलाप है। नाथ और पिय शब्दों को हटा देने पर, मन्दोदरी कहीं है ही नहीं, वहाँ तुलसी और वे भी केवल इष्ट देव की विजय पर उनकी महानता के सम्मुख नतमस्तक हो स्तुति करते हुए दृष्टिगत होते हैं। यहाँ अनन्य भक्त तुलसी अपने कवि धर्म को भूलकर—प्रबन्ध काव्य के सूत्र, परिस्थिति और पात्र; मन्दोदरी उसका वैधव्य और वैधव्य की दारुण पीड़ा सब कुछ भूलकर जैसे तटस्थ हो गए हैं और केवल उनका भक्त व्यक्तित्व ही आत्म विभोर हो प्रभु के गुणगान में निरत हुआ है।

इसी प्रकार चौदह वर्ष तक वनों में भटकने के बाद लौटे हुए पुत्र और माता का मिलन—"भैटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जान" से भी यही प्रतीत होता है कि तुलसी भूल गए कि सुमित्रा लक्ष्मण की जननी भी है। यहाँ भी उनका भक्त जैसे मुखर हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मण का नाता राम से है और वह भी केवल भक्ति का। सुमित्रा केवल यही भक्ति का नाता मानती हैं परन्तु कौशल्या का राम से मिलन अत्यधिक स्वाभाविक और मार्मिक बन पड़ा है।[३१८]

भगवान् राम की परम् भक्त शबरी के कि—'अधम ते अधम अधम अति नारी', कथन पर भी उनके भक्त व्यक्तित्व का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। वस्तुतः तुलसी का भक्त व्यक्तित्व जहाँ भी उनके नारी चित्रण पर आच्छादित हुआ है वहाँ चरित्र की स्वाभाविकता नष्ट हो गई है और सरसता समाप्त हो गई है। इसमें तुलसी का दोष अधिक नहीं है क्योंकि वे मूलतः भक्त हैं और भक्ति के हेतु अपने भक्त रूप के स्वांतः सुखाय के लिए ही उन्होंने मानस की रचना की थी। अतः इस पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

वन-पथ पर राम लक्ष्मण और सीता के दर्शन करके जब सरल हृदया ग्राम वधुएँ—"कहै हम लोक वेद विधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी।।" की दैन्य भावनाओं का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रदर्शन करती हैं तब आलोचक मान बैठे हैं कि तुलसी ने नारी मात्र के आचार व्यवहार को मलीन कहा है,[३१९] परन्तु प्रसंग और अन्तर्भूत भावों की दृष्टि से इसमें केवल दास्य भाव की भक्ति से ओत-प्रोत तुलसी के हृदय का वही दैन्य झाँक रहा है जो विनय पत्रिका में प्रकट हुआ है—

माधव मो समान जग माँही।

सब विधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन विषय कोउ नाहीं।[३२०] अतः ऐसे स्थलों पर न्यायपूर्ण दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि ऐसे कथनों के पीछे तुलसी का लक्ष्य नारी मात्र को हीन दिखाना नहीं था वरन् उनके भक्त हृदय का प्रदर्शन मात्र ही कहा जा सकता है।

इसी प्रकार का कथन कपटाचरण करने वाली सती का भी है जिसमें उसके अपने अपराध की ग्लानि ही अधिक अभिव्यंजित हुई है—

कीन्ह कपटु मैं संभु सन, नारि सहज जड़ अज्ञ।

इस कथन के आधार पर यह कह देना कि तुलसी सती अथवा नारी मात्र को जड़ और अज्ञानी मानते थे अनुचित है क्योंकि इन्ही सती का अनेक स्थलों पर पावन बुद्धि के लिए साधुवाद किया है—"धन्य सती पावन मति तोरी"[३२१] अतः ऐसे कथन परिस्थिति विशेष के आधार पर पात्र विशेष की मनःस्थिति और उसके दैन्य का प्रदर्शन ही करते हैं, नारी मात्र की निन्दा नहीं। डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार बुद्धदेव के बाद भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास थे। आचार्य हजारी प्रसाद का विचार है कि तुलसी असाधारण शक्ति सम्पन्न कवि, लोकनायक और महात्मा थे।[३२२] उस युग में जब कि धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक सभी दृष्टियों से समाज विशृंखलित और पतित हो रहा था, सामाजिक मर्यादाएँ मिट रही थीं और नैतिक पतन के गर्त में व्यक्ति धँसता जा रहा था तब तुलसी ही थे जिन्होंने मानस के माध्यम से नूतन आदर्श समाज का सृजन किया।

तुलसी के कवि, भक्त, सुधारक, लोकनायक और भविष्य सृष्टा के मिले जुले भव्य व्यक्तित्व के असीमित विभव का विस्तार तुलसी के सम्पूर्ण काव्य में अनुस्यूत दिखलाई पड़ता है। अतः पात्रों के चरित्र-चित्रण, प्रबन्ध-निर्वाह और देश-काल तथा परिस्थितियों की स्वाभाविकता की रक्षा में कहीं उनका कवि मुखर हुआ है, तो कहीं प्रभु के गुणानुगान में उनका भक्त तल्लीन होता हुआ दिखलाई पड़ता है। कहीं सम्पूर्ण लोक के हिताहितों के लिए उनका लोक नायक सचेष्ट होकर लोक मर्यादाओं का निर्माण करने के लिए सद्-असद् का विश्लेषण करता हुआ दिखाई पड़ता है तो कहीं भविष्य के स्वस्थ समाज का निर्माण करने के लिए उनका भविष्य सृष्टा रूप जागरूक हुआ है। अतः उनके काव्य में केवल नारी निन्दा के लिए—नारी निन्दा कहीं नहीं की गई है। उनके व्यक्तित्व में नारी के प्रति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किसी कुण्ठा और तद्जनित नारी भर्त्सना की कल्पना करना संकुचित दृष्टिकोण का ही परिचायक है।

तुलसी ने तो ऋग्वेद की पावन ऋचा के आदेश—

तन्तु तत्वन् रजसो भानुमन्विहि, ज्योतिषमतः पथो रक्षधियाकृतान्। १०।५३।६

के अनुसार प्रकाशयुक्त मार्गों को अपनी बुद्धि से परिष्कृत करके उनकी रक्षा की तथा संसार का ताना-बाना बुनने वाले जीवों को प्रकाश (ज्ञान) के पीछे चलने का मार्ग दिखलाया।

निष्कर्ष—तुलसी की नारी भावना पर साहित्यिक परम्परा, समकालीन साहित्य एवम् परिस्थितियों तथा उनके व्यक्तित्व और जीवन सभी का प्रभाव लक्षित होता है।

तुलसी ने स्वयं ही अपने प्रबन्ध ग्रन्थ मानस के प्रारम्भ में अपने काव्य को 'निगमागम सम्मत' कहकर पूर्ववर्ती परम्परा के प्रभाव को स्वीकार किया है। परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि तुलसी में मौलिक प्रतिभा का अभाव था।

विशेष रूप से संस्कृत साहित्य में अभिव्यंजित नारी के सत् और असत् दोनों स्वरूपों से तुलसी प्रभावित हुए हैं। एक ओर तुलसी साहित्य में नारी अपने उज्ज्वलतम स्वरूपों (पुत्री, पत्नी और माता) में वैदिक कालीन संस्कृति पर अवस्थित देखी जा सकती है जहाँ वह उसी गौरव, गरिमा और श्रद्धा की अधिकारिणी है तो दूसरी और संस्कृत काव्य की परम्परा के अनुसार ही नारी निन्दक उक्तियाँ भी देखी जा सकती हैं परन्तु वे केवल नारी के असत् रूपों की निन्दा के लिए ही प्रयुक्त की गई हैं।

तुलसी साहित्य की अनेक उक्तियाँ संस्कृत से सीधा अनुवाद हैं तथा अनेक भाव की दृष्टि से समकक्ष रखी जा सकती हैं, परन्तु उनमें भी प्राचीन परम्पराओं का पिष्टपेषण मात्र नहीं है। तुलसी ने गहन अध्ययन किया जो उनके व्यक्तित्व का अंग बन गया था। उन्होंने समस्त स्वाध्याय को स्वानुभूति की अग्नि में पचाकर पुरातन उक्तियों को नूतन संदर्भों में नूतन अभिव्यंजना के साथ प्रस्तुत किया है जो उनके नीर-क्षीर विवेक का ही परिचायक है।

संस्कृत काव्यों से तुलसी साहित्य में अवतरित नारी निन्दक उक्तियों में भी तुलसी के परित्याग और ग्रहण की सूक्ष्म और अनूठी मौलिकता के दर्शन होते हैं। सभी उक्तियाँ उनकी प्रबन्ध पटुता के मध्य प्रसंगों, संदर्भों, पात्रों, परिस्थितियों और अवस्था के अनुरूप इस सुन्दरता से चयनित की गई हैं कि उनका प्रयोजन नारी निन्दा न होकर नारी के असत् रूप का स्पष्टीकरण और सत् रूप का उत्कर्ष ही प्रतीत होता है।

पूर्वतर हिन्दी साहित्य की परम्परा से भी तुलसी कुछ अंशों में प्रभावित हुए हैं परन्तु नारी निन्दा का जैसा उग्र स्वर संत कवियों की वाणी में उद्भूत हुआ है, वैसा विकृत स्वर मर्यादावादी तुलसी की संयत शैली में खोजना असंगत सा ही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी को सूफी काव्य से प्रभावित नहीं कहा जा सकता। सूफी काव्य आध्यात्मिक दृष्टि से भी तुलसी से भिन्न है अतः उसका कोई विशेष प्रभाव उन पर परिलक्षित नहीं होता। जहाँ तक नारी निन्दा का प्रश्न है सूफी काव्य में आध्यात्मिक दृष्टि से ईश्वर की स्त्री (पत्नी) रूप में उपासना करने पर भी लौकिक नारी की निन्दा संतों की भाँति ही तीव्र और स्पष्ट स्वर में की गई है।

तुलसी के समकालीन कृष्ण काव्य में भी यद्यपि विष्णु के सगुण रूप की उपासना की गई है तथापि कृष्ण काव्य में मधुर भाव की भक्ति परम्परा से तुलसी की राम भक्ति पद्धति में अन्तर है। अतः तुलसी की नारी भावना पर कृष्ण काव्य का कोई विशेष महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं देखा जा सकता। कृष्ण काव्य और तुलसी साहित्य में फिर भी अनेक उक्तियाँ समान रूप से एक ही भाव की अभिव्यंजना करती हैं जिसका कारण दोनों साहित्यों पर संस्कृत काव्य की परम्परा का प्रभाव ही है।

प्रत्येक कवि तत्कालीन सामाजिक जीवन और राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से अवश्य ही प्रभावित होता है। तुलसी पर भी उनका पर्याप्त प्रभाव देखा जाता है। जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपने युग की सभी उपरोक्त अवस्थाओं का चित्रण किया और सुधारवादी दृष्टिकोण को सामने रखकर सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और नैतिक दृष्टि से पतित होती हुई जनता की मान्यताओं के परिष्कार और समाज के नूतन संस्कार के लिए सत् और असत् का वास्तविक विश्लेषण किया। अतः नारी के असत् रूप को दिखलाकर उसकी निन्दा की तथा सत् रूप का साधुवाद करके नारी के आदर्श स्वरूपों के प्रति अपने हृदय के आदर भाव को अर्पित किया है।

प्रत्येक कलाकार के जीवन की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रतिच्छाया उसकी कलाकृतियों में प्रतिविम्बित होती हुई दिखलाई पड़ती है। इसलिए तुलसी के जीवन चरित के शोध के लिए विद्वानों ने उनके ग्रन्थों में अवतरित उक्तियों को साक्ष्य माना है।

आलोचकों का विचार है कि शैशवावस्था में ही तुलसी की माता की मृत्यु और मातृ स्नेह के अभाव ने उन्हें नारी निन्दक बनाया, परन्तु इसके विपरीत प्रस्तुत शोध के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि माता के अभाव ने ही उन्हें मातृ शक्ति का उपासक बना दिया। मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि जीवन में मनुष्य को जिस वस्तु का अभाव रहता है उसके प्रति उसे अधिक आकर्षण और लालसा रहती है जिसे वह अपनी कल्पना के आधार पर अपनी कृतियों में प्राप्त करता है। यही कारण है कि तुलसी ने मातृ रूप में नारी के महिमामय और दिव्य चित्र अंकित किए हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी प्रकार उनके जीवन की पत्नी त्याग की घटना को भी इसी दृष्टिकोण से समझना होगा। राम भक्ति के अमूल्य हीरक की प्राप्ति, क्योंकि उन्हें पत्नी की प्रेरणा और सीख से ही हुई थी अतः भक्त शिरोमणि कवि इस अमित लाभ से लाभान्वित होने के बाद जब अपने अनुपम ग्रन्थ की रचना करते हैं तब उनमें कुण्ठा कैसे शेष रह सकती है। इसके विपरीत वे पत्नी के प्रति कृतज्ञता की अनुभूति ही करते होंगे जिसका प्रकाशन उन्होंने अपनी उक्तियों में किया है। साथ ही अपने काव्य में सत् मार्ग की ओर प्रेरित करने वाले और धर्मनिष्ठ पत्नी स्वरूपों का अंकन करके, उन्होंने पत्नी रूप में नारी को सर्वत्र ही सम्माननीय स्थिति में रख कर अपने मन में पत्नी के प्रति कृतज्ञता को ही अर्पित किया है।

तुलसी के व्यक्तित्व में कवि, भक्त, समाज सुधारक और लोक नायक तथा नूतन समाज सृष्टा के रूप संचित हैं। तुलसी की नारी भावना पर इन सभी रूपों का यथोचित प्रभाव परिलक्षित किया जाता है।

तुलसी के कवि ने नारी के सरस, सुन्दर और भाव भीने स्वरूपों का अंकन किया है। दुःख सुख के मध्य उनकी मार्मिक भावनाओं तथा विशिष्ट परिस्थितियों में उनके मन की भावनाओं की अभिव्यंजना की है।

साथ ही तुलसी की नारी जीवन सम्बन्धी अनेक निन्दात्मक एवं प्रशंसात्मक उक्तियाँ कवि धर्म का समुचित निर्वाह करने के लिए प्रसंग, पात्र, मनःस्थिति, परिस्थिति और चरित्र-चित्रण आदि के हेतु प्रयुक्त हुई हैं।

अनेक उक्तियाँ उनके दीन भक्त हृदय की ध्वनि हैं जो भक्ति भाव से परिपूरित पात्रों के द्वारा मुखरित हुई हैं। अतः वहाँ तुलसी का भक्त व्यक्तित्व प्रमुख रूप से देखा जाता है।

लोक नायक तुलसी ने स्त्री-पुरुष सभी को वांछित दिशा का संकेत देकर सफल नेतृत्व किया है जिसके लिए वे आज के उत्तर भारत के मेरुदंड कहे जाते हैं।

तुलसी के समाज सुधारक रूप ने समाज के गर्हित और घृणित विचारों की निन्दा एवं भर्त्सना करके उसे त्याज्य घोषित किया तथा नूतन स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए महान आदर्शों की स्थापना की थी। समाज सुधार के हेतु उन्होंने केवल कुनारी की निन्दा ही नहीं की अपितु पुरुष वर्ग की भी निन्दा की है। तुलसी साहित्य में देव, दानव, नर-किन्नर, ब्राह्मण और शूद्र, राजा और ठाकुर सभी के प्रति निन्दात्मक उक्तियाँ देखी जा सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१. "तुलसी दास ऐसे ही भविष्य सृष्टा थे। आज तीन सौ वर्ष बाद इस विषय में कोई सन्देह नहीं रह सकता कि उन्होंने भावी समाज की सृष्टि सचमुच की थी।"—हिन्दी साहित्य की भूमिका : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८६
२. तुलसी—रामबहोरी शुक्ल —(सन् १९५१—इलाहाबाद) पृ० ६४
३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा (प्रथम संस्करण—इलाहाबाद), पृ० ४७०
४. तुलसीदास और उनका युग—राजपति दीक्षित, पृ० ६८
५. लही आँख कब आंधरे, बांझ पूत कब ल्याय।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहराइंच जाई।।—दोहावली —दोहा ४९६
६. हिन्दी साहित्य की भूमिका— हजारी प्रसाद द्विवेदी (जुलाई १९९३) पृ० ८७
७. पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
संतः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ़ः परप्रत्यनेयबुद्धिः।। मालविकाग्निमित्रम्—कालिदास। १।२।।
८. 'रामचरितमानस' बालकाण्ड।७।। (संस्कृत श्लोक)
९. तुलसी और उनका काव्य—रामनरेश त्रिपाठी—(१९५३—दिल्ली) पृ० १५२
१०. वही, पृ० १६९
११. "अग्नि-पुराण, अद्भुत रामायण, अभिज्ञान-शाकुन्तलम्, आनन्द-वृन्दावन, कथा-सरित्सागर, कामन्दनीय-नीति-सार, किरातार्जुनीय, गीतगोविन्द, चाणक्य-नीति, नलचम्पू, नारद-पंचरत्न, नैषध, पराशर-स्मृति, पुरुष-सूक्त, वाराह-पुराण, वशिष्ठ संहिता, ब्रह्माण्ड-पुराण, बाल-रामायण,.....
....हारीत-स्मृति इत्यादि।। वही पृ० १६९
१२. त्रिधारा— श्यामसुन्दर दास पृ० २१
१३. तुलसी और उनका काव्य—रामनरेश त्रिपाठी, पृ० १६६,१६२,३०६ तथा १६७
१४. वही—पृ०, १६४
१५. वही, पृ० १६५
१६. त्रिधारा—श्यामसुन्दर दास पृ० ३३
१७. वही पृ० ३४
१८. साहित्यालोचन—श्यामसुन्दर दास (सं० २००६) पृ० ३५६
१९. रामचरितमानस अरण्य काण्ड।। ३६।।, ३६।।१,२,३,४,५
२०. वही ।।३७।।
२१. वही ।।२९ख।।४
२२. वही किष्किंधा काण्ड ।।१७।।१,२
२३. वही, सुन्दर काण्ड ।।१४।।३,४
२४. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन—डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल पृ० ५४४
२५. मनु स्मृति ।।४।।२९९
२६. शंख स्मृति ।।४।।१६
२७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४९५
२८. वही
२९. रामचरितमानस —सुन्दर काण्ड ।।३५।।३
३०. वही, लंका काण्ड ।।३५ख।।१
३१. वही ।।१६क,ख।।
३२. वही ।।७।।१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३३. "विहंसा नारी वचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना।। नारि सुमाऊ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।
रामचरितमानस लंका काण्ड ।।१५(ख)।।१।।

३४. वही ।।१५(ख)।।४

३५. साहित्यालोचन—श्यामसुन्दर दास (सं० २००६) पृ० ३५६

३६. रामचरितमानस —किष्किंधा काण्ड ।।१४।।४

३७. हिन्दी नवरत्न-मिश्र बन्धु—(१९११ प्रयाग) पृ० १०८ तथा 'विचार और विश्लेषण'—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४७

३८. स्वातन्त्र्याद्विप्रणश्यन्ति कुले जाता आर्या स्त्रियः।
अस्वातन्त्र्यमतस्तासा प्रजापतिरकतपयत।। —नारद ।।१६।।३०

३९. वसिष्ठ—५।१-३, गौतम धर्म सूत्र—१८।१, याज्ञवल्क्य १।२५ तथा मनु ५।१४७

४०. रामचरितमानस—बाल काण्ड ।।१०१।।३

४१. पार्वती मंगल ।।२५।। (तुलसी के चार दल-दूसरी पुस्तक-सद्गुरूशरण अवस्थी) पृ० ६१

४२. वही ।।१५६।।

४३. गोस्वामी तुलसी दास—रामचन्द्र शुक्ल पृ० ४६ तथा
गोस्वामी तुलसी दास —श्यामसुन्दर दास—पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल पृ० १७७

४४. रामचरितमानस—बाल काण्ड—।।१०६।।१

४५. भागवत पुराण— १।।४।।२५

४६. वसिष्ठ धर्मसूत्र—८।१७। के अनुसार स्त्री धर्म के लिए नही केवल रमण के लिए मानी गई है।

४७. गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः
अध्यात्म रामायण—तुलसी और उनका युग—रामनरेश त्रिपाठी पृ० १४३ पर उद्धृत।

४८. रामचरित मानस—बालकाण्ड।।१११।३,४

४९. वही ।।१११।।

५०. मनु स्मृति ५।१५४, वाल्मीकि रामायण २।११८।९-१०, भागवत पुराण—१०।२९।२४ तथा ब्रह्मवैवर्त पु० कृष्ण खंड उ० ५७।१८

५१. रामचरितमानस—अरण्य काण्ड—।।४।।६,७,८,९

५२. हिन्दी नवरत्न—मिश्र बन्धु (१९११-प्रयाग) पृ० १०९

५३. "उत्तमादिविभेदन—कथितापूर्व सूरिभिः।। शिवपुराण-पार्वती खंड

५४. रामचरितमानस—अरण्य काण्ड ।।५क।।, ।।४।।९, ।।४।।३,।।४।।५

५५. न व्रतेनोपवासेन धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति केवल पतिपूजनात्।। पराशर संहिता।
अमितस्या तु दातारं भृतरि या न सेवते।।—शिव पुराण
तथ पतिरेव हि नारीणां देवत परमं स्मृतम्।। श्रीमद्भागवत्।

५६. जानकी मंगल।।१०४।।

५७. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।२१।।४

५८. वही —।।५ख।।

५९. वही —अरण्य काण्ड ।। ३४।।२

६०. विचार और विश्लेषण—डॉ० नगेन्द्र पृ० ४४ तथा
तुलसी दास—माताप्रसाद गुप्त—पृ० ३००

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६१. मति अति नीच ऊंचि रुचि आछी मानस-बाल काण्ड।। ७घ।।४
६२. 'लघु मति मोरि.....' रामचरितमानस बाल काण्ड ।।७घ।।३
६३. 'मन मति रंक मनोरथ राऊ' वही
६४. वही ।।६।।
६५. तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।७।१, शतपथ ब्राह्मण १।३।२।१३, ५।२।१।८,
मनुस्मृति—५।१३६, याज्ञवल्क्य, १।२१, वोधायन २।१।११-१२ आदि में स्त्रियों की गणना शूद्रों की कोटि में की जाने लगी थी और वह अपवित्र तथा अधम मानी गई है।
६६. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।३५।।४
६७. वही ।।३५।।३,४
६८. विनय पत्रिका —पद ८८,९२,९५,११०,११४,११८
६९. रामचरितमानस —लंका काण्ड ।।६०ख।।४ तथा —।।६०ख।।६
७०. शाक्या सीता समा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः।। रामायण युद्ध ।।४६।।६
तथा—देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तंतु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।। वही १०१।।४
७१. रामचरितमानस —अयोध्या-काण्ड ।।४६।।४
७२. वही ।।१६१।।२
७३. ऋग्वेद १०।९५।१५
७४. मेरा धर्म—प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पृ० ३ पर उद्धृत।
७५. रामचरितमानस —बाल काण्ड।।१३५।।४, ।।१३६।।१,२,३
७६. "यद्यपि उनकी अनुदारता का कारण अभी तक रहस्य के गर्भ में छिपा हुआ है यह नारी विषयक उनकी अनुदारता का ऐसा तथ्य है जिसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"—तुलसी दास —माताप्रसाद गुप्त पृ० २९९
७७. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४९
७८. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल (शोध प्रवन्ध), पृ० ५३९
७९. वही
८०. अथर्ववेद ३।२३।३-५ तथा रामचरितमानस—बाल काण्ड।। १८८।।१
८१. ऐतरेय ब्राह्मण ७।३१। तथा मैत्रायणी संहिता ४।६।४ तथा का० संहिता २७।९ कन्या को कष्ट तथा कन्या को स्पष्ट ही उपेक्षा का पात्र कहा है।
८२. रामचरितमानस—बाल काण्ड।।६४।।४, ।।६५।।१,२ तथा जानकी मंगल।।५।। तथा ।।७।।
८३. ऋग्वेद १०।१५९।३ तथा रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड।। २८६।।१
८४. रामचरितमानस—बाल काण्ड ।।७०।।२,३ व दोहा ६५-छंद
८५. ऋग्वेद १०।५।
८६. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१८।।
८७. कामातुरस्यवचसामिद संविधानै-रभ्यर्थित प्रकृति चारू मनः सतीनाम्
डगइ न शंभु सरासन कैसे कामी वचन सती मन जैसे प्रसन्न राघव।
८८. अथर्ववेद ३।३०।२ तथा रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड।। ५५।।१
८९. ऋग्वेद ४।१८।११ में इन्द्र की माता इन्द्र को त्याग देने पर विवश भाव से दुःखी होती हुई केवल यही कहती है—"हे पुत्र ये देव तुम्हे त्याग रहे हैं।
९०. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड पृ० ।।५५।।१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

९१. 'सम्भव है प्राचीन ग्रन्थों की बहुत सी उक्तियाँ चिरभ्यास के कारण गोस्वामी जी के मन बस गई हों ओर अनायास ही उनका प्रयोग कर गए हों।"
—तुलसी —रामबहोरी शुक्ल, पृ० ६४
तथा —गोस्वामी तुलसी दास—श्यामसुन्दर दास—पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल पृ० ३६

९२. हिन्दी साहित्य की भूमिका —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १७०

९३. वही, पृ० १७८

९४. वही, पृ० १७६

९५. संस्कृति के चार अध्याय—रामधारी सिंह दिनकर, पृ० १२०

९६. वही, पृ० १४७

९७. तुलसी घर बन बीच हो, राम प्रेम पुर छाई —दोहावली।।२५६।।

९८. "विन्ध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि, भै मुनि वृंद सुखारे।
हवै हैं शिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू, करुणा करि कानन को पगु धारे।।
—कवितावली —अयोध्या काण्ड, पद।।२८।।

९९. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३६

१००. "इस साहित्य की सबसे बड़ी कमजोरी इसका रूखापन और गृहस्थ के प्रति अनादर है। वही—पृ०३७

१०१. हिन्दी साहित्य का इतिहास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १७

१०२. रामचरितमानस—किष्किन्धा काण्ड ।।६।।
सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहिकरचरन नारि समुझावा।।
सुनपति जिन्हहि मिलेउ सग्रीवा। ते द्वौ बन्धु तेज बल सीवा।।
कोसलेस सुल लछमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा।।

१०३. रामचरितमानस —लंका काण्ड ।।६।।१,२,३,४ ।७।।

१०४. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।५८।।३ तथा ।।५६।।२

१०५. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास —नाथूराम प्रेमी (सं० १९७३) पृ० ७

१०६. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३६

१०७. हिन्दी साहित्य की भूमिका—हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८५

१०८. रामचरितमानस अरण्य काण्ड।। ३४।।४, ।।३५।।, १,२,३

१०९. विरक्त धर्म रहै जु गही ते, गृही कौ विरक्त तारै ज,।। —सुन्दरदास
सन्तसुधासार पृ० ५६८

११०. घर छोड़ि घर जात है घर राखे घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाय।।—दोहावली ।।२५६।।

१११. वही

११२. उत्तर भारत की संत परम्परा —परशुराम चतुर्वेदी (२००८ प्रयाग) पृ० ५८

११३. जीवन जुर जुवती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन बाय।
विनयपत्रिका —सम्पादक —वियोगी हरि पद ८३, पृ० १६२

११४. नारी घट दीपक भयो हो, तामै रूप प्रकाश।
आई परै निकसै नहीं, करत सबनि कौ नाश।। —सुन्दर दास—सन्त सुधासार पृ० ६६३

११५. कबीर वचनामृत —सम्पादक मुंशीराम शर्मा, पृ० ११८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

११६. संत बानी संग्रह —कबीर-साखी ।।७।।
११७. नारि पराई आपणी, भुगत्या नर कहिं जाई।
आगि आगि सबरो कहै, तामै हाथ न बाहि।।—कबीर वचनामृत, पृ० १२०
११८. रामचरितमानस —किष्किंधा काण्ड ।।८।।,४
११९. संत सुधासार —कबीर, पृ० १४१ पद ८
१२०. कबीर वचनामृत, पृ० ६५ पद ६ तथा संत सुधासार बादू पृ०, ४७७ पद्य २०
१२१. संत सुधासार, दादूदयाल, पृ० ४७८ पद २४
१२२. "कबीर माया पापणीफंद लै बैठी हाटि।
सब जग तो फदै परया, गया कबीरा नाटि।।" कबीर वही पृ० १४०
१२३. कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३२
१२४. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।४३।।१,२,३,४
१२५. वही, ।।४४।।
१२६. माया के दुह रूप हैं, सत्य मिथ्या संसार —कबीर परिचय पृ० ३०५
१२७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा पृ० १६४
१२८. माया के गुण तीन हैं, जनम, पालन, संहार —कबीर परिचय पृ० ३०४
१२९. श्रुति सेत पालक राम तम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति है रति रुख पाई कृपा निधान की।।
—रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड।।१२५।।१
१३०. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —रामकुमार वर्मा, पृ० ३०४
१३१. वही, पृ० ३३३
१३२. वही
१३३. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २५६
तथा "कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना सिर धुनि गिरा लगति पछताना" रामचरितमानस—बाल काण्ड
।।१०ख।।४
१३४. भनिति विचित्र सुकवि कृत कोऊ। रामनाम बिनु सोह न सोऊ।।
विधु वदनी सब भाँति संवारी। सोह न बसन बिना वर नारी।। वही ।।९।।२
१३५. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १४
१३६. क. वही, पृ० २६२
१३७. जायसी का पद्‌मावत, उस्मान की चित्रावली, नूर मुहम्मद की इन्द्रावती, आदि काव्य इसी प्रकार के हैं।
१३८. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २५६
१३९. स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिसिज्म —निकलसन (१९२१-केम्ब्रिज) पृ० १६१
१४०. देवता हाथ हाथ.....सीस चढावा।। —जायसी ग्रन्थावली, पृ० १९९
१४१. रामचरितमानस—उत्तर काण्ड ।।२३।।५
१४२. जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितवन सोई।। —जायसी ग्रन्थावली
१४३. उन बानन्ह अस को न मारा। बेधि रहा सगरो संसारा।।
वही, पृ० १८९
१४४. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।७ घ।।१
१४५. भा निर्मल तिन पायन्ह परसै, पावा रूप रूप के दरसै।
पांये रूप रूप जस चहा। ससि मुख जनु दरपन होई रहा।। —जायसी ग्रन्थावली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१४६. जासु अंस उपजहि गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।।
—रामचरितमानस —बालकाण्ड।१४७।—२

१४७. रामचरितमानस, —अयोध्या काण्ड ।।१२५।।१

१४८. कहिसि कि हौ वलि देऊँ सरीरा। मकु पै दोउ लगी लागै तीरा।।
चित्रावली में कौलावती का उत्सर्ग दृष्टव्य है—
और सौत के प्रति —"कहिसि कि हां अपराधिनि तोरी करहु छोह सुने विनती मोरी।
रहे सदा तुम सीस पर सेंदुर भाग सोहाव। हौ समदति हौ चरन गति इहे मोर अनुराग।
—चित्रावली —उसमान (सम्पा० जगमोहन) पृ० २३१

१४९. कहिसि लेहु यह चेरी जानी मैं संकल्पौ दै कुश पानी।
बोलसु जैस जग रीति तै अपने भुज बल यह जीति।।—चित्रावली – उसमान, पृ० १५४
तथा करि विनय सिय रामहि समरपी जौरी कर पुनि पुनि कह।
तुलसी सीलु सनेहु लखि निज-किंकरी कर मानिवि।।
रामचरितमानस —बालकाण्ड, ।।३४५।। छंद
तथा नाथ उमा मम प्राण सम गृह किंकरी करेहु—रामचरितमानस—बालकाण्ड ।।१०१।।

१५०. इन्द्रावती—नूर मोहम्मद —हिन्दी कवि और काव्य, पृ० ८३ पर उद्धृत
तथा रामचरितमानस —बालकाण्ड ।।६४।।४

१५१. माधवानल कामकन्दला —आल—(हिन्दी कवि और काव्य) पृ० २१६
तथा रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१६६।।३

१५२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२१

१५३. चली मान सो ब्रह्मन बारी, बनि बनि आवति नारि,
बनियाइन नाइन पनिहारी। जानि गृह मायन हो।
चली सुनारिन कंचन बरनी, विहसंत आउ लोहारिन,
रजपूती खतरिन मन हरनी। हाथ बरायन हो।
लोनी धन हलवाइन भली, अहिरिनि हाथ दहेड़ि,
अधर मिठाई बांटत चली।। सगुण लेह आवई हो!
नूर मोहम्मद– इंद्रावती पृ० ६५ रूप सलोनि तंबोलिनि,
बीरा हाथई हो।
जाकी ओर बिलोकहि,
मन तेहि तेहि साथहि हो।।
में अहान पद्मावती चली, मोचिनि बदन सकोचिनि,
छत्तीस पुरी में मोहते भली। हीरा मांगन हो।
में कोरी संग पहिरि पटोरा, पनहि लिहे कर सोभित
सुन्दर आंगन हो।
बामिन ठांऊ सहस संग भोरा। बतिया के सुधरि मलिनिया
अगर बारिनि गज गवन करेई, सुन्दर गातहि हो।
वैसिनि पाव हंस गति देई। कटि कै छीन बरिनिआं,
छाता पानिहि हो।
चंदेलति ठवंकन्ह पग ढारा, चन्द्र बदनि मृगलोचनि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चली चौहानी होई झनकारा।। सब रस खानिहि हो।
चली सोनारी, सोहाग सोहती, नैन विसाल नउनियां
भौं चमकावई हो।
औ कलवारि प्रेम मधु मांती।। कर कंकन, कटि किंकिनी
जायसी ग्रन्थावली, पृ० २४५-२४६ नूपुर वाजह हो।।
—तुलसी रामललानहछू (तुलसी के चार दल) पृ० ५-७

१५४. जायसी ग्रन्थावली – सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २०६
१५५. तिरिया पुहुमि खरग की चेरी, जीतै खरग होई तेहि तेरी।। —वही
१५६. तुम्ह तिरिया मतिहीन तुम्हारी, मुरुख सो जो मतै घर नारी।—वही,
तथा-तुम्ह अवला मुग्ध बुद्धि जानै जाननिहारा—वही पृ० ५३२
तथा-तुम्ह कामिनी मत हीनी भोग सुपावहु मोहिं,
प्रेम खींच है मी कह सूझ बूझ नहि तोहि।—नूर मोहम्मद-इन्द्रावती
(हिन्दी कवि और काव्य भाग ३) पृ० ८७
१५७. जैसे पनही पावं की वैसे तिया सुमाख।
पुरुष पंथ चली आपने, पनही तजे न पाउ। —उसमान-चित्रावली
सम्पादक—जगमोहन, पृ० १७६
१५८. जायसी ग्रन्थावली – सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २०७,१५२
१५६. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७३
तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास —रामचन्द्र शुक्ल पृ० १२५ और १२८
१६०. गीतगोविन्द में जयदेव ने राधा और कृष्ण का मिलन, कृष्ण की मधुर लीलाएँ और प्रेम की मादक अनुभूति सरस और मधुर शब्दावली में लिखी.....उसमें कामदेव के बाणों की मीठा पीड़ा है। तथा "गीतगोविन्द में श्री कृष्ण और राधा के प्रेम का कोमल और विलासपूर्ण वर्णन किया है।
—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० क्रमशः ५८३, ८५८
१६१. वही, पृ० ५६२
१६२. वही, पृ० ६३६
१६३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १५२
१६४. वेद ऋचा है गोपिका, हरि संग कियो विहार। —सूरदास —सूरसागर
खंड १ पृ० ६६४
१६५. वही, पृ० ६६२ पद ११७३।१७६१
१६६. जो कोउ भरता भाव हृदय धारि हरि पद ध्यावै।
नारी पुरुष कोउ होई श्रुति ऋचा मति पावै।।—वही पृ० ६६४
१६७. नारी पतिव्रत मानै जो कोई, चारिपदारथ पावै सोई।
वही, पृ० ५३६
१६८. विरध अरु विनु भागहूं को पतित जौ पति होई।
जऊ मूरख होई रोगी तजै ना ही सोई।। वही पृ० ६११
१६६. कपट तजी पति पूजा करौ, कहा तुम जियंगुनौ।
कन्त मानहु भव तरोगी, और नही उपाई।। वही, पृ० ६११
ताहि तजौ क्यों विपिन आई कहा पायो आई।" वही, पृ० ६११
१७०. तजि भरतार और को भजिए, सो कुलीन नहि होई।
मरे नरक जीवन इस जग में, भला कहें नहि कोई। वही, पृ० ६११

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१७१. सूरसागर—प्रथम खंड (नन्ददुलारे वाजपेयी) नवम स्कन्द, पृ० १८०
१७२. नारी सो नर प्रीति लगावहै, पै नारी तिह मन नहि लावै।
नारी संगे प्रीति जौ करै, नारी ताहि तुरत परिहरै।
—वही पृ० १८०
१७३. भामिनी और भुजंगिनी कारी, इनके विषहि डरिएं।
राचेहु विरचे सुख नाहि, भूल न कबहु पत्यैये।।
—सूर—सूरसागर—द्वितीय खंड, पृ० ११८७
१७४. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।४।।४,५
१७५. तुलसीदास और उनका युग —राजपति दीक्षित, पृ० ६३
१७६. तुलसीदास —सं० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६८
१७७. सूरसागर, प्रथम खंड, पृ० ६११
१७८. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १७२
१७६. हिन्दी साहित्य की भूमिका —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८४
१८०. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६५
१८१. वही पृ० ४६७
१८२. दोहावली —दोहा ।।४०।।
१८३. रामचरितमानस —बालकाण्ड ।।८४।।३
१८४. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।१२६।।३
१८५. कुंवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं।
गिरिजा जोग जुरिहि वर अनुदिन मोचहिं।।—पार्वती मंगल ।।१०।।
तथा — नृप निरखि कुवरि सयानी बोलि गुरु परिजन।
करि मत रचेउ स्वयंवर शिव धनु धरि पन।।
—जानकी मंगल ।।८।।
१८६. कुअंरि कुआरि रहउ का करऊ।
जो जनतऊ बिनु भट भुवि भंई। तौ पनु करि होतेउं न हँसाई।।
—रामचरितमानस —बालकाण्ड।।२५१।।३
१८७. वही,।।७०।। २
१८८. वही, ।।६५।। छंद
१८६. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल,
—शोध प्रबन्ध, पृ० ५४३
१६०. रामचरितमानस —बालकाण्ड —संस्कृत-श्लोक ।७।।
१६१. वही ।।१०६।।३,
१६२. "पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा, सकल लोक जग पावहिं गंगा।"
रामचरितमानस —बालकाण्ड ।।१११।।४
१६३. "मयतनुजा मन्दोदरी नामा। परम सुन्दरी नारि कलामा।।
सोई मय दीन्ह रावनाहि आनी। होहहि जातुधानपति जानी। रामचरितमानस- बाल काण्ड।।।१७७।। १,२
१६४. "मिडिवीयल इंडिया अण्डर मोहम्डन रूल, पूले स्टेनले पृ० २५२
१६५. हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, बेनी प्रसाद, पृ० ३०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१६६. गीतावली, पद।।११०।।
१६७. तुलसी ग्रन्थावली —तीसरा खंड —सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल —गोस्वामी जी और राजनीति —रामचन्द्र दूबे, पृ० १६०
१६८. श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ, संजुत, विरति विवेक।
तेहि परिहरहिं विमोह वस, कल्पहि पंथ अनेक।। रामचरितमानस उत्तर काण्ड ।।१००।।
१६६. साखी सबदी दोहरा कहि किहनी-उपखान।
भगति निरूपहि भगवत कवि-निंदहि वेद पुरान।। दोहावली ।।५५४।।
२००. वरन धरम नाहि, आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।
रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।६७।।
२०१. ब्रह्मज्ञान विनु नारी नर कहहि न दूसरि बात।। —वही ।।६६क।।
२०२. निज निज भरजाय मोटरी सी डारदी। —कवितावली —उत्तर काण्ड ।।१८३।।
२०३. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।६८ख।। १ तथा ।।१००।।४
२०४. कुलवन्ति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निवेरि गति।। वही, ।।१००ख।।२.
२०५. सुर सदननि तीरथ पुरिन निपट कुचाली कुसाज।। दोहावली।। ५५८
२०६. "लोक मर्यादा का उल्लंघन, समाज की व्यवस्था का तिरस्कार, अनाधिकार चर्चा, भक्ति और साधुता का मिथ्या दम्भ, मूर्खता छिपाने के लिए वेदशास्त्र की निन्दा, ये सब बातें ऐसी थीं जिनसे गोस्वामी जी की अन्तरात्मा बहुत व्यथित हुई।
—रामचन्द्र शुक्ल —गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २५
२०७. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड।।४।।५,
२०८. वही, ।।४।।६
२०६. वही —बालकाण्ड ।।२३०।।१
२१०. वही —अरण्य काण्ड १०२।।१,२
२११. दोहावली ।।४०७।।, रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१६७।।२
तथा रामचरितमानस —बालकाण्ड ।।२३०।।३
२१२. "अभी थोड़े दिन हुए एक मेम साहब पति पत्नी के सम्बन्ध पर व्याख्यान देती फिरती थी कि कोई आवश्यकता नहीं कि स्त्री पति के घर में ही रहे।" — गोस्वामी तुलसीदास, —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३१
२१३. "नारी विवस नर सकल गोसाई। नाचहि नट मर्कट की नाई।।"
रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।६८ख।।१
२१४. "सुत मानहि मातु पिता तब लौ। अबलानन दीख नहीं जब लौ।।
ससुराल पिआरि लगी जब ते, रिपुरूप कुटुम्ब भए तब तें।।
—वही ।।१००ख।।२,३
२१५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३६३
२१६. वही
२१७. वही, पृ० ३४७
२१८. हिन्दी नवरत्न —मिश्र बन्धु, पृ० १०८
२१६. वही, पृ० १०६-११०
२२०. गोस्वामी तुलसी दास —बाबू श्यामसुन्दर दास, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० १७८
२२१. रामचरितमानस —बालकाण्ड ।।१७।।४, विनयपत्रिका ।।४१।।, ४२।। कवितावली, बाल काण्ड।।१५।।
२२२. पार्वती मंगल ।।७।।, रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।४७।।१,।। ६६।।४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२२३. रामचरितमानस - अयोध्या काण्ड। ७३/१,/२४१/२ सुन्दर कांड-१०७/६।
२२४. वही —बालकाण्ड ।।२४५।।१, ।।२४७।।१
२२५. वही —बालकाण्ड ।।१०२।।२
२२६. वही, ।।१४७।।१, ।।२३४।।३
२२७. वही —बालकाण्ड ।।७०।।१,२,३ तथा।। ६५।। छंद, अयोध्या काण्ड ।।५५।।१
२२८. "उत्तम के अस बस.....जग सोई।"....इन्होंने स्त्रियों की जांच की कसौटी वही कड़ी रखी थी उसी से विदित होता है कि ये उनसे असन्तुष्ट थे।" ....हिन्दी नवरत्न —मिश्र बन्धु, पृ० १०६
२२९. परसे पग धूरि तरे तरनी, घरनी घर क्यों समुझाई हों जो। कवितावली—अयोध्या काण्ड।। ६।।
२३०. रामचरितमानस —लंका काण्ड ।। ६।।२, ।।६।।३, ।।६,४
२३१. (अ) तुलसी —रामबहोरी शुक्ल, पृ० १३
(ब) "स्त्रियों से वे इतना क्यों चिढ़े थे ? क्या उनकी स्त्री ने उन्हें घर से निकाल दिया था इस लिए ? इसके लिए तो वह परम् कृतज्ञ की भांति कहते हैं —(हम तो चाखा प्रेम रस पत्नी के उपदेश'।। — तुलसी और उनका युग – रामनरेश त्रिपाठी, पृ० २६१
(स) "परन्तु जिस व्यक्ति को स्त्री के ही मुख से भगवत प्रेम की दीक्षा मिली हो वह भला कैसे स्त्री वर्ग के ऊपर अन्याय कर सकता है ? 'हम तो चाखा प्रेम रस, पत्नी के उपदेस' यह गोसाई जी ने स्वयं कहा है—गोसाई जी ने उन पर अन्याय किया भी नहीं है।" —"गोस्वामी तुलसी दास" – श्यामसुन्दर दास, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० १७७
२३२. "परन्तु परिवर्तन की अचानकता (एड्रप्टनेस) के कारण कदाचित् कुछ कण ऐसे रह गए जो विष बन गए। उनकी उक्तियों के विश्लेषण से इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि वे नारी को कभी क्षमा नहीं कर सके। परन्तु यहाँ नारी को एक सामाजिक इकाई न मानकर तुलसी के उस अधीर मन का ही प्रतीक मानना चाहिए जो उनकी घोर ग्लानि और लज्जा का कारण बनी।" —विचार और विश्लेषण —तुलसी और नारी —डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४६
२३३. नर हरि कंचन कामिनी, इनते रहिए दूरि। जो चाहिये कल्यान निज राम दरस भर पूर, गोस्वामी तुलसी दास —श्यामसुन्दर दास —पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल — पृ० ४८ पर उद्धृत
२३४. रामचरितमानस —बालकाण्ड ।।२२६।।४
२३५. अरण्य काण्ड ।।३७ख।।६
२३६. वही ।।३८ख।।
२३७. वही ।।३८ख।।१
२३८. वही ४२ख।।२
२३९. वही ।।४३।।१,२,३,४,।।४४।।
२४०. "श्री युत बाबू शिवनन्दन सहाय जी स्वयं रचित गोस्वामी जी की वृहत् जीवनी में इस विषय पर सम्मति देते हैं—"कवि ने नारी से ऋतुओं की उपमा तो अच्छी की है, परन्तु रामचन्द्र से स्त्रियों को अच्छा सर्टीफिकेट नही दिलवाया।....गोसाईं जी प्रमदा से ऐसे क्यों चिढ़े थे ?"
—तुलसी ग्रन्थावली —तीसरा खंड, पृ० १८० सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल
२४१. पार्वती मंगल ।।१२०।।
२४२. वही ।।१२१।।
२४३. सोचिय ग्रही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग। सोचिय जती प्रपंच रत विगत विवेक विराग।। — रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१७२।।
२४४. बैखानस सोई सोचै जोगू। तपु बिहाई जेहि भावई भोगू।। वही।।१७२।।१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२४५. नारि मुई घर सम्पति नासी। मूंड मुंडाई होहि संन्यासी।
रामचरितमानस —उत्तर काण्ड।।६६ख।।३

२४६. एकई धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा। रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।४।।५

२४७. 'शोचनीय पुनि पति वंचक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छा चारी।।'
रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।१७१।।४

२४८. बलि गुरु तज्यो, कन्त ब्रज बनितनि, भये मुद मंगलकारी। विनय पत्रिका
टीकाकार वियोगी हरि, पृ० ३४५

२४६. "सूपन खां रावन के बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।।
पंचवटी सो गई एक बारा। देखि विकल भई जुगल कुमारा।।
भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।
होई विकल सक मनहि न रोकी। जिमि रवि मनि द्रव रविहि विलोकि।।"
—रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।१६।।२,३

२५०. उत्तम के अस बस मन माही। सपनेहू आन पुरुष जग नाही।
मध्यम परपति देखई कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।" —वही ।।४।।५,६,७

२५१. हिन्दी नवरत्न —मिश्र बन्धु, पृ० १०६

२५२. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।५७।।१

२५३. वही ।।५७।।३

२५४. वही ।।६३।।२-३

२५५. वही ।।११६।।२,३,४

२५६. कवितावली – अयोध्या काण्ड पद २१, २२

२५७. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।२७।।, २,३

२५८. वही —अयोध्या काण्ड ।।१०१।।१

२५६. पार्वती मंगल

२६०. तुलसी-जीवन चरित —रामबहोरी शुक्ल, पृ० १२

२६१. रामललानहछू —तुलसी के चार दल (दूसरी पुस्तक) सद्गुरुशरण अवस्थी, पृ० ५-१०

२६२. वही, पृ० ११ छंद ११

२६३. वही, पृ० ११ छंद १२

२६४. "इन पंक्तियों से कवि की बढ़ती हुई उमंग का पता चलता है। वह स्वयं एक प्रकार का आनन्द ही आनन्द देखता है। महिलाओं का उस पर भारी प्रभाव है। मालूम होता है कि कवि यौवन सुलभ स्त्री सौन्दर्य अनुरक्ति से आक्रांत है।" —तुलसी के चार दल —पहली पुस्तक — सद्गुरुशरण अवस्थी, पृ० ६३

२६५. "मिश्र बन्धुओं के कथन का उल्लेख करते हुए श्री अवस्थी ने कहा है "रामलला नहछू पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका संपर्क सब प्रकार की महिलाओं से रहा है। उनका ज्ञान बहुत विस्तृत था। गोस्वामी जी ने सेविकाओं का इतना सुन्दर चित्र खींचा है। प्रत्येक दासी के कार्य की चर्चा उन्होंने जिस सुन्दरता के साथ की है वह अनोखी है।" वही पृ० ६३-६४

२६६. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४५६

२६७. दोहावली।।२५६।।

२६८. सती कीन्ह सीता कर वेषा। सिव उर भयउ विषाद विसेषा।
जौं अब करउं सती सन प्रीति। मिटइ भगति पथ होई अनीति।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परम पुनीत न जाइ तजि किएं प्रेम बड़ पापु।
सकति न कहत महेसु कछु हृदयं अधिक सन्ताप।।—रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।५५।।४।।,।।५६।।

२६६. हिन्दी नवरत्न —मिश्र बन्धु, पृ० १३
२७०. गीतावली —उत्तर काण्ड —पद ।।२५।। से ।।३४।।
२७१. वही पद ।।३०।।,
२७२. हिन्दी साहित्य की भूमिका — आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८७
२७३. "उनका यह बड़ा सौभाग्य था कि उन्हें शेष सनातन सरीखा शिक्षा गुरु मिला। उनके पास रहकर उन्होंने वेद-वेदांग, शास्त्र, पुराण, इतिहास, काव्य कला आदि इतनी अच्छी तरह से पढ़े थे कि वे उनके व्यक्तित्व के अंग हो गए।"
—गोस्वामी तुलसी दास —श्यामसुन्दर दास —पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
२७४. रामचरितमानस —बालकाण्ड।।६।।
२७५. वही ।।६।।२
२७६. वही —अरण्य काण्ड ।।२७।।३
२७७. वही ।।२३।।२
२७८. वाल्मीकि रामायण —लंका काण्ड —सर्ग।। ११८।। श्लोक २०-२३
२७६. रामचरितमानस - बाल काण्ड ।।२२८।।४
२८०. पार्वती मंगल ।।८४।।
२८१. सूपनखां रावन के वहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।
पंच वटी सो गई एक बारा देखि विकल भई जुगल कुमारा।। रामचरितमानस - अरण्य काण्ड ।।१६।।२
२८२. वही ।।१६।।३
२८३. "मुझे सबसे अधिक दुःख.....संत रचना में अभी तक नहीं मिला।।"
तुलसीदास — माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३०२
२८४. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन (शोध प्रबन्ध) डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २२८
२८५. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र पृ० ४७
२८६. वही
२८७. वही
२८८. महाभारत ।१३।३८।२०२
२८६. बन्धन मोक्ख जातक ।।१२०।।
२६०. जैन आचरांग सूत्र १।२।४।३
२६१. चुल्ल पदुम जातक ।।१६३।।
२६२. असात मन्त जातक ।।६१।।
२६३. कबीर संत वानी संग्रह —प्रथम भाग —साखी ।।७।।
२६४. एथेनोग्रैफिक सर्वे ऑफ इंडिया —नोट्स आन दि पोजीशन ऑफ विमेन अमंग—हिन्दूज, मुस्लिम्स, बुद्धिस्ट एण्ड जैन्स —कलकत्ता —भारत १६१०
२६५. हिन्दी साहित्य की भूमिका —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ८४
२६६. गोसाईं जी का वृहद् जीवन —बाबू शिवनन्दन सहाय—तुलसी ग्रन्थावली तीसरा खण्ड, पृ० १८१ पर उद्धृत
२६७. 'हिन्दी साहित्य की भूमिका —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२६८. "शूर्पणखा का चरित्र —मुख्यतः स्वैरिणी स्त्री के रूप में ही अंकित हुआ है। राक्षसी होने के कारण वह कामरूपा भी है। युवावस्था में ही विधवा होने के कारण अतृप्त है, तुलसी दास ने उसकी इस मनःस्थिति को स्पष्टतर शब्दों में प्रस्तुत कर दिया है। —'भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी। होई विकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रवि मनि द्रव रविहि विलोकी।" शूर्पणखा के प्रसंग से नारी मात्र पर कामजन्य दुर्बलता का ऐसा खुला आक्षेप अशोभनीय है जिससे तुलसी का नारी जाति के प्रति अनौदार्य ही नहीं अपितु घृणा भावना प्रकट होती है।" —वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन, डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २२६

२६६. "और पुरुष पात्र चाहे कितने भी अपराध करें, पुरुष जाति की भर्त्सना हमारा कवि कभी नहीं करता।" —तुलसी दास, —माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६६

३००. तुलसी के चार दल—पहली पुस्तक —सद्गुरुशरण अवस्थी, पृ० २१८

३०१. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड।।१७।। में लक्ष्मण शूर्पणखा को इस अपराध के लिए नाक-कान विहीन करके दंडित करते हैं तथा "अनुज वधु भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी। इन्हहि कुदृष्टि विलोकई जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।"—रामचरितमानस किष्किंधा काण्ड।।८।।४

३०२. गोस्वामी तुलसी दास —श्यामसुन्दर दास, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० १७८

३०३. तुलसी दास और उनका काव्य —रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ३०७

३०४. विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।। रामचरितमानस —उत्तर काण्ड।। ६६ख।४
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।। वही ।।६६ख।।
सूद्र करहि जपतप व्रत नाना बैठि बरासन कहहिं पुराना।। वही ।।६६ख।।५
साखी सबदी दोहरा कहि कह नी उपखान।
भगति निरूपहि अधम कविं निंदहि वेद पुरान। – दोहावली – ५५४
सब नर कल्पित करहिं अचारा, जाई न बरनि अनीति अपारा।। —रामचरितमानस – उत्तर काण्ड।। ६६ख।।५
भूप सुसेवित बस नहि लैखिय।। अरण्य काण्ड ।।३६।।४
जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं।। वही ।।३६।।५
राम कृष्ण सबही कहै, ठग ठाकुर और चोर।
बिना प्रीति रीझत नहीं तुलसी नन्द किशोर।।—तुलसी और उनका काव्य —रामनरेश त्रिपाठी पृ० ३०८

३०५. रामचरितमानस —बालकाण्ड।।१३५।।४,।।१३६,१,२,३

३०६. साहित्यालोचन —बाबू श्यामसुन्दर दास पृ० ३५६ (सं० २००६)

३०७. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल पृ० ५०

३०८. "नदी नारी एक समाना —नई दिल्ली ३१ मार्च—रेल मंत्री श्री जगजीवन राम ने आज सायँ यहाँ यमुना पर दूसरे रेल पुल का शिलान्यास करते समय नदी की तुलना नारी से की। उन्होंने कहा कि नदी और नारी की गति को बाँधना आसान नहीं। दोनों ही बहुत चंचल होती हैं। फिर भी उन्हें काबू में लाने के लिए प्रयास किए जाते हैं। यमुना पर यह पुल इसी प्रयत्न का उदाहरण है। उन्होंने कहा कि सभी भारतीय नदियाँ स्त्रीलिंग हैं, ब्रह्मपुत्र और सोनभद्र अपवाद हैं।"
—दैनिक हिन्दुस्तान १ अप्रैल सन् १६६२।

३०६. "राम के रूप पर मोहित होकर वे अपने मन में वासना को उदय होने देतीं तो तुलसी की पुनीत सृष्टि न कहलातीं।" —तुलसी —रामबहोरी शुक्ल, पृ० १६६

३१०. "वे प्रकृति के सरल थे और शील के आगार थे। उनका शील, जिसकी आभा से रामचरितमानस भी अभिमंडित है, बाहरी शिष्टाचार मात्र नहीं। वह उनके व्यक्तित्व का अभिन्नांश है, उनका हृदय का विभव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। राम के गुणों ने उनके हृदय में बैठकर सब दुर्गुणों और सांसारिक वक्रता के लिए अर्गला लगा दी थी। वैर और विरोध से वह दूर रहते थे।" —गोस्वामी तुलसी दास —बाबू श्यामसुन्दर दास तथा पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० १६६

३११. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५२

३१२. गोस्वामी तुलसी दास—बाबू श्यामसुन्दर दास, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० १६८-१६६

३१३. "पहुँचे हुए भक्त होने के साथ-साथ गोसाईं जी कवि भी थे, यद्यपि अपने समय में, आरम्भ में, अपनी अनन्य भक्ति के कारण उनकी ख़्याति हुई थी तथापि अपनी रचनाओं के कारण ही उनका अधिक नाम है। परन्तु वे पहले भक्त हैं तब कवि। —वही पृ० ७७

३१४. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड —संस्कृत श्लोक।।१।।

३१५. वही, लंका काण्ड ।।१०३।।६,७ तथा ।।१०३। २,३,४,५

३१६. वही, ।।१०३।। छंद

३१७. वही, ।।१०४।।

३१८. निरखि बच्छ जनु धनु लवाई।। रामचरितमानस – उत्तर काण्ड ।।५।।५ तथा
जनु धेनु बालक वच्छ तजि ग्रहँ चरन बन परवस गई।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भई।। वही ।।५।। छंद

३१६क. विचार और विश्लेषण—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४४

३२०. विनय पत्रिका —गोस्वामी तुलसी दास कृत —पद ११४

३२१. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।५४।।४

३२२. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २२१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६ अध्याय

तुलसी की नारी भावना

तुलसी के नारी सम्बन्धी विचारों के सम्बन्ध में आलोचकों के मत एकत्रित करने पर प्रतीत होता है कि वे नारी निन्दा को तुलसी के काव्य सृजन का एक लक्ष्य ही मान बैठे हैं। वास्तव में तुलसी साहित्य में नारी निन्दक स्थल सोद्देश्य नहीं हैं, वरन् वे उनके प्रबन्ध काव्य में सत् एवं असत् नारी पात्रों के चरित्र विश्लेषण के लिए अनिवार्य रूप से यत्र-तत्र आते रहे हैं। अतः तुलसी की नारी भावना को स्पष्टतया हृदयंगम करने के लिए उनके काव्य में उद्भूत नारी के सत् एवं आदर्श रूप, असत् रूप तथा पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक रूपों की विस्तृत विवेचना आवश्यक है।

तुलसी साहित्य में नारी के उपरोक्त रूपों की विवेचना के पूर्व इस बात को समझ लेना आवश्यक हो जाता है कि तुलसी के विचारानुसार सत् और असत् की व्याख्या क्या थी ? तुलसी की नारी सम्बन्धी भावना उनके दार्शनिक मतवाद पर आधारित थी। उन्हों ने शंकराचार्य के समान माया का केवल अविद्या रूप ही नहीं देखा था वरन् उसका दूसरा पक्ष, जो जगत् को उत्पन्न करने वाली आदि शक्ति स्वरूप प्रभु की महामाया है, भी देखा था।[1] इस माया के भी दो भेद-विद्या माया और अविद्या माया हैं।[2] जिसमें से ..“एक दुष्ट अतिसय दुःख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा।” का अविद्या माया रूप है तथा दूसरा विद्या माया का रूप ..“एक रचई जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरितनहिं निज बल ताकें।”[3] तुलसी ने इस विद्या माया का परिष्कृत रूप भक्ति में देखा है। माया और भक्ति दोनों नारी वर्ग की हैं परन्तु माया केवल ब्रह्म की नर्तकी है जब कि राम भक्ति के विशेष अनुकूल रहते हैं..“भगतिहि सानुकूल रघुराया।”[4] माया जीव को नचाती रहती है और भक्ति उस जीव को माया से छुड़ाने वाली है।[5] स्पष्ट है कि तुलसी ने इसी दार्शनिक तत्त्व चिन्तन पर आधारित नारी के उच्चतम और निम्नतम रूपों में सतासत् की परिव्याख्या की है।

तुलसी महान् लोक साधक थे। उनका विश्वास था कि वही कीर्ति, वही कविता और वही सम्पदा उत्तम है, जो गंगा की भाँति सबका समान हित करने वाली है।[6] ठीक उसी प्रकार उन्हें नारी का वही स्वरूप वांछनीय है, जो प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों पर आधारित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नारी के श्रेष्ठतम धर्म पातिव्रत से संयुक्त हृदय की महानतम विभूतियों त्याग, सेवा, ममता, कर्तव्यारूढ़ता, पति प्रेम परायणता और नारियोचित सम्पूर्ण शील एवं मर्यादा से आवेष्टित दिव्य जगज्जनोत्सव की कल्याणकारी सुषमा से अनुप्राणित है।

संसार में मानव चरित्र के दो स्वरूप स्पष्ट ही दृष्टिगत होते हैं—एक वे जो लोक की मंगल कामना से प्रेरित, त्याग बलिदान एवं स्वार्थहीन परोपकार की आधार शिला पर आधारित सत् अथवा आदर्श रूप हैं, दूसरे वे जो केवल अपने निजी हित एवं स्वार्थ साधना में निरत यथार्थ की संकुचित परिसीमाओं में आबद्ध असत् रूप हैं। किसी भी श्रेष्ठ साहित्य के लिए सत् और असत् दोनों रूपों की अभिव्यंजना आवश्यक रूप से वांछित हो जाती हैं। अतः तुलसी साहित्य में दोनों ही रूप स्पष्टतया अभिव्यंजित हुए हैं जिनमें से एक (सत्) के द्वारा उन्होंने मानवोचित गुणों की उत्कृष्टतम परिसीमा का दिग्दर्शन कराया है तो दूसरे में मानवता के इतर राक्षसत्व से युक्त निम्नतम भावनाओं से परिपूरित दौर्बल्य की परिव्याख्या प्रस्तुत की है। सीता, पार्वती और कौशल्या प्रथम कोटि के ऐसे ही सत् पात्र हैं और शूर्पणखा तथा मंथरा की गणना असत् पात्रों में होती है।

इसके अतिरिक्त तुलसी साहित्य में सतासत् से युक्त द्वंद्वमय नारी पात्रों का भी दिग्दर्शन हुआ है। कैकेयी ऐसे ही चरित्र की अभिव्यंजना है। वह वास्तव में सत् पात्र ही है। उसके चरित्र की ईर्ष्या, द्वेष, डाह, क्रोध, निष्ठुरता और स्वार्थपरता की भावनाओं की अभिव्यक्ति किन्हीं परिस्थितियों की आकस्मिकता के कारण उद्भूत हुई है। अतः उसका असत्व एक मिथ्या आवरण है, एक भ्रांति है जिसका स्पष्टीकरण तुलसी स्वयं ही सरस्वती द्वारा बुद्धि फेरने की बात कहकर दे देते हैं। कैकेयी का यह असत्व अपनी असफलता और लघुता का ज्ञान होने पर पश्चाताप की अग्नि में घुल जाता है और वह हृदय की सम्पूर्ण सहानुभूति की अधिकारिणी बन जाती है।

१. नारी का सत् अथवा आदर्श रूप—तुलसी साहित्य अवतरित नारी के सत् अथवा आदर्श स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए तुलसी की उपर्युक्त सतासत् की विवेचना के आधार पर तुलसी के सत् नारी पात्रों को भी चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) दैवी अंशों से संयुक्त अलौकिक सत् रूप।

(ख) सद्गुणों से आवेष्टित कर्तव्यपरायण नारी का लौकिक सत् रूप।

(ग) भगवान् राम की भक्ति से सम्पन्न नारी का सत् रूप।

(घ) असत् के मिथ्या आवरण से आच्छादित नारी का सत् रूप।

(क) दैवी अंशों से संयुक्त अलौकिक सत् स्वरूप में नारी परम् प्रभु की आदि शक्ति है, जो धरती के भार को हरण करने के लिए अवतरित प्रभु के साथ ही साथ परम् शक्ति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के रूप में धरती पर अवतार लेती है।[७] वह लोक की उत्पत्ति, पालन और संहार की असीम शक्ति से सम्पन्न क्लेशों का हरण करके कल्याणों को करने वाले परम् पावन रूप में वन्दनीय और पूजनीय हैं।[८] वह साक्षात् जगज्जननी स्वरूपा है,[९] जो मनोवांछित फल प्रदान करने की क्षमता से सम्पन्न है और जिसके चरणों की वंदना कर स्वयं तुलसी निर्मल बुद्धि पाने की आकांक्षा करते हैं।[१०] जहाँ नारी अपने इस मंगलमय रूप में जन्म लेती है, वहाँ ऋद्धि सिद्धि एवं संसार के समस्त वैभव सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं।[११] उनके चरण कमलों की वन्दना करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं,[१२] तथा जगदम्बा मान कर मन ही मन प्रणाम करते हैं।[१३]

इस अलौकिक रूप में नारी शोभा की राशि एवं जगत् की मूल है। जिनके अंश से गुणों की आगार अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं[१४] तथा जिनके इच्छा करते ही उनके इंगितों पर ऋद्धियाँ सिद्धियाँ आज्ञा के लिए कर बांधे सम्मुख खड़ी रहती हैं।[१५] इस रूप में उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है, एक होते हुए भी अनेक रूप धारण कर लेने की उसमें अपार शक्ति है क्योंकि सब मायाएँ इसी परम माया के वशीभूत हैं।[१६]

प्रबल पावक भी ऐसी दैवी शक्ति से सम्पन्न नारियों के लिए चन्दनवत् शीतल बन जाता है और धधकती हुई अग्नि में प्रविष्ट होने पर भी उस सत्त्व युक्त नारी के समस्त लौकिक कलंक क्षार हो जाते हैं और वह स्वयं तप कर कुन्दन ही बन जाती है।[१७] स्वयं अग्नि प्रकट होकर उसकी पावनता की साक्षी देता है।[१८] ऐसे सत्त्व स्वरूप पर देवता गण भी हर्षित होकर पुष्प वर्षा करते हैं।

ये दैवी शक्ति सम्पन्न नारियाँ भी अपने पति को इष्टदेव मानती हैं तथा उनकी इच्छानुसार ही सृजन, पालन आदि में लीन रहती हैं, जिनकी अपार महिमा का वर्णन करने के लिए हज़ारों सरस्वती और शेष जी भी समर्थ नहीं हैं।[१९] यदि उनके स्वामी विश्वास रूप हैं तो वे साक्षात् श्रद्धा स्वरूप में वन्दनीय हैं।[२०]

इस प्रकार दैवी अंशों से युक्त नारी का यह अलौकिक सत् स्वरूप सर्व समर्थ, सर्व वन्दित और सर्वदा अनिन्दित है। तुलसी साहित्य में सीता और पार्वती (भवानी) में इस सत् स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया है।

(ख) सद्गुणों से आवेष्टित कर्तव्यपरायण नारी के लौकिक सत् रूप के अन्तर्गत तुलसी के वे सभी नारी पात्र आ जाते हैं, जो लौकिक होते हुए भी क्षमा, दया, न्याय, सहनशीलता, पतिपरायणता तथा अन्य दिव्य सद्गुणों से युक्त कर्तव्यपरायणता का अलौकिक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सीता, पार्वती, मैना, कौशल्या, सुनयना, मन्दोदरी, तारा और अनसूया ऐसे ही पात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लौकिक सत् स्वरूपा नारी की श्रेष्ठतम कसौटी उसका पतिव्रत धर्म का निर्वाह है। जिस प्रकार गंगा से सिंचित प्रदेश, नीति और न्याय से युक्त राजा और अपने धर्म में अडिग ब्राह्मण धन्य हैं, वैसे ही पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली सती नारी धन्य है।[२१] अपवित्र स्त्री भी पति सेवा से शुभ गति की अधिकारिणी बन जाती है तथा पतिव्रत का पालन करने वाली स्त्री का यशगान वेद भी करते हैं।[२२]

अपने इस सत् स्वरूप में नारी तुलसी द्वारा सर्वत्र ही वन्दनीय रही है। राजा दशरथ की कौशल्या आदि रानियों की पति की प्रिया, पति के अनुकूल चलने वाली, पवित्र आचरण धारण करके विनम्र भाव से भगवान् के चरणों में दृढ़ भक्ति रखने वाली तथा शोभाशील एवम् तेज की खान कहकर अत्यधिक सराहना की है।[२३] इस रूप में नारी महिमा की सीमा, पुण्य और सुन्दर कल्याण की प्रतिमूर्ति है।[२४]

सती नारी के इस सत्त्व संयुक्त हृदय की अचलता और दृढ़ता के प्रति तुलसी ने सर्वत्र ही अपनी गहन अवस्था की अभिव्यंजना की है। दस सहस्र राजाओं के मिलकर, शिव धनुष को उठाने के असफल प्रयास को देखकर धनुष की गुरुता की उपमा सती स्त्री के मन से देते हुए तुलसी उसका महत्त्व प्रदर्शित करते हैं—

भूप सहस दस एकहि बारा, लगे उठावन टरह न टारा।
डगइ न संभु सरासनु कैसे। कामी वचन सती मनु जैसे।[२५]

दृढ़ प्रेम, अटूट भक्ति और अडिग तप की अग्नि में तपी, सच्ची लगन में निरत नारी का यह सत् स्वरूप, ऋषि-मुनियों की तपस्विनी स्त्रियों, मुनि श्रेष्ठों और देवताओं द्वारा भी प्रशंसनीय एवं वन्दनीय है।[२६] पर्वतराज की कन्या पार्वती के सत्य अनुरागानुरंजित दृढ़ सत्त्व स्वरूप के सम्मुख तो मदन रिपु निरासक्त शंभु को भी आत्म समर्पण करना पड़ा।[२७]

तुलसी की दृष्टि में ऐसी नारी, उसका वंश और उसके माता-पिता सभी अभ्यर्थना के पात्र हैं।[२८] श्रेष्ठ अमूल्य रत्न स्वरूप ऐसी कन्याओं के जन्म से माता-पिता का यश संसार भर में प्रकाशित हो जाता है।[२९] सीता और पार्वती ऐसी ही आदर्श कुल कन्याएँ हैं जिनसे सहज ही दोनों कुल (पिता और पति कुल) पवित्र हो जाते हैं।[३०] इस सत्त्व संयुक्त स्वरूप में तुलसी नारी को वह पारस पत्थर मानते हैं जिसके स्पर्श मात्र में कुधातु रूप पुरुष को भी श्रेष्ठ बना सकने का सामर्थ्य है, वह तो ऐसा अमृत है जिसकी खोज में रोगी रूपी वर स्वयं ही विकल हो घूमता फिरता है, वह तो ऐसा अमूल्य रत्न है जिसकी अभिलाषा श्रेष्ठ राजा भी करता है।[३१] यही कारण था कि शिव को पार्वती के हाथों बिक जाना पड़ा और इष्टदेव भगवान् राम जी सीता के सम्मुख छाया मात्र ही रह गए—

गरब करहु रघुनन्दन जनि मन मांह।
देखहु आपनि मूरति सिय के छांह।।[३२]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस सत् स्वरूप में केवल सीता अथवा पार्वती ही महत् गौरव की अधिकारिणी नहीं हैं, वरन् लौकिक, सत् रूप में नारी, राक्षस जाति की हो अथवा वानर, समान रूप से महिमामयी है। महाबली राक्षस जलन्धर अपनी सती पत्नी के परम् पतिव्रत के कारण ही अपराजेय हो गया था। समस्त देवता हार कर संतप्त हो उठे। यहाँ तक कि त्रिपुरासुर जैसे अजेय शत्रु का विनाश करने वाले शिवजी भी उस दैत्य राज की पवित्र पत्नी के सत्त्व के कारण उसे जीतने में असमर्थ रहे।[३३] अन्त में देवताओं के हित के लिए जलन्धर को पराजित करने के हेतु स्वयं भगवान् विष्णु को छल से उसकी पतिव्रता स्त्री का व्रत भंग करना पड़ा। इस छल का ज्ञान होने पर कुपित होकर उस तेजस्विनी सती नारी ने भगवान् को ही शाप दे दिया, जिसे उन्हें नत मस्तक होकर स्वीकार करना पड़ा।[३४] इस प्रकार सद्गुणों से आवेष्टित पतिव्रता के लौकिक रूप में भी तुलसी ने अलौकिक शक्ति निहित देखी है।

कर्तव्य पथ पर आरूढ़ नीति परायण, विवेकवान एवं सत्त्व गुणयुक्त राक्षस और वानर कुल में उत्पन्न मन्दोदरी, तारा और त्रिजटा की भी तुलसी ने बार-बार सराहना की है।[३५] अतः प्रेम, स्नेह, ममता, करुणा, क्षमाशीलता आदि गुणों से युक्त, सद्असद् विवेक से सम्पन्न कर्तव्य मार्ग पर आरूढ़, मर्यादा-ज्ञान, संकोच, लज्जाशीलता और पतिव्रत की गरिमा से अभिमंडित नारियाँ ही लौकिक रूप में सत् स्त्रियों का आदर्श हैं।

(ग) भगवान् राम की भक्ति से सम्पन्न सत् रूप में नारियाँ तुलसी की श्रद्धा और सम्मान की पात्री हैं। रामचरितमानस का गाान करने वाले तथा आदर पूर्वक उसे सुनने वाले नर और नारी दोनों को ही समान रूप से तुलसी ने मानस का अधिकारी देवता माना है।[३६] यही नहीं —"राम भगति रत नर अरू नारी, सकल परम गति के अधिकारी" कहकर तुलसी ने भक्त रूप में नारी को मोक्ष की अधिकारिणी माना है। यहाँ 'जोषिता नहीं अधिकारी' की उक्ति निरर्थक ही सिद्ध होती है। 'अधम ते अधम अधम अति नारी' कहने वाली शूद्र जाति की शबरी केवल राम भक्ति के नाते ऋषि मुनियों और परम् योगियों को भी दुर्लभ गति की अधिकारिणी कही गई है।[३७] वास्तव में तुलसी ईश्वरोन्मुख व्यक्ति को, भले ही वह नारी हो, पुरुष हो, जड़ हो या चेतन, भगवान् का अत्यधिक प्रिय मानते हैं।[३८] भगवान् राम भी एक मात्र भक्ति के नाते को ही मानते हैं।[३९] अतः तुलसी घोषणा करते हैं —"पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते, सब मानिहिं राम के नाते"।[४०] लक्ष्मण जननी सुमित्रा वात्सल्यमयी माता के स्थान पर भावमयी भक्त रूप में ही अधिक चित्रित की गई हैं, जो तुलसी द्वारा वन्दनीय हैं।

इसी प्रकार पति द्वारा शापित अहल्या राम के चरणस्पर्श तथा राम की अनन्य भक्ति के कारण अत्यन्त बड़भागिन और तपोमूर्ति के रूप में अंकित की गई हैं।[४१] रावण की मृत्यु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर मन्दोदरी का विलाप न होकर, भगवान् के प्रति भक्त का स्तुति गान ही अधिक है। अतः भक्त होने के नाते मन्दोदरी तुलसी की दृष्टि में सदा सराहनीय ही रही हैं। त्रिजटा भी सीता द्वारा माता के सम्बोधन से विभूषित की गई है। वास्तव में राम जब घोषणा करते हैं—

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।

मानस —उत्तर काण्ड।।८७क।।

तब तुलसी की दृष्टि में भक्ति के क्षेत्र में नारी भी सदा स्तुत्य है, मंगलमय और कल्याणमयी है।

(घ) असत् के मिथ्या आवरण से आच्छादित नारी का सत् रूप—नारी जननी पद की एक मात्र अधिकारिणी होने के नाते स्वभावतः ही दयामयी, क्षमामयी और त्यागमयी होती है! परन्तु उलझती हुई पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक परिस्थितियों, पुरुष वर्ग के अत्याचार और नारी की कुण्ठा तथा तुलसी के विचार में भाग्य की विडम्बना के कारण उसमें जड़ता, कुटिलता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध और कलह आदि भावनाओं का उद्रेक दृष्टिगत होता है, क्योंकि असत् तत्त्वों का यह आवरण क्षणिक है, और क्रूरता, दंभ, प्रतिहिंसा आदि अपनाने के प्रयास में जब नारी जीवन की विभिन्न दुरभिसंधियों के मध्य विवश और असहाय हो जाती है तब ग्लानि ओर पश्चाताप उसके असत्त्व को भस्मीभूत कर पुनः उसे निर्मल, सरल और सहानुभूति का पात्र बना देते हैं। उसका यह रूप सराहनीय न भी सही, क्षम्य तो हो ही जाता है।

मुख्यतः भरत माता कैकेयी ऐसी ही सत् नारी पात्र है। आत्मग्लानि में गलती हुई कैकेयी को अनेक स्थलों पर आदर देकर राम सम्पूर्ण दोष विधाता की इच्छा और भाग्य की विडम्बना को देकर उसका उद्धार करते हैं। माता कौशल्या भी कैकेयी को दोष न देकर अपने पुण्य कर्म के समाप्त हो जाने की ओर संकेत करती हैं।[४२] स्वयं तुलसी भी 'सुरमाया' और भावी वश बुद्धि फिर जाने की बात कह कर कैकेयी के सत्त्व की रक्षा करते हैं।

इसीप्रकार सती जो परम पवित्र हैं भावीवश अपने पति से छल करके (असत् भाषण और दुराव रखने के कारण) असत्त्व से आच्छादित हो जाती हैं। परन्तु उसका प्रायश्चित करके वे पार्वती रूप में जन्म लेती हैं और पुनः असीमित प्रेम और आदर सहित शिव को प्राप्त करती हैं। अतः ये पात्र सत् होते हुए भी असत्व से आच्छादित हो जाते हैं परन्तु पश्चाताप और प्रायश्चित से पुनः सत्त्वयुक्त होकर क्षम्य हो जाते हैं। इन्हें भी समाज में आदर और मान का अधिकार तुलसी ने दिया है, जो राम के द्वारा कैकेयी और शिव द्वारा सती को सम्मानित करने में अभिव्यंजित होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२. नारी का असत् रूप—तुलसी साहित्य में नारी के सत् स्वरूप, यदि मानवोचित गुणों की उत्कृष्टतम परिसीमा हैं, तो इनके असत् स्वरूप, राक्षसी वृत्ति से युक्त, निम्नतम भावनाओं की परिव्याख्या। प्रथम में त्याग, सेवा, ममता, कर्तव्यारूढ़ता, पतिप्रेमपरायणता, पावनता, लज्जाशीलता तथा अलौकिक मर्यादा एवं शील की अभिव्यंजना है, तो दूसरे में स्वार्थ दंभ, अविवेक, निर्दयता, विध्वंसक महत्त्वाकांक्षा, घोर वासना और प्रतिहिंसा की निम्नतम अभिव्यक्ति।

नारी का यह असत् रूप राक्षसराज रावण की भगिनी शूर्पणखा में पूर्णतया परिलक्षित हुआ है। इस रूप में नारी दुष्ट हृदया और भयंकर सर्पिणी के समान है, जो अति निर्लज्जता, उच्छृंखलता, कामोन्मत्तता की प्रतीक, धर्मज्ञानशून्य, रूपगर्विता एवं कुलटा के रूप में अंकित की गई है। इसी असत् नारी पात्र के प्रसंग में तुलसी ने जो कटूक्तियाँ की हैं, उन्हें लेकर आलोचक तुलसी को नारी जाति का निन्दक मानने लगे हैं। वास्तव में न्याय पूर्ण दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि ये कटूक्तियाँ केवल असत् पात्रों अथवा उनकी अमानवीय आसुरी प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके ही कही गई हैं अन्यथा नारी के सत् स्वरूप से प्रेरित होकर तुलसी ने जो सत नारी पात्रों का पूजन, अर्चन और वन्दन किया है वह कभी सम्भव न होता।

शूर्पणखा, जिसका परिचय तुलसी 'दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी' कहकर देते हैं, वास्तव में नारी जीवन की विकृति की परिसीमा है। जिसमें भोगलिप्सा, उच्छृंखलता और हिंसा की प्रवृत्ति ही प्रमुख है, जिसका एक मात्र दंड उसे विरूप करना ही तुलसी की दृष्टि में उपयुक्त बन पड़ा और तब जैसे विध्वंस के लिए लालायित यह असत नारी सम्पूर्ण राक्षस जाति के विनाश का कारण बनी।[४३]

इसी प्रकार नीच जाति की अति कुरूप, कुबड़ी, मूर्ख, कुटिलहृदया कुचाली मंथरा है, जो राम के राज्याभिषेक का समाचार पाते ही ईर्ष्या और विद्वेष से जल उठती है।[४४] इस ईर्ष्या का शमन केवल भरत को राज्य देकर ही नहीं हो पाता वरन् यह ईर्ष्या हिंसक रूप धारण कर राम के लिए चौदह वर्ष के वनवास की व्यवस्था भी करती है। अतः मंथरा स्वभाव से ही असत्त्वयुक्त और विषाक्त भावनाओं से परिपूरित है। नारी का यह असत् रूप सर्वत्र ही तुलसी द्वारा निन्दनीय एवं भर्त्सनीय रहा है।

३. नारी का पारिवारिक रूप—नारी जीवन का वास्तविक कार्यक्षेत्र और उसके विभिन्न स्वरूपों की मनोहर क्रीड़ास्थली परिवार ही है। तुलसी का मानस एक पारिवारिक महाकाव्य है, जिसमें नारी के लगभग सभी पारिवारिक स्वरूपों—माता, पुत्री, कुलवधु, पत्नी, प्रेयसी, सपत्नी, भगिनी, सखी, दासी आदि—का विश्लेषण पर्याप्त विस्तार से किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गया है। तुलसी की सबल तूलिका से अंकित ये विभिन्न रूप उनकी नारी भावना का सच्चा परिचय देने में समर्थ हैं।

मातृरूप—महाकवि तुलसी ने जिस विराट् शाश्वत् मातृरूप में नारी का अंकन किया है, वह सृजन, पालन और कल्याण की दिव्य शक्तियों से विभूषित आदि शक्ति के रूप में परम गरिमामय है।[४५] जिसे वैदिक युगीन कवियों द्वारा अभिव्यंजित अदिति के महिमामय मातृरूप के समकक्ष रखा जा सकता है। यह शाश्वत मातृरूप, सर्वत्र ही तुलसी की उपासना, वन्दना और अर्चना का आधार रहा है। नारी का यह स्नेह, वात्सल्य, करुणा, क्षमा और ममता के दिव्य विभवों से परिपूरित मातृ रूप, लोक कल्याण की अपार क्षमता संयुक्त है। अतः तुलसी साहित्य में यह मातृ भावना जग जननी में विकास प्राप्त करती हुई अधिक व्यापक, अधिक उज्ज्वल और अधिक प्रेक्षणीय बन गई है।[४६] यह विराट् मातृत्व सर्वत्र ही देवता, मनुष्य, मुनि आदि सभी को विमुग्ध करने वाला, सुख का स्रोत और उनकी वन्दना तथा अर्चना का पात्र है।[४७] अपने दुःख दोषों और क्लेशों को दूर करने के लिए कवि इसी अम्बा को पुकारता हुआ दृष्टिगत होता है।[४८]

वास्तव में वात्सल्यभाव में प्रेम की पूर्णता और मातृत्व में नारी के चरम विकास को पाकर ही तुलसी ने नारी के इस रूप की आरती भाव भीने—श्रद्धा संयुक्त स्वरों में उतारी है। सीता और पार्वती (भवानी), कौशल्या और सुमित्रा, मैना और सुनयना सहज वात्सल्य की प्रतिमूर्तियाँ हैं।

वात्सल्य रस से अभिसिंचित कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी की ललक, प्रेम की पुलक और रस मग्नता के अनेक चित्र तुलसी की तूलिका से निःसृत हुए हैं।[४९] माता सुमित्रा सोते हुए बालकों (राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न) को हृदय से लगाए प्रेम मग्न सजल लोचन दृष्टिगत होती हैं।

सुमित्रा लाय हिये फनि मनि ज्यों गोए।
तुलसी नेवछावरि करति मातु अति प्रेम-मगन मन, सजल सुलोचन कोये।[५०]

वात्सल्य से परिपूरित मातृरूप के ऐसे अनेक उदाहरण तुलसी साहित्य में देखे जा सकते हैं।[५१] इसीप्रकार अंचल पट की छत्रछाया में राम को लिए कौशल्या के गरिमामय स्वरूप की अनुपम झाँकी दृष्टव्य है—

कौसल्या को जेठी दीन्ह अनुसासन हो। नहछू जाई करावहु बैठि सिंहासन हो,
गोद लिए कौसल्या बैठि रामहि वर हो। सोभित दूलह राम सीस पर आंचर हो।।

मातृत्व के महत् उज्ज्वल और विकसित रूप की स्थापना तुलसी ने माता कौशल्या के पावन शाश्वत मातृत्व के स्वरूप में की है। अनायास ही पुत्र को राज्य देने के स्थान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर वन देने की बात सुनकर मातृ हृदय हाहाकार कर उठता है। शरीर विकंपित और नेत्र सजल हो जाते हैं। माता सहम कर सूख जाती है, गहन पीड़ा हृदय में कसक उत्पन्न कर देती है। मांजा खाकर बदहवास मछली के सदृश वह ममतामयी माता, सिंह की गर्जना से विकल हिरनी सी हो जाती है।[५२] हृदय संतप्त है, ममता 'वन जाओ' कहने की आज्ञा नहीं देती और कर्तव्य "घर रुक जाओ" कहने को प्रेरित नहीं करता। इस धर्म संकट के समय धर्म और ममता की तुला पर थरथराती हुई वह कल्याणमयी माता भरत को भी राम के समान मानती हुई, उदार और शाश्वत मातृत्व का परिपाक करके भाइयों में विरोध और सूर्य कुल के विनाश की आशंका में धर्म पर भार देकर कर्तव्य को ऊँचा उठा देती है।[५३] यद्यपि कैकेयी क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिहिंसा के वशीभूत भरत को राज्य और राम को वनवास की व्यवस्था करके पावन मातृत्व को कलुषित करती है, तथापि कौशल्या—

जौ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।

के द्वारा अधिकार पूर्ण मातृत्व की भावना से अनुरंजित होते हुए भी कैकेयी के मातृत्व को जैसे चुनौती देते हुए कहती है—

जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।५५।।१

और कैकेयी के संकुचित मातृत्व का मिथ्या आवरण तब छिन्न भिन्न हो जाता है, जब वह सीता सहित सरल भाइयों राम और लक्ष्मण को वन में देखकर धरती से फटने और विधाता से मृत्यु की याचना करती है—

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई।।
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई।।

वही ।।२५१।।३

माता कौशल्या के गौरवशाली रूप के सम्मुख कैकेयी असफल और तिरस्कृत होकर निज लघुता में स्वयं ही गल जाती है—

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। कहि कहै केहि दूषनु देई।

वही ।।२७२।।१

तुलसी को माता रूप में नारी का कौशल्या जैसा उदार रूप ही वांछित है, जिसकी विस्तृत सीमाओं में राम और भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न, हनुमान्, सुग्रीव और अंगद तथा राम के सभी सखा समान ममत्व के अधिकारी हैं।

मैना और सुनयना के मातृ रूप भी अत्यधिक स्वाभाविक और सरस बन पड़े हैं। माता मैना शिव के भयंकर रूप को देखकर स्नेह विह्वल होकर विधाता को ही मूर्ख की उपाधि से विभूषित कर बैठती है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी।
जेहि विधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरू बाउर कस कीन्हा।।

अपनी परम रूपवान और जीवन की आधार कन्या पार्वती को शिव जैसे बावले वर के लिए तप करने का उपदेश देने वाले नारद भी उसके उलाहने के पात्र हैं—

साचेहुं उन्ह के मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया।
पर घर घालक लाज न भीरा। बांझ कि जान प्रसव कै पीरा।।

वास्तव में अनन्त पीड़ा का प्रतिफल संतति उससे भी अधिक स्नेह और ममता का आधार है जिसके लिए मां की ममता संसार के अपयश, घर के विनाश और जीवन मरण की भी चिन्ता नहीं करती—मैना का यही विह्वल मातृत्व द्रष्टव्य है—

कस कीन्ह बरू बौराह विधि जेहिं तुम्हहि सुन्दरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहि सो बरबस बबूरहि लागई।
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं।

मानस—बाल काण्ड ।।६५।। छंद

इसी स्नेहानुरंजित मातृत्व के रूप का दिग्दर्शन
पार्वती-विदा के अवसर पर होता हैं

भेंटि विदा करि बहुरि भेंटि पहुंचावहि
हुंकारि हुंकारि सुलवाई धेनु जनु धावहिं।।
उमा मातु-मुख निरखि नयन जल मोचिहिं
'नारि जनमु जग जाय' सखी कहि सोचहिं।

पार्वती मंगल ।।१५८-१५९।।

ठीक यही रूप सीता की माता सुनयना का दृष्टिगत होता है, जो अपार वात्सल्य और गहन ममत्व भावना से परिपूरित है—

सादर सकल कुअँरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई।
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारी। कहहिं बिरंचि रचीं कत नारी।

मानस —बाल काण्ड ।।३३३।।४

इसके अतिरिक्त माँ के सहज मातृ रूप की मार्मिक अभिव्यंजना, राम वनगमन पर कौशल्या के विलाप तथा राम के वन से लौटने के अवसर पर भेंट करते हुए गीतावली, कवितावली और मानस में अनेक स्थलों पर की गई है।[५४]

इस प्रकार तुलसी ने शाश्वत् मातृत्व के सहज रूप अंकित किए हैं। मातृ रूप में नारी तुलसी के सम्पूर्ण आदर, मान, श्रद्धा और पूज्य भाव की अधिकारिणी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुत्री रूप—मातृ रूप की भाँति ही नारी का पुत्री रूप भी सर्वत्र, ममता, वात्सल्य और परिवार की सम्पूर्ण सुकोमल भावनाओं का पात्र तथा परम पावन है। कन्या के सुहावने रूप का वर्णनातीत अंकन करते हुए तुलसी कहते हैं—"कुंवरि लागि पितु कांध ठाड़ि भइ सोइह। रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोइह।" (पार्वती मंगल ।।१३।।)। सयानी कन्या यद्यपि पिता-माता की चिन्ता का कारण है तथापि यह चिन्ता अन्य किसी कारण से नहीं केवल स्नेहातिरेक के कारण उसके अनुरूप योग्यवर प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा के फलस्वरूप ही है।[५५] क्योंकि कन्या का जन्म पिता की उन्नति और उसका विवाह जीवन की चरम सफलता है।[५६] कन्या पिता के पवित्र प्रेम और प्राणों की पाहुनी है।[५७]

तुलसी संहिता में यद्यपि पुत्री, परिवार में माता-पिता सुहृद्जन तथा परिवार के सभी लोगों की प्रसन्नता और हर्ष का कारण है[५८] तथापि पुत्री रूप में नारी के शील संकोच से परिपूरित, पवित्र, मर्यादित और पावन स्वरूप को ही मान्यता प्रदान की गई है। पार्वती के पूजन हेतु माता द्वारा भेजी गई सीता जब विलम्ब हुआ जानती है तो—

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ विलंबु मातु भय मानी।।
धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितुबस जाने।।[५९]

की भावना से प्रेरित होकर तुरन्त लौट पड़ती है। इसी प्रकार पार्वती जब घोर तप के बाद शिव को सम्मुख खड़े पाती है तो ससंकोच सखी द्वारा अपने को पिता के अधीन कहकर कन्या की पावन मर्यादा का पालन करती है।[६०] इसके विपरीत यदि रावण भगिनी शूर्पणखा को पुत्री रूप में देखा जाये क्योंकि वह भी कुँआरी कन्या है तो वह पुत्री का असत् रूप ही कहा जायगा क्योंकि स्वयं उच्छृंखलता पूर्वक परपुरुषों के सम्मुख विवाह प्रस्ताव रखने की मर्यादा हीनता तुलसी की दृष्टि में भर्त्सनीय है जिसकी उन्होंने निन्दा की है। अन्यथा अपने पावन स्वरूप में पुत्री परम् स्नेह की भाजन और माता-पिता के जीवन की मूल रूप है तथा उसी के हेतु उनका जीवन और सुख एवं सम्पत्ति है।[६१]

मर्यादा, संकोच, सलज्जता और विनम्रता से परिपूरित कुल कन्या का पावन स्वरूप दोनों कुलों पिता और पति कुल को पवित्र करने वाला है—

पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ।।

ऐसी कन्या के सूक्ष्म स्नेहतन्तु सम्पूर्ण परिवार में दृढ़ता से पिरोए हुए प्रतीत होते हैं, जिसके कारण वह माता-पिता परिवार, पुरवासियों की भी प्राण प्रिय बन जाती है।[६२] यहाँ तक कि विवाहोपरान्त पितृ-कुल से विदा होते समय सम्पूर्ण समाज, पशु, पक्षी और परिवार व्याकुल हो उठता है।[६३] कन्या के हृदय में भी माता के प्रति कम स्नेह नहीं है। मां की ममता में बँधी वह बार-बार उससे भेंटती हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी। जाई जननि उर पुनि लपटानी।
जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहुँ दई।
फिरि फिरि विलोकिति मातु, तन तबसखीं लैं सिवपहिं गई।।[६४]

यही नहीं पुत्री जीवन के इस करुण प्रसंग पर परम वैराग्यवान पिता की ज्ञान-मर्यादा के बंधन भी टूटते दृष्टिगत होते हैं—

बन्धु समेत जनक तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए।
सीय विलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम विरागी।।
लीन्हि राँय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ग्यानकी।।[६५]

नारी जीवन के इन करुण प्रसंगों और निरीह स्वरूपों के प्रति तुलसी अपने हृदय की सम्पूर्ण सहानुभूति और मार्मिक संवेदना —"कत विधि सृजी नारि जग माही।" "जनमु जग जाय", "विरंचि रचीं कत नारी।" और "जगदीस जुवति जिनि सिर जहिं" कहकर अभिव्यंजित करते हैं।[६६] ये सभी उक्तियाँ पुत्री के प्रति अनूठी ममता की परिचायिका हैं। इस प्रकार तुलसी द्वारा पुत्री रूप में नारी सर्वत्र ही स्नेह, ममता, वात्सल्य, प्रेम, औदार्य और स्वार्थहीन त्याग की सत् भावनाओं की प्रेरक रही है। तुलसी की तूलिका से सर्वत्र ही पुत्री के शील, संकोच और सलज्ज रूप के अति मर्यादित पावन चित्र अंकित किए गए हैं।

कुलवधू रूप—पुत्री के समान ही कुलवधु रूप में भी नारी परिवार के सम्पूर्ण स्नेह और सम्मान की अधिकारिणी बनी है। तुलसी की दृष्टि में यदि वर विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म रूप है तो वधुएँ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय की श्रेष्ठ अवस्थाओं के सदृश हैं।[६७] अपने पुत्रों को वधुओं सहित राजा दशरथ परम् आनन्दित होकर इस प्रकार देखते हैं कि मानो उन्होंने यज्ञ, श्राद्ध, योग और ज्ञान क्रियाओं सहित अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति की हो।[६८] राजा दशरथ वधुओं के प्रति वही दुलार अभिव्यक्त करते हैं जो वे कन्या रूप में पिता से पाती रही हैं—

वधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हियँ हरषि दुलारी।[६९]

उसे सास पलकों से सुरक्षित नयनों के समान तथा सर्प की मणि के सदृश हृदय से लगाकर रखती हैं।[७०] साथ ही वधू भी सदा सास की चरण वन्दना करके उनकी सेवा की अभिलाषा और उनके सम्मुख विनम्रता तथा संकोच की भावना को धारण करके अति मर्यादित रूप में अंकित की गई है।[७१] यद्यपि सास स्नेहातिरेक के कारण अपनी संजीवनी जड़ी के समान पुत्र वधू से दीपक की बत्ती हटाने के लिए भी नहीं कहती तथापि शील संयुक्त वधू अनेक सेवक सेविकाओं के होते हुए भी घर की साज संवार स्वयं करती हुई सासों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की सेवा करती है।[७२] कुलवधू का यही विनम्र शील से युक्त और मर्यादा की आभा से मंडित, सुकोमल स्वरूप तुलसी द्वारा अति सुन्दरता से अंकित किया गया है।

पत्नी रूप—आदर्शवादी तुलसी को तत्कालीन सूफी और कृष्ण काव्य की भाँति नारी का केवल प्रेयसी रूप ही वांछित नहीं था और न ही संतों की भाँति निवृत्ति पथ का अवरोधक मानकर उन्होंने पत्नी को त्याज्य ही माना है अपितु गृह और परिवार की सीमाओं में विकसित होने वाली, पतिव्रत की गरिमा से अभिसिंचित अर्धांगिनी का स्वरूप गृहलक्ष्मी की भाँति उनके लिए सदा आदरणीय और अभ्यर्थनीय ही रहा है।

वास्तव में तुलसी की नारी भावना का मूल वैदिक साहित्य में ही सुरक्षित प्रतीत होता है। नारी के पत्नी स्वरूप का अंकन भी तुलसी ने उसी गौरवपूर्ण आधार पर किया है। यदि वेदों में पति-पत्नी, ऋक् और साम, द्यौ और पृथ्वी तथा मन और वाणी के समान एकात्म और एक दूसरे के अनुगामी कहे गए हैं[७३] तो—

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न। मानस—बाल काण्ड।।१८।।

की उद्भावना करके तुलसी भी पति-पत्नी के अभिन्नत्व की घोषणा करते हैं। पति-पत्नी के प्रेम की मर्यादा अति पावन और गूढ़ है।[७४] पत्नी, पति द्वारा परम आदरणीय तथा उसकी अर्धांगिनी हैं जो उसके वाम भाग में सुशोभित उसकी शक्ति स्वरूपिणी है।[७५] घर की बागडोर थामे हिमालय की पत्नी मैना, वैदिककालीन साम्राज्ञी रूप में प्रतिष्ठित पत्नी के समान ही गौरवशाली रूप में अंकित हुई है।[७६]

तुलसी की नारी पत्नी रूप में पतिव्रत के धर्म में निरत, त्याग, सेवा, कर्तव्यपालन और पति भक्ति के —"जिय बिनु देह नदी बिनु नारी। तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी।"[७७] की भावना से ओत-प्रोत, प्राचीन भारतीय आदर्शों पर आरूढ़ सती साध्वी रूप में अंकित की गई है। यद्यपि तुलसी ने पौराणिक ग्रन्थों के पतिव्रत धर्म के परम्परागत नियमों कि—वृद्ध, रोगी, मूर्ख और धनहीन पति का भी अपमान नहीं करना चाहिए तथा नारी की परम गति उसका पति ही है तथा पति की इच्छा के प्रतिकूल चलने वाली स्त्री अगले जन्म में वैधव्य पाती है।[७८] —आदि का उल्लेख किया है, तथापि उनके द्वारा अंकित पत्नी रूप में नारी स्वतंत्र व्यक्तित्व को धारण करने वाले परम तेजस्वी और गरिमामय रूप में अंकित की गई है। सीता राम द्वारा वन की भयंकरता का वर्णन और घर पर ही रहने के आग्रह का तर्क युक्त खंडन प्रस्तुत करती हुई हठपूर्वक वन जाती है।[७९] मन्दोदरी तो पति को अनेक बार समझाने का प्रयास करती है परन्तु असफल होने पर पति की मदान्धता और मूर्खता के कारण उसे दुर्वचन भी कहती हुई दिखलाई पड़ती है।[८०] इसी प्रकार तारा भी बाली को समझाने का प्रयास करती है। ये पत्नी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की परिचायक, पत्नीत्व की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गौरवशाली प्रतीक मानी गयी हैं क्योंकि इनका लक्ष्य पति की मंगल कामना और उसे सत् मार्ग दिखलाना ही है।[८१]

वास्तव में तुलसी साहित्य में पत्नी पति के सुख-दुःख की सच्ची सहचरी और उसकी सेविका के रूप में अंकित हुई है।[८२] सीता यह सहन ही नहीं कर सकतीं कि उनके पति वन जाएँ और वे अवध में सुख भोगें अतः—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मों कहँ भोगू।

की वक्रोक्ति के द्वारा दृढ़ता पूर्वक पति के सुख-दुःख की सच्ची सहयोगिनी होने का अभिप्राय व्यक्त करती हैं। उनकी सुकोमल अभिलाषा है—

प्राननाथ परदेस पयादेहि चले सुख सकल तजे तृन तूरि।
करों बयारि, विलंबिय विटपतर, झारों हौं चरन-सरोरुह-धूरि।।[८३]

और यह भावमयी परम सेविका पत्नी प्रिय से इसका भरपूर प्रतिदान पाकर अनुपम पुलक की अनुभूति करती है—

फिरि फिरि राम सिय तनु हेरत।[८४]

तथा —*तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै बैठे विलंब कों कंटक काढ़े।*
जानकी नाह को नेह लख्यो, पुलको तनुबारि विलोचन बाढ़े।।[८५]

यही नहीं जब सीता पूछती हैं कि वन कितनी दूर है तो—

तुलसी दास प्रभु प्रिया वचनु सुनि नीरज नयन नीर आए पूरि।
कानन कहाँ अबहिं सुनु सुंदरि, रघुपति फिरि चितए हित भूरि।।[८६]

इस प्रकार के मधुर दांपत्य भाव की प्रीति से अभिसिंचित पत्नी पति की पावन प्रेयसी है। मर्यादावादी तुलसी ने यद्यपि पति-पत्नी के रति क्रीड़ा सम्बन्धित स्वरूपों का अंकन नहीं किया है, फिर भी पवित्र दांपत्य प्रेम के अभिव्यंजक, मधुर हास-विलास के सरस और मधुर गान गाये हैं—

निजकर राजीवनयन पल्लव-दल-रचित सयन,
प्यास परसपर पियूष प्रेम-पान की।।
सिय अंग लिखें धातुराग सुमननि भूषन-विभाग,
तिलक-करनि का कहौं कलानिधान की।।
माधुरि-विलास-हास, गावत जस तुलसिदास,
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रानकी।[८७],

राम-पत्नी सीता के लिए इस पारस्परिक प्रीति के अमृत रस से सिंचित पर्ण कुटी भी महलों के समान, और कुश पत्तों की शय्या कामदेव की सेजों के समान सुखदायक है।[८८]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रेयसी और दुःख-सुख की सहचरी यह पत्नी, पति के निराशामय अवसाद के मार्मिक क्षणों में आशा और उत्साह का सन्देशा देकर कर्तव्य का पाठ पढ़ाने वाली सुहृद्, सखी के रूप में अंकित हुई है। राम वन गमन के बाद आकुल-व्याकुल पड़े दशरथ के प्रति कल्याणी पत्नी कौशल्या के वचन—

धीरज धरिअ त पाइअ पारू। नाहि त बूड़िहि सबु परिवारू।।
जो जियँ धरिअ विनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरि।।
प्रिया वचन मृदु सुनत नृप चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि।।

मानस—अयोध्या काण्ड ।।१५४।।

सन्तोष, धैर्य और शीतलता प्रदान करने वाले हैं।

इसके अतिरिक्त नीति-निपुण, विवेक संयुक्त पत्नी का मंत्रिणी रूप भी अंकित हुआ है। तारा और विशेष रूप से मन्दोदरी का यह रूप पर्याप्त विस्तार से चित्रित किया गया है। राम खेल में ही समुद्र बाँधकर, पार आ गए हैं यह समाचार जानकर, पति को हाथ पकड़ कर अपने महल में लाकर नीति-निपुण सचिव की भाँति ही समझाती है।[८६]

तुलसी साहित्य में पत्नी वासना और भोग की साधन नहीं है। वरन् इसके विपरीत वह पति को सद्मार्ग की ओर प्रेरित करके कहीं वैराग्य और ईश्वर भक्ति का पाठ पढ़ाती है,[६०] तो कहीं श्रेष्ठ शिष्या के समान विनम्र भाव से ज्ञान और भक्ति का उपदेश ग्रहण करती है,[६१] कहीं पति के पार्श्व में सिंहासनारूढ़ साम्राज्ञी की गरिमा से दीप्तिमान है[६२] तो कहीं तपोभूमि में उसके साथ कठोर तप में लीन दिखलाई पड़ती है।[६३] पत्नी शरीर और उसकी छाया, सूर्य और उसकी प्रभा तथा चन्द्र और उसकी चांदनी के सदृश सदा अपृथक् उसकी चिर सहचरी है।[६४]

इस प्रकार तुलसी साहित्य में, पत्नी रूप में नारी, कालिदास द्वारा निरूपित—"गृहिणी सचिवःसखी मिथः प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ"[६५] के आदर्शों पर पतिव्रता पत्नी, भावरता प्रेयसी, सहृदया सेविका, कर्तव्य परायणा गृहिणी, कल्याणकारिणी सखी तथा उद्बुद्ध तर्क बुद्धि संयुक्त मंत्रिणी रूप में कुंठाहीन, गरिमामय और गौरवशाली रूप में अंकित की गई है। केवल कैकेयी का पत्नीत्व कलंकित और निन्दनीय है जो तुलसी द्वारा असत्त्व से युक्त, ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिहिंसा की भावना से परिपूरित तुच्छ रूप में अंकित किया गया है, अन्यथा पत्नी रूप में नारी सर्वत्र गरिमामयी और उज्ज्वल महिमा से मंडित है।

प्रेयसी रूप—प्रेयसी में स्वच्छंद प्रेम की जिस भावना का संकेत मिलता है उसकी कल्पना भी तुलसी के लिए असम्भव थी। परस्त्री ललाट को चौथ के चन्द्रमा के समान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्याज्य[६६] तथा पर पुरुष के ध्यान को पाप[६७] मानने वाले आदर्शवादी तुलसी से —स्वकीया प्रेम के अतिरिक्त अन्य प्रकार के प्रणय भाव के चित्रण की आशा भी नहीं की जा सकती थी। अतः तुलसी काव्य में अति मर्यादित स्वकीया भाव के प्रणय की अभिव्यंजना सीता और पार्वती के माध्यम से की गई है।

पार्वती पूर्व जन्म में शिव की पत्नी सती ही थीं, अतः पुनः शिव को पति रूप में पाने के लिए वे कठिन तप करती हैं जिसकी पूर्व अनुमति उनके माता-पिता से मिल चुकी होती है।[६८] यह तप शील, संकोच, स्नेह एवं गौरव की महती भावना से परिपूरित पार्वती की निष्ठा का प्रतीक है।[६९] यह प्रणय वासनाहीन और अति पावन है। शिव के कामदहन का समाचार सुनकर माता-पिता पार्वती से तप छोड़ घर लौट चलने का आग्रह करते हैं।[७०] परन्तु — "सत्य कहहुं गिरि भव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरूदेहा" के कठोर प्रण को लिए तप में अडिग रहती हैं। सप्त ऋषि स्वयं उनकी परीक्षा लेने के लिए कहते हैं—

कहा हमार न सुनेहु तब नारद के उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस।।

मानस —बालकाण्ड ।।८६।।

इस पर उमा अपने वासनाविहीन प्रेम की अभिव्यंजना करती है—

हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी।
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा, करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा।।
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोई अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा।।

मानस —बाल काण्ड ।।८६।।३

और इस पावन प्रेम के बल पर पार्वती शिव को मोल लेती हैं—

"हमहिं आजु लगि कनउड़ काहु न कीन्हेउ।
पार्वती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ।।"

पार्वती मंगल-।।८१।।

तब शिव स्नेहामृत से सिंचित वाणी में उसी क्षण —"अब जो कहहु सो करउँ विलंब न यहि धरि।" कहकर आज्ञा माँगते हैं परन्तु लौकिक पारिवारिक मर्यादाओं से बँधी पार्वती प्रेम विह्वल होने पर भी शील एवं संकोच सहित स्वयं को माता-पिता के अधीन कहकर घर की ओर प्रस्थान कर देती है—

परिपायें सखि मुखा कहि जनायों आप बाप अधीनता।
परितोष गिरिजहिं चले बरनत प्रीति नीति प्रवीनता।।

वही।।८३।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः यही प्रीति की पावन रीति तुलसी को मान्य थी, जिसका ध्येय पति-पत्नी को इस पावन सम्बन्ध से संयुक्त हो जाना ही है।

इसी प्रकार के शील संकोच और पावन लौकिक मर्यादाओं से परिपूरित सीता के प्रेयसी रूप की उद्‌भावना की गई है। सखी द्वारा राम का समाचार पाकर सीता पुरातन प्रीति का स्मरण करती है परन्तु लौकिक मर्यादाओं को रखने की भावना से सखी को आगे करके चलती हैं।[१०१] राम के दर्शनों से अभिभूत सीता—

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।
जब सिय सखिन्ह प्रेम बस जानी। कहि न सकहि कछु मन सकुचानी।

मानस—बालकाण्ड।।२३१।।४

यह पावन प्रेम मूर्ति वास्तव में परम पवित्र है—प्रेम विवश सीता संकोच में आँख मूंदे खड़ी है तब एक सखी परिहास पूर्वक मार्मिक वचन कहती हैं—"बहुरि गौरि कर ध्यान करेहु। भूप किसोर देखि किन लेहू।"— तब "सकुचि सिय तब नयन उघारे।" तत्पश्चात् गौरी पूजन करके राम को मन में धारण कर वे विलम्ब हो जाने से माता का भय मानती हुई घर लौट जाती हैं—परन्तु राम के प्रति प्रेम की दृढ़ता पुनः धनुष यज्ञ के समय प्रकट होती है—

तन मन वचन मोर पनु सांचा। रघुपति पद सरोज चितु रांचा।
तौ भगवान् सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी।।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलई न कछु सन्देहू।।

वही।।२५८।।३

सम्भवतः इसी सत्य स्नेह की अटलता से शिव धनुष हल्का हो गया और राम धनुष को तोड़, सीता से विवाह करके पावन प्रेम की मर्यादाओं को निभाते हैं।

आज का उद्‌बुद्ध मस्तिष्क शूर्पणखा द्वारा राम के सम्मुख प्रेम प्रदर्शन में सम्भवतः उसका प्रेयसी रूप खोजने लगे, क्योंकि वह भी राम की मधुर मूर्ति को देखकर विकल हो जाती हैं और अपने कुँआरी होने की बात कहकर विवाह प्रस्ताव रखती है, जो उस बहु पत्नी विवाह के युग में अनुचित नहीं था। इस अपराध पर लक्ष्मण द्वारा उसके अंग-भंग कर दिए जाने के कारण आधुनिक आलोचक राम पर दोषारोपण करते हैं। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात हो जायेगा कि शूर्पणखा का प्रेम प्रसंग हास्यास्पद है। शूर्पणखा के प्रेम में प्रेमासक्ति नहीं, कामासक्ति ही प्रमुख है, जिसका एक मात्र दंड उसका अंग-भंग करके उसे विरूप कर देना ही हो सकता था। सीता और पार्वती के जिस निष्काम, पावन, मर्यादित गौरवपूर्ण और गरिमामय स्वरूप का चित्र तुलसी के मन में था उसके सम्मुख शूर्पणखा का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूप घिनौना, छिछोरा और गर्हित ही समझा जा सकता था। अतः तुलसी की दृष्टि में वह भर्त्सनीय और निन्दनीय ही है।

सपत्नी रूप—इसके अन्तर्गत सद् और असद् दोनों रूपों का विवेचन साहित्य में हुआ है। यद्यपि सौत शब्द कटुता, विद्वेष और ईर्ष्या का पर्यायवाची सा ही है, तथापि तत्कालीन बहु पत्नी प्रथा के युग में पारिवारिक सौहार्द और सुख शान्ति के वातावरण को बनाए रखने के हेतु तुलसी ने भगिनीवत् स्नेह वाले सपत्नी रूप की सुन्दर अभिव्यंजना, कौशल्या और सुमित्रा के रूपों में प्रस्तुत की है।

राजा दशरथ द्वारा सम्मानित सभी रानियाँ प्रसन्न और प्रफुल्लित हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ के बाद राजा—

अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा।
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ।
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि।।[१०२]

इस प्रकार एक दूसरे का सम्मान करती हुई सभी रानियाँ प्रसन्न हैं। 'गीतावली' में भी ऐसा ही मधुर वातावरण दृष्टिगत होता है—

राम सिसु गोद महा मोद भरे दसरथ। कोसीलाहु ललकि लषन लाल लये हैं।
भरत सुमित्रा लये, कैकयी सत्रु समन। तन प्रेम पुलक मनमगन भये हैं।। ।।११।।

एक दूसरे के पुत्रों को लिए हुए सपत्नियाँ अनुपम ललक और प्रेम मग्नता की अनुभूति करती हैं। कौशल्या का व्यवहार सर्वत्र ही अपनी सपत्नियों के प्रति सहोदरा भगिनियों जैसा है तथा स्नेह तन्तुओं को दृढ़ करने के लिए राम को भी यही सिखाती हैं कि तेरी माता कैकेयी है मैं भरत की माता हूँ।[१०३] राम को वनवास देने पर भी वे कैकेयी को दोष न देकर अपने भाग्य को ही दोष देती हैं।[१०४] इसका एक मात्र तात्पर्य परिवार में स्नेह और सौहार्द बनाए रखना है। सुमित्रा भी कौशल्या के प्रति बड़ी बहिन के समान आदर भाव रखती हुई राम वियोग के दुःख में स्नेह और सहानुभूति प्रदर्शित करती हैं।[१०५] साथ ही अपने पुत्र को राम के साथ वन जाने की भी सहर्ष आज्ञा देती हैं।

इसके विपरीत कैकेयी में सौत का असत् रूप विकसित होता हुआ दिखलाई पड़ता है। यद्यपि कैकेयी हृदय से सरल थी और राम तथा सीता की प्रशंसा ही करती थी।[१०६] परन्तु दासी मन्थरा राम के राज्याभिषेक में कौशल्या की चाल बताकर उसके मन में सपत्नी के प्रति विष के बीज बो देती है—

जरि तुम्हारि चहसवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।१६।।४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी प्रकार की अनेकानेक कटु उक्तियाँ तथा सौतों के दुर्व्यवहार की कथाएँ[१०७] कहकर कैकेयी को भयभीत और उत्तेजित कर देती है—

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनी भइहु दूध कइ माखी।
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई।।

वही।।१८।।४

रूपगर्विता राजा की चहेती रानी कैकेयी अपनी गरिमा और गौरव के खंडित हो जाने की कल्पना मात्र से उत्तेजित हो जाती है और तब उसके मन में सौतिया डाह एवं स्वाभिमान उत्पन्न हो जाता है—

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई।।
अरि बस देउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही।।

वही ।।२०।।१

सौतिया डाह से उत्पन्न यह शत्रुवत् भावना प्रतिहिंसात्मक रूप धारण कर लेती है। इस पर नीच जाति की कुटिल मन्थरा की शिक्षा—

दुइबरदान भूप सनथाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती। सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।।

वही।।२१।।३

मन्थरा द्वारा सिखलाए गए गुरु मंत्र के द्वारा सौत के सम्पूर्ण आनन्द को हरण करके अपनी छाती ठंड़ी करना ही जैसे कैकेयी का एक मात्र लक्ष्य बन गया। राजा दशरथ से राम के वनवास का वरदान मांगने पर जब वे दुःख विह्ल हो जाते हैं तो वही सौतिया भाव मुखर होकर—"आनेहु मोल बेसाहि कि मोही।" जैसे द्वेष और डाह की अभिव्यक्ति करता है कि क्या कौशल्या ही आपकी व्याहता पत्नी है—मैं नहीं ? राजा दशरथ कैकेयी के विद्वेष को परख लेते हैं और —"राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राम मातु कछु कहेहु न काऊ।" के द्वारा उसे शान्त करने का प्रयास करते हैं परन्तु सौतिया डाह का और भी अधिक विध्वंसक रूप प्रस्फुटित होता है—

जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउं करि साका।।[१०८]

इस प्रकार कैकेयी सौत के रूप में, निर्दय प्रतिहिंसा की कुटिल प्रतिमूर्ति और ध्वंसकारिणी शक्ति के रूप में सामने आती हैं। नगर निवासी आश्चर्य चकित हैं कि — "सदा रामु एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिल पनु ठाना।" स्पष्ट है राम-वनवास का कारण केवल कैकयी के मन में उद्भूत सौतिया डाह ही थी। कैकेयी स्वयं को राजा के सम्पूर्ण प्रेम की एकाधिकारिणी मानकर अपने को परम सौभाग्यशालिनी समझती थी। लेकिन जब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसने अपने एकाधिकार पर कुठाराघात होते देखा तो उसके स्वाभिमान को ठेस लगी और उसकी सुकोमल भावनाओं के तार एक साथ ही झनझना कर छिन्न-भिन्न हो गए, फिर जो स्वर निकला वह विकृत और बेसुरा था। कैकेयी सौत रूप में चंडिका बन गई। परन्तु अंत में अपना सर्वविनाश, कौशल्या की क्षमाशीलता उसे पुनः उसका मूल रूप प्रदान करते हैं। सीता सहित राम लक्ष्मण की सरलता उसके शाश्वत मातृत्व को जाग्रत करती है और वह मृत्यु की कामना करती हुई दिखलाई पड़ती है। कैकेयी वास्तव में सौत रूप में एक असत् पात्र ही है। अतः निन्दा और भर्त्सना की पात्र बनी है।

भगिनी रूप—तुलसी साहित्य में भगिनी रूप का विशेष परिपाक देखने को नहीं मिलता। यद्यपि बहिनों के पारस्परिक व्यवहार स्नेह, प्रेम आदि का विश्लेषण अधिक नहीं हो पाया है तथापि सीता की बहिनों—उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति का विवाह क्रमशः लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न से कर दिया जाता है। इससे कल्पना की जा सकती है कि वे पितृ गृह में प्रेम पूर्वक रहती थीं और 'ससुर' गृह में भी प्रीतिपूर्वक रही होंगी।

इनके अतिरिक्त रावण की बहिन शूर्पणखा का चित्रण भी भगिनी रूप में हुआ है, जिसमें वह अपनी दुर्दशा पर विलाप करती हुई तथा भाई को कटु वचन कहती हुई दृष्टिगत हुई है। बहिन के अपमान का बदला लेने के लिए खर-दूषण और रावण युद्धरत होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं, परन्तु भगिनी रूप का विश्लेषण फिर कहीं नहीं हुआ है। सुमित्रा, कौशल्या को जीजी, बहिन आदि कहकर सम्बोधित करती है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि बहिनों के मध्य तुलसी को स्नेह और प्रेम का व्यवहार ही वांछित था। परिवार में कन्या की भाँति ही निश्चय ही बहिन का सम्मान किया जाता होगा।

सखी रूप—भगिनी रूप की भाँति ही तुलसी साहित्य में किसी विशेष पात्र को सखीत्व के दृष्टिकोण से अंकित नहीं किया गया है परन्तु परिवार में सखियों का अनेक स्थलों पर उल्लेख आया है, जहाँ सुख-दुःख की सहयोगिनी, घर मन्दिर और वन की सहचरी स्नेहमयी सखियों का अंकन किया गया है। देवर्षि नारद से "पार्वती को अमंगल वेषधारी पति मिलेगा"—की भविष्यवाणी सुनकर माता-पिता के साथ सखियों को भी सजल नयन दिखलाया गया है। पार्वती भी सखी की गोद में जाकर छिप जाती है।[१०६] ऐसा प्रतीत होता है कि जब पार्वती तपस्या के लिए वन जाती है तब भी उनकी कुछ प्रिय सखियाँ उनके साथ रही होंगी। जब शिवजी ब्राह्मण ब्रह्मचारी का रूप धारण करके पार्वती की परीक्षा लेने जाते हैं और उनसे तपस्या का कारण पूछते हैं तो—

गौरी निहारेउ सखी मुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा।
'तप करहि हर हितु' सुनि विहंसि बटुक कहत मुरूखाई महा।
पार्वतीमंगल - ५४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रकार सखी ही शिवजी को उत्तर देती है और ब्रह्मचारी रूप में शिव द्वारा शिव की बुराई सुनकर पार्वती पुनः सखी से कहती है—

बोली फिरि लखि सखिहि कांपु तनु थर थर।
आलि बिदा करू बटुरि बेगि बड़ बर बर।

वही ।।६६।

इसी प्रकार विवाह, जयमाल आदि अवसरों और होली आदि पर्वों पर सखियों का सरस चित्रण किया गया है।[११०] पुष्पवाटिका में सीता की सखियाँ सीता से हास-परिहास करती हुई दिखलाई पड़ती हैं। राम दर्शन के पश्चात् नेत्र मूंदे खड़ी हुई प्रेम विह्वल सीता को देखकर सखियाँ संकोचवश कुछ कह नहीं पातीं। तभी एक सखी सीता का हाथ पकड़ कर कहती है—"बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू।"[१११] और — "सकुचि सिय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघु सिंघ निहारे।" और इस पर पुनः — "पुनि आउब ऐहि बेरियां काली। असकहि मन बिहँसी एक आली।"[११२] इसी प्रकार बरवै रामायण में विवाहोपरान्त —

उठी सखी हंसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुवर के भये उनीदे नैन। ।।१८।।

ये सभी उक्तियाँ सरस परिहास और विनोद भाव की अभिव्यंजना करती हैं। इसी प्रकार का सरस परिहास राम-सीता के वनगमन के अवसर पर ग्राम वधुएँ भी करती हैं और सीता भी सखीवत् ही उनका उत्तर देती हैं—

सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुमत्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम वधु सियं सों कहो सांवरे से, सखि रावरे को हैं।

सीता सखीवत किए गए इस परिहास के माधुर्य को अनुभूत करती हुई—

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने, सयानी है जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हें समुझाई कछू मुस्काई चली।

कवितावली—अयोध्या काण्ड।।२१।।

और तब सभी सखियाँ खिली कलियों की भाँति विहँस उठती हैं।

दुःख और विषाद के क्षण में भी सखियों का समान महत्त्व दिखलाई पड़ता है। धनुष यज्ञ के अवसर पर धनुर्भंग के पूर्व सखियों को समीप बुलाकर जनक पत्नी सुनयना अपने विषाद की अभिव्यंजना करती है। इस पर सखी उन्हें अनेक प्रकार से सन्तोष कराकर कहती है कि राम अवश्य ही धनुष तोड़ देंगे।[११३] तब—

सखी वचन सुनि भै परतीती। मिटा विषादु बढ़ी अति प्रीति।

मानस—बालकाण्ड।।२५६।।२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और तब सुनयना प्रसन्न हो जाती हैं। इसी प्रकार कन्या विदा के अवसर पर सभी सखियाँ विषाद की प्रतिमूर्ति दिखलाई पड़ती हैं—

उमा मातु मुख निरखि नयन जल मोचहिं।
नार जनमु जगजाय। सखि कहिं सोचहि।।

पार्वतीमंगल ।।१५६।।

राम वनगमन के पश्चात् कौशल्या विलाप करती हुई सखियों से अपने हृदय का विषाद अभिव्यक्त करती हैं।

इसके अतिरिक्त अनुचित कार्य करते देखकर सखियाँ समझाने का भार ग्रहण करती हुई दृष्टिगत होती हैं। जब कैकेयी की सखियाँ उसके द्वारा राम को वनवास का वरदान माँग लिए जाने का समाचार सुनती हैं तो परिवार और लोक कल्याण के हेतु कैकेयी को लोक निन्दा आदि का भय दिखाकर समझाने का प्रयास करती हुई[१४] सुन्दर सीख देती हैं— "सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।" (मानस-अयोध्या काण्ड ।।५०।।)

इस प्रकार तुलसी साहित्य में सर्वत्र ही सखी रूप में नारियों के सरस और सुन्दर चित्रण अंकित हुए हैं, जो परिवार के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और उसके हिताहित में परिवार के अनिवार्य अंग के रूप में ही चित्रित हुए हैं।

दासी रूप—तुलसी साहित्य में दासी के व्यक्तित्व का विश्लेषण कैकेयी की मुँह लगी दासी मन्थरा के रूप में ही हुआ है। वास्तव में मंथरा तुलसी की एक असत् कृति है क्यों कि वह लोक, समाज और परिवार के लिए अकल्याणकारी सिद्ध होती है परन्तु निष्पक्ष और उदार दृष्टिकोण से देखने पर प्रतीत होता है कि मन्थरा का लक्ष्य अपनी स्वामिनी का हित तथा उसे राजमाता के रूप में गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठित देखना ही था। कैकेयी द्वारा भर्त्सना किए जाने पर मन्थरा सविषाद कहती है—

कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी।[१५]

स्पष्ट है कि मन्थरा को प्रत्येक दशा में दासी रूप में ही जीवन व्यतीत करना था। अतः निष्पक्ष भाव से देखने पर मन्थरा दासी रूप में अपनी स्वामिनी की परम हितैषिणी ही दिखलाई पड़ती है, परन्तु मन्थरा द्वारा किया गया हित परिवार का परम दुर्भाग्य बन गया और वह अपराधिनी बनकर दंड की भागीदार बनी।[१६] इन विशेष स्थितियों को छोड़कर सामान्यतः दासियाँ सम्माननीय ही रही हैं। कैकेयी स्वयं मन्थरा को कई स्थलों पर सखी आदि शब्दों से सम्बोधित करती हैं।[१७]

परिवार में प्रसन्नता के अवसरों पर निश्चय ही दासियों को गहने वस्त्र आदि विशेष उत्साह पूर्वक प्रदान किये जाते थे। स्वामी अपने दास-दासियों की देखभाल माता-पिता के समान करता था। राम वन जाते समय अपने दास-दासियों को बुलाकर गुरु को सौंप देते हैं और उनकी देख भाल करते रहने की प्रार्थना करते हैं।[१८]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दासियों के साथ-साथ परिचायिकाओं— नाइन, धोबिन, तम्बोलिन, दर्जिन और मालिन आदि का अत्यधिक सुन्दर और सरस रूप रामलला नहछू में अंकित किया गया है।[११६] जिनमें नाइन का रूप विशेष आकर्षक बन पड़ा है। परिवार में वह कुछ विशेषाधिकार रखती हुई, रानियों से परिहास करती हैं—

नाउन अति गुनखानि तौ बेगि बोलाई हो।
करि सिंगार अति लोन तो विहसति आई हो।

रामललानहछू।।१०।।

काहे रामजिउ सांवर, लछिमन गोर हो।
कीदहुं रानि कौसिलहि परिगा भोर हो।।
राम बहहि दसरथ कै लछिमन आन क हो।
भरत शत्रुघ्न भाइ तो श्री रघुनाथ कहो।।

वही ।।१२।।

इस प्रकार कवि उच्च और निम्न सभी वर्गों की स्त्रियों को परिवार के अन्तर्गत सम स्तर पर प्रतिष्ठित करते हैं। रामलला नहछू के अवसर पर बन ठन कर आई हुई सभी स्त्रियाँ (बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो—वही ।।५।।) झिलमिल कर स्वांग रचकर, रस क्रीड़ायें करती हुई दृष्टिगत होती हैं—

हिल मिलि करत सवांग सभा रसकेलि हो।
नाउनि मन हरषाइ सुगंधन मेलि हो।।

वही ।।१८।।

स्पष्ट है कि तुलसी ने परिवार के आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण अंग दासियों और परिचारिकाओं के विशेष सरस एवं स्वाभाविक चित्र अंकित किए हैं, जो तुलसी की कुंठाहीन भावनाओं के प्रबल प्रमाण हैं। दासी और परिचारिका वर्ग के उपरोक्त उज्ज्वल चित्र इस बात के खुले विरोध पत्र हैं—कि तुलसी ने उच्च श्रेणी की स्त्रियों के सम्पर्क के अभाव में निम्न श्रेणी की स्त्रियों को ही इधर-उधर देखा और अपने हीन अनुभवों के आधार पर नारी निन्दा की।[१२०] निम्न वर्ग की स्त्रियों —तेलिन, मोचिन, नाइन, कहारिन आदि के इससे अधिक सुन्दर और प्रतिष्ठित स्वरूप कहाँ देखने को मिल सकते हैं ? इसके साथ ही साथ परिवार में माता, पुत्री, कुलवधू, पत्नी, प्रेयसी, सपत्नी और सती आदि का जो पावन एवं गौरव की गरिमा से अभिमंडित आदर्श सत् स्वरूपों का अंकन है, वह मध्यकालीन साहित्य में तो दुर्लभ ही है। अतः यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि तुलसी ने न तो निम्नतम श्रेणियों की स्त्रियों में हीन रूप को देखा था और न ही उच्च वर्ग की स्त्रियों के श्रेष्ठतम रूपों से वे अनभिज्ञ थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः सिद्ध हो जाता है कि तुलसी नारी निन्दक नहीं वरन् उसके सत् स्वरूपों के पुजारी ही थे। तुलसी की नारी सम्बन्धी भावना का विवेचन करते हुए आलोचकों की यह मान्यता भी कि —सीता और कौशल्या के दिव्य स्वरूपों के अंकन का कारण यही है कि कवि अपने आराध्य की प्रेयसी और माता को कदाचित् दूसरे प्रकार से चित्रित ही नहीं कर सकता था,[१२१] उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि सीता और कौशल्या के अतिरिक्त अन्य अनेकानेक नारी पात्र—सुनयना, मैना, मन्दोदरी, राजा हिमालय की पुत्री पार्वती, ऋषि पत्नी अनसूया एवम् सखियों आदि के स्वरूप भी कुछ कम गरिमामय नहीं हैं, यहाँ तक कि दासी और परिचारिकाओं से निम्न वर्ग की स्त्रियाँ भी सरस और सुन्दर स्वरूप में अंकित की गई हैं।

तुलसी की नारी भावना को और भी स्पष्टतया हृदयंगम करने के लिए तुलसी द्वारा निरूपित नारी के पारिवारिक रूपों की विवेचना के अतिरिक्त उसके धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक रूपों का विश्लेषण वांछनीय है। किसी कवि की नारी भावना को समझने का सही मापदंड, उसके प्रबन्ध काव्य में प्रयुक्त, विभिन्न परिस्थितियों और मनःस्थितियों में पड़े हुए, विशिष्ट पात्रों की उक्तियाँ अथवा प्रसंग विशेष में, किसी पात्र के चरित्र चित्रण हेतु कही गई, स्वयं कवि की उक्तियों को भी नहीं माना जा सकता। उसकी वास्तविक भावना के दिग्दर्शनार्थ उसके द्वारा चित्रित नारी के विभिन्न स्वरूपों, पारिवारिक, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक की विवेचना ही आवश्यक है।

४. नारी का धार्मिक रूप—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—"लोक-विहित आदर्शों की प्रतिष्ठा फिर से करने के लिए, उन्होंने (तुलसी ने) रामचरित का आश्रय लिया, जिसके बल से लोगों ने फिर से धर्म के जीवन व्यापी स्वरूप का साक्षात्कार किया और उस पर मुग्ध हुए।[१२२]" इसी प्रकार तुलसी ने तत्कालीन समाज में जब कि स्त्री-पुरुष सभी धार्मिक मर्यादाओं का त्याग कर झूठे अहम् में लीन थे—'ब्रह्म ज्ञान बिनु नारी नर कहहिं न दूसरि बात।' और स्त्रियाँ—'सुख चाहहि मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता।" (मानस-उत्तर काण्ड।।१०१ख।।१) की अवस्था में धर्म हीन और विवेक हीन जीवन व्यतीत कर रही थीं, तब तुलसी ने नारी के धर्मशील स्वरूपों का चित्रण करके नारी जीवन के धार्मिक आदर्श प्रस्थापित किए, जिसके फलस्वरूप आज भी पार्वती और सीता के पावन स्वरूपों की झाँकी भारतीय नारी के मन प्राणों को लुभाती चली जा रही है, अन्यथा पाश्चात्य उन्मादियों की भाँति भारतीय स्त्रियाँ भी यह आवश्यक न मानतीं कि स्त्रियों को पति के घर ही रहना चाहिए।[१२३]

नारी जीवन के लिए तुलसी ने जिस श्रेष्ठतम धर्म का विधान प्रस्तुत किया है वह एकमात्र पतिव्रत धर्म का पालन करना है। नारी के लिए एक ही व्रत, एक ही नियम, और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक ही धर्म मन वचन और कर्म से पति चरणों में प्रीति रखना ही है।[१२४] एकमात्र पति सेवा ही नारी का कर्त्तव्य है जिसके निष्ठा पूर्वक पालन करने से उसको शुभ गति की प्राप्ति होती है।[१२५] नारी के धार्मिक स्वरूपों का अंकन करने में तुलसी ने इन्हीं धर्म की मर्यादाओं का विशेष सतर्कता से पालन किया है। नारी चाहे अपने गुण-दोषों से परिपूरित लौकिक रूप में हो अथवा देवत्व की गरिमा और अलौकिक सिद्धियों से युक्त दैवी स्वरूप या फिर परम ब्रह्म की आदि शक्ति —लोक की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले दिव्य आध्यात्मिक स्वरूप में ही क्यों न हो, सर्वत्र ही वह उपर्युक्त धर्म की परिधि के अन्तर्गत ही अपने गौरवपूर्ण धर्म शील स्वरूप में अंकित हुई है।

आदिदैविक रूप में आदिशक्ति जगदम्बा, रमा, ब्रह्मा आदि देवताओं से वंदित और सदा अनिन्दित है। देवता सर्वदा उनकी कृपा के आकांक्षी रहते हैं परन्तु वे उनकी ओर देखती भी नहीं। वे ही लक्ष्मी अपने महामहिम स्वभाव को छोड़कर श्री रामचन्द्र (विष्णु) जी के चरणारविन्द में प्रीति करती हैं।[१२६] वह आदिशक्ति सदा प्रभु के बायीं ओर स्थित उनके अनुकूल ही रहती हैं।[१२७] वह उनका रुख पाकर ही सृजन पालन आदि का कार्य करती हैं।[१२८] ब्रह्म की आदि शक्ति विद्यामाया का यही सत् स्वरूप उसका धार्मिक रूप कहा जा सकता है, जो रामवल्लभा, सीता रूप में सम्पूर्ण संसार के लिए परम कल्याणकारी, क्लेशहारिणी एवम् सुखप्रद है।[१२९]

तुलसी ज्योतिषमती मातृशक्ति के अनन्य आराधक हैं। 'प्राकृत जन गुणगान' से विरत तुलसी ने अनेक स्थलों पर नारी पात्रों को दैवी शक्ति से सम्पन्न स्तुत्य रूप में देखा है और मंगलाचरणों में देवी सरस्वती, सीता, पार्वती और गंगा की प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से स्तुति की है। अपने सर्वप्रमुख ग्रन्थ मानस में तुलसी प्रथम श्लोक में ही देवी सरस्वती की वंदना करते हैं—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

तत्पश्चात् श्रद्धारूपिणी, देवी भवानी और विश्वास रूप शिवजी की वंदना की गई है। सीता गौरी पूजन करते हुए भवानी को—संसार को उत्पन्न, पालन और नाश करने वाली, विश्व को मोहित करने वाली, स्वतन्त्र विचारण करने वाली और पति को इष्टदेव मानने वाली एवम् श्रेष्ठ नारियों में प्रथम गणनीय और अपार महिमा वाली कहकर स्तुति करती हैं।[१३०] दैवी स्वरूप में नारी की सेवा से—

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। वरदायनी पुरारि पिआरी।
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।।[१३१]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं। दैवी शक्ति से सम्पन्न देवी सीता की आज्ञा की प्रतीक्षा में, ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं।[१३२] वे स्वयं भी राम की माताओं की सेवा के लिए अनेक रूप धारण करके एक से अनेक हो जाती हैं।[१३३] सीता प्रभु की आज्ञा पर प्रभु चरणों को हृदय में धारण कर अग्नि में समा जाती हैं और लीला के लिए अपनी छाया को अपने स्थान पर रख देती हैं।[१३४]

इस प्रकार अपने दैवी स्वरूप में भी नारी सर्वत्र ही पति सेवा, पति प्रेम परायणता के नियमों का पालन करती हुई लोक-कल्याणकारी रूप में दिग्दर्शित हुई है। सरस्वती, भवानी, सीता आदि इसी धार्मिक स्वरूप में सर्वत्र वन्दनीय हैं।

लौकिक दृष्टि से नारी के धर्म सम्मत सात्त्विक स्वरूप का अंकन दो रूपों में किया गया है। एक तो वही पतिव्रत धर्म के नियमों का पालन करने वाली शील की उच्च भूमि पर आधारित नारी का धार्मिक स्वरूप, दूसरा भगवान् राम के चरणों में अनन्त भक्ति रखने वाली भक्त नारियों का धार्मिक स्वरूप है।

पतिव्रत धर्म पर आधारित नारी के धार्मिक रूप का विवेचन करते हुए तुलसी ने कहा है—

कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल विनीत।।

मानस—बालकाण्ड।।१८८।।

पवित्र आचरण, विनम्रता, पति की अनुकूलता और प्रभु के चरणों में दृढ़ प्रेम यही नारी का धार्मिक रूप है जिसके आधार पर पार्वती और सीता, कौशल्या और सुमित्रा, मंदोदरी और तारा का धार्मिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। तुलसी ने वेद-शास्त्र, पुराण और संतों के अनुसार पतिव्रताओं को चार श्रेणियों में विभक्त किया है—

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जगनाहीं।
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।
बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।[१३५]

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वे स्त्रियाँ सच्ची और उत्तम पतिव्रताएँ हैं, जो हृदय से ही सात्त्विक प्रवृत्ति वाली हैं और जो केवल आचरण से पतिव्रत नियम का पालन करती हैं, वे मध्यम श्रेणी की पतिव्रताएँ हैं। पहली में शील निरूपण है और दूसरी में केवल धर्म के नियम का आचरण द्वारा पालन।

सीता और पार्वती उत्तम कोटि की पतिव्रताएँ हैं। सीता सतियों में शिरोमणि सच्ची पतिव्रता है। उनके लिए पति के बिना स्वर्ग भी नरक तुल्य, समस्त परिजन बन्धु-बान्धव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा अन्य स्नेह के नाते सभी पति के बिना विदग्ध करने वाले, समस्त ऐश्वर्य शोक का समान और भोग रोग के समान है।[१३६] इन सभी तथ्यों का विवेचन करने वाला सीता का स्वरूप ही नारी का धार्मिक स्वरूप है।

गौरव और गरिमायुक्त धार्मिक स्वरूप का अंकन तपः मूर्ति पार्वती के चरित्र में प्रतिफलित हुआ है। तेज की पुंज पार्वती शिवजी को पति मान उनकी प्राप्ति के लिए अपना तन-मन जिस कठोर तप में निरत कर देती हैं वह वास्तव में ऋषि मुनियों को भी दुर्लभ है—

तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु।
मुनि-मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु।।
पार्वती मंगल ।।३८।।

कंद मूल फल असन, कबहुं जल पवनहिं।
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहिं।।
वही ।।४२।।

नाम अपरना भयो परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरै।।
वही ।।४३।।

देखि सराहहिं गिरिजहि मुनिबरू मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुं काहू कहुं।।
वही ।।४४।।

नारी का यही धार्मिक स्वरूप है जिसके आधार पर वह सम्पूर्ण संसार की स्त्रियों में श्रेष्ठ बन जाती है तथा उसके जन्म से माता-पिता का यश संसार भर में प्रकाशित हो जाता है।[१३७] अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों फलों की प्राप्ति कराने वाले कठोर तप में लीन पार्वती का धार्मिक स्वरूप अन्यत्र अप्राप्य है। धर्म और शील की स्वामिनी सती भी यद्यपि परम् पवित्र रूप में अंकित की गई है[१३८] तथापि उनके चरित्र में भी पति वचनों में अप्रतीति एवं भगवान् राम में अनास्था के दो दुर्गुण दिखलाई पड़ते हैं। इसके विपरीत पार्वती जो सती का ही अवतार हैं समस्त दोषों से परे परम पवित्र शील संयुक्त और शुद्ध-बुद्ध धार्मिक स्वरूप में अंकित की गई हैं।

कौशल्या, सुमित्रा, मन्दोदरी और तारा तथा मैना और सुनयना आदि सभी पतिव्रता स्त्रियों के रूप में अंकित की गई हैं जो सर्वदा विचारपूर्वक नारी धर्म का पालन करते हुए अपने-अपने पतियों से प्रेम करती हैं। पतिव्रत धर्म की महिमा का अंकन करते हुए तुलसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ने राक्षसराज जलन्धर की पत्नी के गरिमामय धार्मिक स्वरूप का अंकन किया है जो स्वयं भगवान को शाप देने की दिव्य सामर्थ्य से अभिमंडित है।[१३६]

पतिव्रत धर्म सम्मत धार्मिक स्वरूप के अतिरिक्त तुलसी ने दान-दक्षिणा देती हुई, अनेक मंगलकारी कृत्य—अर्चना, पूजा और कुल के इष्ट देव के प्रति निष्ठा प्रदर्शित करने वाली कुल स्त्रियों के धार्मिक स्वरूप का अंकन भी किया है।[१४०]

कौशल्या शुद्धाचरण युक्त निष्ठावान् परम साध्वी स्त्री है, जो भगवान के दर्शन करके उनकी बलवती माया को भी देखती है तथा प्रभु की माया उन्हें कभी न सताए इसका वरदान पाकर विवेकमयी बन जाती है।[१४१] परन्तु फिर भी तुलसी ने उन्हें सर्वसाधारण स्त्रियों की भाँति, जंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक, देव-पितर और ग्रहों की पूजा करके घृत आदि का तुलादान करने और शिवजी पर दूध चढ़ाने तथा साधु संतों की सेवा आदि धार्मिक रूढ़ियों का पालन करते हुए चित्रित किया है।[१४२] इसका कारण सम्भवतः तुलसी के रामकालीन युग की स्त्रियों में इस प्रकार की आस्थाओं का होना हो जिसे अपने काव्य की लोक-प्रियता के हेतु तुलसी ने स्थान दिया हो अथवा कौशल्या के मातृ हृदय की अभिव्यंजना ही इसका कारण हो सकती है।

इसके अतिरिक्त तपस्विनी और भगवान् की भक्त स्त्रियों के अति भव्य स्वरूपों का अंकन भी तुलसी ने किया है। स्वायम्भवु मनु की पत्नी शतरूपा के धार्मिक स्वरूप का भी सुन्दर अंकन किया है जो भगवान् की परम भक्त है। धर्म पूर्वक बहुत समय तक राज्य करने के बाद जब राजा पुत्र को राज्य देकर वन को प्रस्थान करते हैं तो देवी शतरूपा भी साथ जाती हैं।[१४३] वन मार्ग पर तप हेतु जाते हुए राजा रानी को तुलसी ने साक्षात् ज्ञान और भक्ति रूप में अंकित किया है—

पंथ जात सोहहिं मति धीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा।।[१४४]

राजा रानी दोनों के कठोर तप में लीन धार्मिक स्वरूप का अंकन करके[१४५] तुलसी ने रानी की विवेकशीलता का विशेष परिचय दिया है। राजा जब कि भगवान् से उनके प्रति पुत्रवत् प्रेम की अभिलाषा करते हैं तो रानी भगवान् से उनके निज भक्त जनों को प्राप्त परम गति, भक्ति, ज्ञान तथा सुख और परमात्मा के चरणों में परम प्रेम एवं भक्तों का शुद्ध आचरण सभी कुछ मांग लेती हैं। भगवान् स्वयं ही उन्हें माता के सम्बोधन से पुकारते हुए अलौकिक ज्ञान का वरदान देते हैं।[१४६]

यही तपः तेज से अभिमंडित स्वरूप नारी का धार्मिक स्वरूप है। भक्ति के क्षेत्र में कुँआरी अथवा विधवा स्त्रियों के धार्मिक स्वरूप का अंकन भी तुलसी ने किया है। वन के मन्दिर में बैठी हुई तपोमूर्ति स्वयंप्रभा के परम तेजस्वी रूप का अंकन अत्यधिक सुन्दर बन पड़ा है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहं बैठि नारी तप पुंज।
मानस —किष्किन्धा काण्ड ।।२४।।

स्वयंप्रभा अपनी तप की गरिमा से ही वानरों को नेत्र मूंदने की आज्ञा देकर सागर के तट पर पहुँचा देती है और स्वयं राम के समीप जाकर उनकी अनपायिनी अचल भक्ति प्राप्त करके पुनः अपना संतों का जीवन बिताने के लिए बदरिकाश्रम चली जाती है।[१४७]

भक्त शिरोमणि शबरी भी भाव विह्वल भक्त के रूप में नवों प्रकार की भक्ति (संतों का सत्संग, रामकथा प्रेम तथा उनका गुणगान, रामनाम मंत्र का जाप, इन्द्रिय निग्रह, संत पुरुषों के समान धर्माचरण तथा सभी के प्रति कपट रहित व्यवहार आदि) में दृढ़ परम शील धारण करके भगवान में आस्था रखने वाले सहज भक्त स्वरूप में अंकित की गई है।[१४८] पति परित्यक्ता ऋषि पत्नी अहिल्या भी राम-भक्ति के प्रताप से बड़भागिनी बनकर भाव-विह्वल दिखलाई पड़ती है। मुनि का शाप उसे वरदान सा प्रतीत हुआ जिस के कारण उसने भगवान से परम भक्ति का वरदान पाया और पति लोक को प्राप्त किया।[१४९] राक्षसराज रावण की दासी त्रिजटा भी राम भक्ति से सम्पन्न अंकित की गई है।

तुलसी की तूलिका से निःसृत नारियों के ये गरिमावान भव्य एवं दिव्य धार्मिक स्वरूप, नारी के प्रति तुलसी की महती भावनाओं के परिचायक हैं। पतिव्रत धर्म, शील, सदाचार और भक्ति से संयुक्त धार्मिक स्वरूप में नारी देवी हो या राक्षसी, रानी हो अथवा दासी, सुजाति हो या कुजाति, पावन हो या अपावन तुलसी द्वारा सर्वत्र ही वन्दनीय और प्रशंसनीय रही है।

५. नारी का राजनीतिक रूप—प्राचीन संस्कृत साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि नारी अपने गृह की सम्पूर्ण व्यवस्था रखने वाली साम्राज्ञी, ज्ञान-विज्ञान और ललित कलाओं में प्रवीण तथा युद्ध एवं शासन व्यवस्था में परामर्श देने वाली मंत्रिणी के रूप में अंकित की गई है। यही नहीं वह शुद्ध स्थलों पर जाकर पति और पुत्र की सहायता करके राजनीति में प्रमुख स्थान रखती है। नारी के इन्हीं रूपों का ध्यान करके महाकवि कालिदास ने उसे "गृहिणी सचिवः सखी मित्रः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।" कहा है। तुलसी ने ऐसा न कहते हुए भी नारी के गृहिणी, सखी, मित्र और मंत्रिणी आदि सभी रूपों का चित्रण अपने काव्य में किया है।

तुलसी साहित्य में नारी के राजनीतिक रूप का विवेचन करते हुए स्पष्टतया परिलक्षित होता है कि सत् और असत् दोनों प्रकार के नारी पात्र समान रूप से राजनीतिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करते हुए ही नहीं अपितु उसको प्रभावित करते हुए भी दिखलाई पड़ते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि असत् पात्रों के राजनीतिक प्रयास केवल अपने निजी स्वार्थों की आधारशिला पर अवस्थित हैं, जबकि सत् नारी पात्र, पारिवारिक, सामाजिक और सम्पूर्ण लोक के कल्याण को ध्यान में रखकर ही राजनीति की वेदी पर अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का त्याग करते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

मंथरा और शूर्पणखा जो नैतिक दृष्टि से ही असत् पात्र हैं, भावनाओं से प्रेरित होकर विनाश एवं विध्वंस को आमंत्रण देती हैं। मंथरा रूपगर्विता कैकेयी को आधार बनाकर उसमें, ईर्ष्या, द्वेष और सौतिया डाह के विष का संचार कर देती है, जिसके फलस्वरूप रात ही रात में अयोध्या की राजनीति बदल जाती है। राम जिनका राज्याभिषेक होने वाला था चौदह वर्ष का वनवास पाते हैं और दूर कैकेय देश में बैठे भरत युवराज पद के अधिकारी बनते हैं जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण राम परिवार—राजा दशरथ, भरत, मंत्री सुमंत्र तथा अन्य सभी प्रिय कुटुम्बियों के लिए तथा स्वयं कैकेयी के लिए भी असहनीय स्थिति उत्पन्न हो जाती है—

आल बाल अवध सुकामतरु कामबेलि,
दूरि करि कैकई विपत्ति-बेलि बई है।
आप, पति, पूत, गुरुजन, प्रिय परिजन,
प्रजाहूको कुटिल दुसह दसा दई है।।

गीतावली —अयोध्या काण्ड।।३४।।

ग्राम वधुओं की दृष्टि में भी कैकेयी की यह राजनीति, उसकी कुचाल और राजा दशरथ की भ्रमित बुद्धि का परिणाम ही दिखलाई पड़ती है, जिन्हें गुरु और मंत्री भी न समझा सके।[१५०] सुमित्रा की दृष्टि में कैकेयी कुघात लगाने वाली पापिनी दिखलाई पड़ती है[१५१] और स्वयं अपने पुत्र की दृष्टि में भी यह मनोरथ कि मैं राजमाता होकर सुख भोगूंगी और पुत्र छत्रधारी राजा बनेगा, कुल के लिए कलंक रूप और पापमय ही था।[१५२] तथा कौशल्या इस चतुराई को मूर्खता ही मानती है—

कैकेयी करी धौं चतुराई कौन ?
राम-लषन-सिय बनहि पठाए, पति पठए सुरभौन।।
कहा भलो धौं भयो भरत को, लगे तरुन-तन दौन।।
पुरबासिन्हके नयन नीर बिनु कबहुं तो देखति हौं न।।

गीतावली —अयोध्या काण्ड।।८३।।

दासी मंथरा द्वारा दीक्षित कैकेयी की राजनीति उसके व्यक्तिगत स्वार्थों पर आधारित है, जो परिवार, समाज, राजा और प्रजा सबके लिए ही अहितकर सिद्ध होती है; अतः तुलसी के लिए वह निन्दनीय ही रही है। अहंकारिणी शूर्पणखा भी इसी प्रकार सम्पूर्ण राक्षस वंश के विनाश का कारण बनी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शूर्पणखा यद्यपि कुशल राजनीतिज्ञा के रूप में अंकित हुई है तथापि वह नैतिक दृष्टि से अत्यधिक पतित दिखलाई पड़ती है। वह केवल अपने अपमान का बदला चुकाने के हेतु ही पहले खर-दूषण को उत्तेजित कर उनका विध्वंस कराती है, पुनः रावण के दरबार में जाकर उसे उत्तेजित कर युद्ध रत करती है। अतः शूर्पणखा भी तुलसी द्वारा भर्त्सनीय ही है। इसके विपरीत कौशल्या, मन्दोदरी और तारा का राजनीतिक स्वरूप सत् रूप के अन्तर्गत आता है क्योंकि उनकी विचारधारा लोक कल्याण के नैतिक मूल्यों पर आधारित है। नारी के सत् और असत् राजनीतिक रूप की अधिक व्याख्या न करके नारियों के केवल राजनीतिक स्वरूपों का दिग्दर्शन ही अभीष्ट है।

तुलसी साहित्य में राजपरिवारों की रानियाँ, राजमाताएँ और राजभगिनियाँ ही राजनीतिज्ञा नहीं हैं अपितु राजपरिवारों में रानियों की दासियाँ और दूतियाँ भी राजनीतिक दाँव-पेचों की जानकारी रखती हैं। रानी कैकेयी की दासी मंथरा एक ही रात में अयोध्या की सम्पूर्ण राजनीति को सफलता पूर्वक बदल देती है।

मंथरा राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर और नगर की साज-सज्जा एवं मंगल बधावे सुनकर वहीं से षड्यंत्र रचना प्रारम्भ कर देती है कि किसी प्रकार से रात ही रात में यह कार्य बिगड़ जाये—

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती।
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवं तकइ लेउं केहि भाँती।।[१५३]

उसका यह षड्यंत्र पूर्णतया सफल हो जाये इस हेतु मंथरा पर्याप्त सतर्कता से काम लेती है। वह जानती है कि राजा दशरथ राम को अत्यधिक चाहते हैं और राजनीति के लिए नीति का त्याग नहीं करेंगे। फिर भी राजा अपने वचनों पर दृढ़ रहें इसलिए वह पहले ही कैकेयी को समझा देती है कि—

भूपति राम सपथ जब करई। तब माँगहू जेहिं बचनु न टरई।
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें।।[१५४]

कूटनीतिज्ञा मंथरा यह भली प्रकार जानती थी कि यदि राजा दशरथ को वचन की प्रतिज्ञा और सौगंध की शृंखलाओं से बांध नहीं दिया गया तो प्रातः होते ही राज्याभिषेक का कार्य सम्पूर्ण हो जायेगा और उसकी अपनी राजनीति विफल हो जायेगी। मंथरा की केवल मात्र यही अभिलाषा थी कि उसकी अपनी स्वामिनी राजमाता बनें। निश्चय ही राजमाता और युवराज के निजी दास-दासियों का मान अधिक होता होगा। अन्यथा इसके अतिरिक्त उसका कोई अन्य स्वार्थ परिलक्षित नहीं होता। उसके स्वयं के शब्दों में 'कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरी छाड़ि अब होब कि रानी।" मंथरा रानी तो बन ही नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सकती थी परन्तु रानी को राजमाता बनाकर राजनीति में अपना विशेष अधिकार पुष्ट करना ही उसका एक मात्र लक्ष्य भी था।

वास्तव में मंथरा की कूटनीति के पीछे देवताआ की प्रेरणा और उनकी राजनीति भी कार्य कर रही थी। राम के वन-गमन में ही देवताओं का उद्धार था क्योंकि राक्षसराज रावण उनके लिए अजेय होकर बड़ी भारी विपत्ति बन गया था। इसी हेतु वे देवी सरस्वती के द्वारा अपना लक्ष्य सिद्ध करते हैं—

बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।११।।

ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओं के समाज में भी स्त्रियाँ राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थीं तभी देवता चरण पकड़कर बार-बार सरस्वती से ही अयोध्या जाकर मंथरा को प्रेरित करने की प्रार्थना करते हैं।[५५] इस प्रकार कूटनीतिज्ञ मंथरा जो स्वयं देवी सरस्वती द्वारा सिखाई हुई थी, सफल राजनीतिज्ञा के रूप में दृष्टिगत होती है। वह कैकेयी के सम्मुख भविष्य की राजनीति का ऐसा सजीव, भयानक और तर्क सम्पत चित्र अंकित करती है कि कैकेयी उस पर अविश्वास कर ही नहीं सकती थी।

रेख खंचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनी भइहु दूध कह माखी।।
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।१८।।४

यही नहीं वह भरत के परदेश में होने और इसमें राजा के कपट का संकेत करके अपनी बात की पुष्टि करती है—

पूत बिदेस न सोचू तुम्हारे। जानति हहु बस नाहु हमारे।
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई।।

वही।।१३।।३।।

ये सभी बातें मंथरा के सफल राजनीतिज्ञा होने की ओर संकेत करती हैं। ऐसी कुशल राजनीतिज्ञा से सिखाई हुई कैकेयी जो दो वरदान राजा से मांगती है वे राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका।
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरबहु नाथ मनोरथ मोरी।।

वही।।२८।।१

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनवासी।।

वही ।।२८।।२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ये वरदान भरत के लिए केवल राज्य की व्यवस्था ही नहीं करते अपितु उसके मार्ग को निष्कंटक भी बना देते हैं। कैकेयी की नीति के एक प्रहार से राजा का सम्पूर्ण मनोरथ मूलतः विनष्ट हो जाता है—

माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन।।
मोर मनोरथ सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला।।

वही ।।२८।।४

राम की माता कौशल्या यद्यपि सरल, साध्वी और शान्त स्वभाव की राजरानी हैं परन्तु श्रेष्ठ घराने की पुत्री और पुत्र वधू होने के नाते कम कुशल राजनीतिज्ञ नहीं हैं। जब कौशल्या मंत्री-पुत्र के द्वारा कैकेयी के राजनीतिक कुचक्र से रात ही रात में राम को वनवास और भरत को अवध का राज्य मिलने का समाचार सुनती हैं तब वह गूंगी जैसे चुप रह जाती हैं।[१५६] यदि वे चाहतीं तो दशरथ की आज्ञा विरुद्ध भी राम को घर पर रोक लेने में समर्थ हो जातीं।[१५७] जैसा कि राजा दशरथ भी मन ही मन चाहते थे।[१५८] परन्तु दूरदर्शिनी कौशल्या भविष्य में भाइयों के पारस्परिक विरोध की आशंका से राजनीति के विध्वंसक रूप ले लेने की कल्पना करती हैं और बड़े सोच-विचार के पश्चात् राम को वन जाने की आज्ञा ही प्रदान करती हैं।[१५९] क्योंकि इसमें राजा का धर्म निर्वाह, राम का यश और उनकी कुशलता बनी रही तथा कैकेयी के कुचक्र से सम्भावित भाइयों के विरोध का भय मिट गया। उन्हें विश्वास था कि चौदह वर्ष बाद वन से लौटने पर राम अवश्य ही राज पायेंगे।[१६०] अतः राम को वन जाने की आज्ञा प्रदान करके वे अपना कुशल राजनीतिक रूप ही प्रदर्शित करती हैं।

कौशल्या का राजनीतिक रूप पुनः प्रकट होता है जब राजा सभा में गुरु वशिष्ठ और मंत्रीगणों के साथ भरत को अपनी सम्मति देती हुई दिखलाई पड़ती हैं। वे इस बात को भली-भाँति जानती थीं कि ऐसी स्थिति में जब कि राम वन में हैं और राजा दशरथ स्वर्ग सिधार गए हैं, दुःख या विषाद का अवकाश नहीं है, वरन् परिवार, समाज तथा सम्पूर्ण प्रजा के हित के लिए मंत्रियों की सम्मति से राज्य का संचालन ही उपयुक्त है। इसी तथ्य को प्रदर्शित करने के लिए वे भरत को उपदेश देती हुई दिखलाई पड़ती हैं।

कैकेयी और कौशल्या के अतिरिक्त वानरराज बालि की पत्नी तारा के राजनीतिक स्वरूप की झांकी भी प्रस्तुत की गई है। श्री राम जी से मित्रता करके सुग्रीव बालि को युद्ध के लिए ललकारता है और बालि बिना सोचे समझे क्रोधित होकर वेग से दौड़ता है परन्तु तारा जो राम और लक्ष्मण के बल को जानती है बालि के चरण पकड़ कर उसे समझाने का प्रयत्न करती है।[१६१] पत्नी की बात को न सुनना ही उसकी मृत्यु का कारण बन जाता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है।[१६२] इसके अतिरिक्त तारा की राजनीतिज्ञता का एक अन्य प्रमाण भी उपलब्ध होता है जब सुग्रीव राज्य पाकर राम के कार्य को विस्मृत कर देता है तब लक्ष्मण क्रोधित होकर अपने बाण से सम्पूर्ण किष्किंधा नगरी को जला देने की धमकी देते हैं, तब भयभीत सुग्रीव स्वयं उनके सम्मुख जाने का साहस नहीं करता अपितु राजनीति कुशल तारा ही हनुमान् के साथ जाकर लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करके देश की विपत्ति को टालने में समर्थ होती है। इस प्रकार तारा के रूप में नारी राजनीति में सक्रिय भाग लेती हुई दिखलाई पड़ती है। राम ने तारा की राजनीति सम्बन्धी कुशलता देखकर ही सम्भवतः उसके पुत्र अंगद को अपने दूत का पद देकर लंका भेजा था।

राक्षसराज रावण की भगिनी शूर्पणखा भी राजनीति में हस्तक्षेप करती हुई अपने उग्र रूप का प्रदर्शन करती है। उसके चरित्र से स्पष्ट संकेत मिलता है कि राज परिवारों की स्त्री को निश्चय ही प्रशासकीय शिक्षा मिलती थी और वह अपनी इच्छानुसार राजनीतिक उथल पुथल करने में समर्थ हो जाती थी। शूर्पणखा अपने भाई को भरे दरबार में पहुँचकर, अनेक प्रकार से भर्त्सना करके, राजनीति सिखाते हुई युद्ध के लिए प्रेरित करती है—

बोली वचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी।।
करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहि तब सिर परआराती।।
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पें बिनु सतकर्मा।।
विद्या बिनुविवेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़े किएँ अरू पाएँ।
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान तें ग्यान पान तें लाजा।।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी।।[१६३]

इन राजनीति और नीति के मूल सिद्धान्तों का उल्लेख, राजनीति में कुशल हुए बिना शूर्पणखा नहीं कर सकती थी। वस्तुतः वह प्रशासकीय शिक्षा प्राप्त एक प्रबुद्ध नारी थी, जो सिर पर खड़े शत्रु की सूचना देकर भाई को चेतावनी देती है।

राक्षस राज रावण की पत्नी मन्दोदरी भी कुशल राजनीतिज्ञ के गम्भीर चिन्तन से युक्त मंत्रिणी के रूप में सर्वत्र ही अपने पति को मंत्रणा देती हुई तथा नीति सिखाती हुई दिखलाई पड़ती है। सर्वप्रथम रावण को सीता के वध के लिए उद्धत देखकर नीति समझाकर उसे रोकती है।[१६४] तत्पश्चात् राम द्वारा प्रेषित हनुमान को न छेड़ने की मंत्रणा भी देती है जिसे न मानकर लंका दहन के रूप में वे उसका फल भोगते हैं। अतः मन्दोदरी कुपित होकर उन्हें कुवचन भी कहती है।[१६५] एक दो स्थलों को छोड़कर सर्वत्र ही मन्दोदरी अपने पति को राजनीति सिखलाती हुई प्रकट हुई है। जब सबल शत्रु राम खेल ही खेल में समुद्र पर सेतु बाँध बहुत बड़ी वानर सेना के साथ लंका में प्रविष्ट हो जाते हैं तब वह सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिस्थिति पर एक मर्मज्ञ राजनीतिज्ञ की दृष्टि डालते हुए पुनः रावण को समझाने का प्रयास करती है जिसका सारांश यह है कि—राम जैसे सबल शत्रु से संधि किए बिना विनाश से छुटकारा नहीं है। अतः सीता को भेज कर संधि करना ही उचित है। जिसका वानर दूत हनुमान ही लंका की दुर्दशा कर गया दृढ़ गढ़ों को धक्कों से धकेल गिरा गया, पुनः बालि पुत्र अंगद भरी सभा में पैर रोप कर सारी सेना के बल को परख कर चला गया, जिस राम ने वारिधि को भी बाँध लिया, अपार समुद्र लांघते जिसे देर न लगी, बड़े-बड़े योद्धाओं को हनुमान चावल की भाँति कूट गया, अंगद ने सारा गढ़ घूम घूमकर अबला स्त्री की भाँति, देख और परख लिया, और वीर अक्षय कुमार मृत्यु को प्राप्त हो गया; ऐसी स्थिति में उस राम के सम्मुख, जिससे सहस्रबाहु को परिवार सहित विनष्ट कर डालने वाले, परशुराम भी हार मान गए, विनम्र भाव से जाकर मेल करने में ही भलाई है। ऐसे राम युद्ध करने योग्य नहीं हैं। युद्ध करने से निश्चय ही हमारा स्थान नष्ट हो जायेगा। हे प्रिय ! मैं अपना विचार कहती हूँ कि आप अब भी समझ जाइए, आपका तो अपना भाई विभीषण ही रामचन्द्र से जा मिला है। राम समुद्र पार आ पहुँचे हैं। राक्षसों की सेना का मनोबल गिर चुका है, अतः हे स्वामी! राम से मेल करने में ही भलाई है—।[१६६] वास्तव में इससे अधिक स्पष्ट विश्लेषण कोई अति कुशल राजनीति मर्मज्ञ भी नहीं दे सकता था। मदान्ध रावण इसे स्त्री का डरपोकपन कहकर हँसकर टाल देता है परन्तु राजनीति निपुण मन्दोदरी गम्भीर चिंतन में लीन दिखलाई देती है कि निश्चय ही राक्षस कुल का विनाश सम्मुख है।[१६७]

ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दोदरी अपनी कुछ चतुर दूतियाँ भी रखती थी जो केवल वाह्य शत्रु की गतिविधियों का समाचार ही उसे नहीं देती थी वरन् प्रजा के विचार और उनकी मनःस्थिति का विश्लेषण भी करती थी। दूतियों से नगर निवासियों की दशा—

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब तें जारि गयउ कपि लंका।।
निज निज गृहं सब करहिं विचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा।।
जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई।
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी।।[१६८]

जानकर नीति निपुण मंदोदरी की व्याकुलता स्वाभाविक ही थी, जब शत्रु के सम्मुख प्रजा का मनोबल ही हारने लगे तब दशा भयंकर हो जाती है। इस बात को मन्दोदरी भली प्रकार जानती थी और अनेक प्रकार से रावण को समझाने का प्रयत्न करती है। उसके वचन रावण के नीति कुशल मंत्री माल्यवान, भाई विभीषण और पुत्र प्रहस्त से कहीं अधिक राजनीति-मर्म से परिपूरित थे।[१६९] रावण उन पर कुछ ध्यान नहीं देता है अतः विनाश को प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंदोदरी के अतिरिक्त त्रिजटा, जो राक्षसराज रावण की एक दासी मात्र है, सम्पूर्ण राजनीतिक परिस्थितियों का ज्ञान रखती है, जिनकी सूचना वह समय-समय पर सीता को देती रहती है।[१७०] यही नहीं सम्भवतः अपने राजनीतिक ज्ञान के बल पर ही वह राम की विजय की भविष्यवाणी अपने स्वप्न के बहाने करती हुई दिखलाई देती है।[१७१] इसी कारण वह स्वयं तथा अन्य दासियों को भी सीता के अनुकूल बनाए रखती है।

नारियों के उपरोक्त राजनीतिक रूप के विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि नारी का किसी राजनीतिक पद पर अधिष्ठित रूप तुलसी साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता तथापि राजकुल की समस्त नारियाँ और उससे सम्बन्धित अन्य स्त्रियाँ, दासियाँ परिचारिकाएँ आदि भी राजनीतिक रूप से कुशल होती थीं, जो प्रत्यक्ष रूप से न सही, परोक्ष रूप में राजनीति की कुंजियों को घुमाती हुई प्रतीत होती हैं।

नारी का सामाजिक रूप—समाज की सभ्यता और संस्कृति का सच्चा मापदंड उस समाज के अन्तर्गत नारी की पारिवारिक, धार्मिक और राजनीतिक अवस्था को माना जाता है तथा किसी कवि की नारी भावना का सच्चा मूल्यांकन उसके द्वारा चित्रित नारी के विभिन्न रूपों को देखकर किया जा सकता है। तुलसी साहित्य में अंकित नारी के विभिन्न सत् स्वरूप नारी के प्रति उनके उदार दृष्टिकोण के परिचायक हैं। नारी अपने माता, पत्नी, प्रेयसी, पुत्री, कुलवधू और भगिनी आदि सभी सत् स्वरूपों में दिव्य और भव्य ही अंकित की गई है, फिर भले ही वह तुलसी के आराध्य राम की माता या प्रेयसी हो अथवा उनके शत्रु बालि और रावण की पत्नी और प्रेयसी, ऋषि मुनियों की पत्नियाँ हों या अन्य राजा (जैसे हिमाचल राज) की पत्नी या पुत्री, उनकी भव्यता एवं गौरव गरिमा में कोई अंतर नहीं है।

तुलसी की नारी सम्बन्धी कुछ उक्तियों के आधार पर उनके आलोचक उन्हें नारी जाति का निन्दक मानने लगे हैं तथा सीता, कौशल्या आदि के दिव्य चरित्रों को वे उनके आराध्य की माता और प्रेयसी के दिव्य चरित्रों का अंकन मानते हैं, पूर्ण स्त्री जाति की दिव्यता का अंकन नहीं। यद्यपि "नारी का पारिवारिक स्वरूप" शीर्षक के अंतर्गत स्पष्ट किया जा चुका है कि तुलसी ने प्रत्येक परिवार (देव, दनुज, नर और वानर) के अन्तर्गत नारी को उसके विभिन्न सत् स्वरूपों में गरिमामय ही अंकित किया है तथापि नारी के प्रति तुलसी के सामान्य, दृष्टिकोण को समझने के लिए तुलसी साहित्य में चित्रित नारी-समाज के समग्र स्वरूप का सर्वांग चित्र प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है।

सम्पूर्ण तुलसी साहित्य में जहाँ-जहाँ भी स्त्रियों का सामूहिक रूप से वर्णन किया गया है सर्वत्र ही स्त्रियाँ आह्लादकारी, मनोहारी और मंगलमय स्वरूप में ही दृष्टिगोचर होती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं। कहीं किसी महान यज्ञ का आयोजन हो अथवा विवाह की तैयारियाँ, जन्मोत्सव हो अथवा नहछू (मातृ का पूजन) का कोई आयोजन, पुत्री की विदा का अवसर हो या फिर पुत्र-वधू के स्वागत की तैयारी, रंग बिरंगी तीज हो अथवा होली का रंगीन त्यौहार, सभी उत्सव, पर्व और त्यौहार सुन्दर, सुसज्जित, श्रेष्ठ और मंगलमयी नारियों की दिव्य गरिमा से भव्य और गौरवशाली बनाये गए हैं।

अवध में दशरथ के घर पुत्र का जन्म हुआ, सब ओर मंगल छा गया, गुरुजन और विप्रवृन्द बड़ी पवित्रता से सम्पूर्ण वेद विहित क्रियाओं में संलग्न हैं। महल मुनिगणों की सुमधुर वेद ध्वनि से परिपूरित है तथा तरह तरह की बधाइयाँ बज रही हैं। परन्तु यह सब गरिमापूर्ण पावन आयोजन अधूरा था यदि सहज शृंगार से सुसज्जित मंगलस्वरूपा नारियाँ, मंगल गाती हुई प्रसन्नचित्त होकर तुलसी के आराध्य राम पर शुभाशीषों की वर्षा न करतीं—

सहज सिंगार किए बनिता चलीं मंगल विपुल बनाई।
गावहिं देहि असीस मुदित चिर जिवो तनय सुखदाई।।[७२]

राजा के घर पुत्र उत्पन्न हुआ है। सभी नर और नारी समान रूप से अपनी सुध-बुध भुलाकर आनन्द निमग्न हो नर्तन कर रहे हैं, गलियाँ उड़ते हुए अगर, अरगजा और अबीर से सुवासित हैं तथा बीथिकाएँ केसर की कीच से भर गई हैं—

बीथिन्ह कुंकुम-कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई।।[७३]

ऐसा प्रतीत होता है मानों कामदेव और रति भाँति भाँति के रूप धारण कर सुन्दर ढंग से नाच रहे हों, नाना प्रकार के छन्द, प्रबंध, गीत, पद, राग और तान के क्रमों का उद्घाटन, गायन विद्या में निपुण गन्धर्व तथा किन्नरगणों द्वारा प्रशंसनीय है जिसको सुनकर देवतागण भी विमानों में स्तम्भित रह जाते हैं।[७४] ऐसी हैं ये अनुपम श्रेष्ठ नारियाँ जो झुण्ड की झुण्ड अनोखी आरती सजाए बधावे गाती जा रही हैं—

सजि आरती विचित्र थार कर जूत जूथ बरनारि।
गावत चलीं बधावन लै लै निज कुल अनुहारि।।[७५]

ये सभी कुलीन स्त्रियाँ समृद्धि में राजमहिषियों के समान ही हैं, जो बालकों के ऊपर मणि, मोती और रत्न न्यौछावर कर रही हैं, जो ज्वार, जौ और धान से बिखरे पड़े हैं।[७६] रानियाँ सोल्लास वस्त्र-मणियाँ और आभूषण आदि देकर उनको सम्मानित कर रही हैं तथा राजा भी देव-पितर, गुरु विप्र आदि को उनकी रुचि के अनुसार दान देकर मुनि-बन्धुओं, नगर-नारियों और सुवासिनियों (नगर की सभी विवाहिता पुत्रियों) का हज़ारों प्रकार से सम्मान करते हैं।[७७] स्त्री जाति का यह सम्माननीय स्वरूप सम्पूर्ण तुलसी साहित्य में इसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकार अंकित किया गया है। तुलसी साहित्य में कोई भी शुभ कार्य सौभाग्यवती, कल्याणी, कोकिलकण्ठी सुमुखि नारियों के बिना सम्पन्न होता ही नहीं[१७८]—

मातु सकल कुलगुरू-वधू, प्रिय सखी सुहाई।
सादर सब मंगल किए महि-मनि-महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई।।

गीतावली —बालकाण्ड।।१५।।१

कहकर तुलसी सम्भवतः सम्पूर्ण मंगल कृत्य करने का अधिकार नारी वृन्द को ही सौंप देते हैं। विवाह के अवसर पर द्वार पर वर का आरता और परछन आदि पवित्र कृत्य भी भाग्यवती, गजगामिनी श्रेष्ठ नारियों द्वारा ही सम्पन्न किए जाते हैं। पुत्र-वधुओं के स्वागत पर ही सुहागिन स्त्रियाँ एकत्रित होकर न्यौछावर, आरता आदि कृत्य करती हुई परम पुण्यमयी दिखलाई पड़ती हैं।[१७९] सीता के विवाहोत्सव पर—

सजहि सुमंगल साज रहस रनिवासहिं।
गान करहि पिक बेनि सहित परिहासहिं।।

जानकी मंगल।।१४६।।

नारियों के सरस परिहास और गान को सुनकर पार्वती, लक्ष्मी आदि देवाँगनाएँ भी ऐसी विमोहित हुईं कि सुन्दर स्त्रियों के वेष धारण कर उनमें ही आ मिलीं—

उमा रमादिक सुरतिय मुनि प्रमुदित भईं।
कपट नारि-बर-वेष बिरचि मंडप गईं।।

वही ।।१४७।।

इस प्रकार नारी समाज में सर्वत्र ही अपने मनोहारी रूप में अंकित हुई है। नारी के ऐसे उज्ज्वल, पावन स्वरूप की झाँकियों को देखकर भी आलोचकों की यह कल्पना कि तुलसी—"नारि सहज जड़ अज्ञ", "अधम तें अधम अधम अति नारी", "सकल कपट अघ अवगुन खानी।", "सत्य कहहि कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगहु अगाध दुराऊ", "नारि सुभाऊ सत्य कवि कहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।", तथा "लघुतिय कुल करतूति मलीनी" और "सुनि मुनि कह पुरान सुति सन्ता, मोहन बिपिन कहं नारि बसंता।" आदि उक्तियों के द्वारा नारी मात्र की निन्दा करना चाहते थे अथवा "जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी" कहकर स्वतंत्र होकर नारी के मार्ग भ्रष्ट हो जाने की घोषणा करना चाहते थे, केवल कल्पना मात्र ही है।[१८०] नारी के प्रति उपर्युक्त कटूक्तियों तथा इसी प्रकार की अन्य निन्दावाचक उक्तियों का निष्पक्षता से मूल्यांकन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि कुछ उक्तियाँ केवल प्रसंग और संदर्भ विशेष के अनुसार विशिष्ट परिस्थितियों में पड़े हुए पात्र विशेष के अपने उद्‌गार मात्र ही हैं; तुलसी के नारी निन्दक वचन नहीं। जैसे 'अधम ते अधम अधम अति नारी' शूद्र जाति की भक्त शबरी के हृदय की दैन्य भावना का उद्‌घाटन मात्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। 'रघु तिय कुल करतूति मलीनी' ग्राम वधुओं की विनम्रता का परिचायक है, उनकी हीनता का नहीं। इसी प्रकार 'नारि सहज जड़ अज्ञ' भी अपराध जन्य ग्लानि से पीड़ित सती का विचार मात्र है। कुछ कथन केवल असत् पात्रों की अति कामुकता, स्वार्थपरायणता आदि दुर्गुणों को लक्षित करके कहे गए हैं और कुछ कथन असत् पात्र अपने भाव अभिव्यक्त करने के लिए कहते हैं। कुछ कथन तो केवल विरक्त मुनियों की विरक्ति बनाए रखने के हेतु कहे गए हैं। अतः सभी उक्तियाँ तुलसी की नारी निन्दक वाणी कैसे मानी जा सकती हैं। इन उक्तियों का अभिप्राय समस्त नारी-जाति को कलंकित करना कदापि नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो तुलसी नारी जाति के ऐसे भव्य रूप कैसे अंकित कर पाते। तुलसी का नारी के प्रति दृष्टिकोण उसके विभिन्न स्वरूपों से निर्धारित है। यही कारण है कि उनकी उक्तियों को देखकर यह एकांगी मत नहीं बनाया जा सकता कि तुलसी ने 'स्त्रियों की हर जगह निन्दा की है'।[१८१]

'स्वतंत्र भई बिगरहि नारी' कहने वाला कवि भी नारी की परतंत्रता का पोषक दिखलाई नहीं पड़ता। उसके नारी पात्र परिवार में, राजनीति में, धर्म के क्षेत्र में और समाज में पूर्ण स्वच्छन्दता के साथ विचरण करते हुए देखे जा सकते हैं। यह कथन केवल परम्परागत विचार का प्रभाव मात्र है।[१८२] महामना तुलसी तो परतंत्र नारी को देखकर 'पराधीन सुख सपनेउ नाहीं।' कहकर जैसी गहन सहानुभूति दिखलाते हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि तुलसी ने अपने स्वनिर्मित साहित्य के अन्तर्गत समाज में नारी जाति को पूर्ण स्वतन्त्रता दी है और शूर्पणखा, जो राक्षस जाति की असत् नारी पात्र है, के अतिरिक्त वह कहीं भी पतित होती हुई दिखलाई नहीं पड़ती।

सीता स्वयंवर के हेतु धनुष यज्ञ का आयोजन किया जाता है। देश-विदेश के राजा महाराजा आते हैं। विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण भी आते हैं और नगर भ्रमण के लिए निकलते हैं। उनके सुन्दर स्वरूप को पुर-नारियाँ पूर्ण स्वच्छन्दता से देखती हैं और सहज भाव से विमोहित होती हैं। उनके इस सम्मोहित भाव में न कहीं अपावनता है न कुण्ठा—

भई है मगन विधु बदन विलोकत बनिता चतुर चकोरी।। के समान वे स्वयं मगन होती हैं तथा दूसरी सखियों से कहती हैं—"नेकु सुमुखि, चित्त लाई चितोरी" यही नहीं राम के रूप को सीता के उपयुक्त जान कर पूर्ण स्वच्छन्द भाव से बीथिकाओं में कनसुई[१८३] लेती हुई घूमती हैं तथा ज्योतिषियों को बुलाकर भविष्य पूछती हैं—

लेत फिरत कनसुई सगुन सुभ, बूझत गनक बोलाईकै।
सुनि अनुकूल, मुदित मन मानहु धरत धीरजहि धाइकै।।

गीतावली —बालकाण्ड। ७०।५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीता सुन्दरी और सयानी सखियों के साथ गौरी पूजन के हेतु आई हैं; सभी सखियाँ पूर्ण स्वच्छन्दता से मनोहर वाणी में गीत गाती हुई सरोवर में स्नान करती हैं तत्पश्चात् मन्दिर में पूजन और वाटिका में भ्रमण करती हैं।[१८४] तभी एक सखी राम-लक्ष्मण को देख आह्लादित होकर सीता को सूचित करती है—

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी।।
बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू।।[१८५]

फिर सीता सहित सखियाँ राजकुमारों को देखने चल दीं। न कोई बन्धन, न भय और न ही कोई रोक टोक, सभी जैसे सहज रूप से स्वतन्त्र हैं।

धनुष-यज्ञ के अवसर पर भी बालक, युवक और वृद्ध तथा पुरुषों के साथ सभी स्त्रियाँ भी वहीं जाती हैं—"चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जवान जरठ नर नारी।"[१८६] जिन्हें राजा के सेवक मृदु वचन कह-कह कर यथा स्थान बैठाते हैं—

कहि मृदु वचन विनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि।।

मानस —बालकाण्ड।।२४०।।

इस प्रकार समाज में नारी सर्वत्र ही प्रत्येक अवसर पर सम्मान पूर्वक पूर्ण स्वतन्त्रता से विराजमान है। तुलसी ने तो स्त्रियों को राम से व्यंग्यपूर्ण परिहास करने का अधिकार भी दे दिया है। कोहबर के समय—

गरब करहु रघुनन्दन जनि मन मांह। देखहुं आपनि मूरति सिय के छांह।[१८७]

राम के श्यामल वर्ण पर व्यंग्यपूर्ण परिहास करते हुए सखियाँ स्पष्ट कर देती हैं कि हे राम ! तुम कहीं मन में गर्व न करना सीता रूप में तुमसे कहीं अधिक सुन्दर है तथा जुआ खिलाते समय भी—

जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह।
जीति हारि - मिस देहिं गारि दुहुं रानिन्ह।

जानकीमंगल ।।१६८।।

और इस प्रकार युवतियाँ सामूहिक रूप से अत्यन्त प्रसन्न भाव से कौतुकवश मधुर मनोहर गालियाँ गाती हैं, जो केवल रनिवास को ही आह्लादित करने वाली नहीं हैं अपितु शिव-पार्वती के विवाह में आए हुए बराती ब्रह्मा, विष्णु आदि को भी अपूर्व सुखानुभूति कराने वाली हैं। समस्त देवताओं सहित ब्रह्मा और विष्णु भी उनसे आह्लादित होते हुए देखे जाते हैं—

गारीं मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य वचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति विलंबु विनोद सुनि सचु पावहीं।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जेवँत जो बढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो।
अचवाँइ दीन्हे पान गवने वास जहं जाको रह्यो।।

मानस —बालकाण्ड।।६८।छंद

अयोध्या की नारियाँ चतुर, धर्म कुशल और नीति परायण हैं।[१८८] राम के राज्याभिषेक के पश्चात् अयोध्या का रास रंग और उसमें नारियों का सरस रूप देखते ही बनता है। सावन मास में सभी स्त्रियाँ सोलहों शृंगार से सुसज्जित होकर दल बांध कर हिंडोला झूलने जाती हैं। जिनके रूप सौन्दर्य को देख कर देवांगनाएँ भी परम पुलक की अनुभूति करती हैं।[१८९] उनके गान को सुनकर गन्धर्व और किन्नर भी लज्जित हो जाते हैं।[१९०] झूला झूलती और गाती हुई उन नारियों का रूप अति मनोहारी है—

अति मचत छूटत कुटिल कल, छवि अधिक सुंदरि पावहीं।
पट उड़त, भूषन खसत, हँसि अपर सखी झुलावहीं।।

गीतावली —उत्तर काण्ड।।१६।।

फाग खेलती हुई नारियों का रूप भी इसी प्रकार बड़ा सुहावना बन पड़ा है। कोकिला के से मधुर स्वर वाली स्त्रियाँ अपनी अपनी अटारियों पर मनोहर गाने गाती हुई, हिमशिखरों पर विराजमान सुर सुन्दरियों सी प्रतीत होती है और जब वे समूह बना-बनाकर अपने-अपने भवनों से फाग खेलने निकलती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों बहुत सी अप्सराएँ मिलकर समुद्र मंथन कर रही हों। ये चन्द्रवदनी सुन्दरी सुचतुर स्त्रियाँ अबीर और कुंकुम लिए भाँति-भाँति की पवित्र और सुन्दर गालियाँ गाती हैं; जो सुख, योग, यज्ञ, जप और तीर्थ आदि से परे है वही सुख तुलसी को इन गालियों में भरा हुआ दिखलाई पड़ता है।[१९१]

राम सखाओं सहित झोलियों में अबीर और हाथों में पिचकारियाँ लिए होली खेल रहे हैं, उधर सीता सहित रंग बिरंगे वस्त्र और आभूषण पहने युवतियों के समूह होली खेलते हुए सरस चांचर और झूमक राग गा रहे हैं। जब वे स्त्रियाँ दौड़कर किसी को पकड़ती हैं तो उनके नूपुर और करधनी की ध्वनि मनोहर जान पड़ती है। वे जिसे पकड़ती हैं उसकी दुर्गत करके नेत्रों में अंजन आदि लगा फगुआ बनाकर और नाच नचाकर ही, बहुत प्रार्थना करने पर छोड़ती हैं। यह देखकर भाइयों सहित राम हँसते हैं।[१९२]

ऐसे मनोहारी और सरस स्वरूपों को देखकर कौन कह सकता है कि तुलसी नारियों से घृणा करते थे; उनके प्रति तुलसी के हृदय में विष-कण थे अथवा उन्होंने केवल निम्न वर्ग की स्त्रियों को देखा था और इसीलिए स्त्रियों की निन्दा की। ये पावन और निर्मल नारी रूप क्या निन्दनीय हैं ? ऐसे दो चार नहीं सैंकड़ो चित्र मिलेंगे जहाँ स्त्रियाँ पूर्ण स्वाधीनता और पावनता के साथ चित्रित की गई हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'रामलला नहछू' तो एक प्रकार से महिला प्रधान काव्य है जिसमें अधिकांशतः निम्न वर्ग की स्त्रियों के ही मनोहारी स्वरूप अंकित किए गए हैं[१६३], जिनमें अपार गरिमा और गौरव है, जहाँ तुच्छता और हीनता का भाव भी नहीं है। अतः यह कल्पना करना कि तुलसी स्त्रियों को तुच्छ समझते हैं या उनके विरोधी थे, अनुचित है। तुलसी दास के ग्रन्थों का भली प्रकार अध्ययन करने के पश्चात् रामनरेश त्रिपाठी ने भी यही विचार व्यक्त किए हैं कि उन्हें तुलसी स्त्री जाति के विरोधी नहीं जान पड़े।[१६४]

तुलसी साहित्य में नारी का केवल उल्लसित और आनन्दित स्वरूप ही प्रस्तुत नहीं किया गया है अपितु गहन परिस्थितियों में उसके विवेक सम्पन्न तर्कशील नारीत्व की सफल उद्भावना भी हुई है। राम के राज्याभिषेक के अवसर पर कैकेयी की हठ से उत्पन्न अयोध्या की गम्भीर स्थिति पर वहाँ के नर और नारी समान रूप से ही शोक सन्तप्त और व्याकुल होते हुए दृष्टिगत हुए हैं।[१६५] यही नहीं ब्राह्मणों की चतुर स्त्रियाँ तथा कुल की वयोवृद्धाएँ जो कैकेयी को परम प्रिय थीं, सम्पूर्ण स्थिति का विचारपूर्ण विश्लेषण करती हुई कैकेयी को तर्क सम्मत सीख भी देती हैं जो परिणाम में हितकारी और सुनने में मधुर थी।[१६६] परन्तु कैकेयी कुछ उत्तर नहीं देती अतः विवश होकर वे उसे मन्द बुद्धि और अभागी जानकर लौट जाती हैं।[१६७] तत्पश्चात् राम, सीता और लक्ष्मण के वन-गमन के अवसर पर पुरुष समाज के साथ-साथ सम्पूर्ण स्त्रियाँ भी आकुल-व्याकुल होकर उनके पीछे-पीछे वन की और प्रस्थान करती हैं। अयोध्या नगरी में केवल बालक और वृद्ध ही, जो जाने में असमर्थ थे, रह जाते हैं।[१६८]

वन-पथ पर ग्राम वधुएँ भी राम वनवास पर विचारपूर्ण विवेचन करती हुई देखी जा सकती हैं।[१६९] साथ ही उनके स्नेह, प्रेम एवं सौजन्य सिंचित मधुर और सौम्य स्वरूपों का विस्तृत तथा अनुपम चित्रण भी तुलसी के साहित्य में सर्वत्र ही देखा जा सकता है।[२००] सीता और ग्राम वधुओं का वार्तालाप करते हुए सरस चित्रण हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है, जिसके अन्तर्गत नारी समाज के सहज, सरल औत्सुक्य, सरस चातुर्य एवं निश्छल स्नेह एवम् प्रेम से परिपूरित शील संयुक्त और पावन सत्त्व स्वरूपों का दिग्दर्शन तुलसी ने कराया है।[२०१] अनुराग के सुन्दर सरोवर में विकसित होती हुई मंजुल कमल कलिकाओं सी इन नारियों के अभिनव चित्रों[२०२] को देखकर भी जो आलोचक तुलसी के हृदय में नारी के प्रति कटुता की ग्रन्थि मानते हैं वह स्वयं उनके अन्याय पूर्ण दृष्टिकोण की ही परिचायक है[२०३] अन्यथा नारियों के स्वच्छन्द पावन एवं निर्द्वन्द्व स्वरूप—

धरि धीर कहै 'चलु' देखिय जाइ, जहाँ सजनीरजनी रहिहैं।
कहिहै जग पोच न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं।।

कवितावली —अयोध्या काण्ड।।२३।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को देखकर कौन कह सकता है कि ये नारियाँ मतिमंद और लोकविधिहीन हैं। इसी प्रकार तुलसी 'स्वतन्त्र भइ बिगरहिं नारी' और 'भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखति नारी।' होइ विकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रविमनि द्रव रविहि विलोकी।" जैसी संकुचित और बीभत्स भावनाओं की परिसीमाओं में सम्पूर्ण नारी जाति को बांध कर नहीं देखते थे। तुलसी द्वारा चित्रित नारियों के इन पावनतम स्वरूपों को तो कालुष्य कहीं स्पर्श भी नहीं कर पाया है।

तुलसी के 'रामचरितमानस' के आदर्श समाज में यज्ञ, विवाह आदि उत्सवों पर पुरुषों के साथ ही साथ सर्वत्र ही, देव-दानव, नर-किन्नर और गन्धर्व सभी की स्त्रियाँ आमन्त्रित और उपस्थित दिखलाई पड़ती हैं।[२०४] तुलसी साहित्य में ऋषि पत्नियाँ हों या ब्राह्मण-कुल की स्त्रियाँ, नगर की सुसंस्कृत नारियाँ हों अथवा कोल भील किरात जाति की ग्रामीण भोली भाली स्त्रियाँ सभी सुन्दरतम स्वरूपों में अंकित की गई हैं।

नारी के सामाजिक रूप का अंकन करते हुए तुलसी की सूक्ष्म तूलिका ने सम्पूर्ण नारी जाति को विभिन्न रंगों से इस प्रकार अनुरंजित किया है कि नारी मात्र के अनेकानेक पावन, सुकोमल, सरस, और मधुर स्वरूप अंकित हो गए, जो नारी मात्र के प्रति तुलसी के आदर भाव के परिचायक हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा का भी यही मत है कि तुलसी ने नारी जाति के प्रति बहुत आदर भाव प्रकट किया है।[२०५] डॉ० नगेन्द्र के अनुसार यदि सीता कौशल्या आदि की महिमा का वर्णन राम के नाते से मान भी लिया जाए और उसे व्यक्तियों का महिमागान कह दिया जाए[२०६] फिर भी तुलसी के उपरोक्त समष्टिगत नारी चित्रण को देखकर नारी मात्र के प्रति उनकी सहज, सुकोमल और आदरपूर्ण भावनाओं का अंकन स्पष्टतः ही परिलक्षित किया जा सकता है। अतः नारी निन्दक कटूक्तियाँ केवल कहने मात्र को ही प्रयुक्त हुई जान पड़ती हैं जो साहित्य के परम्परागत प्रभाव से प्रेरित होकर ही तुलसी ने ग्रहण कर ली हैं। साथ ही ये उक्तियाँ केवल असत् पात्रों के लिए ही हो सकती हैं सम्पूर्ण नारी जाति के लिए नहीं। जब तुलसी नारी मात्र के लिए—"कामक्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि। तिन्ह महं अति दारुन दुखद माया रूपी नारि।" (मानस —अरण्य काण्ड ।।४३।।) और इसी प्रकार—

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह विपिन कहुँ नारि बसंता।।
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी।।
वही ।।४३।।१

आदि भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं तब निश्चय ही उनका अभिप्राय नारी मात्र की निन्दा करना नहीं है। उपरोक्त उक्तियाँ केवल परम विरागी नारद मुनि के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वैराग्य को दृढ़ करने हेतु कही गई हैं। तुलसी प्रत्येक व्यक्ति के लिए नारी को त्याज्य भी नहीं मानते थे। उन्होंने तो वन में रहने वाले ऋषि मुनियों को भी स्त्रियों के बिना महादुःखी दिखाया है।[२०७] तुलसी वास्तव में कुनारियों को ही शूलवत् मानते हैं और उन्हीं की निन्दा भी करते हैं—

सेवक सठ, नृप कृपन, कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।

मानस —किष्किंधा काण्ड।६।५

अन्यथा उनके आदर्श समाज में तो स्त्री पुरुष सभी गुणवान और चतुर अंकित किए गए हैं—

सब निर्दंभ, धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुनग्य पंडित सब ज्ञानी। सब कृतग्य नहि कपट सयानी।।
सब उदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेवक नर नारी।
एकनारि व्रत रत सब झारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी।।

मानस—उत्तर काण्ड ।।२०।।४ तथा २१।४

इसीलिए तुलसी सभी स्त्री पुरुषों को समान भाव से 'रामचरितमानस' के चतुर रखवाले मानते हैं और उन्हें श्रेष्ठ देवत्व से परिपूरित मानस के अधिकारी देवता की संज्ञा देते हैं—

जे गावहिं यह चरित संभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे।
सदा सुनहि सादर नर नारी। तेइ सुरवर मानस अधिकारी।।

मानस —बालकाण्ड ।।३७।।१

अतः 'जोषिता नहीं अधिकारी' आदि उक्तियाँ निर्मूल ही सिद्ध होती हैं। उनका प्रयोजन केवल परम्परागत चली आती हुई मान्यताओं का दिग्दर्शन कराना ही है। अतः तुलसी साहित्य की इन गिनी चुनी नारी निन्दक उक्तियों को छोड़ देने पर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने सर्वत्र ही नारी जाति को उसके उज्ज्वलतम रूप में अंकित किया है।

निष्कर्ष—तुलसी की नारी भावना उनके विशिष्ट दार्शनिक विचारों पर आधारित है उन्होंने माया का केवल अविद्या रूप ही नहीं देखा अपितु उसका दूसरा उज्ज्वल पक्ष (जगत् को उत्पन्न करने वाली आदि शक्ति स्वरूप प्रभु की) महामाया (विद्या माया) रूप भी देखा है। अतः तुलसी ने नारी के दो रूप उच्चतम स्तर पर आधारित सत् और निम्नतम स्तर पर अवस्थित असत् रूप की परिव्याख्या की।

सत् रूप में नारी मानवोचित गुणों की परिसीमा है। नारी के सत् स्वरूप को भी चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(क) दैवी अंशों से संयुक्त अलौकिक सत् रूप जो सर्व समर्थ, सर्व वन्दित और सर्वदा अनिन्दित है। सीता और पार्वती अपने लौकिक रूप में महामाया हैं जो संसार का सृजन पालन और संहार करने की क्षमता रखती हैं। नारी का यह रूप तुलसी द्वारा वन्दनीय, पूजनीय है जो जगज्जननीत्व की गरिमा से अभिमंडित है।

(ख) सद्गुणों से आवेष्टित कर्त्तव्य-परायण नारी का लौकिक सत् स्वरूप जिस के अन्तर्गत तुलसी के सभी सत् नारी पात्र आ जाते हैं। सभी पात्र लौकिक होते हुए भी क्षमा, दया, न्याय, पावन-प्रीति, शील, संकोच और उत्सर्गमयी भावना से परिपूरित मर्यादा के अनुकूल पतिव्रत धर्म और अन्य सत्त्व गुणों से विभूषित हैं। यह नारी अपने सम्पूर्ण पारिवारिक सम्बन्धों माता, पत्नी, कुलवधू, पुत्री, प्रेयसी, सती आदि के रूपों में (सीता, पार्वती, कौशल्या, सुमित्रा, मन्दोदरी, तारा, मैना, सुनयना और सखियाँ आदि) श्रद्धा, मान, आदर और स्नेह की अधिकारिणी है, जो महिमा की सीमा, पुण्य और सुन्दर कल्याण की प्रतिमूर्ति है। तुलसी ने नारी के इन सत् रूपों की अर्चना और वन्दना सर्वत्र ही की है।

(ग) भगवान राम की भक्ति से सम्पन्न नारी तुलसी की दृष्टि में साक्षात भक्तिस्वरूपा है, जो अपने तप के कारण तेज-पुंज के रूप में चित्रित हुई है। नारी अपनी पावन भक्ति से मुनियों को भी दुर्लभ गति की अधिकारिणी कही गई है। भक्त शिरोमणि शबरी, शतरूपा और स्वयंप्रभा तप और भक्ति में लीन होती हुई दिखलाई गई हैं।

(घ) असत् के मिथ्या आवरण से आच्छादित नारी मूलतः सत्त्व से ही अभिसिंचित है जो प्रभु और देवताओं की माया के वशीभूत अपने सत् रूप से च्युत हो जाती है परन्तु उस माया के क्षणिक आवरण के विच्छिन्न होने पर वह पुनः ग्लानि और पश्चाताप के फलस्वरूप तुलसी की पूर्ण सहानुभूति की पात्र बनी है। कैकेयी और सती इसी रूप के अन्तर्गत रखी गई हैं। तुलसी ने यद्यपि कैकेयी के प्रसंग में अनेक कटु-उक्तियाँ नारी जाति के प्रति प्रस्तुत की हैं, परन्तु लगभग सभी सत् पात्र उसके दोष का परिहार करते हैं। कैकेयी की ग्लानि और पश्चाताप उसके प्रति सहानुभूति जागृत करते हैं। ऐसे पात्रों को भी समाज में आदरमान का अधिकार मिलना चाहिए, जो सती को शिव द्वारा और कैकेयी को राम के द्वारा सम्मानित करके प्रदान किया गया है।

सत् नारी के पारिवारिक धार्मिक और राजनीतिक स्वरूप महिमामय हैं। नारी के राजनीतिक रूप के भी दो स्वरूप हैं—सत् और असत्। सत् रूप में नारी लोक कल्याण की भावना से प्रेरित निजी स्वार्थों का उत्सर्ग करके कलह, कष्ट और युद्ध का निवारण करती है और असत् रूप में संकुचित स्वार्थ और अहम् भावना से प्रेरित होकर विनाश और विध्वंस को आमंत्रण देती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

असत् रूप में नारी सत् के विपरीत आसुरी विपत्ति से युक्त अवगुणों और निम्नतम भावनाओं की परिव्याख्या है जिसमें नारी स्वार्थ, दंभ, अविवेक, निर्दयता, विध्वंसक महत्त्वाकांक्षा, घोर-वासना, और प्रतिहिंसा के निम्नतम भावों की अभिव्यक्ति करती है। इस रूप का शुद्ध स्वरूप केवल शूर्पणखा और मंथरा में चित्रित किया गया है। यद्यपि मंथरा तुलसी का असत् पात्र है तथापि उसकी बुद्धि को सरस्वती द्वारा प्रेरित कहकर उसके दोष को भी कम करने का प्रयास किया है। अतः तुलसी साहित्य की एक मात्र असत् पात्र शूर्पणखा ही है।

असत् नारी पात्रों के प्रसंग में नारी मात्र के प्रति अनेक कटु-उक्तियों को प्रस्तुत करके भी तुलसी साहित्य में चित्रित नारी समाज अपने समग्र रूप में विभिन्न रंगों से अनुरंजित पावन, सुकोमल, सरस, मधुर, मनोहारी और मंगलमय रूप में ही चित्रित हुआ है।

नारी समाज पूर्ण स्वच्छन्दता का उपभोग करता हुआ दिखलाई पड़ता है। पुरुष-समाज की भाँति ही स्त्री-समाज को भी सभी धार्मिक और सामाजिक अधिकार प्रदान किए हैं। पुत्र जन्म का उत्सव हो अथवा विवाह का, तीज का उल्लास पूर्ण पर्व हो या फाग का रंग भरा त्यौहार, स्वयंवर की यज्ञ भूमि हो या वन-पथ पर बसे ग्रामों की पगडंडियाँ, जनकपुर की बीथिकाएँ हों या अयोध्या नगरी का राजडगर, सभी स्थल, सहज सिंगार और सुकोमल भावनाओं से परिपूरित नारी समाज के पावन और सुन्दर स्वरूप की छटा से आभासित हैं। समग्र रूप में नारी समाज में न कहीं कालुष्य है न अपावनता, न जड़ता और न ही परतंत्रता। प्रत्येक परिस्थिति में तुलसी का नारी समाज अपने उज्ज्वलतम रूप में सुन्दरता से चित्रित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१. आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।
—रामचरितमानस- बाल कांड ।।१५१।।२

२. तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ विद्या अपर अविद्या दोऊ।।
—रामचरितमानस- अरण्य काण्ड ।।१४।।२

३. वही ।।१४।।३

४. माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि वर्ग जानइ सब कोऊ।
पुनि रघुवीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी विचारी।।
वही —उत्तर काण्ड ।।१११ख।।२

५. देखी माया सब विधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी।
देखा जीव नचावइ जाही। देखी भगति जो छोरइ ताही।।
वही —बाल काण्ड ।।२०१।।२

६. वही ।।१३।।५ तथा ।।१११।।४

७. वही।।१४७।१,२ तथा ।।१८६।।३

८. उद्भव स्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्। —वही श्लोक।।५।।
तथा —अज्ञो अनादि.....वपुधारिनि।" —वही श्लोक।।७।।२

९. वही ।।६७।।१,२

१०. जनकसुता जग जननि जानकी। अति रूप प्रिय करुणानिधान की।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निरमल मति पावउँ।।
वही ।।१७।।४

११. मगल खानि भवानि प्रगट जबतें भई।
तबतें ऋद्धि सिद्धि संपति गिरिगृह नित नई। पार्वती-मंगल ।।८।।
तथा रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।६४।।

१२. वही ।।२३५।।१

१३. वही ।।६६।।३,४ तथा ।।२४६।।१,।।२४७।।१,२ तथा पार्वती मंगल ।।१४१।।

१४. वही ।।१४७।।१,२

१५. वही ।।३०५।।४,।।३०६।।

१६. वही —अयोध्या काण्ड ।।२५१।।१,२

१७. वही —लंका काण्ड ।।१०८।। छंद १

१८. वही, ।।१०८।। छंद २

१९. वही —बाल काण्ड ।।२३५।। तथा उत्तर काण्ड ।।२४।।१

२०. वही, संस्कृत श्लोक ।।२।।

२१. वही —उत्तर काण्ड ।। २२६।।३

२२. वही —अरण्य काण्ड ।।४।।६, तथा ।।५क।।

२३. वही —बाल काण्ड ।।१८८।, ।।१८९।।४

२४. वही, ।।१५।।३-४

२५. वही, ।।२५०।।१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२६. पार्वती मंगल ।।४४।।
२७. वही ।।४५।।, ।।८०।।, ।।८१।।
२८. वही ।।४६।।
२९. वही ।।४९।।
३०. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२८६।।१
३१. पार्वती मंगल ।।५१।।, ।।५२।।
३२. "बरवै रामायण" ।।१७।।
३३. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१२२।।३,४
३४. वही ।।१२३।।१
३५. वही ।।१११७।।१ तथा किष्किंधा काण्ड ।।८।।५, तथा सुन्दर काण्ड ।।१०।।१
३६. वही —बाल काण्ड ।।३७।।१
३७. वही —अरण्य काण्ड ।।२५।।४।,३६।।
३८. वही ।।३५।।३,४
३९. वही ।।३४।।२
४०. वही —अयोध्या काण्ड ।।७३।।४
४१. वही —बाल काण्ड ।।२१०।। छंद १,२
४२. वही —अयोध्या काण्ड ।।१६।।,१
४३. वही —अरण्य काण्ड ।।१६।।२ से १० तक तथा ।।१७।।१,२
४४. वही —अयोध्या काण्ड ।।१२।।१,२ तथा ।।१४।। और ।।१८।।
४५. उद्भव स्थिति संहार कारिणी क्लेशहारिणीम।
सर्वश्रेयस्करी सीता नतोहं राम वल्लभाम्।। मानस-बाल काण्ड श्लोक।५।
तथा 'नहि तव....स्वबस विहारिनी।' !।२३४।।४
४६. वही —बाल काण्ड ।।१७।।४, ।।२३४।।३, ।।२४५।।१
४७. वही, ।।९९।।३, ।।२३५।।१, ।।२४६।।१, तथा ।।२४७।। १,२ और पार्वती मंगल ।।१४१।।
४८. विनय पत्रिका ।।४१।।, ।।४२।।
४९. गीतावली —बाल काण्ड ।।११।।
५०. वही ।।१४।।
५१. वही ७ से २५।।
५२. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।५३।।१,२,३,४
५३. वही ।।५४।।१,२,३,४
५४. कवितावली — ३,४ गीतावली —अयोध्या काण्ड, ५१ से ५५ तक
५५. कुवरि सयानि विलोकि मातु पितु सोचहिं
गिरिजा-जोग जुरिहि बर अनुदिन कोंचहि।। —(पार्वती मंगल।।१०।।)
५६. तबतें दिन-दिन उदय जनक को जबतें जानकी जाई।
अब यहि ब्याह सफल भयो जीवन, त्रिभुवन विदित बड़ाई।।
—गीतावली -बालकाण्ड ।।९८।।२
५७. कीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की।।
—रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड।।२८५।।२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५८. पार्वती मंगल ।।६।।
५९. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२३३।।४
६०. पार्वती मंगल ।।८३।।
६१. पार्वती मंगल ।।२०।। तथा ।।१५७।।
६२. परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी। —रामचरितमानस– बाल काण्ड ।।३३५।। छंद
६३. सिय चलत पुरजन नारि हय गय विहग मृग व्याकुल भये। जानकी मंगल ।।१८६।।
६४. मानस-बालकाण्ड।।१०१।।४, छंद
६५. वही ।।३३७।।२,३
६६. वही ।।३३३।।४, १०१।।३, पार्वती मंगल ।।२५।।, १५६।।
६७. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।३३४।। छंद ४
६८. वही ।।३३५।।
६९. वही ।।३५३।।२
७०. वही ।।३५४।।४,।।३५७।।, तथा अयोध्या काण्ड ।।५८।।१
७१. वही ।।५७।।, ।।६३।। २,३ तथा २८६।।४
७२. वही ।।५८।।३, उत्तरकाण्ड ।।२३।।३,४
७३. वेद में स्त्रियाँ —विद्यावाचस्पति गणेश दत्त शर्मा गौड़, पृ० ७०
७४. तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं।। जानु प्रीति रस एतनेहि माहि।।
—रामचरितमानस —सुन्दर काण्ड ।।१४।।३,४
७५. जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। वाम भाग आसनु हर दीन्हा।
वही बाल काण्ड ।।१०६।।२
तथा वही —।।१४७।।१, ।।३२३।।२
७६. वही ।।७०।।१,२,३ तथा पार्वती मंगल ।।१२,१५,८८।।
७७. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।६४।।४
७८. वही —अरण्य काण्ड ।।४।।४,५,६,१०
७९. वही —अयोध्या काण्ड ।।६७।।,१
८०. वही —लंका काण्ड।।३५ख।५
८१. वही ।७।।
८२. सब भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बात मुदित मन माही।
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें।। —वही —अयोध्या काण्ड ।।६६।।२
८३. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।१३।।
८४. वही ।।१४।।
८५. कवितावली ।।१२।।
८६. वही ।।१३।।
८७. वही ।।४४।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

८८. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१३६।।३,४

८६. वही —लंका काण्ड।।५।।१,२,३,४ तथा अन्य स्थलों के लिए सुन्दर काण्ड ।।३५।।२,३,४ किष्किन्धा काण्ड ।।६।।१४, गीतावली सुन्दर काण्ड ।।२३।।, ।।२४।। तथा लंका काण्ड ।।१।।

६०. सोह रघुवीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी।
मुनिवर जतनु करहि जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं विरागी।
रामचरितमानस- लंका काण्ड ।।६।।३

६१. वही —बाल काण्ड ।।१०७।।,१,२,३,४ तथा ।।१०८।।१,२,३,४

६२. रामचरितमानस- उत्तर काण्ड ।।१९ख।। छंद २

६३. वही —बाल काण्ड ।।१४२।।, ।।१४३।।, १४४।।३

६४. वही —अयोध्या काण्ड ।।६६।।३

६५. रघुवंश —कालिदास ।।८।।६७

६६. सो परनारि लिलार गोसाई। तजउं चउथि के चन्द की नाई।
रामचरितमानस —सुन्दर काण्ड ।।३७।।३

६७. वही —अरण्य काण्ड ।।४।।,५,१०

६८. वही —बाल काण्ड ।।७१।।१

६६. पार्वती मंगल ।।२७।।

१००. वही ।।३३।।,।।३४।।, ।।३६।।

१०१. चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई।
—(रामचरितमानस-बाल काण्ड।।२२८।।४)

१०२. वही।।१८६।।१,२

१०३. मैं न करनी सौति, सखी। भगिनी ज्यों सेई है। —कवितावली ।।३।।

१०४. गीतावली —अयोध्या काण्ड।।६३।। तथा रामचरितमानस-अयोध्या काण्ड ।।१६४।।२,३

१०५. कवितावली -अयोध्या काण्ड ।।४।।

१०६. रामचरितमानस-अयोध्या काण्ड ।।१४।।३,४

१०७. वही ।।१७।।१,२,३,४ तथा १८।।

१०८. वही ।।३२।।४

१०६. वही ।।६७।।२,३

११०. वही ।।२४६।।१, गीतावली-उत्तर काण्ड।।१८।।,१६।।५
।।२२।। तथा पार्वती मंगल ।।१३८।।

१११. रामचरितमानस-बाल काण्ड ।।२३३।।१

११२. वही ।।२३३।।३

११३. वही ।।२५६।।,१

११४. वही —अयोध्या काण्ड ।।४८।।२-४,।।४६।।२-४ तथा छंद

११५. वही ।।१५।।३

११६. वही ।।१६२।।२-४

११७. वही ।।१४।।२

११८. वही ।।७६।।३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

११६. रामलला नहछू, छंद ।।५,६,७,८।।
१२०. हिन्दी नवरत्न—गोस्वामी तुलसीदास -मिश्रबन्धु, पृ० १०६
१२१. तुलसी दास —माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६६
१२२. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २७
१२३. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३१
१२४. रामचरितमानस-अरण्य काण्ड ।।४।।५
१२५. वही ।।५क।।
१२६. उमा रमा ब्रह्मादि वंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता।।
जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारविन्द रति करति सुभावहि खोइ।।—रामचरितमानस-उत्तर काण्ड।।२३।।५,।।२४।।
१२७. वही —बाल काण्ड ।।१४७।।१,२
१२८. वही —अयोध्या काण्ड ।।१२५।। छंद
१२६. वही —बाल काण्ड श्लोक।।५।।
१३०. वही —बाल काण्ड ।।२३४।।३,४,।।२३५।।
१३१. वही ।।२३५।।१
१३२. वही ।।३०६।।२
१३३. वही —अयोध्या काण्ड ।।२५१।।२
१३४. वही —अरण्य काण्ड ।।२३।।२
१३५. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।४।। ६,७,८
१३६. वही —अयोध्या काण्ड ।।६४।।, १-४
१३७. पार्वती मंगल ।।४६।।
१३८. रामचरितमानस —बाल काण्ड।।५६।।
१३६. वही ।।१२२।।३,४
१४०. वही ।।२०१।।१ तथा रामलला नहछू ।।१६।।
१४१. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२०१।।१-४,।।२०२।।
१४२. गीतावली —बाल काण्ड ।।१२,१५,१७।।
१४३. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१४२।।१
१४४. वही ।।१४२।।२
१४५. वही ।।१४३,१४४।।१,१,२
१४६. वही ।।१४६।।४,।।१५०।।२
१४७. वही- किष्किंधा काण्ड।।२४।।१-४ तथा ।।२५।।
१४८. वही- बाल काण्ड ।।२१०।। छंद
१४६. वही ।।२१०।।३,४
१५०. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।३६।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१५१. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।१७३।।

१५२. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।६०।।

१५३. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।१२।।२

१५४. वही ।।२१।।४

१५५. वही —अयोध्या काण्ड ।।१२।।

१५६. वही —अयोध्या काण्ड ।।५४।।

१५७. वही ।।५५।।१

१५८. वही ।।४४।।

१५९. वही ।।५४।।२,४

१६०. वही ।।१५३।।४

१६१. वही—किष्किंधा काण्ड ।।६।।१४

१६२. वही ।।८।।५

१६३. वही—अरण्य काण्ड ।।२०।।३-६

१६४. वही —सुन्दर काण्ड ।।६६।।४

१६५. कवितावली —सुन्दर काण्ड ।।११,१२।।

१६६. रामचरितमानस—सुन्दर काण्ड ।।३५।।१-४, ।।३६।। तथा लंका कांड।।५।।, ।।५।।२,३,४,५,६ तथा ३५ ख।।,१-७ तथा ।।३६।,१-४, ।।३७।। और गीतावली—सुन्दरकांड ।।२३,२४,२५।। तथा कवितावली-लंका कांड-पद १८ से ३०

१६७. वही —सुन्दर काण्ड ।।३६।।,२,३

१६८. वही —सुन्दर काण्ड ।।३५।।१,२

१६९. वही —लंका काण्ड ।।८।।

१७०. कवितावली —लंका काण्ड ।।३।।

१७१. वही —लंका काण्ड ।।२।। तथा रामचरितमानस —सुन्दर काण्ड।।१०।।२,३,४

१७२. गीतावली —बाल काण्ड ।।१।।७

१७३. वही, ।।१।।८

१७४. वही, ।।२।।१५

१७५. वही, ।।२।।६

१७६. वही, ।।२।।१६

१७७. वही, ।।४।।५

१७८. रामचरितमानस—बाल काण्ड।।६३।।३, ।।६५।।१।।६८।।२-४, गीतावली-बालकाण्ड ।।५।।६, ।।६।।,८,२२-२४, तथा रामलला नहछू —छंद ।।५।। से।।१४।। तक पार्वती मंगल।। १३१,१३२।। जानकी मंगल।।१२७।।

१७९. पार्वती मंगल ।।१३२।।, जानकी मंगल ।।१२७।।१४८-१५४।।

१८०. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४४

१८१. तुलसी दास—डॉ० माताप्रसाद गुप्त—भूमिका, पृ० ६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१८२. तुलना कीजिए—"मातुःकुल पितृकुलं यत्र चैव च दीयते। कुलवयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति।।
—वाल्मीकि रामायण ।।७।।६।।११

१८३. कनसुइया—शकुन विचार की एक रीति, जिसमें स्त्रियाँ गौरी की मूर्ति बनाकर छलनी में रखकर पृथ्वी पर फेंकती है वह सीधी गिरे तो शुभ उल्टी गिरे तो अशुभ मानी जाती है।

१८४. रामचरितमानस-बालकाण्ड ।।२२७।।३

१८५. वही ।।२२८।।३

१८६. वही २३६।।३

१८७. बरवै रामायण ।।७७।।

१८८. गीतावली —उत्तर कांड ।।१६।।१

१८९. वही ।।१८।।४,५

१९०. वही ।।१६।।४

१९१. वही २१।।२०,२१,२२

१९२. वही ।।२२।।

१९३. रामलला नहछू।। ५ से १४।।

१९४. "मैंने तुलसी दास के करीब-करीब सभी ग्रन्थों का अच्छी तरह अध्ययन किया है। मुझे तो वे स्त्री जाति के विरोधी नहीं जान पड़े।" —तुलसी और उनका काव्य—रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ३०७

१९५. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।४५।।४

१९६. वही ।।४८।।२,४, ।।४६।।१-४ तथा ।।५०।।

१९७. वही ।।५१।।१

१९८. वही ।।८४।।

१९९. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।३७ से ४०।।

२००. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।११५।।२-४ तथा गीतावली अयोध्या काण्ड।।१६ से ४२।।
तथा कवितावली —अयोध्या काण्ड।।१६ से २८।।

२०१. "सादर बारहि बार.....सखि रावरे को हैं।" —कवितावली अयोध्या काण्ड।।२१।।

२०२. "तुलसी तेहि ओसर सोहें.....मंजुल कंज-कली।" वही ।।२२।।

२०३. गोस्वामी तुलसी दास —श्यामसुन्दर दास —पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० १०८

२०४. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।६०।।१, ।।६१।।३, ।।६३।।३

२०५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६५

२०६. विचार और विश्लेषण– डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४७-४६

२०७. विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी, 'तुलसी' सो कथा सुनि, भे मुनिबृंद सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हो भली, रघुनायक जू, करुना करि कानन को पगु धारे।
—कवितावली —अयोध्या काण्ड ।।२८।।

❁❁❁

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१५१. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।१७३।।

१५२. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।६०।।

१५३. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।१२।।२

१५४. वही ।।२१।।४

१५५. वही —अयोध्या काण्ड ।।१२।।

१५६. वही —अयोध्या काण्ड ।।५४।।

१५७. वही ।।५५।।१

१५८. वही ।।४४।।

१५९. वही ।।५४।।२,४

१६०. वही ।।१५३।।४

१६१. वही—किष्किंधा काण्ड ।।६।।१४

१६२. वही ।।८।।५

१६३. वही—अरण्य काण्ड ।।२०।।३-६

१६४. वही —सुन्दर काण्ड ।।६६।।४

१६५. कवितावली —सुन्दर काण्ड ।।११,१२।।

१६६. रामचरितमानस—सुन्दर काण्ड ।।३५।।१-४,।।३६।। तथा लंका कांड।।५।।,।।५।।२,३,४,५,६ तथा ३५ ख।।,१-७ तथा ।।३६।,१-४, ।।३७।। और गीतावली—सुन्दरकांड ।।२३,२४,२५।। तथा कवितावली-लंका कांड-पद १८ से ३०

१६७. वही —सुन्दर काण्ड ।।३६।।,२,३

१६८. वही —सुन्दर काण्ड ।।३५।।१,२

१६९. वही —लंका काण्ड ।।८।।

१७०. कवितावली —लंका काण्ड ।।३।।

१७१. वही —लंका काण्ड ।।२।। तथा रामचरितमानस —सुन्दर काण्ड।।१०।।२,३,४

१७२. गीतावली —बाल काण्ड ।।१।।७

१७३. वही, ।।१।।८

१७४. वही, ।।२।।१५

१७५. वही, ।।२।।६

१७६. वही, ।।२।।१६

१७७. वही, ।।४।।५

१७८. रामचरितमानस—बाल काण्ड।।६३।।३, ।।६५।।१।।६८।।२-४, गीतावली-बालकाण्ड ।।५।।६, ।।६।।,८,२२-२४, तथा रामलला नहछू —छंद ।।५।। से।।१४।। तक पार्वती मंगल।। १३१,१३२।। जानकी मंगल।।१२७।।

१७९. पार्वती मंगल ।।१३२।।, जानकी मंगल ।।१२७।।१४८-१५४।।

१८०. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४४

१८१. तुलसी दास—डॉ० माताप्रसाद गुप्त—भूमिका, पृ० ६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१८२. तुलना कीजिए—"मातुःकुल पितृकुलं यत्र चैव च दीयते। कुलवयं सदा कन्या संशये स्थाप्य तिष्ठति।।
—वाल्मीकि रामायण ।।७।।६।।११

१८३. कनसुइया—शकुन विचार की एक रीति, जिसमें स्त्रियाँ गौरी की मूर्ति बनाकर छलनी में रखकर पृथ्वी पर फेंकती है वह सीधी गिरे तो शुभ उल्टी गिरे तो अशुभ मानी जाती है।

१८४. रामचरितमानस-बालकाण्ड ।।२२७।।३

१८५. वही ।।२२८।।३

१८६. वही २३६।।३

१८७. बरवै रामायण ।।७७।।

१८८. गीतावली —उत्तर कांड ।।१६।।१

१८९. वही ।।१८।।४,५

१९०. वही ।।१६।।४

१९१. वही २१।।२०,२१,२२

१९२. वही ।।२२।।

१९३. रामलला नहछू।। ५ से १४।।

१९४. "मैंने तुलसी दास के करीब-करीब सभी ग्रन्थों का अच्छी तरह अध्ययन किया है। मुझे तो वे स्त्री जाति के विरोधी नहीं जान पड़े।" —तुलसी और उनका काव्य—रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ३०७

१९५. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।४५।।४

१९६. वही ।।४८।।२,४, ।।४६।।१-४ तथा ।।५०।।

१९७. वही ।।५१।।१

१९८. वही ।।८४।।

१९९. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।३७ से ४०।।

२००. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।११५।।२-४ तथा गीतावली अयोध्या काण्ड।।१६ से ४२।।
तथा कवितावली —अयोध्या काण्ड।।१६ से २८।।

२०१. "सादर बारहि बार.....सखि रावरे को हैं।" —कवितावली अयोध्या काण्ड।।२१।।

२०२. "तुलसी तेहि ओसर सोहें.....मंजुल कंज-कली।" वही ।।२२।।

२०३. गोस्वामी तुलसी दास —श्यामसुन्दर दास —पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० १०८

२०४. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।६०।।१, ।।६१।।३, ।।६३।।३

२०५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६५

२०६. विचार और विश्लेषण– डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४७-४६

२०७. विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी, 'तुलसी' सो कथा सुनि, भे मुनिबृंद सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हो भली, रघुनायक जू, करुना करि कानन को पगु धारे।
—कवितावली —अयोध्या काण्ड ।।२८।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६ अध्याय

तुलसी की जीवन सम्बन्धी विचारधारा और नारी

तुलसी का जीवन दर्शन नैतिक मूल्यों पर आधारित था। जब नैतिक मान्यताओं को भुलाकर तत्कालीन समाज श्रेष्ठ आदर्शों और मर्यादाओं को छोड़ पतित जीवन व्यतीत कर रहा था, मानव जीवन निराशा और क्लेशों का आगार बना हुआ था। विशृंखलित सामाजिक मर्यादाओं, आदर्शहीन मान्यताओं और पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक दृष्टि से, परस्पर विच्छिन्न धारणाओं के कारण सम्पूर्ण जीवन लक्ष्यहीन और निराशामय हो रहा था। ऐसे समय में युग के सबसे बड़े लोकनायक तुलसी ने चिर परिचित हिन्दू संस्कृति के अनुरूप ही एक स्वस्थ जीवन-दर्शन प्रस्तुत कर मनुष्य को आलोकमय पथ दिखलाया।

तुलसी समाज संस्कर्ता और भविष्य द्रष्टा थे। यही कारण था कि उन्होंने समाज की बुराइयों को देखा तथा उसकी निन्दा और भर्त्सना की, साथ ही भविष्य के नूतन निर्माण के लिए रामचरित द्वारा जीवन के उच्चतम मानदंडों को स्थापित किया। इसके लिए उन्होंने मानव मन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तियों को परखा, तथा उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। केवल रामचरितमानस में ही मानवजीवन की प्रत्येक दशा का इतना विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है कि जीवन का कोई क्षेत्र और उसका कोई पहलू उनसे छूट नहीं पाया है। नारी जीवन की प्रत्येक दशा और विविधता का मार्मिक विवेचन तुलसी ने अपने काव्य में विस्तार से किया है। यही कारण है कि उनका मानस पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को कहीं अधिक सरस, ग्राह्य और मनोहारी प्रतीत होता है। अतः पुरुषों की अपेक्षा नारी समाज में ही उसका अधिक प्रचलन दिखलाई पड़ता है।

संत दार्शनिकों की भाँति तुलसी ने जीवन को क्लेश, बन्धन अथवा अनिष्ट का कारण नहीं माना है वरन् सम्पूर्ण संसार को परमात्मा के असीम ऐश्वर्य से अभिभूत जानकर, उसकी आदिशक्ति महामाया को जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार कारिणी के रूप में देखा है जो जीवन के समस्त क्लेशों का हरण करके सम्पूर्ण कल्याणों को करने वाली है।[1] यह मानकर ही तुलसी सम्पूर्ण जगत् को प्रणम्य मानते हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीय राममय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी।

जो व्यक्ति ऐसा मानकर हृदय के उच्चातिउच्च भावों के शिखर पर आरूढ़, काम, क्रोध, मद आदि दोषों को त्याग, प्रभु के चरणों में प्रीति रखकर संसार को प्रभुमय देखता है, उसका जीवन सुखमय और कल्याणकारी है। उसके हृदय में फिर न कहीं वैर है और न विरोध है।[२] अतः तुलसी के अनुसार संसार—

अनविचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम-सन्तोष-दया-विवेक तें, व्यवहारी सुखकारी।।

विनयपत्रिका —पद-१२१

दया, प्रेम, सन्तोष और विवेक आदि से परिपूरित जीवन ही कल्याणमय है। इसी जीवन दर्शन के आधार पर तुलसी ने मानव जीवन के सत् और असत् पक्षों पर प्रकाश डाला है।

तुलसी की नारी भावना का विश्लेषण करते हुए उनकी दार्शनिक विचारधारा विद्यामाया और अविद्यामाया के आधार पर तुलसी के सत् एवं असत् नारी पात्रों का विवेचन किया जा चुका है, जिसमें तुलसी द्वारा निरूपित नारी के पारिवारिक, धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक रूपों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ केवल तुलसी की पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विचारधारा तथा उसमें नारी के स्थान पर विचार करना ही प्रासंगिक है।

१. पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा तथा परिवार में नारी का स्थान

(क) पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा—तुलसीदास ने जिस प्रकार अपनी राम कथा की उपलब्धि अनेक पुराण, वेद, तन्त्र, शास्त्र, रामायण तथा अन्यान्य ग्रन्थों से की है, ठीक उसी प्रकार उनके साहित्य में अभिव्यंजित पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा का प्रवाह भी पुरातन परिवार परिपाटी की पावन धारा से ही निःसृत है। वस्तुतः परिवार ही मानव समाज की वह महत्त्वपूर्ण संस्था है जिस पर सम्पूर्ण मानव समाज का संरक्षण एवं संवर्धन अवलम्बित है। सम्भवतया इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे पुरातन ऋषि मुनियों ने गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठतम आश्रम माना है।[३] पुरातन भारतीय संस्कृति के पोषक महाकवि तुलसी ने भी गृहस्थाश्रम को विशेष महत्त्व दिया है। इस गृहस्थाश्रम का केन्द्र बिन्दु है गृहस्थी अथवा परिवार। फलस्वरूप तुलसी का लगभग सम्पूर्ण काव्य ही राम के आदर्श परिवार की परिधि की परिक्रमा करता हुआ प्रतीत होता है। अतः 'मानस' को यदि "पारिवारिक महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया जाये तो अनुचित न होगा। कवि गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर ने वाल्मीकि रामायण को —पारिवारिक महाकाव्य कहा है।[४] लेकिन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मानस में तो वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म और विस्तृत पारिवारिक विवेचन पाया जाता है। इसलिए तुलसी का मानस सच्चे अर्थों में एक आदर्श पारिवारिक महाकाव्य माना जा सकता है।

मानसकार ने राम परिवार के रूप में भारतीय परिवार-व्यवस्था का जो अत्यधिक सरस, आकर्षक और वरेण्य रूप उपस्थित किया है वह अति सरल, सहज और सुगम है, साथ ही उसमें अतीव स्वाभाविकता भी है। तभी तो राम परिवार एक राज परिवार होते हुए भी अपनी श्रेष्ठतम मर्यादाओं और मान्यताओं तथा भव्य परम्पराओं एवं प्रथाओं के साथ भी जन-जीवन में घुल मिल गया है। उसका समस्त सुख और दुःख तथा उसकी सम्पूर्ण समस्याएँ, जैसे आज सर्वसाधारण की बन गई हैं, जिसके फलस्वरूप राजा और रंक स्त्री और पुरुष, युवा और वृद्ध, सभी समान रूप से आज भी उसके आकर्षण में बँधे उससे प्रेरणा लेकर अपने पारिवारिक सुख, सन्तोष और शान्ति की उपलब्धि करने का प्रयास कर रहे हैं। आज के युग में जब कि सम्मिलित परिवार के विघटन के चिह्न उग्र रूप से प्रगट हो रहे हैं, तब तो जन समाज में प्रचलित और सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ मानस का महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है, क्योंकि सम्मिलित परिवार का जो भव्य आकर्षक और सरस रूप मानस में अंकित हुआ है वह जैसे अपने सम्मोहन में बांध कर परिवार के बिखरते मन को प्रीति के सूत्र में पिरोने-संजोने और संवारने का सफल प्रयास कर रहा है। अतः मानस के माध्यम से तुलसी ने पारिवारिक जीवन का वह अमृत-कलश स्थापित किया है जिसके कारण आज भी भारत में पारिवारिक जीवन की पावनी धारा अक्षुण्ण रूप से जीवित है जब कि संसार के अन्य समाज केवल स्वार्थ की आधार शिला पर अवस्थित अपने 'स्व' की सीमित एवं संकुचित सीमाओं में बँधे दिखलाई पड़ते हैं।

श्रेष्ठतम आदर्शों से संयुक्त एक अत्यधिक संस्कृत एवं समुन्नत राम-परिवार की परियोजना करके तुलसी ने पारिवारिक जीवन सम्बन्धी एक ऐसी पूर्णतया दार्शनिक विचारधारा प्रस्तुत की है, जिसका आधार नीति, मर्यादा, स्नेह, प्रेम, सत्य, त्याग, उत्सर्ग, भक्ति, ज्ञान, श्रद्धा, विश्वास एवं पारस्परिक सौहार्द तथा अनुपम शील और शिष्टाचार की दृढ़ शिला पर अवलम्बित है। राम परिवार के वृहद् चित्र-पटल पर तुलसी ने भारतीय पारिवारिक जीवन का जो प्रतिनिधि चित्र अंकित किया है उसमें माता-पिता, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, बन्धु-बान्धव, कन्या-कुलवधू, सास-ससुर, सपत्नी और सम्बन्धी, सखा-सखियों, दास-दासियों, सेवक-स्वामी, कुल पुरोहित तथा कुल ज्येष्ठाओं यहाँ तक कि परिवार द्वारा पोषित पशु पक्षियों तक का भी भावभीना-मार्मिक एवं विस्तृत चित्रण हुआ है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का पारस्परिक व्यवहार ही पारिवारिक शील निरूपण एवं कुल मर्यादाओं का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विधायक है। अतः परिवार के प्रत्येक छोटे-बड़े सदस्य के आचार-विचार, व्यवहार और उसके कार्य-कलापों तथा उसकी समस्त समस्याओं का जैसा मार्मिक एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण तुलसी ने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी ने पारिवारिक जीवन के हर पहलू को देखा ही नहीं, वरन् गहराई से अनुभूत भी किया है। इन गहन और सरस अनुभूतियों से सिंचित जिस पारिवारिक दर्शन के विशाल प्रासाद का निर्माण तुलसी ने किया वह सबके लिए सुलभ और सुखकारी है।

तुलसी की पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा को समझने के लिए उनके द्वारा निरूपित परिवार के मूल सिद्धान्तों को समझना परम आवश्यक है। बिना सन्तति परिवार की कल्पना ही निर्मूल है। मानव जीवन की पूर्णता सन्तान की उपलब्धि ही है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में इस तथ्य को विभिन्न प्रकार से कहा गया है।[६] तुलसी के पारिवारिक दर्शन का मूल सिद्धान्त भी यही है, जिसकी अभिव्यक्ति राजा दशरथ की उस अपार पीड़ा और ग्लानि में होती है, जो निःसन्तान होने के कारण उनके हृदय को विकल बनाए हुए थी।[७] परिवार में सन्तति का न होना उसके मूल पर ही कुठाराघात है। अतः राजा दशरथ गुरु वशिष्ठ से अपना अपार दुःख बतलाते हैं और उनकी प्रेरणा से पुत्रकामेष्टि यज्ञ द्वारा पुत्र प्राप्ति के सतत प्रयास में लीन होते हैं और तब मनोवांछित फल पाते हैं। पुत्र जन्म का समाचार उन्हें ब्रह्मानन्द में लीन कर देने वाला है "दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहु ब्रह्मानन्द समाना।" तथा माता और समस्त परिवार को ही अपार हर्ष और उल्लास में सराबोर कर देने वाला है।

तुलसी के मत में जिन गृहस्थों के प्रांगण बालकों की भोली भाली एवं चित्ताकर्षक क्रीड़ाओं से शून्य हैं, उन्हें विधाता ने नितान्त भाग्यहीन बनाया है।[८] यही नहीं धूल में खेलते बालकों के शरीर की धूलि से मलीन होना माता-पिता को अपार सन्तोष और आह्लाद से अभिभूत कर देने वाला है।[९] बालकों से भरा पूरा परिवार तन-मन की पुलक और आनन्द का विधायक है।[९] अतः परिवार में सन्तान-उत्पत्ति अपार सुख-ऐश्वर्य, समृद्धि तथा मंगल का कारण है। भले ही वह कन्या हो या पुत्र। जिस प्रकार राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के जन्म पर अवध में बधावे बजाए जाते हैं, मंगलगान किए जाते हैं,[१०] ठीक उसी प्रकार सीता और पार्वती के जन्म के मंगलोत्सवों का अपूर्व आयोजन है।[११]

भारतीय धर्म ग्रन्थों वेद, पुराण, स्मृति और सूत्र आदि में पति-पत्नी की अभिन्नता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।[१२] तुलसी ने इस सिद्धान्त को बड़े ही सुन्दर और मौलिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। तुलसी के अनुसार पति-पत्नी वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जल की लहरों के समान कहने में ही अलग-अलग हैं। परन्तु वास्तव में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे अभिन्न ही हैं।[१३] यही नहीं पति-पत्नी, शरीर और उसकी आत्मा, सूर्य और उसकी प्रभा, चन्द्रमा और उसकी चाँदनी के समान हैं जिन्हें पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता है।[१४] तुलसी के विचार में स्त्री-पुरुष की परछाई की भाँति है जो उससे पृथक् नहीं की जा सकती।[१५] पति-पत्नी की यह अभिन्नता एक जीवन तक ही सीमित रहने वाली नहीं वरन् जन्मजन्मान्तरों तक स्थिर रह सकती है। दक्ष कन्या सती यज्ञ में प्राणाहुति देते समय शिव को ही पुनः अगले जन्म में पति रूप में पाने का संकल्प करती है और पार्वती रूप में जन्म लेकर पुनः शिवजी की अर्द्धांगिनी बनती है। इस अभिन्नता में प्रस्फुटित होने वाला दांपत्य प्रेम भी अपूर्व है। राम ने सीता को सन्देशा भेजा—

तत्व प्रेम कर मम अरू तोरा। जानत प्रिया एकु मन मोरा।
सो मनु सदा रहत तेहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं।।[१६]

दांपत्य प्रीति का यह रस वास्तव में अपूर्व ही है।

दंपती में इतना अपूर्व प्रेम और अटूट अभिन्नता होते हुए भी तुलसी ने सिद्धान्त रूप से पत्नी को पति की अनुगामिनी ही माना है।[१७] पति ही उसका सर्वस्व है। अतः पत्नी का एक मात्र धर्म पतिव्रत है उसके लिए एक ही धर्म, एक ही व्रत, एक ही नियम है कि मन वचन और कर्म से पति के चरणों में प्रेम करना।[१८] तुलसी ने इसके साथ ही पति के लिए भी एक पत्नीव्रत को ही आदर्श माना है। उनके राम तो एक पत्नीव्रती थे ही। उन्होंने तो राम राज्य में सभी पुरुषों को एक पत्नी व्रती और स्त्रियों को मन वचन कर्म से पति का हित चाहने वाली कहकर सराहना की है। यद्यपि राजा दशरथ की प्रमुख तीन रानियाँ तथा और भी अनेक रानियाँ थीं, तथापि उन्होंने एक पत्नीव्रत को ही अधिक महत्त्व दिया है। उनके विचार से शिव के अचल धनुष को वही तोड़ सकता था जो शिव की भाँति ही एक पत्नी व्रत का धारण करने वाला हो—

पारवती मन सरिस अचल धनु चालक।
होहिं पुरारि तेउ एक नारिव्रत पालक।[१९]

तुलसी की पारिवारिक योजना में ऐसे ही आदर्श पति पत्नी की कल्पना की गई है। उनके विचार में गूढ़ प्रीति में आबद्ध एक पत्नीव्रत और पतिव्रत का पालन करते हुए दंपती को झूठे मोह में न फँस कर निरन्तर कर्म पथ पर आरूढ़ रहना चाहिए। क्योंकि तुलसी के मत में वह गृही सोच करने योग्य है जो कर्म पथ का त्याग कर देते हैं—

सोचिए गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।

मानस—अयोध्या काण्ड ।।१७२।।

परिवार में पारिवारिक व्यवस्थाओं के लिए पिता या गृहस्वामी की सत्ता को ही प्रमुख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माना गया है। उसका निश्चय ही अन्तिम और अटल मानना होगा। सीता भले ही कुँआरी रह जाती लेकिन जनक का यह प्रण, कि वे धनुष तोड़ने वाले वीर को ही अपनी कन्या देंगे, तोड़ा नहीं जा सकता था।[२०] इसी प्रकार राजा दशरथ राम को युवराज पद दें या वनवास, उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, तथापि पिता का सन्तान के प्रति असीमित दुलार और वात्सल्य ही एक मात्र ध्रुव सत्य है। यहाँ तक कि राजा दशरथ राम के वियोग में अपने प्राण तक त्याग देते हैं और जनक सीता की विदा पर अपने सम्पूर्ण ज्ञान की मर्यादा को भुलाकर नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाने लगते हैं।[२१] इसी प्रकार माता भी परिवार में ममता, प्रेम और वात्सल्य की प्रतीक है, लेकिन पारिवारिक संगठन बनाए रखने के लिए उसे यदि अपनी ममता पर भी कुठाराघात करना पड़े तो तत्पर रहना चाहिए। माता कौशल्या राम को इस लिए वन जाने की आज्ञा दे देती हैं, जिससे परिवार में विघटन उपस्थित न हो और बन्धुओं में विरोध न उत्पन्न हो।[२२]

पुत्र के लिए पिता की आज्ञा पालन करना ही श्रेष्ठ है। माता कौशल्या राम को उपदेश देती हैं—"पितु आयसु सब धरमक टीका" इसी प्रकार गुरु वशिष्ठ भरत से कहते हैं—"वे ही सुख और सुयश के पात्र बन सकते हैं जो उचित-अनुचित का विचार छोड़कर पिता के वचनों का पालन करते हैं।[२३] पुत्र के बारे में तुलसी का यही सिद्धान्त वाक्य प्रतीत होता है। इसको देखकर प्रश्न उठ सकता है कि क्या तुलसी इतने रूढ़िवादी थे कि उचित-अनुचित का विचार छोड़ पुत्र से अन्ध भक्ति की कामना करते थे ? ऐसा नहीं है। तुलसी लोक कवि थे और यहाँ उन्होंने परिवार के साधारण धर्म की बात कही है।[२४] वैसे तो उन्होंने पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले प्रह्लाद, बन्धु के विरोधी विभीषण माता को कटु वचन कहने वाले भरत, गुरु का त्याग करने वाले बालि यहाँ तक कि कन्त (पति) का भी त्याग कर देने वाली ब्रज बालिकाओं का भी समर्थन किया है। इसी प्रकार—

वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।।
ऐसेहु पति कर किये अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।

के आधार पर भी उन्हें पुराण पंथी या पोंगा-पन्थी नहीं माना जा सकता।[२५] क्योंकि उपर्युक्त उक्ति का— आशय केवल इतना ही है कि स्त्रियों को पति की सेवा करनी चाहिए। अन्यथा तुलसी मन्दोदरी को इतना उन्नत तथा प्रशंसनीय रूप न देते जितना कि उन्होंने दिया है। इससे स्पष्ट है कि तुलसी द्वारा कहे गए सिद्धान्त वाक्य साधारणतया मान्य हैं परन्तु किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में व्यक्तिगत रूप से उनके पृथक् उपदेश भी हो सकते हैं।

परिवार में भाई-भाई के सम्बन्ध का तुलसी ने बहुत विस्तार से अत्यधिक भाव-भीना चित्रण किया है। परिवार में प्रगाढ़ अनुराग में आबद्ध भ्राता जब एक साथ बैठकर भोजन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करते हैं तो माताएँ अपूर्व प्रसन्नता की अनुभूति करती हैं।[२६] ऐसे न जाने कितने एक से एक अनुपम चित्र मानस में मिल सकते हैं।

इसी प्रकार कुल कन्या की मर्यादा माता-पिता के अधीन रहते हुए शील, संकोच, लज्जा आदि सद्गुणों की प्राप्ति में है। कन्या परिवार में सभी के लाड़ दुलार और स्नेह की पात्री है। अपने सद्गुणों से वह अपने पितृ कुल और पति-कुल दोनों को गौरव देने वाली हो सकती है।

परिवार में मित्र और सखाओं को विशेष मान देना पारिवारिक सुख शान्ति का विधायक है। कौशल्या राम के मित्रों से हर्षित होकर मिलते हुए "तुम मुझे राम के समान ही प्रिय हो" ऐसा कहते हुए आशीर्वाद देती हैं।[२७] राम भी मुनि वशिष्ठ से अपने मित्रों का परिचय कराते हुए कहते हैं कि "ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं।"[२८] इसी प्रकार सखियों को भी परिवार में विशेष आदर मान देना इष्ट है।

परिवार में दास दासियों और सेवक तथा परिचारिकाओं से भी मित्रवत व्यवहार करना ही इष्ट है क्योंकि वे परिवार के विशिष्ट अंग हैं। यद्यपि शत्रुघ्न मंथरा को मारते हुए और बाल पकड़ कर घसीटते हुए देखे गए हैं—तथापि यह आदर्श नहीं है। वह परिस्थिति विशेष और बालक शत्रुघ्न की उद्दण्डता मात्र है, जिन्हें भरत वर्जित करते हैं। इसके अतिरिक्त सर्वत्र ही दास दासियों को मान दिया गया है। राम वन जा रहे हैं लेकिन अपने दास दासियों का ध्यान नहीं भूलते—गुरु से हाथ जोड़कर उन्हें गुरु को सौंप कर प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी 'सार संभाल' माता-पिता के समान ही करते रहें।[२९] दोहावली के एक दोहे में तो उन्होंने श्रेष्ठ सेवक को स्वामी से भी बड़ा कहा है।[३०]

इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव की तो बात ही क्या तुलसी ने तो परिवार के लालित-पालित पशु-पक्षियों तक में ऐसे स्नेह और सौहार्द पूर्ण व्यवहार की मनोरम कल्पना की है कि पशु-पक्षी तक परिवार के सुख-दुःख के सहयोगी बन गए हैं। जानकी विवाहोपरान्त जनकपुर से विदा होती हैं। सारा रनिवास करुणा से परिपूरित हो रहा है, तभी स्वर्ण पिंजरों में शुक और सारिकाएँ जिन्हें सीता ने पाला और पढ़ाया था, पुकार उठते हैं—"वैदेही कहाँ है ? वैदेही कहाँ है ? कौन है जो विहगों की इस पुकार पर भी धीरज रख सके ? तब अपने सम्पूर्ण ज्ञान और गरिमा को भुलाकर भाई सहित जनक भी रो पड़ते हैं।[३१] कैसा मार्मिक है इस परिवार का स्नेह विस्तार। इसी प्रकार राम के वन चले जाने पर माता कौशल्या राम और लक्ष्मण के घोड़ों के लिए विशेष चिंतित हो उठती हैं—

आलि। हौं इन्हहिं बुझावों कैसे।

मंत्री सुमन्त्र राम, लक्ष्मण और सीता जी को वन में छोड़कर लौटना चाहते हैं। रथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हांक दिया गया है, लेकिन घोड़े हैं कि राम को देख हिनहिनाने लगते हैं।[३२] ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे राम को छोड़ लौटना ही नहीं चाहते हैं।

इस प्रकार परिवार के समस्त सिद्धान्तों के तन्तु अमर अनुराग से जुड़े हुए हैं। जीवन का वह सब —जो सरस, सुन्दर और मंगलकारक है, तुलसी के पारिवारिक जीवन दर्शन में ही उपलब्ध हो जाता है। तुलसी ने सरस और मार्मिक चित्रणों द्वारा पारिवारिक जीवन-सम्बन्धी विचारों की ऐसी सरल और रस पूर्ण व्याख्या की है कि वे कोरे सिद्धान्त न रहकर भारतीय पारिवारिक जीवन के अभिन्न अंग बन गए हैं।

यही कारण है कि आज भी विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले लोक गीतों में नूतन परिवार की कल्पना करते हुए प्रत्येक कन्या जैसे यही कामना करती है कि उसका वर राम के सदृश, ससुर राजा दशरथ के समान और सास कौशल्या जैसी हो तथा छोटे देवर लक्ष्मण और भरत के समान हों। साथ ही रहने के लिए अयोध्या जैसी नगरी हो, जहाँ पावन सरयू बहती हो।[३३] इसी प्रकार भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित प्रत्येक युवक की यही आकांक्षा मन में होती है कि उसे सती साध्वी आज्ञानुवर्तिनी सीता जैसी पत्नी मिले, प्रत्येक सास जीवन की मर्यादा से परिपूर्ण संकोचशील और गृह कार्य में निपुण सुशीला पुत्र-वधू पाने की मनोकामना करती है। प्रत्येक पिता राम के समान आज्ञाकारी पुत्र तथा कुलकानि पर मर मिटने वाली, अपने सत्कार्यों से पितृकुल और पतिकुल —दोनों का गौरव बढ़ाने वाली कन्या की अभिलाषा करता है। यही तुलसी का वह पारिवारिक दर्शन है, जो भारतीय जनता की रग-रग में समाया हुआ है।

इतना ही नहीं, तुलसी का पारिवारिक जीवन दर्शन भारतीय धर्म, संस्कृति, परम्पराओं, विभिन्न संस्कारों, व्रत एवं उपवासों की भव्य भावनाओं का संरक्षण, संवर्धन और विश्लेषण भी करता चलता है। धर्म, संस्कृति और परम्पराओं और परिवार में होने वाले विभिन्न संस्कारों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। धर्म हमारी गौरवमयी संस्कृति का आधार है। यही अमर संस्कृति समाज को जीवन दान देने वाली और महती परम्पराओं की जीवनी शक्ति भी है।

परिवार में होने वाले विभिन्न संस्कारों का पारिवारिक जीवन में अपना अलग ही महत्त्व होता है। तर्क की शिला पर बौद्धिक दृष्टि से ये भले ही महत्त्व हीन हों, किन्तु भावनात्मक दृष्टि से इनका बहुत मूल्य है।[३४] यही कारण है कि भारतीय परिवारों में अनेक संस्कार, विवाह-जन्म आदि ज्यों-के-त्यों चले आ रहे हैं। अतः तुलसी ने सभी संस्कारों को अपने साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। सिद्धान्त रूप में—"बड़ी प्रतीति गठबन्ध ते बड़ो जोग ते छेम।" (दोहावली ४७३) मानते हुए भी तुलसी ने विवाह संस्कार को बड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करते हैं तो माताएँ अपूर्व प्रसन्नता की अनुभूति करती हैं।[२६] ऐसे न जाने कितने एक से एक अनुपम चित्र मानस में मिल सकते हैं।

इसी प्रकार कुल कन्या की मर्यादा माता-पिता के अधीन रहते हुए शील, संकोच, लज्जा आदि सद्गुणों की प्राप्ति में है। कन्या परिवार में सभी के लाड़ दुलार और स्नेह की पात्री है। अपने सद्गुणों से वह अपने पितृ कुल और पति-कुल दोनों को गौरव देने वाली हो सकती है।

परिवार में मित्र और सखाओं को विशेष मान देना पारिवारिक सुख शान्ति का विधायक है। कौशल्या राम के मित्रों से हर्षित होकर मिलते हुए "तुम मुझे राम के समान ही प्रिय हो" ऐसा कहते हुए आशीर्वाद देती हैं।[२७] राम भी मुनि वशिष्ठ से अपने मित्रों का परिचय कराते हुए कहते हैं कि "ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं।"[२८] इसी प्रकार सखियों को भी परिवार में विशेष आदर मान देना इष्ट है।

परिवार में दास दासियों और सेवक तथा परिचारिकाओं से भी मित्रवत व्यवहार करना ही इष्ट है क्योंकि वे परिवार के विशिष्ट अंग हैं। यद्यपि शत्रुघ्न मंथरा को मारते हुए और बाल पकड़ कर घसीटते हुए देखे गए हैं—तथापि यह आदर्श नहीं है। वह परिस्थिति विशेष और बालक शत्रुघ्न की उद्दण्डता मात्र है, जिन्हें भरत वर्जित करते हैं। इसके अतिरिक्त सर्वत्र ही दास दासियों को मान दिया गया है। राम वन जा रहे हैं लेकिन अपने दास दासियों का ध्यान नहीं भूलते—गुरु से हाथ जोड़कर उन्हें गुरु को सौंप कर प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी 'सार संभाल' माता-पिता के समान ही करते रहें।[२९] दोहावली के एक दोहे में तो उन्होंने श्रेष्ठ सेवक को स्वामी से भी बड़ा कहा है।[३०]

इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव की तो बात ही क्या तुलसी ने तो परिवार के लालित-पालित पशु-पक्षियों तक में ऐसे स्नेह और सौहार्द पूर्ण व्यवहार की मनोरम कल्पना की है कि पशु-पक्षी तक परिवार के सुख-दुःख के सहयोगी बन गए हैं। जानकी विवाहोपरान्त जनकपुर से विदा होती हैं। सारा रनिवास करुणा से परिपूरित हो रहा है, तभी स्वर्ण पिंजरों में शुक और सारिकाएँ जिन्हें सीता ने पाला और पढ़ाया था, पुकार उठते हैं—"वैदेही कहाँ है ? वैदेही कहाँ है ? कौन है जो विहगों की इस पुकार पर भी धीरज रख सके ? तब अपने सम्पूर्ण ज्ञान और गरिमा को भुलाकर भाई सहित जनक भी रो पड़ते हैं।[३१] कैसा मार्मिक है इस परिवार का स्नेह विस्तार। इसी प्रकार राम के वन चले जाने पर माता कौशल्या राम और लक्ष्मण के घोड़ों के लिए विशेष चिंतित हो उठती हैं—

आलि। हौं इन्हहिं बुझावों कैसे।

मंत्री सुमन्त्र राम, लक्ष्मण और सीता जी को वन में छोड़कर लौटना चाहते हैं। रथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हांक दिया गया है, लेकिन घोड़े हैं कि राम को देख हिनहिनाने लगते हैं।[३२] ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे राम को छोड़ लौटना ही नहीं चाहते हैं।

इस प्रकार परिवार के समस्त सिद्धान्तों के तन्तु अमर अनुराग से जुड़े हुए हैं। जीवन का वह सब —जो सरस, सुन्दर और मंगलकारक है, तुलसी के पारिवारिक जीवन दर्शन में ही उपलब्ध हो जाता है। तुलसी ने सरस और मार्मिक चित्रणों द्वारा पारिवारिक जीवन-सम्बन्धी विचारों की ऐसी सरल और रस पूर्ण व्याख्या की है कि वे कोरे सिद्धान्त न रहकर भारतीय पारिवारिक जीवन के अभिन्न अंग बन गए हैं।

यही कारण है कि आज भी विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले लोक गीतों में नूतन परिवार की कल्पना करते हुए प्रत्येक कन्या जैसे यही कामना करती है कि उसका वर राम के सदृश, ससुर राजा दशरथ के समान और सास कौशल्या जैसी हो तथा छोटे देवर लक्ष्मण और भरत के समान हों। साथ ही रहने के लिए अयोध्या जैसी नगरी हो, जहाँ पावन सरयू बहती हो।[३३] इसी प्रकार भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित प्रत्येक युवक की यही आकांक्षा मन में होती है कि उसे सती साध्वी आज्ञानुवर्तिनी सीता जैसी पत्नी मिले, प्रत्येक सास जीवन की मर्यादा से परिपूर्ण संकोचशील और गृह कार्य में निपुण सुशीला पुत्र-वधू पाने की मनोकामना करती है। प्रत्येक पिता राम के समान आज्ञाकारी पुत्र तथा कुलकानि पर मर मिटने वाली, अपने सत्कार्यों से पितृकुल और पतिकुल —दोनों का गौरव बढ़ाने वाली कन्या की अभिलाषा करता है। यही तुलसी का वह पारिवारिक दर्शन है, जो भारतीय जनता की रग-रग में समाया हुआ है।

इतना ही नहीं, तुलसी का पारिवारिक जीवन दर्शन भारतीय धर्म, संस्कृति, परम्पराओं, विभिन्न संस्कारों, व्रत एवं उपवासों की भव्य भावनाओं का संरक्षण, संवर्धन और विश्लेषण भी करता चलता है। धर्म, संस्कृति और परम्पराओं और परिवार में होने वाले विभिन्न संस्कारों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। धर्म हमारी गौरवमयी संस्कृति का आधार है। यही अमर संस्कृति समाज को जीवन दान देने वाली और महती परम्पराओं की जीवनी शक्ति भी है।

परिवार में होने वाले विभिन्न संस्कारों का पारिवारिक जीवन में अपना अलग ही महत्त्व होता है। तर्क की शिला पर बौद्धिक दृष्टि से ये भले ही महत्त्व हीन हों, किन्तु भावनात्मक दृष्टि से इनका बहुत मूल्य है।[३४] यही कारण है कि भारतीय परिवारों में अनेक संस्कार, विवाह-जन्म आदि ज्यों-के-त्यों चले आ रहे हैं। अतः तुलसी ने सभी संस्कारों को अपने साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। सिद्धान्त रूप में—"बड़ी प्रतीति गठबन्ध ते बड़ो जोग ते छेम।" (दोहावली ४७३) मानते हुए भी तुलसी ने विवाह संस्कार को बड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रमुख स्थान दिया है तथा मानस के अतिरिक्त जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामलला नहछू आदि में इनका विस्तृत वर्णन किया गया है।

वास्तव में ये संस्कार भावनात्मक दृष्टिकोण के अतिरिक्त सामाजिक मान्यता और मर्यादा की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनिवार्य रूप से किये जाने वाले संस्कार ही हमारे जीवन की परम्पराओं का निर्माण करते हैं।

धर्म को परिवार से पृथक् नहीं किया जा सकता। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का अपना कर्तव्य ही उसका श्रेष्ठतम धर्म है। इस पारिवारिक धर्म की व्याख्या तुलसी ने सिद्धान्त वाक्य कहकर नहीं की है अपितु परिवार के विभिन्न सदस्य अपने व्यवहार में जिस नित्य निष्ठा पर आरूढ़ रहते हुए जिन पावन सदाचारों का पालन करते हैं और पावन मन के जिन सूक्ष्म नैतिक मूल्यों का उद्घाटन करते हैं, उसी में की है।

राम जनक की वाटिका में पूजा के पुष्पों का चयन करने के लिए जाते हैं। उधर गौरी-पूजन हेतु सखियों के साथ सीता भी वाटिका में आती हैं। राम सीता को देखते हैं और उनका मन सम्भवतः आसक्त हो उठता है, इसी क्षोभ से क्षुब्ध होते हुए और अपने मन की नैतिक दृढ़ता का प्रमाण देते हुए यह कहते हैं—

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपन्थ पग धरहि न काऊ।
मोहि अतिसय प्रतीति मन बैरी। जेहि सपनेहुं पर नारि न हेरी।।

कैसे दृढ़ हैं ये मन के नैतिक बन्धन। रघुकुल की वंश-मर्यादा और अपने हृदय पर अचल आस्था।

इसी प्रकार जब कैकेयी राजा दशरथ पर अपने दिए हुए वचनों को न देने के कारण असत्य भाषी होने का लांछन लगाती है तो दशरथ असत्य को अधर्म का मूल[३५] घोषित करते हुए सत्य को समस्त पुण्यों की जड़ बताते हैं—

सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। वेद पुरान विदित मनु गाए।

मानस—अयोध्या काण्ड ।।२७।।३

और मर्यादा की भी उद्घोषणा करते हैं—

रघुकुल रीति सदा चली आई। प्रान जाहुं पर वचन न जाई।।

दशरथ का यह कथन मात्र नहीं था वरन् इस पर वे आचरण भी करते हैं। सत्य धर्म की रक्षा के लिए वे राम को त्याग देते हैं भले ही फिर राम के वियोग में उन्हें अपने प्राणों का भी विसर्जन क्यों न करना पड़ा हो—

तुलसी जान्यो दसरथहि धरमु न सत्य समान।
रामु तजे जेहि लगि बिनु राम परिहरे प्रान।।

दोहावली ।।२१६।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राम परिवार की ऐसी ही मर्यादाएँ, नीतियाँ और मान्यताएँ आज भी किसी न किसी रूप में भारतीय परिवारों की मूल्यवान थाती बनी प्रतीत होती हैं। इस प्रकार तुलसी ने अपने पारिवारिक दर्शन के माध्यम से परिवार में उस मर्यादा, त्याग, नीति, धर्म, ज्ञान और शील की भावनाओं का संचार किया जो आज हमारे गौरव का विषय हैं।

ये ही वे पूत भावनाएँ हैं, जो मानव हृदय में प्रेरणा का अमर स्रोत बन जाती हैं, जिनसे प्रेरित होकर वह नीति एवं मर्यादा-गौरव के वास्तविक महत्त्व को पहचान उनके नैतिक मूल्यों को संस्कार रूप में आत्मसात् कर लेती है। तब उसके सब प्रयत्न मर्यादा, धर्म और नीति की रक्षा के लिए ही होते हैं, जिसके लिए वह अपने बड़े से बड़े सुख का उत्सर्ग करने के लिए भी सहर्ष तत्पर हो जाता है, यही स्वार्थ की संकुचित सीमाओं को छोड़ परार्थ की ओर उन्मुख होना है। जब मनुष्य दूसरों के सुख एवं कल्याण के लिए कष्ट सह कर त्याग और सेवा में आनन्द की अनुभूति करता है, वास्तव में तभी वह अपने 'स्व' की परिधि से ऊपर उठकर क्रमशः परिवार-समाज-ग्राम-नगर-देश और राष्ट्र के उच्चतम स्वर्णिम सोपानों पर आरूढ़ होता हुआ 'वसुधैव कुटुम्बकम' की प्रांजल भावना पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए उद्यत हो उठता है।

संक्षेप में, तुलसी की विचारधारा में अनुस्यूत परिवार इस धरती का वह स्वर्ग है जिसके धवल देव-गृह सहयोग और संगठन पारस्परिक प्रीति और विश्वास की आधारशिला पर अवलम्बित हैं। जिसके कल्पवृक्ष से माता की ममता, पिता के वात्सल्य, अग्रज के पुनीत स्नेह, अनुज के अमर अनुराग, सेवक की भक्ति और स्वामी के औदार्य, सखा के सौहार्द तथा गुरुजनों के आशीर्वाद के सुमन झर-झर कर सम्पूर्ण वातावरण को सुरभित करते हों। जहाँ पति-पत्नी इन्द्र और इन्द्राणी के समान राज्य करते हुए समस्त क्लेशों को भूल कर्तव्यों, मान्य मर्यादाओं और अलौकिक शील को धारण कर अपरिमित आनन्द और अक्षुण्ण सुखों का उपभोग करते हों, यही है परिवार की वह आदर्श भाव-भूमि जिस पर तुलसी ने धरती के स्वर्ग अर्थात् राम-परिवार का निर्माण किया है।

(ख) परिवार में नारी का स्थान—तुलसी की पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वे पितृ सत्ता प्रधान परिवार-प्रणाली के समर्थक थे, परन्तु फिर भी उन्होंने नारी को उसके गरिमावान स्वरूपों (माता, गृहिणी, पुत्री आदि) में महती प्रतिष्ठा से परिपूरित स्थान की अधिकारिणी बनाया है।

(i) माता का स्थान—तुलसी साहित्य में मातृरूप में नारी का स्थान अनेक स्थलों पर सर्वोपरि प्रतीत होता है। यद्यपि परिवार की बाह्य व्यवस्थाओं के लिए गृहस्वामी का मत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रमुख स्थान दिया है तथा मानस के अतिरिक्त जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामलला नहछू आदि में इनका विस्तृत वर्णन किया गया है।

वास्तव में ये संस्कार भावनात्मक दृष्टिकोण के अतिरिक्त सामाजिक मान्यता और मर्यादा की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनिवार्य रूप से किये जाने वाले संस्कार ही हमारे जीवन की परम्पराओं का निर्माण करते हैं।

धर्म को परिवार से पृथक् नहीं किया जा सकता। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का अपना कर्तव्य ही उसका श्रेष्ठतम धर्म है। इस पारिवारिक धर्म की व्याख्या तुलसी ने सिद्धान्त वाक्य कहकर नहीं की है अपितु परिवार के विभिन्न सदस्य अपने व्यवहार में जिस नित्य निष्ठा पर आरूढ़ रहते हुए जिन पावन सदाचारों का पालन करते हैं और पावन मन के जिन सूक्ष्म नैतिक मूल्यों का उद्घाटन करते हैं, उसी में की है।

राम जनक की वाटिका में पूजा के पुष्पों का चयन करने के लिए जाते हैं। उधर गौरी-पूजन हेतु सखियों के साथ सीता भी वाटिका में आती हैं। राम सीता को देखते हैं और उनका मन सम्भवतः आसक्त हो उठता है, इसी क्षोभ से क्षुब्ध होते हुए और अपने मन की नैतिक दृढ़ता का प्रमाण देते हुए यह कहते हैं—

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपन्थ पग धरहि न काऊ।
मोहि अतिसय प्रतीति मन बैरी। जेहि सपनेहुं पर नारि न हेरी।।

कैसे दृढ़ हैं ये मन के नैतिक बन्धन। रघुकुल की वंश-मर्यादा और अपने हृदय पर अचल आस्था।

इसी प्रकार जब कैकेयी राजा दशरथ पर अपने दिए हुए वचनों को न देने के कारण असत्य भाषी होने का लांछन लगाती है तो दशरथ असत्य को अधर्म का मूल[३५] घोषित करते हुए सत्य को समस्त पुण्यों की जड़ बताते हैं—

सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। वेद पुरान विदित मनु गाए।

मानस—अयोध्या काण्ड ।।२७।।३

और मर्यादा की भी उद्घोषणा करते हैं—

रघुकुल रीति सदा चली आई। प्रान जाहुं पर वचन न जाई।।

दशरथ का यह कथन मात्र नहीं था वरन् इस पर वे आचरण भी करते हैं। सत्य धर्म की रक्षा के लिए वे राम को त्याग देते हैं भले ही फिर राम के वियोग में उन्हें अपने प्राणों का भी विसर्जन क्यों न करना पड़ा हो—

तुलसी जान्यो दसरथहि धरमु न सत्य समान।
रामु तजे जेहि लगि बिनु राम परिहरे प्रान।।

दोहावली ।।२१६।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राम परिवार की ऐसी ही मर्यादाएँ, नीतियाँ और मान्यताएँ आज भी किसी न किसी रूप में भारतीय परिवारों की मूल्यवान थाती बनी प्रतीत होती हैं। इस प्रकार तुलसी ने अपने पारिवारिक दर्शन के माध्यम से परिवार में उस मर्यादा, त्याग, नीति, धर्म, ज्ञान और शील की भावनाओं का संचार किया जो आज हमारे गौरव का विषय हैं।

ये ही वे पूत भावनाएँ हैं, जो मानव हृदय में प्रेरणा का अमर स्रोत बन जाती हैं, जिनसे प्रेरित होकर वह नीति एवं मर्यादा-गौरव के वास्तविक महत्त्व को पहचान उनके नैतिक मूल्यों को संस्कार रूप में आत्मसात् कर लेती है। तब उसके सब प्रयत्न मर्यादा, धर्म और नीति की रक्षा के लिए ही होते हैं, जिसके लिए वह अपने बड़े से बड़े सुख का उत्सर्ग करने के लिए भी सहर्ष तत्पर हो जाता है, यही स्वार्थ की संकुचित सीमाओं को छोड़ परार्थ की ओर उन्मुख होना है। जब मनुष्य दूसरों के सुख एवं कल्याण के लिए कष्ट सह कर त्याग और सेवा में आनन्द की अनुभूति करता है, वास्तव में तभी वह अपने 'स्व' की परिधि से ऊपर उठकर क्रमशः परिवार-समाज-ग्राम-नगर-देश और राष्ट्र के उच्चतम स्वर्णिम सोपानों पर आरूढ़ होता हुआ 'वसुधैव कुटुम्बकम' की प्रांजल भावना पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए उद्यत हो उठता है।

संक्षेप में, तुलसी की विचारधारा में अनुस्यूत परिवार इस धरती का वह स्वर्ग है जिसके धवल देव-गृह सहयोग और संगठन पारस्परिक प्रीति और विश्वास की आधारशिला पर अवलम्बित हैं। जिसके कल्पवृक्ष से माता की ममता, पिता के वात्सल्य, अग्रज के पुनीत स्नेह, अनुज के अमर अनुराग, सेवक की भक्ति और स्वामी के औदार्य, सखा के सौहार्द तथा गुरुजनों के आशीर्वाद के सुमन झर-झर कर सम्पूर्ण वातावरण को सुरभित करते हों। जहाँ पति-पत्नी इन्द्र और इन्द्राणी के समान राज्य करते हुए समस्त क्लेशों को भूल कर्तव्यों, मान्य मर्यादाओं और अलौकिक शील को धारण कर अपरिमित आनन्द और अक्षुण्ण सुखों का उपभोग करते हों, यही है परिवार की वह आदर्श भाव-भूमि जिस पर तुलसी ने धरती के स्वर्ग अर्थात् राम-परिवार का निर्माण किया है।

(ख) परिवार में नारी का स्थान—तुलसी की पारिवारिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वे पितृ सत्ता प्रधान परिवार-प्रणाली के समर्थक थे, परन्तु फिर भी उन्होंने नारी को उसके गरिमावान स्वरूपों (माता, गृहिणी, पुत्री आदि) में महती प्रतिष्ठा से परिपूरित स्थान की अधिकारिणी बनाया है।

(i) माता का स्थान—तुलसी साहित्य में मातृरूप में नारी का स्थान अनेक स्थलों पर सर्वोपरि प्रतीत होता है। यद्यपि परिवार की बाह्य व्यवस्थाओं के लिए गृहस्वामी का मत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

या आज्ञा ही मान्य होती है क्योंकि गृहस्वामिनी भी उसी की आज्ञानुवर्तिनी है, तथापि घर की सम्पूर्ण आन्तरिक व्यवस्था और अपने पुत्र अथवा पुत्रों के लिए उसी की आज्ञा अधिक मूल्यवान् है। अतः पितृत्व के स्थान पर मातृत्व अधिक उन्नत स्थान पर प्रतिष्ठित है।

राजा दशरथ ने राम को चौदह वर्ष का वनवास दे दिया था परन्तु यह आवश्यक नहीं था कि माता कौशल्या गृहस्वामी के आदेशानुसार अपने पुत्र को वन जाने की आज्ञा दे ही देतीं, राम यह जानते हैं तभी उन्हें यह कहना पड़ा कि पिता की आज्ञा के साथ-साथ वन में मेरा भी बड़ा काम बनने वाला है—

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहं सब भांति मोर बड़ काजू।।
आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुदमंगल कानन जाता।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।५२।।३

माता कौशल्या भी यह भली प्रकार जानती थी कि मैं अपने पुत्र को वन जाने से रोक सकती हूँ[३६] किन्तु वे भाइयों में परस्पर विरोध के भय से, स्वयं ही विचार में पड़ जाती हैं, और 'धरम स्नेह उभयं मति घेरी' परन्तु फिर भी वे अपने अधिकार का दर्पपूर्ण उल्लेख करती हुई कहती हैं—

जौं केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।५५।।१

स्पष्ट है कि माता निश्चय ही पिता से बड़ी है। यदि कौशल्या हठ करतीं तो कौन था जो उनका विरोध कर सकता। किन्तु विवेकमयी कौशल्या परिस्थिति को भाँप कर और कैकेयी को अपने समान ही राम की माता समझते हुए एवं भरत को राम के समान अपना पुत्र मानते हुए पुनः कहती है—

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।

वही

इससे स्पष्ट है कि सन्तान के लिए केवल पिता की आज्ञा का कोई महत्त्व नहीं है। यदि पिता कोई अनुचित आज्ञा दे दे तो माँ का विरोध मान्य समझा जाता है। साथ ही साथ किसी कार्य को करने के लिए माता स्वतन्त्र रूप से आज्ञा दे सकती है।

लक्ष्मण राम के साथ वन जाना चाहते हैं तब राम उन्हें माता से ही आज्ञा लेने के लिए भेजते हैं पिता से नहीं।[३७] लेकिन लक्ष्मण भयभीत हैं कि माता वन जाने की अनुमति देंगी या नहीं, ऐसे उग्र स्वभाव के लक्ष्मण जो पिता को कटु वचन तक कह सकते हैं[३८] माता के सम्मुख निरीह बने हुए हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मांगत बिदा सभय सकुचाही। जाइ संग विधि कहिहि कि नाहि ।।

वही ।।७२।। ४।।

जबकि वे पिता की आज्ञा की कोई आवश्यकता ही नहीं समझते। इस दृष्टि से निश्चय ही मातृत्व सर्वोपरि है। इसके अतिरिक्त तुलसी ने अनेक स्थलों पर माता-पिता और गुरु की आज्ञा को समान रूप से ही शिरोधार्य करने का आदेश दिया है।[३६] भरत को अपनी चरण पादुकाएँ देकर लौटाते समय भी राम भरत को यही उपदेश देते हैं कि वे गुरु और माताओं की आज्ञा से ही समस्त कार्य करते रहें।[३७]

कन्याओं के लिए तो माता का अंकुश ही अधिक मान्य है। गौरी पूजन के हेतु आई हुई सीता को जब पुष्प वाटिका में कुछ विलम्ब हो जाता है तो—'भयउ विलंबु मातु भय मानी' से स्पष्ट है कि यद्यपि माता सन्तति के लिए अद्वितीय स्नेह और दुलार का आधार है तथापि माता का अधिकारपूर्ण अंकुश भी उसके लिए सर्वाधिक मान्य है। कुछ बातों में माता को पिता से बहुत अधिक मान्यता प्रदान की गयी है। पार्वती की तपस्या से प्रभावित शिव उनसे विवाह करना चाहते हैं किन्तु वे स्वयं को माता-पिता के अधीन कहकर घर लौट जाती हैं। अब विवाह का प्रस्ताव ऋषि पत्नी अरुन्धती के द्वारा पार्वती की माता मैना के पास ही भिजवाया जाता है, राजा हिमवान के पास नहीं। निश्चय ही पुत्री का विवाह, माता की सम्मति से ही सम्भव माना गया है—

अरुंधती मिलि मैनहिं बात चलाइहि।
नारि कुसल इहि काजु, काजु बनि आइहि।।

पार्वतीमंगल ।।८८।।

यहाँ स्पष्ट रूप से सन्तति के जीवन के महत्त्वपूर्ण और उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों में माता की स्थिति सर्वोपरि उद्घोषित हुई है। नारद मुनि की अटपटी भविष्यवाणी 'पार्वती को बावला वर मिलेगा' को सुनकर मैना हिमवान के सम्मुख दर्पपूर्ण वाणी में अपना निश्चय व्यक्त करती है कि वह अपनी प्राणों से भी प्रिय पार्वती की ऐसे वर से नहीं ब्याहेगी। भले ही वह कुँआरी रह जाए किन्तु विवाह सब प्रकार से कन्या के अनुरूप वर से ही होगा—

जो घरु बरु कुलु होई अनूपा। करिअ विवाहु सुता अनुरूपा।
न त कन्या वरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपियारी।।

मानस —बालकाण्ड।७०।२

इसी प्रकार अमंगल वेष धारी वर की बारात आती हुई सुनकर मैना रोष पूर्वक विधाता और नारद की भर्त्सना करती हुई स्नेह पूर्वक पार्वती को गोद में बिठाकर अश्रु बहाती हुई दृढ़ निश्चय व्यक्त करती है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

या आज्ञा ही मान्य होती है क्योंकि गृहस्वामिनी भी उसी की आज्ञानुवर्तिनी है, तथापि घर की सम्पूर्ण आन्तरिक व्यवस्था और अपने पुत्र अथवा पुत्रों के लिए उसी की आज्ञा अधिक मूल्यवान् है। अतः पितृत्व के स्थान पर मातृत्व अधिक उन्नत स्थान पर प्रतिष्ठित है।

राजा दशरथ ने राम को चौदह वर्ष का वनवास दे दिया था परन्तु यह आवश्यक नहीं था कि माता कौशल्या गृहस्वामी के आदेशानुसार अपने पुत्र को वन जाने की आज्ञा दे ही देतीं, राम यह जानते हैं तभी उन्हें यह कहना पड़ा कि पिता की आज्ञा के साथ-साथ वन में मेरा भी बड़ा काम बनने वाला है—

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहं सब भांति मोर बड़ काजू।।
आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुदमंगल कानन जाता।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।५२।।३

माता कौशल्या भी यह भली प्रकार जानती थी कि मैं अपने पुत्र को वन जाने से रोक सकती हूँ[३५] किन्तु वे भाइयों में परस्पर विरोध के भय से, स्वयं ही विचार में पड़ जाती हैं, और 'धरम स्नेह उभयं मति घेरी' परन्तु फिर भी वे अपने अधिकार का दर्पपूर्ण उल्लेख करती हुई कहती हैं—

जौं केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।५५।।१

स्पष्ट है कि माता निश्चय ही पिता से बड़ी है। यदि कौशल्या हठ करतीं तो कौन था जो उनका विरोध कर सकता। किन्तु विवेकमयी कौशल्या परिस्थिति को भाँप कर और कैकेयी को अपने समान ही राम की माता समझते हुए एवं भरत को राम के समान अपना पुत्र मानते हुए पुनः कहती है—

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।

वही

इससे स्पष्ट है कि सन्तान के लिए केवल पिता की आज्ञा का कोई महत्त्व नहीं है। यदि पिता कोई अनुचित आज्ञा दे दे तो माँ का विरोध मान्य समझा जाता है। साथ ही साथ किसी कार्य को करने के लिए माता स्वतन्त्र रूप से आज्ञा दे सकती है।

लक्ष्मण राम के साथ वन जाना चाहते हैं तब राम उन्हें माता से ही आज्ञा लेने के लिए भेजते हैं पिता से नहीं।[३७] लेकिन लक्ष्मण भयभीत हैं कि माता वन जाने की अनुमति देंगी या नहीं, ऐसे उग्र स्वभाव के लक्ष्मण जो पिता को कटु वचन तक कह सकते हैं[३८] माता के सम्मुख निरीह बने हुए हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मांगत बिदा सभय सकुचाही। जाइ संग विधि कहिहि कि नाहि ।।

वही ।।७२।। ४।।

जबकि वे पिता की आज्ञा की कोई आवश्यकता ही नहीं समझते। इस दृष्टि से निश्चय ही मातृत्व सर्वोपरि है। इसके अतिरिक्त तुलसी ने अनेक स्थलों पर माता-पिता और गुरु की आज्ञा को समान रूप से ही शिरोधार्य करने का आदेश दिया है।[३६] भरत को अपनी चरण पादुकाएँ देकर लौटाते समय भी राम भरत को यही उपदेश देते हैं कि वे गुरु और माताओं की आज्ञा से ही समस्त कार्य करते रहें।[३७]

कन्याओं के लिए तो माता का अंकुश ही अधिक मान्य है। गौरी पूजन के हेतु आई हुई सीता को जब पुष्प वाटिका में कुछ विलम्ब हो जाता है तो—'भयउ विलंबु मातु भय मानी' से स्पष्ट है कि यद्यपि माता सन्तति के लिए अद्वितीय स्नेह और दुलार का आधार है तथापि माता का अधिकारपूर्ण अंकुश भी उसके लिए सर्वाधिक मान्य है। कुछ बातों में माता को पिता से बहुत अधिक मान्यता प्रदान की गयी है। पार्वती की तपस्या से प्रभावित शिव उनसे विवाह करना चाहते हैं किन्तु वे स्वयं को माता-पिता के अधीन कहकर घर लौट जाती हैं। अब विवाह का प्रस्ताव ऋषि पत्नी अरुन्धती के द्वारा पार्वती की माता मैना के पास ही भिजवाया जाता है, राजा हिमवान के पास नहीं। निश्चय ही पुत्री का विवाह, माता की सम्मति से ही सम्भव माना गया है—

अरुंधती मिलि मैनहिं बात चलाइहि।
नारि कुसल इहि काजु, काजु बनि आइहि।।

पार्वतीमंगल ।।८८।।

यहाँ स्पष्ट रूप से सन्तति के जीवन के महत्त्वपूर्ण और उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों में माता की स्थिति सर्वोपरि उद्घोषित हुई है। नारद मुनि की अटपटी भविष्यवाणी 'पार्वती को बावला वर मिलेगा' को सुनकर मैना हिमवान के सम्मुख दर्पपूर्ण वाणी में अपना निश्चय व्यक्त करती है कि वह अपनी प्राणों से भी प्रिय पार्वती की ऐसे वर से नहीं ब्याहेगी। भले ही वह कुँआरी रह जाए किन्तु विवाह सब प्रकार से कन्या के अनुरूप वर से ही होगा—

जो घरु बरु कुलु होई अनूपा। करिअ विवाहु सुता अनुरूपा।
न त कन्या वरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपियारी।।

मानस —बालकाण्ड।७०।२

इसी प्रकार अमंगल वेष धारी वर की बारात आती हुई सुनकर मैना रोष पूर्वक विधाता और नारद की भर्त्सना करती हुई स्नेह पूर्वक पार्वती को गोद में बिठाकर अश्रु बहाती हुई दृढ़ निश्चय व्यक्त करती है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम्ह सहित गिरि तें गिरौ पावक जरौ जलनिधि महुँ परौ।
घरु जाऊ अपजसु होउ जग जीवत विवाहु न हौं करौं।।
वही।।६५।। छंद

इसे सुनकर पिता हिमवान स्वयं कुछ न कहकर विवश से नारद मुनि और सप्त ऋषियों को लेकर घर जाते हैं क्योंकि सम्भवतः मैना के अटल वचनों और उसके अधिकार को वे जानते थे। पार्वती के पूर्व जन्म की सम्पूर्ण कथा जानकर ही मैना इस विवाह के लिए सहमत हुई। पार्वती मंगल में तो शिव को मंगल वेष धारण करके करोड़ों कामदेवों के समान मनोहर रूप भी दिखलाना पड़ा। इस प्रकार परिवार में माता की स्थिति महत्त्वपूर्ण और गरिमामय है।[४१]

भरत द्वारा माता कैकेयी के प्रति कहे गए कटु वचन भी उनकी मनःस्थिति का परिचय देते हैं माता की स्थिति की हीनता का नहीं। नारद मुनि तो मनःस्थिति विशेष के वशीभूत होकर भगवान विष्णु तक को ईर्ष्यालु, कपटी, धोखेबाज, मतलबी, ठग आदि कहकर शाप भी दे डालते हैं। फिर भरत तो माता के प्रति दुर्वचनों के लिए—

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली।"
और *"सपनेहुँ दोषक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू।*
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउं जायं जननि कहि काकू।।
मानस —अयोध्या काण्ड ।।२६०।।३

आदि पश्चातापपूर्ण उक्तियों से अपने दोष का परिहार भी कर लेते हैं। राम भी—

"दोसू देहिं जननिहि जड़ तेइ। जिन्ह गुर साधु समा नहि सेइ।।" कहकर परिवार में माता की उन्नत स्थिति और सम्माननीय, पूजनीय व श्रेष्ठतम अवस्था का ही परिचय देते हैं। माता की आज्ञा सर्वत्र ही मान्य है और तुलसी साहित्य में प्रत्येक अवस्था में माता की सम्मति का विशेष ध्यान रखा जाता है। आर्य परिवार में ही नहीं राक्षस परिवार में भी माता माननीय है। गीतावली में रावण द्वारा अपमानित विभीषण अपनी माता के पास जाकर राम की शरण में जाने की अनुमति प्राप्त करने के उपरान्त ही वहाँ जाते हैं।[४२] इसके अतिरिक्त 'जननी सम जानहु पर नारी' की कवि उक्ति में भी जननीत्व की महत्ता, पावनता और गरिमा की ओर ही संकेत है। अतः तुलसी ने सर्वत्र ही परिवार में माता को महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी माना है।

(ii) परिवार में कुलवधू और पत्नी का स्थान—माता के समान ही कुलवधू और पत्नी रूप में भी नारी महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी मानी गई है। पुत्रवधू रूप में नारी उसी सम्माननीय स्थान पर स्थित है जिस स्थान पर वर रूप में पुरुष। जिस प्रकार वर के आगमन पर उसके स्वागत में आरता, परछन, न्यौछावर आदि होता है ठीक उसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुलवधू के आगमन पर उसका स्वागत और आदरमान होता है। वर की माताएँ पुत्रों सहित पुत्र वधुओं को सिंहासनों पर बिठाकर स्वयं उनके चरण धोतीं और वैदिक विधि से धूप, दीप, नैवेद्य से उनका पूजन और आरता आदि करती हैं।[43]

पुत्र-वधू भी कन्या के समान ही सास-ससुर के स्नेह की अधिकारिणी है।[44] ससुर उन्हें नेत्रों की पुतली के समान समझते हैं[45] तो सास उन्हें उसी प्रकार हृदय से लगाकर रखती हैं जैसे मणि को सर्प।[46] विशिष्ट परिस्थितियों में तो पुत्र-वधू पुत्र के समान ही सास-ससुर के प्राणों का सहारा कही गई हैं।[47] इसके अतिरिक्त वधुओं को पूर्ण स्वतंत्रता है कि वे अपनी इच्छानुसार कभी पिता और कभी पति के घर रह सकें।[48] श्वसुर गृह में भी पुत्र वधुएँ अपने अलग-अलग घरों में अपनी रुचि के अनुसार पूर्ण स्वतंत्रता से रह सकती हैं।[49] इस प्रकार पुत्र-वधू स्नेह और आदर की पात्री बनकर विशिष्ट, दृढ़ एवं श्रेष्ठ स्थान की अधिकारिणी है।

पत्नी रूप में नारी और भी अधिक गरिमामय बनकर महत्त्वपूर्ण स्थान पर अवस्थित है। पत्नी पति की सहधर्मचारिणी, शक्ति रूपिणी उसकी अर्द्धांगिनी है जो सर्वत्र ही पति द्वारा आदरणीय दृष्टिगोचर होती है।[50] पत्नी सदा प्रिये, सुमुखि, कोकिलबयनी, गृहस्वामिनी आदि आदर सूचक सम्बोधनों से सम्बोधित हुई है। चाहे वह राज परिवार की रानी हो, अथवा वनों में निवास करने वाली ऋषि मुनियों की सहधर्मिणी, किसी दीन हीन-केवट की पत्नी हो अथवा असभ्य वानर जाति की या महाबलवान राक्षस-राज की पत्नी हो अथवा देवताओं में श्रेष्ठ भगवान शिव की अर्द्धांगिनी, वह सर्वत्र ही आदर की पात्री है। तुलसी साहित्य में सीता और पार्वती, मैना और सुनयना, कौशल्या और सती, तारा और मन्दोदरी सभी गरिमामय गृहिणी पद पर अवस्थित गौरवपूर्ण स्थान की अधिकारिणी बनी हैं।

राजा हिमाचल की पत्नी मैना का व्यक्तित्व अपने पति हिमाचल से अधिक तेजयुक्त दिखलाई पड़ता है। गृह संचालन की बाग-डोर जैसे मैना के हाथ में ही है। कन्या के लिए उपयुक्त वर की प्राप्ति का आग्रह करती हुई मैना—

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू, गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू।
सोई विचारि पति करेहु विवाहु, जेहि न बहोरि होइ उर दाहू।।

मानस —बालकाण्ड।७०।३

विशेष उत्तरदायित्व पूर्ण पद धारण किए हुए हैं। जनक-पत्नी सुनयना भी धनुष यज्ञ के समय राजा जनक के प्रण की व्यर्थता प्रकट करती हुई उन्हें समझाने का प्रयास करती है। चित्रकूट पर भी रानी सुनयना राजा दशरथ के रनिवास से मिलकर कौशल्या के संदेश राजा जनक को देती हुई महत्त्वपूर्ण स्थान पर अवस्थित दिखलाई पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुम्ह सहित गिरि तें गिरौ पावक जरौ जलनिधि महुँ परौ।
घरु जाऊ अपजसु होउ जग जीवत विवाहु न हौं करौं।।
वही।।६५।। छंद

इसे सुनकर पिता हिमवान स्वयं कुछ न कहकर विवश से नारद मुनि और सप्त ऋषियों को लेकर घर जाते हैं क्योंकि सम्भवतः मैना के अटल वचनों और उसके अधिकार को वे जानते थे। पार्वती के पूर्व जन्म की सम्पूर्ण कथा जानकर ही मैना इस विवाह के लिए सहमत हुई। पार्वती मंगल में तो शिव को मंगल वेष धारण करके करोड़ों कामदेवों के समान मनोहर रूप भी दिखलाना पड़ा। इस प्रकार परिवार में माता की स्थिति महत्त्वपूर्ण और गरिमामय है।[११]

भरत द्वारा माता कैकेयी के प्रति कहे गए कटु वचन भी उनकी मनःस्थिति का परिचय देते हैं माता की स्थिति की हीनता का नहीं। नारद मुनि तो मनःस्थिति विशेष के वशीभूत होकर भगवान विष्णु तक को ईर्ष्यालु, कपटी, धोखेबाज, मतलबी, ठग आदि कहकर शाप भी दे डालते हैं। फिर भरत तो माता के प्रति दुर्वचनों के लिए—

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली।"
और *"सपनेहुँ दोषक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू।*
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउं जायं जननि कहि काकू।।
मानस —अयोध्या काण्ड ।।२६०।।३

आदि पश्चातापपूर्ण उक्तियों से अपने दोष का परिहार भी कर लेते हैं। राम भी—

"दोसू देहिं जननिहि जड़ तेइ। जिन्ह गुर साधु समा नहि सेइ।।" कहकर परिवार में माता की उन्नत स्थिति और सम्माननीय, पूजनीय व श्रेष्ठतम अवस्था का ही परिचय देते हैं। माता की आज्ञा सर्वत्र ही मान्य है और तुलसी साहित्य में प्रत्येक अवस्था में माता की सम्मति का विशेष ध्यान रखा जाता है। आर्य परिवार में ही नहीं राक्षस परिवार में भी माता माननीय है। गीतावली में रावण द्वारा अपमानित विभीषण अपनी माता के पास जाकर राम की शरण में जाने की अनुमति प्राप्त करने के उपरान्त ही वहाँ जाते हैं।[१२] इसके अतिरिक्त 'जननी सम जानहु पर नारी' की कवि उक्ति में भी जननीत्व की महत्ता, पावनता और गरिमा की ओर ही संकेत है। अतः तुलसी ने सर्वत्र ही परिवार में माता को महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी माना है।

(ii) परिवार में कुलवधू और पत्नी का स्थान—माता के समान ही कुलवधू और पत्नी रूप में भी नारी महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी मानी गई है। पुत्रवधू रूप में नारी उसी सम्माननीय स्थान पर स्थित है जिस स्थान पर वर रूप में पुरुष। जिस प्रकार वर के आगमन पर उसके स्वागत में आरता, परछन, न्यौछावर आदि होता है ठीक उसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुलवधू के आगमन पर उसका स्वागत और आदरमान होता है। वर की माताएँ पुत्रों सहित पुत्र वधुओं को सिंहासनों पर बिठाकर स्वयं उनके चरण धोतीं और वैदिक विधि से धूप, दीप, नैवेद्य से उनका पूजन और आरता आदि करती हैं।[43]

पुत्र-वधू भी कन्या के समान ही सास-ससुर के स्नेह की अधिकारिणी है।[44] ससुर उन्हें नेत्रों की पुतली के समान समझते हैं[45] तो सास उन्हें उसी प्रकार हृदय से लगाकर रखती हैं जैसे मणि को सर्प।[46] विशिष्ट परिस्थितियों में तो पुत्र-वधू पुत्र के समान ही सास-ससुर के प्राणों का सहारा कही गई हैं।[47] इसके अतिरिक्त वधुओं को पूर्ण स्वतंत्रता है कि वे अपनी इच्छानुसार कभी पिता और कभी पति के घर रह सकें।[48] श्वसुर गृह में भी पुत्र वधुएँ अपने अलग-अलग घरों में अपनी रुचि के अनुसार पूर्ण स्वतंत्रता से रह सकती हैं।[49] इस प्रकार पुत्र-वधू स्नेह और आदर की पात्री बनकर विशिष्ट, दृढ़ एवं श्रेष्ठ स्थान की अधिकारिणी है।

पत्नी रूप में नारी और भी अधिक गरिमामय बनकर महत्त्वपूर्ण स्थान पर अवस्थित है। पत्नी पति की सहधर्मचारिणी, शक्ति रूपिणी उसकी अर्द्धांगिनी है जो सर्वत्र ही पति द्वारा आदरणीय दृष्टिगोचर होती है।[50] पत्नी सदा प्रिये, सुमुखि, कोकिलबयनी, गृहस्वामिनी आदि आदर सूचक सम्बोधनों से सम्बोधित हुई है। चाहे वह राज परिवार की रानी हो, अथवा वनों में निवास करने वाली ऋषि मुनियों की सहधर्मिणी, किसी दीन हीन-केवट की पत्नी हो अथवा असभ्य वानर जाति की या महाबलवान राक्षस-राज की पत्नी हो अथवा देवताओं में श्रेष्ठ भगवान शिव की अर्द्धांगिनी, वह सर्वत्र ही आदर की पात्री है। तुलसी साहित्य में सीता और पार्वती, मैना और सुनयना, कौशल्या और सती, तारा और मन्दोदरी सभी गरिमामय गृहिणी पद पर अवस्थित गौरवपूर्ण स्थान की अधिकारिणी बनी हैं।

राजा हिमाचल की पत्नी मैना का व्यक्तित्व अपने पति हिमाचल से अधिक तेजयुक्त दिखलाई पड़ता है। गृह संचालन की बाग-डोर जैसे मैना के हाथ में ही है। कन्या के लिए उपयुक्त वर की प्राप्ति का आग्रह करती हुई मैना—

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू, गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू।
सोई विचारि पति करेहु विवाहु, जेहि न बहोरि होइ उर दाहू।।

मानस —बालकाण्ड।७०।३

विशेष उत्तरदायित्व पूर्ण पद धारण किए हुए हैं। जनक-पत्नी सुनयना भी धनुष यज्ञ के समय राजा जनक के प्रण की व्यर्थता प्रकट करती हुई उन्हें समझाने का प्रयास करती है। चित्रकूट पर भी रानी सुनयना राजा दशरथ के रनिवास से मिलकर कौशल्या के संदेश राजा जनक को देती हुई महत्त्वपूर्ण स्थान पर अवस्थित दिखलाई पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीता तो राम की शक्ति रूप उनका अभिन्नांश है ही, जो सर्वत्र ही राम द्वारा आदरणीय रही है। वनपथ पर राम सीता का विशेष ध्यान रखते हैं। नदी पार करते समय उन्हें पहले चढ़ा कर स्वयं नौका पर चढ़ते हैं। वन में राम स्वयं पुष्पों के गहने बनाकर आदर पूर्वक उन्हें पहनाते हैं। राम द्वारा भेजे गए संदेश में भी पत्नी के साथ उनकी एकात्मता का ही परिचय मिलता है। लंका विजय के बाद जब विभीषण सीता को सुसज्जित पालकी में भेजता है तब राम उन्हें पैदल लाने का आदेश देते हैं, परन्तु इसका अभिप्राय उनका अपमान करना नहीं वरन् वानर गण को मातृरूप में उनके दर्शन कराना था। पुनः अग्नि परीक्षा के पूर्व 'राम ने कुछ कटु वचन कहे' किन्तु उनके स्वरूप व भाषा का उल्लेख तुलसी ने नहीं किया, साथ ही इसका प्रयोजन केवल यही था कि सीता की प्रतिच्छाया (जो सीता-हरण से पूर्व ही वास्तविक सीता ने स्वयं अग्नि में प्रविष्ट होकर अपने स्थान पर रख दी थी) का अग्नि में विलीन होना व वास्तविक सीता का प्रकट करना, सब लौकिक कलंक को भस्मीभूत कर देना मात्र था। अन्त में राम के राज्याभिषेक पर सीता राम के साथ सिंहासनारूढ़ होकर गरिमा और गौरवपूर्ण स्थान पर अवस्थित हैं।

प्रत्येक पत्नी अपने पति के प्रत्येक उचितानुचित कार्य की उत्तरापेक्षी है। केवट, राम को बिना पैर धोए नौका पर नहीं चढ़ाता क्योंकि उसे भय है कि शिला की भाँति उसकी नौका भी सुन्दर स्त्री बन गयी तो वह अपनी पत्नी को कैसे समझाएगा।[५१] पुनः राम के लौटने पर केवट अपने बच्चों सहित पत्नी को भी बुला लेता है जिससे वह राम दर्शन से वंचित न रह जाएँ। इस प्रकार सभी व्यक्ति अपनी-अपनी पत्नियों का आदर मान करते हुए देखे जाते हैं।

बालि की मृत्यु का कारण बताते हुए राम यह भी कहते हैं कि—

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।।

मानस —किष्किंधा काण्ड ।८ ।५

इसी प्रकार रावण की पत्नी मन्दोदरी को भी तुलसी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। रावण भी अपनी पटरानी मन्दोदरी को विशेष आदर व मान देता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार राक्षस संस्कृति में भी पत्नियों को विशेष महत्त्व मिला है। रावण की पत्नी मन्दोदरी अनेक प्रकार से रावण को समझाने का प्रयास करती है, यहाँ तक कि खीज कर कुछ कटु वचन भी कह डालती है।[५२] परन्तु रावण उसकी बात का बुरा न मानता हुआ उससे ममता ही बढ़ाता है और उसके प्रति स्नेह की अभिव्यक्ति ही करता है, जबकि उसी अपराध के लिए मंत्री माल्यवान को दरबार से निकाल देता है और छोटे भाई का अत्यन्त अपमान करता हुआ उसे लात मारकर शत्रु की शरण में जाने को विवश कर देता है। वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी अपराध के लिए पुत्र प्रहस्त को भी बुरा भला कहता है। अतः पत्नी के साथ किया गया उसका व्यवहार ही उस समाज में नारी की सुदृढ़ स्थिति और महत्त्वपूर्ण स्थान का परिचायक है। यद्यपि "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।" की उक्ति मानस में प्रयुक्त हुई है, परन्तु इसके ऊपर निम्नतम संस्कृति के पात्र के द्वारा भी आचरण नहीं करवाया गया है। अतः स्पष्ट है कि पत्नी विशेष स्थान की अधिकारिणी है।

राजा दशरथ भी अपनी प्रिय पत्नी कैकेयी की प्रसन्नता के लिए सभी कुछ करने को तत्पर और एक प्रकार से उसके वश में दिखायी पड़ते हैं।[५३] यद्यपि देवमाया के वशीभूत कैकेयी ने अपना ही सर्वनाश कर लिया तथापि पत्नी रूप में तो उसका स्थान समस्त अधिकारों से सम्पन्न और उन्नत ही प्रतीत होता है।

तुलसी ने बहु-पत्नी प्रथा के दुर्गुणों और उसके परिणामों पर गम्भीर विचार किया है अतः उन्होंने अपने इष्ट देव को एक पत्नीव्रती के आदर्श पर अवस्थित दिखलाया है। यही नहीं राम-राज्य की कल्पना प्रस्तुत करते हुए उन्होंने सभी व्यक्तियों को एक पत्नीव्रती बताया है जो नारी की स्थिति को सुदृढ़ और अधिकारों को स्थिर बनाने वाला है। एक पत्नी व्रत के महत्त्व का उन्होंने दृढ़ता से प्रतिपादन भी किया है—

पारवती-मन सरिस अचल धनु चालक।
हहिं पुरारि तेउ एक नारिव्रत पालक।

जानकी मंगल ।।१०४।।

इस प्रकार तुलसी साहित्य के अन्तर्गत परिवार में पत्नी रूप में नारी का स्थान सब प्रकार से गौरवशाली ओर महत्त्वपूर्ण अंकित किया गया है।

(iii) परिवार में पुत्री का स्थान—परिवार में पुत्र जन्म की भाँति ही पुत्री का जन्म भी हर्ष, उल्लास और मंगलोत्सवों का विषय है।[५४] जिस लाड़ प्यार से परिवार में पुत्रों का पालन-पोषण किया जाता है ठीक उतनी ही ललक से माता-पिता ही नहीं अपितु सारा परिवार कन्या को देखकर हर्षित होता है और उसका पालन-पोषण बड़े चाव से होता है।[५५] यही नहीं कन्या को लक्ष्मी का स्वरूप माना जाता है जिसकी उत्पत्ति से सर्वत्र ऋद्धि-सिद्धि एवं सौन्दर्य छा जाता है।[५६]

माता-पिता के लिए यद्यपि सयानी होती हुई कन्या चिन्ता का विषय है, क्योंकि कन्या का भविष्य उपयुक्त वर की प्राप्ति पर ही निर्भर है,[५७] तथापि माता-पिता अपना जीवन सुख और ऐश्वर्य सभी कन्या के हेतु ही मानते हैं।[५८] कन्या के लिए उपयुक्त वर की प्राप्ति के हेतु ही राजागण स्वयंवर आदि का आयोजन करते थे। राजा जनक भी अपनी पुत्री सीता के योग्य वर प्राप्त करने के हेतु से ही स्वयंवर का आयोजन करते हैं और योग्यवर का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीता तो राम की शक्ति रूप उनका अभिन्नांश है ही, जो सर्वत्र ही राम द्वारा आदरणीय रही है। वनपथ पर राम सीता का विशेष ध्यान रखते हैं। नदी पार करते समय उन्हें पहले चढ़ा कर स्वयं नौका पर चढ़ते हैं। वन में राम स्वयं पुष्पों के गहने बनाकर आदर पूर्वक उन्हें पहनाते हैं। राम द्वारा भेजे गए संदेश में भी पत्नी के साथ उनकी एकात्मता का ही परिचय मिलता है। लंका विजय के बाद जब विभीषण सीता को सुसज्जित पालकी में भेजता है तब राम उन्हें पैदल लाने का आदेश देते हैं, परन्तु इसका अभिप्राय उनका अपमान करना नहीं वरन् वानर गण को मातृरूप में उनके दर्शन कराना था। पुनः अग्नि परीक्षा के पूर्व 'राम ने कुछ कटु वचन कहे' किन्तु उनके स्वरूप व भाषा का उल्लेख तुलसी ने नहीं किया, साथ ही इसका प्रयोजन केवल यही था कि सीता की प्रतिच्छाया (जो सीता-हरण से पूर्व ही वास्तविक सीता ने स्वयं अग्नि में प्रविष्ट होकर अपने स्थान पर रख दी थी) का अग्नि में विलीन होना व वास्तविक सीता का प्रकट करना, सब लौकिक कलंक को भस्मीभूत कर देना मात्र था। अन्त में राम के राज्याभिषेक पर सीता राम के साथ सिंहासनारूढ़ होकर गरिमा और गौरवपूर्ण स्थान पर अवस्थित हैं।

प्रत्येक पत्नी अपने पति के प्रत्येक उचितानुचित कार्य की उत्तरापेक्षी है। केवट, राम को बिना पैर धोए नौका पर नहीं चढ़ाता क्योंकि उसे भय है कि शिला की भाँति उसकी नौका भी सुन्दर स्त्री बन गयी तो वह अपनी पत्नी को कैसे समझाएगा।[४१] पुनः राम के लौटने पर केवट अपने बच्चों सहित पत्नी को भी बुला लेता है जिससे वह राम दर्शन से वंचित न रह जाएँ। इस प्रकार सभी व्यक्ति अपनी-अपनी पत्नियों का आदर मान करते हुए देखे जाते हैं।

बालि की मृत्यु का कारण बताते हुए राम यह भी कहते हैं कि—

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना।।

मानस —किष्किंधा काण्ड।८।५

इसी प्रकार रावण की पत्नी मन्दोदरी को भी तुलसी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। रावण भी अपनी पटरानी मन्दोदरी को विशेष आदर व मान देता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार राक्षस संस्कृति में भी पत्नियों को विशेष महत्त्व मिला है। रावण की पत्नी मन्दोदरी अनेक प्रकार से रावण को समझाने का प्रयास करती है, यहाँ तक कि खीज कर कुछ कटु वचन भी कह डालती है।[४२] परन्तु रावण उसकी बात का बुरा न मानता हुआ उससे ममता ही बढ़ाता है और उसके प्रति स्नेह की अभिव्यक्ति ही करता है, जबकि उसी अपराध के लिए मंत्री माल्यवान को दरबार से निकाल देता है और छोटे भाई का अत्यन्त अपमान करता हुआ उसे लात मारकर शत्रु की शरण में जाने को विवश कर देता है। वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी अपराध के लिए पुत्र प्रहस्त को भी बुरा भला कहता है। अतः पत्नी के साथ किया गया उसका व्यवहार ही उस समाज में नारी की सुदृढ़ स्थिति और महत्त्वपूर्ण स्थान का परिचायक है। यद्यपि "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।" की उक्ति मानस में प्रयुक्त हुई है, परन्तु इसके ऊपर निम्नतम संस्कृति के पात्र के द्वारा भी आचरण नहीं करवाया गया है। अतः स्पष्ट है कि पत्नी विशेष स्थान की अधिकारिणी है।

राजा दशरथ भी अपनी प्रिय पत्नी कैकेयी की प्रसन्नता के लिए सभी कुछ करने को तत्पर और एक प्रकार से उसके वश में दिखायी पड़ते हैं।[५३] यद्यपि देवमाया के वशीभूत कैकेयी ने अपना ही सर्वनाश कर लिया तथापि पत्नी रूप में तो उसका स्थान समस्त अधिकारों से सम्पन्न और उन्नत ही प्रतीत होता है।

तुलसी ने बहु-पत्नी प्रथा के दुर्गुणों और उसके परिणामों पर गम्भीर विचार किया है अतः उन्होंने अपने इष्ट देव को एक पत्नीव्रती के आदर्श पर अवस्थित दिखलाया है। यही नहीं राम-राज्य की कल्पना प्रस्तुत करते हुए उन्होंने सभी व्यक्तियों को एक पत्नीव्रती बताया है जो नारी की स्थिति को सुदृढ़ और अधिकारों को स्थिर बनाने वाला है। एक पत्नी व्रत के महत्त्व का उन्होंने दृढ़ता से प्रतिपादन भी किया है—

पारवती-मन सरिस अचल धनु चालक।
हहिं पुरारि तेउ एक नारिव्रत पालक।

जानकी मंगल ।।१०४।।

इस प्रकार तुलसी साहित्य के अन्तर्गत परिवार में पत्नी रूप में नारी का स्थान सब प्रकार से गौरवशाली ओर महत्त्वपूर्ण अंकित किया गया है।

(iii) परिवार में पुत्री का स्थान—परिवार में पुत्र जन्म की भाँति ही पुत्री का जन्म भी हर्ष, उल्लास और मंगलोत्सवों का विषय है।[५४] जिस लाड़ प्यार से परिवार में पुत्रों का पालन-पोषण किया जाता है ठीक उतनी ही ललक से माता-पिता ही नहीं अपितु सारा परिवार कन्या को देखकर हर्षित होता है और उसका पालन-पोषण बड़े चाव से होता है।[५५] यही नहीं कन्या को लक्ष्मी का स्वरूप माना जाता है जिसकी उत्पत्ति से सर्वत्र ऋद्धि-सिद्धि एवं सौन्दर्य छा जाता है।[५६]

माता-पिता के लिए यद्यपि सयानी होती हुई कन्या चिन्ता का विषय है, क्योंकि कन्या का भविष्य उपयुक्त वर की प्राप्ति पर ही निर्भर है,[५७] तथापि माता-पिता अपना जीवन सुख और ऐश्वर्य सभी कन्या के हेतु ही मानते हैं।[५८] कन्या के लिए उपयुक्त वर की प्राप्ति के हेतु ही राजागण स्वयंवर आदि का आयोजन करते थे। राजा जनक भी अपनी पुत्री सीता के योग्य वर प्राप्त करने के हेतु से ही स्वयंवर का आयोजन करते हैं और योग्यवर का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चुनाव करने के लिए शिव-धनुष भंग करने की शर्त रखते हैं। इस प्रकार यद्यपि कन्या के लिए उपयुक्त वर चुनने का कार्य माता-पिता ही करते थे किन्तु कन्या को इस बात का पूर्ण अधिकार था कि वह अपनी इच्छा से किसी भी व्यक्ति का वरण कर ले, क्योंकि राम को देखकर अन्य राजागण यह सोचकर निराश हो जाते हैं कि राम यदि धनुष न भी तोड़ पायेंगे तब भी सीता जयमाला उन्हीं के गले में डाल देंगी।[५६]

वाटिका में राम को पहली बार ही देख कर सीता मन ही मन उनसे पुनीत प्रेम में निरत हो जाती हैं और गौरी से उन्हीं को पति रूप में पाने की कामना प्रकट करती हैं। कन्या यद्यपि अपनी मर्यादा का सदैव ध्यान रखती थी किन्तु उसके ऊपर कोई भी अनुचित प्रतिबन्ध मां-बाप की ओर से लगा हुआ नहीं था क्योंकि सखी के द्वारा राम-लक्ष्मण के रूप का वर्णन सुनकर सभी उन्हें देखने को चल देती हैं।[५७]

पुत्री की स्वतन्त्र चिन्तन शक्ति का एक और प्रमाण तब मिलता है जब सीता मन ही मन राम का वरण कर स्वयं को उनके चरणों में अर्पित कर देती हैं। सीता अति कठोर धनुष और अत्यन्त कोमल राम को देखकर मन ही मन दुःखी होती हैं कि पिता ने अत्यन्त कठिन हठ ठाना है वे लाभ हानि कुछ भी नहीं समझ रहे हैं।[५९] सीता इसी स्थिति को देखकर मन ही मन सोचती हैं—

सचिव समय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई।

और फिर सीता अपने एकनिष्ठ प्रेम एवं सच्ची लगन के आधार पर राम को पाने का निश्चय कर लेती हैं—

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी।
तन मन वचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा।।
तौ भगवानु सकल उर वासी। करि ही मोहि रघुवर कै दासी।।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहु। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहु।।
प्रभु तन चितई प्रेम तन ठाना। कृपा निधान राम सबु जाना।।

मानस —बालकाण्ड।।२५८।। २-४

इस प्रकार सीता जी तन और मन दोनों से ही श्री राम के चरणों की प्रीति में अनुरक्त हो जाती हैं। यद्यपि वह प्रकट रूप में कुछ भी नहीं कहतीं लेकिन यह मौन शील और मर्यादा के कारण ही है, अन्यथा कौन जानता है कि अवसर आने पर यदि राम धनुष तोड़ने में असफल हो जाते तो वे राम को पाने के लिए पार्वती के समान ही हठ न कर बैठतीं। सम्भवतः उनके हठ के सम्मुख जनक भी झुक जाते और फिर जनक तो रामचन्द्र के रूप को देखते ही उनके प्रति आकर्षित हो गए थे।[६२] इस धनुष यज्ञ का उद्देश्य ही सीता के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिए उपयुक्त वर की खोज करना था। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कन्या को परिवार में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और उसका हित चिन्तन भी माता-पिता का प्रमुख कर्तव्य था।

सीता के ही समान एक अन्य पात्र का पुत्री रूप में विशेष चित्रण हुआ है और वह है पार्वती। जैसे ही कन्या सयानी होती है मैना और हिमाचल को उसके उपयुक्त वर की प्राप्ति की चिन्ता होती है और यह स्वाभाविक भी है। नारद जी से भी मैना उमा के भविष्य के विषय में ही पूछती है।[६३] नारद जी के द्वारा गिरिजा के लिए वर रूप में शिवजी की प्राप्ति की संभावना सुन जहाँ एक ओर पार्वती प्रसन्न होती है, मैना पुत्री के भविष्य के विषय में चिन्तित भी हो जाती है।[६४] पार्वती के कोमल शरीर को देखकर तप की कल्पना मात्र से ही उन्हें दुःख होता है।[६५] किन्तु उमा के इस प्रयास की सभी सराहना करते हैं, कोई भी इसे हेय नहीं समझता। पार्वती का यह प्रयास-कन्या की स्वयं ही उपयुक्त वर चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता का परिचायक है।

वस्तुतः इस प्रकार कन्या का परिवार में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसे माता-पिता का असीम दुलार प्राप्त है और मर्यादा की रक्षा करते हुए वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। वह पर्दे में रहने के लिए बाध्य नहीं है और कोई भी अनुचित बन्धन उसके ऊपर नहीं लगाए गए हैं। परिवार में कन्या को सभी सुविधाएँ प्राप्त हैं उसका अपना पृथक् निवास स्थान (महल) है[६६] और उसके दास-दासियाँ व अन्य प्रिय वस्तुएँ भी अलग हैं जिन्हें कन्या का प्रिय समझ कर विवाहोपरान्त 'दायज' (दहेज) में दिया जाता है।[६७] दहेज भी कन्या की किसी न्यूनता की पूर्ति के हेतु नहीं वरन् अपनी लाडली की प्रिय वस्तु होने के कारण स्नेहवश ही दिया जाता है।[६८]

कन्या का विवाह परम पुण्य की बात है।[६९] यही नहीं पुत्री को ससुराल विदा करते समय उसे परम पावनी और पूज्य मान उसके चरणों की वन्दना भी की गई है।[७०] यह प्रथा अनेक परिवारों में आज भी दिखलाई पड़ती है।

इस प्रकार माता-पिता अपनी-अपनी कन्याओं को विशेष आदर-मान, स्नेह-दुलार देते ही हैं। साथ ही परिवारों में विवाह, नहछू आदि के शुभ अवसरों पर नगर भर की पुत्रियों को आदर और मान की अधिकारिणी दिखलाया है। पुत्रों के विवाह के अवसर पर राजा दशरथ नगर भर की सुआसिनियों (पुत्रियों, भगिनियों और भांजियों आदि) को बुलवाकर उनकी रुचि के अनुरूप वस्त्रादि देकर उनको मान देते हैं।[७१]

अन्त में यही कहा जा सकता है कि परिवार में कन्या अपार स्नेह, अनुराग, लाड़ और दुलार की अधिकारिणी है तथा उन्हें यथायोग्य आदरमान भी दिया जाता है। श्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कन्याएँ माता-पिता के यश का कारण बनती हैं और अपने कार्यों से पितृकुल और पतिकुल दोनों को पवित्र करने की सामर्थ्य रखती हैं।[३२]

राक्षस परिवार में भी पुत्री का विवाह उपयुक्त पात्र से ही किया जाता था। मय दानव ने अपनी कन्या मन्दोदरी रावण को यही जानकर दी कि यह राक्षसों का राजा बनेगा।[३३] इस प्रकार राक्षस भी अपनी कन्याओं के हिताहित का ध्यान रखते थे। राक्षस परिवार में रावण की कुँआरी बहिन शूर्पणखा का चित्रण हुआ है जिसे राक्षस परिवार की कन्या कहा जा सकता है। शूर्पणखा को दुष्ट हृदया तो माना जा सकता है किन्तु परिवार में वह उपेक्षित नहीं कही जा सकती। शूर्पणखा के भाई उसके मान का विशेष ध्यान रखते थे। खर-दूषण उसके अपमान की बात सुनकर तुरन्त ही दल-बल सहित राम से युद्ध करने को तत्पर हो जाते हैं।[३४]

खर-दूषण के मारे जाने पर शूर्पणखा रावण के भरे दरबार में पहुँचती है और अनेक कटु वचन कहकर उसे फटकारती है, किन्तु क्रोधी रावण इतनी खरी खोटी सुनने पर भी उसे आदर मान ही देता है और उसके अपमान का बदला लेने के लिए युद्ध में प्रवृत्त होता है। अतः स्पष्ट है कि राक्षस परिवार में भी भगिनी अथवा पुत्री को सम्माननीय स्थान प्राप्त है।

कोल भील और ग्रामीण परिवारों अथवा ऋषि कन्याओं का दिग्दर्शन तुलसी साहित्य में नहीं हुआ है, कुछ स्थलों पर ऋषि पत्नियों और ग्राम वधुओं का चित्रण ही मिलता है। फिर भी मानस को पढ़कर अनुमान लगाया जा सकता है कि उन परिवारों में कन्याओं का स्थान आर्य परिवारों जैसा ही रहा होगा। वे भी राज-कन्याओं की तरह अपने घर में आदर, सम्मान पाती रही होंगी, सीता को वनपथ पर मिलने वाली ग्राम स्त्रियों के व्यवहार और वार्तालाप से इसी अनुमान की पुष्टि होती है।

वानर-परिवारों में भी कन्याओं को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। कन्या पावनता का प्रतीक मानी जाती थी और कन्या मात्र पर कुदृष्टि डालना महापातक था जिसका दण्ड वध ही हो सकता था। बालि की मृत्यु का कारण भी उसका यही अपराध था।

परिवार में सखियों का भी विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान था। हर्ष-उल्लास, दुःख और विषाद प्रत्येक अवसर पर सखियों का अपना महत्त्व है। यहाँ तक कि विशेष गंभीर परिस्थितियों में भी सखियाँ अपनी सम्मति देने और समस्या को सुलझाने का प्रयास करती हुई दिखलाई पड़ती हैं।

इसी प्रकार दासियों और परिचारिकाओं को भी परिवार में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मंथरा परिवार की महत्त्वपूर्ण सदस्या है और 'रामलला नहछू' में नायन आदि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिचारिकाएँ विशेष गौरवपूर्ण स्थान रखती हैं। यद्यपि मंथरा उग्र स्वभाव वाले शत्रुघ्न से दंडित होती हुई दिखलाई पड़ती हैं, परन्तु वह सामान्य परिस्थिति नहीं है। सामान्य परिस्थिति में दासियों के प्रति सौहार्दपूर्ण व्यवहार ही किया जाता था, जैसे राम वन को जाते हुए अपने दास और दासियों के लिए विशेष चिन्तित दिखलाई पड़ते हैं और गुरु से उनकी देखभाल करते रहने की प्रार्थना करते हैं।[७५]

२. राजनीति सम्बन्धी विचारधारा और राजनीति में नारी का स्थान

तुलसी का सम्पूर्ण जीवन दर्शन ही नैतिक मूल्यों पर आधारित है। तुलसी की राजनीतिक विचारधारा भी जीवन के नैतिक आदर्शों पर ही अवलम्बित है। तुलसी नीति-विहीन राजनीति की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उनका विचार था कि—

राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।।

मानस —अरण्य काण्ड।। २०ख।।४

विद्या बिनु विवेक उपजाएँ। श्रम, फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ।
संग ते जती कुमंत्र ते राजा। मान तें ज्ञान पान तें लाजा।।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहि बेगि नीति अस सुनी।।

मानस —अरण्य काण्ड।।२०ख।।५,६

नीति विहीन राज्य विनाश को प्राप्त हो जाता है। इसी कारण तुलसी ने नीति और धर्म सम्मत राम राज्य का आदर्श प्रस्तुत किया है। राम के सिंहासनारूढ़ होने पर—

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरू न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।

मानस —उत्तर काण्ड ।।१६ ग।।४

क्योंकि राजा राम—

श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर।

वही ।।२३।।१

अतः यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार सारी प्रजा भी अपने धर्म का पालन करती थी।

वरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।

वही ।।२०।।

और —*राम राज राजत सकल धरम निरत नर नारि।*
राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि।।

दोहावली ।।१८२।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राम राज्य में सभी स्त्री पुरुष चतुर और गुणवान हैं जो गुणों का आदर करने वाले ज्ञानी पंडित हैं। सभी कपट और चतुराई (धूर्तता) विहीन कृतज्ञ भाव को धारण करने वाले हैं।[९६] जनता भी एक पत्नीव्रती राजा राम का अनुकरण करने वाली है—

एक नारिव्रत रत सब झारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी।।

मानस —उत्तर काण्ड।२१।४

इस प्रकार तुलसी की राज्य और शासन की कल्पना नीतिपूर्ण और भव्य थी। जिसमें कहीं कोई कालुष्य नहीं है। राम यदि चाहते तो जनमत, सभासद और मंत्रियों की सहायता से दशरथ को बन्दी बनाकर राज्य प्राप्त कर सकते थे, कौशल्या भी राम को ऐसी शिक्षा देकर प्रोत्साहित कर सकती थीं, परन्तु तुलसी ने धर्म और नीति को विशेष महत्त्व दिया है। फलस्वरूप कौशल्या धर्म का विचार करके पिता की आज्ञा शिरोधार्य करने का ही आदेश देती हैं।

तुलसी का तत्कालीन शासन मर्यादाहीन और कुनीतिपूर्ण था जिसका उल्लेख उन्होंने कलियुग का चित्रण करके किया है—

राज समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेर हई है।
आस्रम-वरन-धरम-विरहित जग, लोक-वेद-मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है।।

विनय-पत्रिका ।।१३६।।

तथा *द्विज श्रुति वेचक भूप-प्रजासन। कोउ नहि मानतनिगम अनुसासन।।*

मानस —उत्तर काण्ड।।६७ख।।१

और—*गोंड़ गंवार नृपाल महि जमन महा महिपाल।*
साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल।।

दोहावली।।५५६।।

इस कुशासन से विक्षुब्ध होकर तुलसी ने जन समाज के समक्ष राम चरित सुधार-संस्कार के लिए ही प्रस्तुत किया था। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अपने धर्म सम्मत राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए राम राज्य का सविस्तार चित्रण किया है। मानस में प्रजातंत्र अथवा गणतंत्र का उल्लेख नहीं है किन्तु राम के शासन का स्वरूप मर्यादित राजतंत्र था जिसमें लोकतंत्र का पुट स्पष्ट ही लक्षित होता है। राज्यारूढ़ होने के बाद राम घोषणा करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउं न कछु ममता उर आनी।
नहिं अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई।।
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई।
जो अनीति कछु भाषौं भाई। तो मोहि बरजहु भय बिसराई।।

मानस —उत्तर काण्ड।।४२।।२,३

अतः तुलसी प्रजा सम्मत शासन की व्यवस्था करना चाहते थे जो लोक हित की भावना से प्रेरित हो। उनके विचार से—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी।

मानस —अयोध्या काण्ड।।७०।।३

तथा *सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।*
वही।।७१।।२

इसके साथ ही साथ तुलसी राजकीय व्यवहार के लिए कोरी राजनीति को पर्याप्त नहीं मानते थे अपितु उसके साथ ही साधुमत और लोक मत की मान्यता भी आवश्यक है, जो निगम मतानुकूल हो—

करब साधुमत लोक मत नृपनय निगम निचोरि।।

वही।।२५८।।

इस प्रकार तुलसी की राजनीति का आधार धर्म, निगम, आगम और लोकमत ही है। उनके मतानुसार अच्छे स्वामी अथवा राज की यही नीति है कि वह अमीर और गरीब, चतुर नागरिक और गंवार, पंडित और मूढ़, यशस्वी और बदनाम, सुकवि और कुकवि तथा सभी नर-नारियों की विनती सुने जो अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की सराहना करते हैं और ईश्वर अंश उत्पन्न कृपालु राजा सबका यथायोग्य सम्मान करता है।[७७] अतः तुलसी के मत में रामराज्य लोकाराधना ही है। राजा को व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा जनहित का अधिक ध्यान रखना पड़ता था। जनमत के सम्मुख उसे झुकना पड़ता था। यद्यपि रामचरितमानस में सीता परित्याग का वर्णन नहीं है, तथापि गीतावली में कुछ पदों में उल्लेख है कि राम को जनमत के कारण ही सीता को त्यागना पड़ा। इसका कारण केवल मात्र यही था कि राजा राम बड़े सावधान थे और वे किसी प्रकार की लोक-निन्दा का लक्ष्य नहीं बनना चाहते थे।[७८]

राजा के परिवार तथा राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक व्यापार पर स्त्री-पुरुष सभी की तीव्र दृष्टि रहती थी क्योंकि उनके कार्यकलापों पर ही प्रजाजन का हिताहित अवलंबित था। यही कारण है कि राजा दशरथ के द्वारा भरत को राज्य और राम को वन-गमन का आदेश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देने पर सारी जनता उनकी कटु आलोचना करती है और अपनी सम्मति देती है। अनेक वयोवृद्धाएँ कुल-गुरु, पत्नी और कैकेयी की सखियाँ उसे समझाने का प्रयास करती हैं और अन्त में नर-नारी सभी राम के साथ ही वन को प्रस्थान करते हैं।

इसके विपरीत रावण की राजनीति कुनीतिपूर्ण है, जो धर्म और राज्य कार्य की उपेक्षा करके मदिरा और काम के सेवन में निरत रहता है, जो राज्य के विनाश का लक्षण है। राजनीति विषयक विभिन्न अंगों व उपांगों का वर्णन उनके साहित्य में अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है।[७६] किन्तु यहाँ हमें यह देखना है कि राजनीति में नारी का स्थान क्या है ?

राजनीति में नारी अपने पत्नी, माता, भगिनी आदि सभी रूपों में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। राजमाता का संभवतः विशेष मान होता था, यही कारण है कि मंथरा अपनी स्वामिनी कैकेयी को राजमाता पद पर अवस्थित देखना चाहती थी, क्योंकि इस पद की प्राप्ति गौरव, गर्व और सौभाग्य का विषय थी।[८०] यही नहीं राम के राज्याभिषेक में मंथरा कौशल्या का ही हाथ समझती है, उसका विचार था कि उस महत्त्वपूर्ण पद को प्राप्त करके कौशल्या कैकेयी की जड़ उखाड़ना चाहती है।[८१] वास्तव में माता का राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान है भी। भरत के लौट आने पर और राजा की मृत्यु पर माता कौशल्या राज सभा में बैठ मंत्रियों और गुरु के समान ही राजनीतिक समस्याओं पर विचार करती हुई भरत को आदेश देती हुई दिखलाई पड़ती हैं। माता कौशल्या गुरु वशिष्ठ जी के कथन कि "भरत को ग्लानि त्याग राज्य भार संभालना चाहिए" का समर्थन कर एक राजनीतिज्ञ की भाँति ही अपना विचार व्यक्त करती हैं कि ऐसी परिस्थिति में जब कि राम वन में और राजा दशरथ स्वर्ग में हैं, भरत को कुटुम्ब, प्रजा, मंत्री और माताओं का ध्यान कर कातरता छोड़ गुरु की आज्ञानुसार ही कार्य करना चाहिए।[८२] यहाँ निश्चय ही माता कौशल्या मंत्रियों के समान ही गुरु वचनों का अनुमोदन कर रही हैं। यही नहीं राम भी भरत को यही आदेश देते हैं कि जब तक मैं वन से लौटूँ तुम गुरु, मंत्रियों और माताओं की आज्ञा से राज्य कार्य करना—

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहि लाग छरु भारू।
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।३१४।।-४

स्पष्ट है कि राजनीति में माता का महत्त्वपूर्ण स्थान है और मंत्रियों के समान ही उसकी सम्मति भी राज्य कार्य हेतु अपेक्षित है।

राजनीति में पत्नी को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। नारी यद्यपि कहीं भी स्वतन्त्र रूप से सिंहासनारूढ़ होती हुई दिखलाई नहीं देती, परन्तु अपने पति के राज्याभिषेक के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समय वह भी उसके वाम पार्श्व में सिंहासनारोहण की अधिकारिणी है।[८३] अपने सौन्दर्य एवं अधिकार पूर्ण व्यक्तित्व के बल पर रानी सभी कुछ करने में समर्थ है। राजा दशरथ रूठी हुई रानी की प्रसन्नता के लिए कोई भी कार्य करने को तत्पर थे।[८४] राजा दशरथ अपने मनोरथ (राम के राज्याभिषेक) की असफलता का कारण यही बताते हैं कि उन्होंने कैकेयी की पूर्व सम्मति नहीं ली थी।[८५] उस समय स्त्रियाँ केवल भोग विलास की ही सामग्री नहीं थीं वरन् उनमें राजनीतिक दाँव पेचों के संचालन की क्षमता थी। कैकेयी एक ही रात में अयोध्या की राजनीति बदल डालती है।

तुलसी साहित्य में राजनीति सर्वत्र नारी के निर्देश और परामर्श की अपेक्षा करती है। वे युद्ध और राजनीति की प्रत्येक समस्या से अभिन्न थीं। केवल आर्य समाज में ही नहीं वानर समाज में भी स्त्रियाँ उचित परामर्श देती हुई दिखलाई पड़ती हैं। बालि-पत्नी तारा राम-लक्ष्मण के बल पर युद्ध के लिए सुग्रीव की ललकार सुनकर बालि को समझाती है, और पत्नी की सीख न मानना ही बालि की मृत्यु का कारण बना।[८६] साथ ही बालि का नैतिक पतन, पुत्रीवत छोटे भाई की पत्नी को हरण कर लेना भी उसके वध में सहायक बना।[८७]

पत्नी का नैतिक उत्थान और पतन पति के राजनीतिक उत्थान और पतन का कारण बन सकता था। जलन्धर अपनी पत्नी के पतिव्रत धर्म के कारण अजेय हो गया था जो त्रिपुरासुर का विनाश करने वाले शिव द्वारा भी न जीता जा सका।[८८]

तारा की भाँति मन्दोदरी भी अपने पति रावण को मंत्रणा देती हुई महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी बनती है। मन्दोदरी लगभग छः स्थलों पर नीति-कुशल और नीतिविज्ञ की भाँति पति को राजनीतिक सफलता का मूलमंत्र देती है।[८९] रावण भी आदर और स्नेह से उसकी बातें सुनता है किन्तु काल के वश में होने के कारण वह उसकी सीख न मान सका और अन्त में विनाश को प्राप्त हुआ।

रावण की भगिनी शूर्पणखा भी कुशल राजनीतिज्ञा की भाँति भाई को राजनीति और नीति सिखाती हुई दिखलाई पड़ती है।[९०] यही नहीं रावण की दासी त्रिजटा भी राजनीति विज्ञ प्रतीत होती है जो केवल राजनीतिक घटनाओं का ज्ञान ही नहीं रखती वरन् भविष्य में राजनीति क्या रुख लेगी, इसका भी सही अनुमान लगा लेती है।[९१] इसके साथ ही त्रिजटा युद्ध क्रियाओं का ज्ञान भी रखती है और उसे मालूम है कि रावण युद्ध में किस प्रकार जीता जाएगा, जिसका उल्लेख वह सीता से करती है।[९२]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि राज परिवार से सम्बन्धित सभी नारियाँ राजकुशल होती थीं और राजनीति को प्रभावित करती हुई उसमें सक्रिय हस्तक्षेप भी करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कभी-कभी स्त्रियाँ राजनीति का शिकार भी बन जाती थीं, जैसे शूर्पणखा के नाक-कान काटने का एक प्रयोजन रावण को चुनौती देना और सीता का हरण युद्ध का आमन्त्रण था। कभी-कभी राजा ऐश्वर्यशाली और शक्तिशाली राजाओं से अपनी कन्या का विवाह करके अपनी राजनीतिक प्रभुता को बढ़ा लेते थे।[६३] बल, शौर्य से युक्त राजा अपने बाहु बल से अनेकानेक कन्याओं को जीतकर अपनी रानी बना लेते थे।[६४] परन्तु यह प्रथा केवल राक्षस संस्कृति में ही दिखलाई गई है।

अतः स्पष्ट है कि राजनीति में नारी का स्थान उच्च और उसका परामर्श मान्य होता था। देव समाज में भी स्त्रियाँ राजनीतिक कुचक्र रचती हैं, जैसे देवतागण देवी सरस्वती से ही अयोध्या की राजनीति पलटने की प्रेरणा मंथरा को दिलवाते हैं।

३. धार्मिक विचारधारा और धार्मिक क्षेत्र में नारी

रामचरितमानस की लोकप्रियता और उसकी मान्यता श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ के रूप में न होकर धार्मिक ग्रन्थ के रूप में ही अधिक है। वास्तव में रामचरितमानस हिन्दी भाषी प्रदेश का सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म ग्रन्थ है जिसमें राजा, प्रजा, पिता, पुत्र, पति, स्वामी, सेवक एवं नर-नारी सभी के धर्मों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। तुलसी की धार्मिक विचारधारा का बहुत कुछ परिचय दिया जा चुका है तथा धार्मिक क्षेत्र में नारी का दिग्दर्शन भी कराया जा चुका है। यहाँ संक्षेप में यही विचार करना है कि अपनी धार्मिक मान्यताओं के अन्तर्गत तुलसी ने नारी को व्यक्तिगत और लोक साधना के क्षेत्र में क्या स्थान और अधिकार दिए थे।

आलोचकों का मत है कि "भक्ति काल में जैसा कि उसके नाम ही से प्रकट है अधिकांशतः धार्मिक काव्य की रचना हुई है। प्रायः ईश्वर प्राप्ति के मार्ग का अनिवार्य सम्बन्ध इस लोक के प्रति वैराग्य से माना जाता रहा है तथा काम और उसके प्रबल साधन स्त्री से घृणा या पलायन उसका अनिवार्य फल रहा है।"[६५] सामान्य दृष्टि से यह कथन सत्य सा प्रतीत होता है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि धर्म स्त्री में जो नारीत्व कामोत्तेजक तत्त्व है उसके प्रति ही घृणा अथवा अवहेलना प्रकट करना चाहता है, नारी के मातृत्व, पुत्रीत्व, भगिनीत्व और पत्नीत्व से नहीं। तुलसी के विषय में तो यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि वे सभी नारी मात्र से घृणा नहीं करते थे। उनकी आत्मा की ध्वनि सुनने पर अवश्य ही नारी मात्र के प्रति पर्याप्त सम्मान की भावना परिलक्षित होती है। उन्होंने तो, 'जननी सम आसहु पर नारी' कहकर प्रत्येक परस्त्री को जननी के गौरव पूर्ण पद पर अवस्थित करके देखा है और अनेक सम्बन्धों में नारी को पुत्रीत्व के पावन नाते से जोड़ कर उस पर कुदृष्टि डालने वाले के लिए वध के कठोरतम दंड का विधान किया है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहि कुदृष्टि विलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।

मानस—किष्किंधा काण्ड।।८।।४

साथ ही परस्त्री को कुदृष्टि से देखने वाले को राक्षस तथा महापातकी बतलाया है।[६६]

अतः यह कथन कि धर्म की ओर झुक जाने से समाज में स्त्री घृणात्मक दृष्टि से देखी जाती है उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।[६७] क्या वैदिक काल में जब स्त्री सर्वाधिक सम्मान की अधिकारिणी थी, समाज में धर्म भावना को कोई स्थान नहीं था ? वास्तव में उपर्युक्त कथन इस अंश में ही सत्य है कि धार्मिक प्रवृत्ति हो जाने से नारी को कामुक दृष्टि से देखकर केवल भोग विलास की सामग्री ही नहीं माना जाता अपितु उसके पावन स्वरूपों को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। स्त्री मात्र आध्यात्मिक मार्ग की बाधा नहीं उसका कामोत्तेजक रूप ही बाधा है। यही कारण है कि तुलसी साहित्य में स्त्रियाँ धर्म की अवरोधक चित्रित नहीं की गई हैं वरन् उसकी सहयोगिनी के रूप में उसका अंकन हुआ है। मनु, शतरूपा को साथ लेकर ही तप करने के लिये वन को जाते हैं।[६८] इसके अतिरिक्त ऋषि पत्नी अनसूया भी अपने पति के धर्म कर्मों में उसकी सहयोगिनी ही थी। नीतिनिपुण कौशल्या स्वयं धर्म परायण और पति के धर्मव्रत की सहयोगिनी थीं। मन्दोदरी भी अपने पति के लिए नीति सम्मत धर्म कार्यों की प्रेरणा बनकर ही उपस्थित होती है। इसके अतिरिक्त शबरी और स्वयंप्रभा स्वतन्त्र रूप से व्यक्तिगत साधना में रत दिखलाई पड़ती हैं। अतः जहाँ तक तुलसी की धार्मिक विचारधारा का प्रश्न है, उनका धर्म एक व्यापक धर्म है जिस पर सर्व सामान्य का पूर्ण अधिकार है, फिर वह जड़ चेतन स्त्री-पुरुष नपुंसक अथवा कोई भी क्यों न हो। भक्ति से युक्त होने पर सभी उनके भगवान् को अतिशय प्रिय हैं।[६९] रामभक्ति परायण सभी स्त्री पुरुष समान रूप से परमगति (मोक्ष) के अधिकारी हैं—

राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।

मानस —उत्तर काण्ड।।२०।।२

इसके अतिरिक्त तुलसी संत कवियों की भाँति न गृहिणी को धर्म के समक्ष त्याज्य मानते थे न गृह को, उनका भक्ति मार्ग तो मध्यम मार्ग की उद्भावना करके गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी राम भक्ति की भावना का प्रसार करता है।

घर कीन्हे घर जात है घर छांड़े घर जाई।
तुलसी घर बन बीचहिं राम प्रेम पुर छाई।।

दोहावली।।२५६।।

गुरु वशिष्ठ के धर्म सम्मत वचनों से भी स्पष्ट हो जाता है कि गृही के लिए कर्म पथ पर आरूढ़ रहना ही धर्म है जब कि संन्यासी के लिए संसार के प्रपंचों को छोड़ देना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही धर्म है।[१००] अतः धार्मिक दृष्टि से भी तुलसी के विचारानुसार सम्पूर्ण नारी जाति हीन या तुच्छ नहीं कही गई है वरन् कुटिल, कलह प्रिय और स्वेच्छाचारिणी कुनारी ही शोचनीय तथा शूलवत् कही गई हैं।[१०१] साथ ही वह नर जो परस्त्री में आसक्त है राक्षस रूप और पापमय है।[१०२] अतः तुलसी ने बिना किसी भेदभाव के धर्म के क्षेत्र में सबको समान अधिकार दिए हैं। यदि तुलसी नारी के लिए पतिव्रत धर्म का निरूपण करते हैं तो पुरुष के लिए भी एक पत्नीव्रत धर्म की व्यवस्था करते हुए दृष्टिगत होते हैं।[१०३] अपनी सती साध्वी पत्नी को त्यागने वाले और परस्त्री के अनुगामी की तो उन्होंने सर्वत्र निन्दा की है।[१०४]

भक्त तुलसी का धर्म मार्ग सबको सुलभ है—

निगम अगम साहेब सुगम राम सांचिली चाह।
अंबु असन अवलोकिअत सुलभ सबै जग मांह।।

दोहावली ।।८०।।

भगवान् राम का प्रेम निष्कपट मन वाणी और कर्म से जो चाहे सरलता से प्राप्त कर सकता है—

सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति।।

वही ।।१५२।।

अतः तुलसी के मतानुसार सरल सहज क्रियाएँ तथा मानव का छल कपट विहीन कर्तव्य ही सम्मत धर्म है जिससे व्यक्तिगत धर्म और लोक धर्म दोनों की रक्षा तथा व्यक्ति और लोक दोनों का कल्याण होता है। सभी अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करके मोक्ष के अधिकारी बन सकते थे। राजा प्रजापालन के धर्म का पालन करके स्वर्गाधिकारी बन सकता है और प्रजा के दुःखी होने पर वह अवश्य ही नरकगामी होता है[१०५] तो पुत्र, पिता, माता और गुरु की आज्ञा को उचितानुचित का विचार छोड़कर भी शिरोधार्य कर मोक्ष का अधिकारी होता है।[१०६] यदि पिता पुत्री के विवाह आदि पवित्र धर्म से पुण्य का भागीदार बनता है तो पुत्री अपने पावन धर्म का पालन करके पिता और पति दोनों कुलों को पावन बना देने वाली है और पत्नी एक मात्र पतिव्रत धर्म के पालन से ही परमगति की अधिकारिणी कही गई है। साथ ही उसका पतिव्रत धर्म उसके पति के प्राणों की रक्षा का अक्षय कवच है।[१०७] अतः स्त्री के लिए एक ही व्रत, एक ही धर्म और एक ही नियम पति सेवा का निर्देश किया गया है परन्तु फिर भी उसे व्यक्तिगत और लोक साधना के क्षेत्र में भक्ति और धर्म के सम्पूर्ण अधिकार दिए गए हैं।

(क) व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में नारी—जो साधना व्यक्ति की वृत्ति को ऊँचे से ऊँचे स्तर तक ले जा सकती है वही व्यक्तिगत साधना है।[१०८] व्यक्तिगत साधना में निरत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यक्ति एक उच्चतम आत्मोत्थान के श्रेष्ठतम सोपान पर अवस्थित हो जाता है। इस व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में प्रमुख रूप से दो ही चरित्र दृष्टिगत होते हैं —एक भक्त शिरोमणि शबरी का व्यक्तित्व तथा दूसरे निर्जन वन में उपासनारत स्वयंप्रभा की तपोमूर्ति।

शबरी वन में आश्रय बनाकर आत्म साधना निरत है। वह मतंगमुनि के वचन कि तुझे श्री राम के दर्शन होंगे और तब मोक्ष की अधिकारिणी बनेगी, स्मरण करके और राम के आगमन का समाचार सुनकर पुलकित होती है। उसकी साधना और तपस्या उसे नवों प्रकार की भक्ति में दृढ़ बनाकर श्रेष्ठतम गति की अधिकारिणी बना देती है। यह नवों प्रकार की भक्ति ही जिसका उल्लेख राम शबरी से करते हैं व्यक्तिगत साधना की मूलाधार है। यद्यपि शबरी नीच जाति की "अघ अवगुनन्हि की कोठरी" थी लेकिन वह अपनी भक्ति और साधना के बल पर भगवान की अतिशय प्रिय बनकर योगियों के लिए भी दुर्लभ मोक्ष की अधिकारिणी बनती है—

जोगि वृंद दुरलभ गति जोई। जो कहुं आजु सुलभ भई सोई।।

मानस —अरण्य काण्ड ।।३५।। ४

शबरी के कथन—'अघ अवगुनन्हि की कोठरी' और 'अधम ते अधम अधम अति नारी, तिन्ह महं मैं मतिमंद गंवारी' में अपने दोष और दैन्य की अभिव्यक्ति भी व्यक्तिगत साधना की मुद्रा है जिसे माताप्रसाद गुप्त ने "स्वदोषानुभूति भी राम भक्ति की एक आवश्यक भूमिका है।"[१०६] कहा है। वास्तव में यह भावना न तो कुण्ठा है और न व्यक्ति की हीनता है। यह दास्य भक्ति का एक आवश्यक अवयव है, जिसका उल्लेख तुलसी ने विनय पत्रिका में स्थान-स्थान पर किया है।

शबरी की भाँति स्वयंप्रभा भी वन में सबसे दूर मन्दिर में तपोमूर्ति के रूप में साधना रत है। अपनी साधना से अलौकिक सिद्धियों की अधिकारिणी बन कर वह भगवान के दर्शन करती हैं और अमर भक्ति का वरदान पाकर पुनः बदरिकाश्रम चली जाती हैं। इसके अतिरिक्त देवी शतरूपा और अदिति भी व्यक्तिगत साधना में निरत होकर कठिन तप के द्वारा भगवान् से अलौकिक ज्ञान का वरदान प्राप्त करती हैं। यही देवी शतरूपा अगले जन्म में राजा दशरथ की पत्नी कौशल्या बनती हैं जहाँ पुनः वह स्वतन्त्र रूप से पूजा पाठ और पूर्वजन्म के संस्कारों के वशीभूत दिव्य ज्ञान तथा विवेक से युक्त दिखलाई गई हैं।

ऋषि पत्नी अहल्या को भी व्यक्तिगत साधना के आधार पर श्रेष्ठ हरिभक्ति और पति लोक की अधिकारिणी माना गया है। अहल्या यद्यपि अपने अपराध के कारण पति द्वारा शापित थी तथापि युग-युग तक प्रस्तरवत् साधनारत रहकर श्रेष्ठतम हरि भक्ति का वरदान पाकर उत्तम गति को प्राप्त करती है। शिव-पत्नी पार्वती स्वतन्त्र रूप से ऋषि-मुनियों जैसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कठिन तप में निरत देखी जा सकती है। इस प्रकार व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में नारी उच्च स्थान पर अवस्थित देखी जा सकती है।

(ख) लोक साधना के क्षेत्र में नारी—व्यक्तिगत साधना के द्वारा व्यक्ति स्वयं को उच्चतम स्थिति तक पहुँचा लेता है, परन्तु यह साधना लोक साधना नहीं है और न ही जन-साधारण उस स्थिति को प्राप्त कर सकता है। अतः लोकविहित आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिए तुलसी ने रामचरित के माध्यम से साधारण धर्म के जीवन व्यापी स्वरूप का प्रतिपादन किया है। शुक्ल जी का मत है —"व्यक्तिगत सफलता के लिए जिसे 'नीति' कहते हैं सामाजिक आदर्श की सफलता का साधन होकर वही धर्म हो जाता है।"[११०] तुलसी ने व्यवहारिक जीवन में धर्म की ज्योति को स्फुरित किया, जिससे सम्पूर्ण लोक जीवन जगमगा उठा। इसी धर्म का साधन लोक-साधना है। इस लोक साधना के क्षेत्र में नारी के वे सभी धर्म, जिनसे संसार चलता है और उसकी मर्यादाएँ स्थिर रहती हैं, तुलसी ने पर्याप्त विस्तार से अंकित किये हैं।

देवी अनसूया द्वारा निरूपित स्त्रियोचित धर्म इसी लोक धर्म के अन्तर्गत आते हैं। तुलसी द्वारा वर्णित लोक धर्म वेद पुराण और स्मृति सम्मत धर्म है। प्रोत्साहन और प्रतिबन्ध द्वारा मन वचन और कर्म को व्यवस्थित करके व्यक्ति की परिवार समाज और राष्ट्र की मर्यादाओं को बनाए रखना ही उनका लक्ष्य था। जब तुलसी—

वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुःख नाना।।

के परम्परागत कठोर धर्म की स्थापना करते हुए पति का अपमान करने वाली स्त्रियों को यमपुर में मिलने वाले दुखो का भय दिखलाते हैं तब आज के उद्‌बुद्ध मस्तिष्क भले ही इसे पोंगापन्थ[१११] मानें परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि यह नारी के साधारण लोक धर्म का निरूपण है। इसको छोड़कर समाज की मर्यादा चल ही नहीं सकती। इसको तो सम्भवतः कोई नहीं मानेगा कि पत्नी को पति की सेवा या सम्मान नहीं करना चाहिए वास्तव में इतनी कठोरता पूर्वक यह बात कि पति का सम्मान करना चाहिए इसलिए कही गई है और इसलिये भय दिखाए गए हैं कि जनसाधारण ऐसा मानकर ही लोक धर्म को बनाये रखे।

तुलसी केवल कर्म की पावनता से ही सन्तुष्ट नहीं होते अपितु उन्हें मन और वाणी की ऋजुता पर ही अधिक आस्था थी। अतः उन्होंने नारी के धर्म को श्रेणियों में विभाजित करके कहा—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट तिय श्रुति अस कहई।
बिनुअवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।

मानस—अरण्य काण्ड ।।४।।६-८

इस को भी आलोचकों ने स्त्रियों की जाँच की कड़ी कसौटी मानकर तुलसी पर नारी के प्रति असन्तुष्टि का दोषारोपण किया है।[११२] वस्तुतः यह धर्म कठोर प्रतीत होने पर भी यही कसौटी खरी है। जब तक मन शुद्ध नहीं होगा वाणी और कर्म की शुद्धता भी चिर स्थायी नहीं हो सकती और न सार्थक ही। इसीलिए तुलसी ने स्त्रियों के लिए "एकह धर्म एक व्रत नेमा, कायं वचन मन पतिपद प्रेमा" कहकर साधारण नारी के लिए लोक धर्म का निरूपण किया अन्यथा व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में तो स्वामी को त्यागने वाली ब्रजवनिताएँ भी कल्याणकारिणी मानी गई हैं।[११३]

लोक साधना के क्षेत्र में यदि तुलसी ने ऐसे कठोर नियम न बनाए होते और ऐसी पावनता का निर्देश न किया होता तो भारतीय स्त्रियों में जितनी पावनता शेष रही है वह भी दिखलाई न पड़ती और न ही गृहस्थ और परिवार में वह सौहार्द रहता जो भारत में दिखलाई पड़ता है। तुलसी ने यदि इन धर्मों का निरूपण न किया होता तो भारतीय नारी भी पाश्चात्य स्त्रियों के इस मत की समर्थक हो जाती कि स्त्री को पति के घर में रहना कोई आवश्यक नहीं है।[११४] तब परिवार एवं समाज की लौकिक मर्यादाएँ मिट जातीं।

तुलसी ने इसीलिए नारी के एक ही धर्म व्रत और नियम पति में गूढ़ आस्था और प्रेम पर सर्वाधिक बल दिया है। जहाँ वे पति का अपमान करने वाली स्त्री को अनेक भय दिखलाते हैं वहाँ वह पतिव्रत धर्म के प्रोत्साहन के लिए परमगति और मोक्ष के अधिकार की बात भी कहते हैं—

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई।।

मानस —अरण्य काण्ड ।।४।।६

स्पष्ट है कि इन धर्मों के निरूपण का कारण एक साधारण लोक धर्म का प्रचार करना है जो सबके लिए सुलभ भी है। तुलसी ने इन धर्मों का केवल निरूपण ही नहीं किया अपितु सीता और पार्वती, कौशल्या और मन्दोदरी, के आदर्श प्रस्तुत करके उन्होंने लोक धर्म साधना का सक्रिय आधार भी प्रस्तुत किया है। मन्दोदरी, कौशल्या और सुमित्रा लोककल्याण हेतु अपने व्यक्तिगत हितों का त्याग करते हुए भी देखी जाती हैं। यहाँ केवल इतना कहना ही पर्याप्त है कि लोक साधना और व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में नारी पूर्ण स्वतन्त्र और महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

४. सामाजिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा तथा समाज में नारी का स्थान

तुलसी स्वयं धर्मनिष्ठ और भगवान् राम के अनन्य भक्त थे। अतः सामाजिक जीवन में धर्म परायणता और राम भक्ति को वे प्रमुख स्थान देते थे। इसीलिए राम-नगरी के स्त्री और पुरुष तथा सम्पूर्ण समाज दंभ रहित धर्म परायण और पवित्र कहे गए हैं, जो कपट रहित गुणवान और गुणों का आदर करने वाले तथा राम भक्ति परायण होकर मोक्ष के अधिकारी हैं।[११५] रामचरितमानस धार्मिक और नैतिक आदर्शों से परिपूरित ऐसा ग्रन्थ है जो समाज शास्त्र के सभी तत्त्वों पर प्रकाश डालने में समर्थ है। सामान्यतः तुलसी ने जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर अमूल्य विचार व्यक्त किए हैं। एक आदर्श समाज की प्राचीन परम्पराओं, धार्मिक धारणाओं, नैतिक मान्यताओं, राजनीतिक चिन्ताओं और भावनात्मक आकांक्षाओं व सुकोमल भावनाओं को संजोए हुए 'मानस' भारतीय सभ्यता और संस्कृति का अमूल्य अद्वितीय ग्रन्थ है।

तुलसी जिस काल में हुए वह यद्यपि नैतिक दृष्टि से पतन का युग था और समाज धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक विशृंखलताओं से आक्रान्त था, परन्तु तुलसी ने मानस के माध्यम से जिस संस्कृति और सभ्यता से पूरित नैतिक मान्यताओं पर आधारित समाज का दिग्दर्शन कराया है वह बहुत कुछ आदि कवि वाल्मीकि का सतयुगी रामायण कालीन समाज ही था जिसका आधार वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था ही थे। समाज में ब्राह्मण पूजनीय थे। वे कुल गुरु के पद पर अवस्थित थे। उनके निर्देश और आज्ञा से ही जीवन के विभिन्न आवश्यक क्रिया कलाप होते थे। इसके बाद क्षत्रियों और फिर वैश्यों को सम्मान दिया जाता था। शूद्र जाति निम्न मानी जाती थी परन्तु शूद्रों के प्रति भी अन्य जाति वालों का बहुत सुन्दर व्यवहार रहता था। निषाद निम्न वर्ग का था लेकिन भरत उसे भुजाओं में लेकर हृदय से लगाकर मिलते हैं,[११६] और हाथ में हाथ डालकर चलते हैं तथा केवट गुरु वशिष्ठ को दूर से दंडवत प्रणाम करता है परन्तु वे भी उसे स्नेहाशीष देते हुए दिखाई देते हैं। अतः छुआछूत जैसी भावनाएँ समाज में नहीं थीं। रामलला नहछू के अवसर पर भी सभी निम्न और उच्च वर्ण की स्त्रियाँ एकत्रित होती हैं परन्तु उनमें कोई कुण्ठा नहीं है। सभी मिलजुल कर उल्लास रत दिखाई पड़ती हैं। इस प्रकार चारों वर्ण के व्यक्ति सौहार्द पूर्ण व्यवहार से अनुबंधित हैं, फिर भी छोटे बड़े की साभाजिक मर्यादाओं का ध्यान रखा जाता था। सीता के स्वयंवर में आए सभी स्त्री पुरुषों को अपने योग्य, उत्तम, मध्यम, नीच और लघु के अनुरूप, स्थानों पर बैठाया जाता है।[११७]

चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहा है और 'मानस' तो एक पारिवारिक महाकाव्य ही है अतः मानस में परिवार और गृहस्थाश्रम के धर्मों का विशेष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विस्तृत वर्णन दृष्टिगत होता है। ब्रह्मचर्य आश्रम का विशेष उल्लेख नहीं है परन्तु फिर भी कुमारावस्था में यज्ञोपवीत संस्कार और गुरु के घर पढ़ने जाने का उल्लेख आया है जहाँ जाकर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सभी विद्याएँ सीखते हैं।[३१८]

इसी प्रकार संन्यास आश्रम का उल्लेख भी मनु और शतरूपा तथा कश्यप और अदिति के प्रसंग में किया गया है। राज्य करते-करते संन्यास आश्रम का समय आ जाने पर और विषयों से वैराग्य न होने पर वे क्षुब्ध होते हैं तब वे बरबस अपने पुत्र को राज्य देकर स्वयं पत्नी सहित तप हेतु वन को चले जाते हैं। मानस में गृहस्थाश्रम और उसके सभी कर्तव्यों का चित्रण तो विशेष रूप से किया गया परन्तु वानप्रस्थ का उल्लेख न होने पर भी संकेत किया गया है। राजा दशरथ जब अपने श्वेत होते हुए बालों को देखकर राम को युवराज पद देकर कार्य भार से मुक्त होना चाहते हैं तब सम्भवतः वानप्रस्थ आश्रम की ओर ही संकेत है। गृहस्थाश्रम के सभी धर्म परिवार से सम्बद्ध हैं।

मानस में अनेक जाति और समाजों का उल्लेख है जिनमें प्रमुख देव-समाज, आर्य-समाज, ऋषि-समाज, ग्रामीण-समाज, वानर-समाज और राक्षस-समाज हैं। इन सभी समाजों में नारी विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी रही है।

देव-समाज का अधिक विस्तृत चित्रण प्रस्तुत नहीं किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि देव-समाज तुलसी को अधिक आकृष्ट नहीं कर सका है। देवराज इन्द्र को तो उन्होंने विशेष रूप से विलासी, चालाक, धूर्त, स्वार्थी आदि की संज्ञा से विभूषित किया है। फिर भी अनेक स्थलों पर देव-समाज विवाह आदि उत्सवों पर पत्नियों सहित उपस्थित होकर हर्षोल्लास में रत और श्रेष्ठ कार्यों का साधुवाद करता हुआ व भगवान राम की प्रशंसा और स्तुति करता हुआ दिखलाई पड़ता है।

आर्य-समाज श्रेष्ठ संस्कृति और सभ्यता से युक्त है जिसके अन्तर्गत मिथिला और अयोध्या का नागरिक समाज आ जाता है शृंगवेरपुर तथा वन पथ पर बसा हुआ ग्रामीण समाज तथा कोल भील आदि उतने सभ्य नहीं हैं परन्तु फिर भी वे उसी आर्य संस्कृति की ओर उन्मुख हैं। वानर और राक्षस समाज में नैतिक मूल्यों को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता अतः वे असभ्य जातियाँ हैं, तथापि वहाँ भी नैतिकता के बन्धन दिखाई पड़ते हैं। मन्दोदरी तो रावण की नैतिक प्रहरी है ही जो परस्त्री-हरण का विरोध और स्त्री-वध के अनैतिक कार्य से रावण को विरत करती है, विभीषण, माल्यवान और प्रहस्त भी नीति की शिक्षा देते हुए दिखलाई देते हैं परन्तु मदान्ध रावण किसी की भी सुनता नहीं और वह विनाश को प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राम, वानर राजा बालि का जब छिप कर वध कर देते हैं तब बालि राम से शत्रुवत् व्यवहार किए जाने का कारण जानना चाहते हैं। राम अनुज वधू, जो समाज में पुत्रीवत् मानी जाती है के अनुचित हरण को महापाप बताते हुए वध का औचित्य सिद्ध करते हैं।[११९] बालि के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। अतः उसका वध भी सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त ही हो जाता है। साथ ही राम बालि से, पत्नी की नीतिपूर्ण सीख को न मानने के कारण ही उसकी मृत्यु हुई, ऐसा कहकर समाज में स्त्री की महत्ता का प्रदर्शन करते हैं।[१२०] अब संक्षेप में यही देखना है कि तुलसी ने अपने समाज में नारी को क्या स्थान दिया है।

नारी जाति के सामाजिक स्थान पर दृष्टिपात करना इसलिए आवश्यक हो जाता है क्योंकि तुलसी साहित्य में प्रयुक्त, नारी जाति सम्बन्धी कुछ कटूक्तियों के आधार पर लगभग सभी आलोचक तुलसी को नारी का शत्रुवत निन्दक और नारी जाति का घोर विरोधी मान बैठे हैं। मानस में स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा के वैदिक युगीन प्रबन्ध, ब्रह्मचारिणी रूप में गुरुओं के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन आदि का उल्लेख यद्यपि तुलसी साहित्य में प्राप्त नहीं होता तथापि कन्याओं को स्त्रियोचित शिक्षा घर ही में दी जाती थी, जिसके फलस्वरूप वे नीति कुशल और राजनीतिविज्ञ दिखाई पड़ती हैं। घर में ही वे सम्भवतः कुल ज्येष्ठाओं से पारिवारिक व्यवहार और धर्म की शिक्षा पाती थीं जिसे पुनः श्वसुर गृह-गमन के अवसर पर स्मरण कराया जाता था।[१२१] कुल-वृद्धाएँ, ब्राह्मण-स्त्रियाँ, गुरु-पत्नियाँ तथा ऋषि-पत्नियाँ भी हितकारी सीख और शिक्षा देने का कार्य करती हुई दिखलाई पड़ती हैं।[१२२]

रामचरितमानस में स्त्रियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता दी गई है। बाल विवाह की प्रथा को प्रश्रय नहीं दिया गया है। युवावस्था में वे अपनी इच्छानुसार स्वयंवर में मनोवांछित वर को चुन सकती हैं[१२३] और दुर्लभ वर की प्राप्ति का सफल प्रयास करती हैं।[१२४] पिता भी पुत्री के लिए उपयुक्त वर की प्राप्ति का भरसक प्रयास करते हैं और राजा हिमाचल की पत्नी मैना भी प्राण-प्रिय पुत्री पार्वती के लिए उसके अनुरूप ही वर खोजने का आग्रह करती है। उसका निश्चय था कि भले ही कन्या कुँआरी रह जाये परन्तु विवाह उसके अनुरूप वर से ही होगा।[१२५] अतः कन्या का कुँआरी रह जाना यद्यपि खेद और क्षोभ का विषय था तथापि योग्य वर के अभाव में कन्या का कुँआरी रह जाना असम्भव नहीं माना गया है।[१२६] कन्या का जन्म भी पुत्र की भाँति ही उल्लासप्रद तथा समृद्धि और ऐश्वर्य की वृद्धि का कारण माना गया है। मानस में कन्या का लालन-पालन भी पुत्र के समान ही दुलार और प्यार से ही होता हुआ दिखाया गया है।[१२७] जीवन के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों, विवाह आदि में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्त्रियों को इन कार्यों के लिए चतुर कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शिव-पार्वती के विवाह प्रस्ताव को भेजने के लिए ऋषि पत्नी अरुन्धती को ही चुना जाता है जो मैना से मिलकर कार्य को सफलीभूत बनाती हैं।[१२८]

तुलसी के सुसंस्कृत समाज में पर-पुरुष से प्रेम-सम्भाषण करना अथवा उसके सम्मुख विवाह-प्रस्ताव रखना मर्यादाहीनता, निर्लज्जता, उच्छृंखलता और कामुकता मानी गई है जिसके लिए शूर्पणखा की भर्त्सना की गई है। यह नैतिक बन्धन केवल स्त्रियों के लिए ही नहीं पुरुषों के लिए भी समान रूप से मान्य हैं। किसी सुन्दरी कन्या को देखकर मन का क्षुभित होना भी हृदय-कलुषता और कुमार्गगामी होने का द्योतक है।[१२९]

तुलसी साहित्य में नारी की स्वाधीनता पर कहीं कोई अनुचित बन्धन नहीं है। सामूहिक उत्सवों—विवाह, स्वयंवर, यज्ञ, राज्याभिषेक, पुत्र-जन्मोत्सव, धार्मिक समारोह और होली आदि त्यौहारों पर वह उन्मुक्त भाव से पुरुष समाज के समान ही पूर्ण स्वच्छन्दता से सम्मिलित होता है। राजा दक्ष यज्ञ करते समय नाग, किन्नर, देवता, सिद्ध और मुनि आदि सभी को आमन्त्रित करते हैं जो अपनी स्त्रियों सहित वहाँ जाते हैं। इसी प्रकार सीता स्वयंवर के अवसर पर सभी नर-नारी यज्ञ भूमि पर उपस्थित होते हैं जिन्हें यथा स्थान बैठाया जाता है। स्त्रियों के लिए विशेष रूप से सुन्दर व्यवस्था की जाती है जहाँ वे अपने कुल और वर्ग के अनुरूप स्थान ग्रहण कर धनुष यज्ञ देख सकें।[१३०]

समाज में आयोजित सामूहिक उत्सवों, पर्वों और त्यौहारों पर नारियाँ अपने सम्पूर्ण अलंकारों और सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित होकर, इत्र आदि सुगंधों का लेप करके पूरी सज-धज और शृंगार के साथ एकत्रित होती हैं।[१३१] होली आदि त्यौहारों पर फाग खेलते समय स्त्रियाँ पुरुष वर्ग के साथ ही समान रूप से उल्लासरत देखी जा सकती हैं। अनेक अन्य स्थलों पर स्त्री वर्ग पृथक् रूप से क्रीड़ा-कौतुक और हिंडोले आदि पर झूलता हुआ रास रंग में निमग्न दिखलाई पड़ता है। स्त्रियाँ शुभ अवसरों पर मंगल सामग्री लिए शगुन मनाती हुई मधुर गीत गाती हैं। ज्यौनार के समय मधुर सरस गालियाँ देने की प्रथा भी दृष्टिगत होती है जिन्हें सुनकर देवता और सभी बराती आह्लादित होते हैं।

'मानस' में नारी समाज, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने, समझने और उस पर टीका टिप्पणी करने में सदा पुरुष समाज के समान ही स्वतन्त्र रहा है। राम के राज्याभिषेक को लेकर उत्पन्न हुई समस्या पर नर और नारी समान रूप से विचार अभिव्यक्त करते हैं। कैकेयी की सखियाँ, कुलगुरु-पत्नियाँ और माननीया ज्येष्ठायें तथा अन्य भी कैकेयी को समझाने का पूर्ण प्रयास करती हैं और अन्त में राम के वन को प्रस्थान करने पर अयोध्या के नागरिकों के साथ नगर की स्त्रियाँ भी वन को जाती हैं।[१३२] पुनः भरत के साथ-साथ अन्तःपुर की सभी स्त्रियाँ कौशल्या आदि माताएँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु-पत्नियाँ और अन्य स्त्रियाँ भी चित्रकूट को जाती हैं। राजा जनक के साथ उनका समस्त रनिवास वन में आकर दशरथ के रनिवास से मिलता है।

पत्नी सच्चे अर्थों में पति की सहधर्मचारिणी के रूप में अंकित है। वह राजभवन के सुखोपभोग में लीन हो या संन्यास-आश्रम के अन्तर्गत तपस्या में रत, सिंहासनारूढ़ हो अथवा वन-मार्ग पर तपस्वियों के वेश में, सदा पति की अनुगामिनी रही है। यह अनुगमन थोपा हुआ नहीं वरन् स्वेच्छा से ग्रहण किया हुआ है। सीता को अयोध्या में रोक लेने के लिए सभी प्रयत्नवान हैं परन्तु वह पति के साहचर्य को किसी भी मूल्य पर छोड़ने को तत्पर नहीं है। उनके विचार में पति-पत्नी सूर्य और उसकी प्रभा चन्द्र और चाँदनी के समान अभिन्न हैं।

वन में तपस्या करते समय ऋषि पत्नियाँ अपने पतियों के साथ ही वन जाती हैं जहाँ वे उनके आध्यात्मिक मार्ग की अवरोधक नहीं अपितु सहधर्मचारिणी ही हैं। ऋषि मुनि भी स्त्रियों से घृणा नहीं करते अपितु वन में रहने वाले तप व्रतधारी विशेष उदासीन मुनि भी सुमुखी स्त्रियों की प्राप्ति से प्रसन्नता की अनुभूति करते हुए दिखाई पड़ते हैं।[१३३] वन पथ पर ग्रामीण स्त्रियाँ भी इसी प्रकार स्वतन्त्रता की अधिकारिणी हैं। पर्दा प्रथा और सती प्रथा का चित्रण कहीं नहीं किया गया है। विधवा स्त्रियाँ पुनः विवाह कर लेती थीं अथवा देवरों को वर के रूप में स्वीकार करती थीं या उनके साथ रहकर धार्मिक जीवन व्यतीत करती थीं इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। बालि की पत्नी तारा सुग्रीव की पत्नी बनकर और रावण की पत्नी मन्दोदरी विभीषण की पत्नी बन उनके साथ रही अथवा नहीं यह स्पष्ट नहीं हो पाया है। परन्तु वे सती नहीं हुई हैं। राजा दशरथ की मृत्यु पर कौशल्यादि रानियाँ सती होना चाहती थीं परन्तु भरत के कहने पर रुक जाती हैं। समाज में विधवाओं की स्थिति भी किसी प्रकार से हीन नहीं है।

राज-परिवारों की स्त्रियों को राजनीति की भी शिक्षा मिलती थी वे उसमें पूर्ण कुशल दृष्टिगत होती हैं। राक्षसराज रावण की पत्नी मन्दोदरी तो सर्वत्र ही उसे नीति और धर्म की शिक्षा देती हुई दिखलाई पड़ती है। साथ ही नृत्य गान के अखाड़ों में भी वह उसकी सहचरी बनी है। अतः उच्च वर्ग—क्षत्रिय, ब्राह्मण और राजकुल की स्त्रियाँ पूर्णरूपेण पति की सच्ची सहगामिनी हैं।

समाज में माता का स्थान सर्वोत्कृष्ट कहा गया है। पुत्री पावनता की मूर्ति और अन्य ज्येष्ठायें, जैसे बड़े भाई की पत्नी आदि, माता के समान ही मानी गई हैं। देवर जिनके चरण स्पर्श कर प्रणाम करते हैं तथा वे भी उनके प्रति मातृवत् स्नेह प्रदर्शित करती हैं।[१३४] नौका, विमान, रथ आदि वाहनों पर स्त्रियों को पहले चढ़ाकर सम्मान दिया गया है। स्त्रियों को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अवध्य माना गया है तथा बालक, स्त्री, वृद्ध का वध करने वाला और गौशाला को जलाने वाला समान रूप से पाप का भागीदार माना गया है।[१३५] सीता-वध के लिए उद्यत रावण को नीति की यही सीख देकर मन्दोदरी उसे सीता का वध करने से रोकती है। विवाहिता स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए भगवान की भक्ति में निरत रह सकती हैं और वनों में पति के साथ तपस्या आदि करने के लिए भी वे पूर्ण स्वतन्त्र हैं।

तुलसी कृत समाज में स्त्रियों को पर्याप्त सम्मान मिला है। तुलसी पर-स्त्री को जननी के समान आदरणीय और भगिनी, पुत्र-वधू, अनुज-वधू को कन्या के समान पावन स्थान की अधिकारिणी मानते हैं। स्त्रियों का अपहरण पाप और पर-स्त्री के मस्तक का दर्शन चौथ के चाँद की भाँति त्याज्य कहा गया है। पर-स्त्री को कुदृष्टि से देखने वाला मनुष्य, मानव शरीर में राक्षस है तथा पर-स्त्री गमन का अपराधी मृत्यु दंड का भागीदार कहा गया है।[१३६]

नानूराम व्यास ने रामायण कालीन समाज का वर्णन करते हुए कहा है कि "जो स्त्रियाँ एक बार शत्रुओं या दुष्टों के फेर में अनिच्छा से पड़ जाती हैं और जिन्हें फिर किसी प्रकार उनसे छुटकारा पाकर अपना पूर्व पारिवारिक जीवन व्यतीत करने का सुयोग मिल जाता है, क्या ऐसी स्त्रियों को समाज अपने अंक में पुनः स्थान देने को तैयार है ? इस प्रश्न का उत्तर ही स्त्रियों के प्रति किसी समाज के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की खरी कसौटी माना जायेगा।"[१३७] इस दृष्टि से तुलसी के समाज को परखने पर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने अपने काव्य में इस प्रकार के अमर्यादित और अनुचित व्यवहार को चित्रित नहीं किया है। तुलसी-साहित्य में स्त्रियों पर बलात्कार का कोई उदाहरण नहीं मिला है। मानस में केवल रावण द्वारा सीता के हरण का प्रसंग ही प्रस्तुत किया गया है जो सम्भवतः कथा प्रसार के लिए आवश्यक था। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा अपमानजनक उदाहरण नहीं है। सम्भवतः समाज सुधारक तुलसी ने विचारपूर्वक ही ऐसे अवांछित प्रसंगों को, जो स्त्रियों को अपमानजनक व हीन स्थिति में डालने वाले थे, और जिनका चित्रण वाल्मीकि रामायण में भी हुआ है[१३८] छोड़ दिया है।

जहाँ मानस में सीता के हरण और समाज द्वारा उसको अंगीकार करने का प्रश्न है तुलसी ने सीता द्वारा दी गई अग्नि परीक्षा के पश्चात् उन्हें उनकी पूर्व प्रतिष्ठा से अभिसिंचित किया है। सीता का सम्पूर्ण कालुष्य और लौकिक कलंक अग्नि में भस्मीभूत हो जाता है और शुद्ध, साध्वी सीता को मानस का समाज अनिंदित और गरिमामय रूप में ही ग्रहण करता है। तुलसी ने राम के राज्याभिषेक के पश्चात् सीता को परिवार और समाज में सम्पूर्ण मान, गौरव और गरिमा के साथ जीवन-यापन करते हुए दिखलाया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीता-त्याग का प्रसंग भी मानस से हटा दिया गया है। सम्भवतः तुलसी का उदार हृदय यह सहन नहीं कर पाया कि निष्कलुष सीता का समाज में अपमान हो। अतः उनका समाज भद्र और शालीन है जो तुलसी की उदारता और नारी के प्रति सम्माननीय भावनाओं का परिचायक है।

गीतावली में कुछ पदों में सीता-त्याग के प्रसंग का चित्रण किया गया है परन्तु वहाँ भी उन्होंने बहुत अधिक उदारता तथा सीता के प्रति सम्पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की है। इसी प्रकार अहल्या-उद्धार के प्रसंग से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि किसी प्रकार के दोष अथवा अपराध का यदि प्रायश्चित कर लिया जाए तो तुलसी उसे पूर्णरूपेण शुद्ध और पति लोक की अधिकारिणी मानते हैं। अतः निसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि श्री नानूराम व्यास की कसौटी पर तुलसी कृत समाज खरा उतरता है। तुलसी और उनका समाज नारी के प्रति पूर्णरूपेण उदार और शालीन रहा है। तुलसी ने नारी को सम्पूर्ण अधिकार प्रदान करके सम्माननीय स्थान की अधिकारिणी बनाया है।

समाज में बहु पत्नी प्रथा भी नारी की स्थिति को हेय बनाने वाली और उसमें ईर्ष्या, द्वेषादि भावनाओं को उत्तेजित करने वाली है। तुलसी इस तथ्य को भली प्रकार से समझते थे। तुलसी ने यद्यपि परम्परागत रूप से चली आती हुई रामकथा के अनुरूप ही राजा दशरथ की तीन प्रमुख और अन्य अनेक रानियों का उल्लेख किया है तथा रावण के महल में भी उसकी अनेक पत्नियों का चित्रण किया गया है तथापि उन्होंने स्थान-स्थान पर एक पत्नीव्रत की महत्ता का उल्लेख किया है। उनके राम एक पत्नीव्रती हैं तथा राम की सम्पूर्ण प्रजा भी एक पत्नीव्रती ही अंकित की गई है।[१३६] ऐसा करके तुलसी ने एक आदर्श समाज की रूपरेखा प्रस्तुत की है जिसमें नारी अपने स्वाभाविक अधिकारों से युक्त होकर गरिमा एवं महिमामय रूप में अंकित की गई है। जिसके अनुरूप आज भारत में सभी के लिए एक पत्नी रखने का कानून बना, जो वस्तुतः स्त्रियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अधिकार है। जिसे तुलसी ने अपने काव्य में उस युग में प्रतिष्ठित किया था जिस युग में इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। निश्चय ही तुलसी की यह भावना स्त्रियों के प्रति उनकी महती उदारता और पक्षपात हीन न्याय की ही परिचायक है।

तुलसी-साहित्य के समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान पर अवस्थित नारी के जिन उत्कृष्टतम स्वरूपों का विवेचन हुआ है, उससे स्पष्ट है कि निश्चय ही तुलसी के हृदय में नारी के प्रति शालीन भावनाएँ संचित थीं। कुछ आपत्तिजनक उक्तियाँ किसी व्यक्ति विशेष के कुकृत्यों से रुष्ट हो जाने वाले व्यक्तियों के द्वारा विशेष मनःस्थिति में कही गई हैं। कैकेयी के लिए भरत, अयोध्या नगर-निवासी तथा ग्रामीण जनता के द्वारा प्रयुक्त निन्दनीय उक्तियाँ इसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रेणी में आती हैं। समस्त जनता के लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय राम को वन भेज देने के कारण कैकेयी सब की भर्त्सना का केन्द्र बनी है। इसी प्रकार मंथरा और शूर्पणखा की निन्दा में प्रयुक्त कटुवचन नारी जाति के लिए न होकर व्यक्ति विशेष के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। कुछ उक्तियाँ वैराग्य भावना से प्रेरित वैरागियों के लिए हैं और कुछ कथन व्यक्ति के अपने चरित्र के साक्षी हैं। रावण द्वारा की गई नारी निन्दा उसकी अपनी प्रकृति की ही परिचायक है। कुछ उक्तियाँ संस्कृत ग्रन्थों का सीधा अनुवाद मात्र हैं जो साहित्यिक परम्परा के प्रभाव के कारण तुलसी-साहित्य में अवतरित हो गई हैं।

इस प्रकार तुलसी की अन्तरात्मा में झांकने से स्पष्ट हो जाता है कि वे स्वयं न नारी निन्दक हैं, न नारी-विरोधी। तुलसी द्वारा वर्णित समाज में नारी की स्थिति सामान्यतः सुखद और सम्माननीय है। नारी अपने पारिवारिक रूप में, राजनीतिक रूप में, धार्मिक रूप में और सामाजिक रूप में भी पूर्ण स्वतन्त्र है तथा पूजनीय, सम्माननीय और आदरणीय स्थान की अधिकारिणी बनी है।

निष्कर्ष—समाज संस्कर्ता और भविष्य द्रष्टा तुलसी का जीवन दर्शन नैतिक मूल्यों पर आधारित था।

संत कवियों की भाँति तुलसी के लिए संसार क्लेश, बंधन और अनिष्ट का कारण नहीं है, अपितु दया, प्रेम, सन्तोष और विवेकादि सद्गुणों से युक्त जीवन मंगलमय ही है। संसार की उत्पत्ति और पालन करने वाली आदि शक्ति महामाया मानव जीवन के सम्पूर्ण क्लेशों का हरण करने वाली हैं। अतः ईश्वर के वैभव से परिपूरित 'सीय राममय'—यह संसार तुलसी के लिए वन्दनीय है।

तुलसी का मानस सच्चे अर्थों में एक श्रेष्ठ पारिवारिक महाकाव्य है, जिसमें सम्मिलित परिवार-व्यवस्था का सरस, आकर्षक और वरेण्य रूप उपस्थित किया गया है। प्रत्येक पारिवारिक सम्बन्ध स्नेह, प्रेम, ममता और सौहार्द के सूत्र से बंधा, स्वार्थ त्याग और प्रेममय उत्सर्ग की भावना से परिपूरित धर्म की आधार शिला पर आधारित है।

परिवार में नारी अपने सभी रूपों (माता, पत्नी, पुत्री, कुल-वधू, सखी, सहेली तथा दासी और परिचारिका) में यथोचित स्नेह, प्रेम, श्रद्धा और सम्मान की अधिकारिणी दिखलाई पड़ती है। परिवार और समाज में उसे महती प्रतिष्ठा से परिपूरित स्थान का अधिकार दिया गया है।

तुलसी के पितृ सत्तात्मक परिवार में पिता की आज्ञा सर्वमान्य है परन्तु सन्तान के लिए माता पिता से भी श्रेष्ठ स्थान की अधिकारिणी है अतः उसके लिए माता की आज्ञा ही सर्वोपरि है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जननी चाहे वह पुत्रवती हो अथवा पुत्रीवती, परिवार और समाज में समान महत्त्व रखती है तथा सन्तति विशेषतः कन्या के जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों विवाहादि के लिए उसकी सहमति का वहुत अधिक महत्त्व है।

कन्या भी परिवार में सवके स्नेह की अधिकारिणी है, उसका जन्म हर्ष और उल्लास का कारण है तथा शील एवं गुण पति और पितृ-कुल दोनों को पवित्र करने वाले हैं। कन्या पावनता की प्रतीक और ममता का आधार है।

परिवार में कुल-वधू कन्या के समान ही स्नेह की अधिकारिणी है। पत्नी रूप में नारी का परिवार में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह पति की अनुगामिनी और उसके सुख दुःख की सहचरी है। पति-पत्नी अभिन्न और एकात्म हैं।

पति के हृदय की वह एकछत्र स्वामिनी है। पत्नी अपने पति की सखी, सचिव, दुःख-सुख की सच्ची सहयोगिनी और कुमार्गगामी पति की पथ-प्रदर्शिका है। पति प्रत्येक दशा में उसे आदर, मान और हृदय का सम्पूर्ण प्रेम अर्पित करता है। गृह की वागडोर सँभाले नारी पत्नी रूप में महत्त्वपूर्ण और गौरवशाली स्थान की अधिकारिणी है।

कुल ज्येष्ठाओं, गुरु पत्नियों और सखियों का भी परिवार में, सुख-दुःख दोनों स्थितियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

वानर-कुल, निषाद, कोल, भील और ग्रामीण-समाज तथा राक्षस-समाज के परिवारों में भी नारी को समान रूप से गौरव पूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

राजनीति में भी नारी को विशेष स्थान दिया गया है। माता, पत्नी और भगिनी, राजनीति सिखाती हुई दिखलाई पड़ती हैं, तो दासियाँ रात ही रात में देश की राजनीति को पलटने का सफल प्रयास करती हुई देखी जा सकती हैं। अतः राजनीति में भी सर्वत्र स्त्रियों का हस्तक्षेप है। राजनीतिक क्षेत्र में उसका स्थान उच्च और परामर्श मान्य है।

धर्म के क्षेत्र में स्त्रियों को समान अधिकार मिले हैं। व्यक्तिगत साधना में रत वह परम मोक्ष की अधिकारिणी वन सकती है और लौकिक धर्मों का निर्वाह करने से सहज रूप से ही उसे परम गति की प्राप्ति हो जाती है।

तुलसी आदर्श सामाजिक व्यवस्था के लिए पुरातन संस्कृति पर आधारित वर्ण-व्यवस्था और आश्रम चतुष्ट्य को मान्यता देते हैं।

चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को उन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है और समाज में गृह की केन्द्र-बिन्दु नारी महत्त्वपूर्ण स्थान पर अवस्थित है।

समाज में स्त्रियाँ सभी सामाजिक उत्सवों पर अपने पतियों के साथ आमन्त्रित होती हैं। जहाँ वे सुगन्ध आदि से सुवासित सुन्दर वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपने मंगलमय रूप में दिखलाई पड़ती हैं। प्रत्येक अवसर उनके सुमधुर गान से सरस होता हुआ दिखलाया गया है।

सामाजिक उत्सवों अथवा यज्ञभूमि आदि पर स्त्रियों के लिए विशेष सुविधाजनक स्थानों को सुरक्षित किया हुआ दिखलाया गया है जहाँ सभी वर्ग और कुल की स्त्रियाँ यथास्थान आदरपूर्वक बैठायी जाती हैं।

फाग आदि के हास-उल्लास में नारी, पुरुष के समान ही स्वच्छन्दता से सम्मिलित होती है जो उसकी स्वतन्त्र स्थिति का परिचायक है।

बाल-विवाह, सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा अथवा बहुपत्नी-प्रथा को तुलसी-साहित्य में प्रश्रय नहीं दिया गया है। कन्याएँ मनवांछित वर प्राप्त करने का प्रयास करती हुई देखी जा सकती हैं। पर्याप्त स्वतन्त्रता मिलने पर भी स्त्रियाँ मर्यादा और शील के स्वाभाविक एवं वांछित बन्धनों में स्वतः ही बंधी हुई दिखलाई पड़ती हैं अतः नारी की उच्छृंखलता अग्राह्य रही है।

तुलसी साहित्य में स्त्रियों के अपहरण बलात्कार अथवा त्याग, गीतावली में सीता त्याग के संक्षिप्त प्रसंग को छोड़कर, आदि के अमर्यादित प्रसंगों का उल्लेख नहीं है। पर-स्त्री को जननी के समान आदरणीय और अनुज-वधू, पुत्र-वधू तथा भगिनी को कन्या के समान पावन मानने के स्पष्ट आदेश दिए गए हैं। तुलसी ने राम राज्य के समाज में एक पतिव्रत के साथ-ही-साथ एक पत्नी-व्रत को भी समान रूप से मान्यता प्रदान की है। सती स्त्रियाँ साधुवाद की अधिकारिणी और तुलसी-साहित्य के समाज में श्रेष्ठ स्थान पर स्थित दिखलाई पड़ती हैं।

तुलसी-साहित्य में नारी के प्रति कटूक्तियाँ केवल संस्कृत साहित्य के प्रभाव और तुलसी के अतिमर्यादित और सुधारवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही प्रयुक्त हुई हैं।

अतः स्पष्ट है कि तुलसी के हृदय में नारी मात्र के प्रति शालीन भावनाएँ थीं। तुलसी नारी को हीन नहीं मानते थे इसीलिए उनके साहित्य में नारी की स्थिति सुदृढ़ और उत्कृष्ट दिखलाई पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१. रामचरितमानस —बाल काण्ड—२लोक।।५।।
२. उमा जे राम चरन रत विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।।
वही —उत्तर काण्ड।।११२ख।।
३. मनुस्मृति ३:७७,६०। गौतम धर्म सूत्र ३।१,३।५, ३।३। बोद्धायन धर्म सूत्र २।६।२६, ४२, ४३ वशिष्ठ (८।१५) शंख सूत्र ५।५-६ —व्यास स्मृति ४।२-४, १३-१४ इनके अतिरिक्त महाभारत में तो गृहस्थ आश्रम का गौरव गान सर्वत्र ही किया गया है। १२।२७०।६-७।
४. ऐपिल-ऑफ हाउस होल्ड —रवीन्द्रनाथ टैगोर (स्टडीज़ इन रामायण) पृ० ६५
५. तैत्तिरीय उपनिषद् १।११।१ में आदेश है कि 'प्रजातन्तुमा व्यवच्छेत्सी' अर्थात् सन्तान रूपी तन्तु का विच्छेद मत करो।
ऋग्वेद ५।४।१० के अनुसार अग्नि से प्रार्थना की गई है—प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम अर्थात हे अग्नि में सन्तानों द्वारा अमृतत्व का उपभोग करूँ। ठीक इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण ५।२।१।१० के अनुसार जब तक पुरुष पत्नी प्राप्त करके संतान नहीं उत्पन्न करता तब तक वह पूर्ण नहीं होता।
६. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१८८।।१
७. वही, ।।२०३।।१
८. वही, ।।२०२।।५
९. गीतावली ।।१२।।
१०. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१९४।।
११. वही, ।।६५।।१, ।।६५।।२, तथा पार्वती मंगल।।८।। जानकी मंगल।।५।।
१२. रामचरितमानस —बाल काण्ड।।१८।।
१३. गीतावली ।।११।।
१४. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।९६।।३
१५. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।९।।३
१६. रामचरितमानस —सुन्दर काण्ड ।।१४।। ३,४
१७. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१८८।। तथा उत्तर काण्ड ।।२३।।२
१८. एकई धर्म एक व्रत नेमा। कायं वचन मन पति पद प्रेमा।। —वही —अरण्य काण्ड ।।४।।५
१९. जानकी मंगल ।।१०४।।
२०. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२५१।।३
२१. वही, ।।३३७।।३
२२. वही. —अयोध्या काण्ड ।।५४।।२
२३. वही, ।।१७४।।
२४. तुलसी दास और उनका युग —राजपति दीक्षित, पृ० ६४
२५. वही, पृ० ६३
२६. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।५५।।२
२७. वही, ।।८क।।
२८. रामचरितमानस-उत्तर काण्ड ।।७।।४
२९. वही —अयोध्या काण्ड ।।७६।।३
३०. बड़ि प्रतीति गठिबंध तें बड़ो जोग ते छेम। बड़ो सुसेवक साइं ते बड़ो नेम तें प्रेम।। साहब तें सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान। —दोहावली ४७३,५२८
३१. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।३३०।।२,३
३२. वही —अयोध्या काण्ड ।।९६।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३३. लाडो माँग होय सो मांग राम रथ हांक दिया।
मैं तो माँगू कौसल्या सी सास ससुर राजा दशरथ से।
मैं तो वर माँगू श्री राम देवर छोटे लछमन से।
मैं तो मांगूँ अयोध्या का राज सरजू तो माँगू नहाने को।"
—उत्तर प्रदेश का प्रचलित लोक गीत

३४. तुलसीदास और उनका युग —राजपति दीक्षित पृ० ६७

३५. अयोध्या काण्ड ।।२७।।३

३६. वही, ।।५४।।२

३७. वही, ।।७२।।१

३८. वही, ।।६५।।२

३९. वही, ।।७३।।३, ।।७६।।२ तथा दोहावली।।५४०।।

४०. वही, ।।३१४।।३,४

४१. पार्वती मंगल ।।१२४-१२६।।

४२. गीतावली —सुन्दर काण्ड ।।२६।।

४३. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।३४६।।१,२

४४. वही, ।।३५२।।२

४५. वही, ।।३५४।।४

४६. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।३५७।।२

४७. वही —अयोध्या काण्ड ।।५६।।४ तथा ।।८१।।३

४८. वही, ।।८१।।३

४९. वही, ।।१८।।१,२

५०. वही —बालकाण्ड ।।१०६।।२, १४७।१, ।।३२३।।२

५१. कवितावली —अयोध्या काण्ड ।।६।।

५२. वही —लंका काण्ड ।।१८,२१।।
तथा देखिए—रामचरितमानस —लंका काण्ड ।।३५।।५

५३. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२५।।२,४

५४. वही, बालकाण्ड ।।६४।।४, ।।६५।।, १,२

५५. पार्वती मंगल ।।६।।

५६. जानकी मंगल ।।५।।

५७. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।७०।।३
तथा देखिए—पार्वती मंगल ।।१०।।

५८. पार्वती मंगल ।।२०।।

५९. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२४४।।१,२
तथा जानकी मंगल ।।६४।।

६०. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२२८।।३,४

६१. वही ।।२५७।।१

६२. जानकीमंगल, ।।४६।।,५४।।

६३. पार्वतीमंगल ।।१२।।, ।।१५।।

६४. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।६७।।१

६५. वही, ।।७१।।३,४ तथा पार्वतीमंगल ।।२५।।

६६. वही, ।।२१३।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६७. पार्वतीमंगल ।।१४७।। तथा जानकीमंगल ।।१७५।।
६८. पार्वतीमंगल ।।१४७।।
६९. वही, ।।१४६।।
७०. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।६८।।१
७१. जानकीमंगल ।।२१४।। तथा रामचरितमानस—बाल काण्ड ।।३५२।।३
७२. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२८६।।१
७३. वही —बाल काण्ड ।।१७७।१,२
७४. वही —अरण्य काण्ड ।।१७।।२
७५. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।७क।।३
७६. वही —उत्तर काण्ड ।।२०।।४
७७. वही —बाल काण्ड ।।२७।।३-५
७८. दोहावली ।।१६६।।
७९. नीति सम्बन्धी विचारों के लिए —मानस-बाल काण्ड ।।१७०।।, अयोध्या काण्ड।।३०४-३०५, ३१४,३१५।। अरण्य काण्ड ।।२०ख।।३-६, ।।१८।।७,२१क।। किष्किंधा काण्ड।।८।।४,५, लंका काण्ड ।।५।।३, ।।२३ग।।, उत्तर काण्ड ।।१९ग।।३,४ राज्य कार्य सम्बन्धी विचारों के लिए दोहावली ।।५०७,५१६,५१७,५२०,५२३,५२५,५३०।।
८०. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१३।।२,३
८१. वही, ।।१६।।४,।।१७।।१,२
८२. वही —अयोध्या काण्ड ।।२७५।।२,३
८३. वही —उत्तर काण्ड ।।१९ख।। छंद २
८४. वही —अयोध्या काण्ड ।।२५।।१-३
८५. वही, ।।३१।।१
८६. वही —किष्किन्धा काण्ड ।।६।।, ।।१४।।५
८७. वही —किष्किन्धा काण्ड ।।८।।४
८८. वही —बाल काण्ड ।।१२२।४
८९. वही —लंका काण्ड ।।६।।, ।।७।।
९०. वही —सुन्दर काण्ड ।।२०ख।।३, ।।२१क।।
९१. वही —लंका काण्ड ।।१०।।२-४
९२. वही, ।।९९।।
९३. वही —बाल काण्ड ।।१७७।१,२
९४. वही, ।।१८२ख।।
९५. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी —भूमिका, पृ० ६
९६. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१६६।३, ।।१६८।।
९७. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी —भूमिका पृ० १
९८. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१४२।।१
९९. वही —अरण्य काण्ड ।।३५।।३,४ तथा
"पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।। मानस—उत्तर काण्ड ।।८७क।।
१००. सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग,
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत विवेक विराग।। मानस —अयोध्याकाण्ड।।१७२।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१०१. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१७१।।४ तथा —किष्किन्धा काण्ड ।।६।।५
१०२. वही —उत्तर काण्ड ।।३६।।
१०३. वही ।।२१।।४
१०४. वही —अयोध्या काण्ड ।१६८।।२, उत्तर काण्ड ।।१००ख।।२ तथा ।।६६ख।।४
१०५. वही —अयोध्या काण्ड।।७०।।३
१०६. वही, ।।१७४।।, १७६।।२
१०७. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१२२।।४
१०८. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २४-२५
१०९. तुलसीदास-माताप्रसाद गुप्त — पृ० ५०८
११०. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३४
१११. तुलसी और उनका युग —राजपति दीक्षित पृ० ६३
११२. हिन्दी नवरत्न मिश्र बन्धु कृत पृ० १०६
११३. विनय पत्रिका —पद ।।१७४।।
११४. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल —काशी सं० १९६०, पृ० ३१
११५. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।२०।।२,४
११६. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।१६३।।, १—।।१६७।।३, तथा ।।२१६।।२
११७. वही —बाल काण्ड ।।२४०।।
११८. वही ।।२०३।।२
११९. वही —किष्किन्धा काण्ड ।।८।।४
१२०. वही ।।८।।५
१२१. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१०१।। छंद तथा ।।३३३।।२,३
१२२. वही ।।४८।।२, ।।५०।। तथा वही —अरण्य काण्ड ।।४।।२
१२३. वही —बाल काण्ड ।।२५८।।३,४ तथा ।।२४४।।२
१२४. वही ।।७२।।४ तथा पार्वतीमंगल ।।३६।।
१२५. वही ।।७०।।२,३ तथा पार्वतीमंगल ।।१०।।
१२६. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२५१।।२,३ तथा पार्वतीमंगल ।।८।।
१२७. वही ।।६४।।४, ।।६५।।१,२ तथा पार्वतीमंगल ।।६।।
१२८. पार्वतीमंगल ।।८८।।
१२९. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२३०।।२,३
१३०. वही, ।।६०।।१ तथा ।।२२३।।४ और।२४०।
१३१. रामलला नहछू ।।५-१८।।, गीतावली—बाल काण्ड।। १-६ ।।, उत्तर काण्ड ।।१८,१६,२१।।
१३२. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड।।४८।।२ ।।५०।।१ तक ।।८४।।
१३३. कवितावली —अयोध्या काण्ड ।।२८।।
१३४. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२४१।।२
१३५. वही ।।१६६।।३
१३६. वही —उत्तर काण्ड ।।३६।। तथा किष्किन्धा काण्ड ।।८।।४
१३७. रामायण कालीन समाज—शान्ति कुमार नानूराम व्यास पृ० १६६-२००
१३८. वही, पृ० १६४,२००
१३९. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।२१।।४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

७ अध्याय

तुलसी के नारी पात्र

कवि की प्रतिभा और भावना का अनुमान केवल इसी बात को देखकर लगाया जा सकता है कि काव्य में चित्रित पात्रों का चरित्रांकन कैसा हुआ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुलसी साहित्य में सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण अपने ढंग का अनोखा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि "चरित्र-चित्रण में तुलसी दास की तुलना संसार के गिने-चुने कवियों से की जा सकती है।"[1] तुलसी साहित्य में समस्त चरित्र अपना निजी महत्त्व रखते हैं। प्रायः सभी पात्रों के प्राणों में अलौकिकता एवम् दिव्यता का स्पन्दन है। प्रत्येक सत् पात्र का रूप श्रेष्ठतम आदर्श की छेनी से तराशा और सँवारा गया है। प्रत्येक के अन्तर में स्थित आत्मा राम-भक्ति के दिव्य आलोक से आलोकित है। तुलसी के राम परात्पर ब्रह्म हैं[2] इस बात को न तुलसी ने स्वयं कहीं भुलाया है और न ही पाठकों को भूलने दिया है। उनके समस्त पात्र भी राम के भक्त पहले हैं और राम के सम्बन्धी बाद में। राम से सम्बन्धित प्रत्येक पात्र प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में उनका भक्त है और उनको ईश्वर मानता है। राम के निकट सम्बन्धी माता-सुमित्रा, पिता-दशरथ, श्वसुर-जनक, पत्नी-जानकी एवम् भाई लक्ष्मण व भरत आदि, उनके समस्त भक्त और अनुगत शबरी, जटायु, हनुमान, सुग्रीव आदि यहाँ तक कि उनके शत्रु और विरोधी परशुराम, बालि, मारीच और स्वयं रावण भी उनमें ईश्वरत्व को मानते हैं। इस प्रकार के चरित्र भौतिक कम और आध्यात्मिक अधिक हो उठे हैं। यही कारण है कि उनके पात्रों में अधिक अन्तर्द्वन्द्व देखने को नहीं मिल सकता और न ही उन्हें मनोवैज्ञानिक तुला पर तोला जा सकता है। हाँ, यदि हमें आदर्श के उच्चतम सोपान तक पहुँचना है तो वह केवल तुलसी साहित्य के द्वारा ही सम्भव है। जीवन के विभिन्न आदर्शों को तुलसी के एक मात्र ग्रन्थ रामचरितमानस में ही प्राप्त किया जा सकता है।

तुलसी की नारी भावना के गहन एवं व्यापक अध्ययन के लिए परमावश्यक है कि उनके सभी नारी पात्रों के चरित्रों की व्यापक व्याख्या की जाये। निःसन्देह तुलसी एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अद्वितीय चित्रकार हैं जिनकी सशक्त तूलिका से सुकोमल और चिर शाश्वत नारी पात्रों का चरित्र एक नवीन और प्रभावशाली ढंग से उभर कर पाठकों के सम्मुख आया है। तुलसी साहित्य के लगभग सभी नारी पात्र—सीता, पार्वती, मैना, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सुनयना, अहल्या, मन्दोदरी और शबरी आदि भारतीय जनता के चिर-परिचित पात्र हैं। तुलसी की नारी भावना को समझने के लिए उनके साहित्य में चित्रित समस्त नारी पात्रों की रूप-रेखा और उनके विकास से परिचित होना आवश्यक है। मानस तुलसी का प्रमुख ग्रंथ है और मानस में लगभग वे सभी पात्र एक साथ प्राप्त हो जाते हैं जो अन्य ग्रन्थों में बिखरे हुए हैं। अतः मानस के अतिरिक्त यदि किसी पात्र विशेष का चरित्र अन्य ग्रन्थों में उल्लेखनीय है तो उसका दिग्दर्शन भी साथ ही साथ किया जायेगा।

सीता—रामचरितमानस की प्रधान स्त्री-पात्र सीता है, जो तुलसी के इष्टदेव राम की प्रियतमा, सती-शिरोमणि, विदेहराज जनक की कन्या और रघुकुल भूषण राजा दशरथ के पुत्र पुरुषोत्तम राम की आदर्श पत्नी है। तुलसी साहित्य में जिस प्रकार राम परम-ब्रह्म-परमात्मा के अवतार अंकित किए गये हैं, उसी प्रकार सीता भी ब्रह्म की आदि शक्ति महामाया का अवतार मानी गई हैं।[३] अतः जैसे राम ब्रह्मत्व के तेज से युक्त अलौकिक और दिव्य गुणों से विभूषित पुरुषोत्तम रूप में नरत्व के उत्कृष्टतम गुणों की सीमा हैं, वैसे ही जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली जगज्जननी परमशक्ति स्वरूपा सीता[४] दैवी गुणों से आवेष्टित नारी आदर्श के उच्चतम सोपान की अद्वितीय विवेचना हैं। फलस्वरूप समस्त तुलसी साहित्य में सीता के चरित्र के दो रूप परिलक्षित होते हैं—

१. भगवान् परम ब्रह्म की परम शक्ति रूप में सीता का पारलौकिक रूप।

२. भारतीय नारी के आदर्श से युक्त लौकिक रूप।

१. ब्रह्म की परम शक्ति रूप में सीता के पारलौकिक स्वरूप की विवेचना तुलसी साहित्य में दो प्रकार से की गई है। एक तो कवि उक्तियों द्वारा दैवी तत्त्व के आरोपण एवं वन्दना, उपासना आदि के रूप में और दूसरी सीता के जीवन की अलौकिक चमत्कारिक, अतिमानवीय घटनाओं और उनके दिव्य कृत्यों द्वारा प्रस्फुटित उनके चरित्र की दैवी शक्तियों के द्वारा। रामचरितमानस के प्रथम सोपान बालकाण्ड के पाँचवें श्लोक में ही तुलसी सीता के महाशक्तित्व की उपासना करते हुए दृष्टिगत होते हैं—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।
मानस —बालकाण्ड, श्लोक।।५।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और सीता के इस रूप का निर्वाह तुलसी ने सर्वत्र ही किया है।

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।१२५।। छंद

पुनः निर्मल मति पाने के लिए राम प्रिया जगज्जननी सीता के चरणों की उपासना करते हुए तुलसी कहते हैं—

जनक सुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।

मानस —बालकाण्ड।।१७।।४

तथा ब्रह्मादि देवताओं द्वारा वन्दित जगदम्बा सीता की ही कृपा के समस्त देवता आकांक्षी रहते हैं—

उमा रमा ब्रह्मादि वंदिता। जगदम्बा संततमनिंदिता।।

मानस —उत्तर काण्ड।।२३।।५

जासु कृपा कटाछु सुर चाहत चितव न सोई।
राम पदारविंद रति करति सुभावहि खोई।

वही ।।२४।।

यही नहीं और भी अन्य अनेक स्थलों पर सीता के जगज्जननीत्व एवं परम शक्ति युक्त महामाया स्वरूप का प्रतिपादन किया है।[५] जहाँ-जहाँ भी परमब्रह्म है वहीं-वहीं यह परम शक्ति अभिन्न रूप से उनके साथ दृष्टिगत होती है—

फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर वेषा।
जहं चितवहिं तहं प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना।।

मानस —बालकाण्ड।।५३।।

इसी प्रकार कठोर तप करने के बाद जब देवी शतरूपा और मनु को भगवान् दर्शन देते हैं तब भी आदि शक्ति सहित ही विराजमान हैं—

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला।।

मानस —बालकाण्ड।१४७।।१

जासु अंस उपजहिं गुनखानीं अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।।

वही ।।१४७।।२

यह सारा संसार ही सीताराममय है। सीता-राम के अभिन्नत्व से ही इसका निर्माण हुआ है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ वासी।।
सीय राममय सब जग जानी। करउं प्रनाम जोरि जुग पानी।।

वही ।।७घ।।१

ब्रह्म और उसकी शक्ति जैसे अभिन्न हैं उसी प्रकार राम और सीता भी कहने के लिए ही भिन्न हैं परन्तु वास्तव में वे अभिन्न ही हैं—जैसे जल और उसकी लहर, वाणी तथा उसके अर्थ—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।।

वही ।।१८।।

इसके अतिरिक्त सीता के और भी अनेकानेक अलौकिक स्वरूप और दैवी-कृत्यों द्वारा कवि सीता के महामाया रूप का पोषण करते हैं। पुष्प वाटिका में गौरी पूजन को आई हुई सीता सखी द्वारा अनुपम छवि वाले राजकुमारों का वर्णन सुनकर ही पुरातन प्रीति परम शक्ति रूप में परम प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम में लीन हो जाती हैं जिसे कोई देख नहीं सकता[६] "सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत।" (वही ।।२२६।।) क्योंकि उन्हें नारद वचन (जो विष्णु से नारद ने शाप देते हुए कहे हैं कि तुम्हें नर रूप में जन्म लेना होगा) याद आ जाते हैं।

सीता के इस अलौकिक एवं चमत्कारिक रूप के पुनः दर्शन तब होते हैं जब भरत मिलन के अवसर पर सीता सासुओं से मिलती हैं और सब सासुओं की एक साथ ही (अनेक बनकर) सेवा करती हैं—

सीय सासु प्रति वेष बनाई। सादर करई सरिस सेवकाई।।[७]
लखा न मरम राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ।
सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं।

इसके बाद सीता के चरित्र की परम विचित्रता तब लक्षित होती है, जब राम सीता से कहते हैं कि मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा इसलिए जब तक मैं निशाचरों का संहार करूँ तुम अग्नि में निवास करो इस पर—

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी।
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता।[८]

यही नहीं देवी सीता की आज्ञा पर समस्त ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं।[९]

इसके अतिरिक्त लंका विजय के उपरान्त सीता की आग्नि परीक्षा भी उनके चरित्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की एक अति अलौकिक घटना है। जलती हुई चिता में प्रविष्ट हो जाना और तब अग्नि का शरीर धारण करके सीता का हाथ पकड़कर उन्हें श्री राम जी को समर्पित कर देना[११] आदि बातें सीता के अति मानवीय रूप की पोषक हैं। कवि ने जहाँ सीता के सहज सुकोमल लौकिक नारी रूप की अभिव्यंजना की है वह भी अद्वितीय अनुपम और भारतीय नारी का श्रेष्ठतम आदर्श है।

लौकिक रूप में सीता पवित्र निमिवंश के योगी राजा जनक की परम पावन पुत्री हैं। सूर्य कुलभूषण महाराजा दशरथ की कुल-वधू और पुरुषोत्तम राम की परम प्रिया पति परायणा सीता का दिव्य सौन्दर्य से विभूषित चरित्र वास्तव में नारीत्व के समस्त गुणों की चरम अभिव्यक्ति है। जहाँ सीता के बाह्य (शारीरिक) दिव्य, सुकोमल सौन्दर्य की छटा सार्वभौमिक आकर्षण का केन्द्र है वहाँ उनके अन्तर (मन) की शील सौरभ संयुक्त सुन्दरतम विभूतियाँ हृदय को अनायास ही हरण कर लेती हैं जिससे प्रेरित होकर डॉ० ग्रियर्सन ने भी सीता के चरित्र में पूर्ण नारीत्व का सुनियोजन देखा है।[१२]

कुल-कन्या रूप की प्रथम झाँकी में अपरिमित शील सदाचार से युक्त स्वाभाविक संकोच, अद्वितीय सौन्दर्य और सहज औत्सुक्य से परिवेष्टित नारी सुलभ सलज्जता एवम् विनम्रता से विभूषित सीता की जिस पावन मुद्रा के दर्शन होते हैं वह वास्तव में अत्यधिक आकर्षक है।

मानस में सर्वप्रथम माता की आज्ञा से सखियों को लेकर गौरी पूजन के लिए पुष्प चयन करती हुई और प्रसन्न मन सखियों सहित सरोवर में स्नान एवम् पवित्र भाव से गौरी पूजन करती हुई सुशील एवम् सदाचारिणी कन्या के रूप में सीता के दर्शन होते हैं। सखी द्वारा पुष्प वाटिका में आए हुए राम-लक्ष्मण के मनोरम रूप का बखान सुनकर सीता के मन में सहज उत्कण्ठा जाग्रत हो जाती है परन्तु वह सुशील कन्या संकोचवश कुछ भी नहीं कहती। सखियों द्वारा यह सुनकर कि वे राजकुमार (राम और लक्ष्मण) देखने योग्य हैं चलो उन्हें देखना चाहिए तब वह अपरिमित संकोच से भरकर अपनी प्रिय सखी को अपने आगे करके ही चलती है।[१३]

सीता का सौन्दर्य अलौकिक और अद्वितीय है जिसे देख राम भी अपनी सुध-बुध खो देते हैं—

देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई।।
सुन्दरता कहुं सुंदर करई। छविगृहँ दीपसिखा जनु बरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं विदेह कुमारी।।[१४]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीता का सौन्दर्य ऐसा ही अनुपमेय था जिसे देखकर स्वभाव से ही पवित्र राम का मन भी क्षुब्ध हो गया।[१५] सीता भी राम के रूप को देखकर मन में धारण कर तुरन्त ही नेत्र मूंद लेती हैं—"लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।"[१६] संकोच एवम् लज्जा से सीता के नेत्रों को बन्द हुआ जानकर चतुर सखी विनोदपूर्वक कहती है—

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू।।[१७]

और सलज्ज सीता तब—

सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघु सिंघ निहारे।

और पुनः सखी द्वारा विनोद किए जाने पर कि "अब चलो कल फिर इसी समय आयेंगी।" सीता सकुचाती हुई तथा विलम्ब हो जाने से माता का भय मानती है—

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ विलंबु मातु भय मानी।।
धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितुबस जाने।[१८]

वह मर्यादाशील कन्या सीता प्रियतम राम को हृदय में धारण कर तुरन्त लौट पड़ती है परन्तु लौटते-लौटते मग, पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने मुड़कर रघुवीर जी की छवि को निहारती है।[१९] ऐसे पवित्र प्रेम को धारण कर सीता पुनः गौरी के मन्दिर में जाती हैं और अति विनम्र भाव से पार्वती की स्तुति करते हुए मनोवांछित आशीष पाती हैं। सीता का यह कुल कन्या रूप मर्यादा, संकोच, सलज्जता और पावनता से परिपूरित, अति सुकुमार और आकर्षक है। स्वयंवर के अवसर पर इसी सुन्दरी रूप की पुनः झाँकी मिलती है। स्वाभाविक रूप से ही चकित चित्त से राम की ओर देखती हैं परन्तु तुरन्त ही—

गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि विलोकन सखिन्ह तन रघुवीरहि उर आनि।।

मानस —बालकाण्ड।।२४८।।

और राम की सुन्दर शोभा देखकर फिर पिता के प्रण का स्मरण कर मन ही मन सोचने लगती हैं—"अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानि।।"[२०] मन में प्रेम की दृढ़ प्रतीति है और तन में भारी संकोच। वाणी के मौन पर मन की मुखरता लिए सीता जिस-तिस देवता को मन ही मन मना रही हैं—

गन नायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउं तुअ सेवा।।
बार बार विनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी।।

वही ।।२५६।४

इस प्रकार आकुल-व्याकुल सीता मन ही मन शिव, पार्वती यहाँ तक कि शिव धनुष से ही प्रार्थना करने लगती हैं कि किसी प्रकार धनुष हल्का हो जाए। सीता का मन अत्यधिक सन्तप्त है परन्तु संकोचवश वे कुछ कह नहीं पातीं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी।
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना।।

वही ।।२५८।।१

परन्तु मन की व्याकुलता भी उन्हें संकोच में डाल रही है—

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी।
तन मन वचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा।।
तौ भगवानु सकल उर वासी। करिहि मोहि रघुवर के दासी।
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।।

वही ।।२५८।२,३

इस प्रकार प्रेम के दृढ़ आधार को पाकर वे राम को प्राप्त करती हैं परन्तु प्राप्य को सम्मुख खड़ा देखकर भी जयमाला पहनाते समय पुनः उनका स्वाभाविक संकोच उन्हें असमर्थ सा बना देता है। सखियाँ बार-बार कहती हैं कि सीता माला पहनाओ तब किसी प्रकार वे जयमाला पहनाती हैं। सीता का यह पुत्री रूप परम-पावन, संकोच, मर्यादा से परिपूरित और अत्यधिक स्वाभाविक बन पड़ा है।

अपने पितृ गृह में सीता माता-पिता की लाडली, सम्पूर्ण परिवार और पुरजनों की प्रिय है। यहाँ तक कि विदा के अवसर पर सीता की लालिता-पालिता सारिकाएँ और तोते भी व्याकुल होकर पुकारने लगे—"वैदेही कहाँ है ?"[२१] ऐसी प्राण प्रिया पुत्री की विदा पर परम ज्ञानी पिता विदेहराज जनक भी रो पड़ते हैं।[२२] सीता पितृकुल से समस्त स्त्रीजनोचित गुण और कुल कन्याओं के शील को सीखकर रघुकुल की वधू बनीं। जहाँ माता कौशल्या के लिए भी वह नेत्रों की पुतली और जीवन की आधार बन गई—

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई।।
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहि लाई।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।५८।।१

सीता का कुल-वधू रूप भी उसी शील, संकोच और स्नेह के अमृत से अभिसिंचित है। साथ ही वह पति के पावन प्रेम से परिपूरित पति-परायणता और अनन्य पति भक्ति से युक्त भारतीय नारी का मूर्त आदर्श है। जिनका रूप मनोहारी, मधुर और सरस है। राम के वन गमन का समाचार सुनकर सीता व्याकुल होकर सास के सम्मुख आती है परन्तु संकोच और प्रेम वाणी को मौन और हृदय को मुखर बनाए हुए हैं—

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ।।

वही ।।५७।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी।।
बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता।
चलन चहत वन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतबु कछु जाइ न जाना।।

वही।।५७।।१,२

और 'चारु चरन नख लेखति धरनी' में जैसे हृदय के संकोच और प्रेम का द्वंद्व मुखरित हो जाता है। माता कौशल्या, अश्रु बहाती सीता को देखकर समझ जाती हैं कि यह भी राम के साथ वन जाना चाहती हैं—

मंजु विलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी।
तात सनुहु सिय अति सुकुमार। सास ससुर परिजनहि पिआरी।।

वही ।।५७।।४

और ऐसी सुकुमारी सीता जो—

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियं न दीन्ह पगु अवनि कठोरा।।
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।।
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा।।
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रवि रुख नयन सकइ किमि जोरी।।

वही ।।५८।।३,४

सौकुमार्य की सीमा हैं, परन्तु उपर्युक्त उद्भावना ममतामयी कौशल्या के आर्द्र मातृ हृदय की विकलता ही है जिसके कारण सीता की सुकुमारता का अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रण किया गया है। माता कौशल्या क्योंकि सीता को राम की विरहावस्था में अपने जीवन का सहारा मानती थीं अतः वे वनों के विभिन्न कष्टों का वर्णन करती हुई सीता को वन के अनुपयुक्त ठहराती हैं—

वन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि विषय सुख भोरी।।
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ।।
कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू।
सिय बन बसिहि तात केहि भांती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।५६।।१,२

पुनः कौशल्या कहती हैं—

जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहं होइ बहुत अवलंबा।।

वही ।।५६।।४

स्पष्ट है कि उपर्युक्त उक्तियाँ केवल ममतामय कोमल मातृ हृदय की कल्पना मात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्यथा वन में सीता न कहीं वानरों को देखकर भयभीत ही हुईं और न ही उन्होंने वन के पथों पर कठोर धरती पर चलते हुए पलंग और हिंडोले का स्मरण ही किया।

सम्भवतः सीता के इसी रूप को देखकर डॉ० नगेन्द्र ने कहा है कि तुलसी ने—"मध्यकालीन हिन्दू परम्परा के अनुसार सीता का गुड़ियानुमा वधू-चित्र ही अंकित किया है।"[२३] उनका विचार है कि राम को हटाकर सीता के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर उनमें वांछित शक्ति और दृढ़ता का अभाव मिलता है। परम पुरुष की आदि शक्ति सीता के व्यक्तित्व में जो शक्ति प्रखरता होनी चाहिए वह तुलसी की सीता में नहीं है, वे राम की छाया मात्र हैं।[२४] वास्तव में सीता के सम्पूर्ण चरित्र पर सूक्ष्म रूप से दृष्टिपात करने पर उपरोक्त आक्षेप उचित प्रतीत नहीं होता। सीता के चरित्र में ओज, गरिमा अथवा व्यक्तिगत स्वाभिमान की कमी नहीं है। अनेक विद्वानों ने इस विचार की पुष्टि की है।[२५] सीता के चरित्र की सुकोमलता, सुकुमारता और संकोचशीलता उनके चरित्र की एक मुद्रा मात्र है। श्यामसुन्दर दास एवं डॉ० बड़थ्वाल के विचारानुसार भी "तुलसी को जो स्वभाव जिस पात्र को देना अभीष्ट रहा है उसे उन्होंने कोमलवय में बीज रूप में दिखलाकर आगे बढ़ते हुए भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उसका नैसर्गिक विकास दिखलाया है।"[२६] इसी कारण वधू सीता के चरित्र में जीवनव्यापी शील की संकोच भरी मुद्रा उनकी प्रकृति का एक अभिन्न अंग बन कर आई है। परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि सीता का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही नहीं है अथवा वह राम की छाया मात्र हैं।

सीता गुड़ियावत् जिस स्थिति में रख दी जाये उसी में बैठी रह जाने वाली निर्जीव पात्र नहीं है वरन् अवसर पड़ने पर दृढ़ता और बलपूर्वक अपनी परिस्थितियों का स्वयं निर्माण करती है। माता कौशल्या हृदय की मातृ भावना से प्रेरित होकर सीता को अपने पास ही रखना चाहती हैं। राम भी अनेक प्रकार से वन के भय दिखलाकर तथा सास-श्वसुर के सेवा धर्म को सिखलाकर सीता को घर ही छोड़ जाना चाहते हैं परन्तु सीता शील की रक्षा करते हुए इसका दृढ़ता से तर्क पूर्वक सफल विरोध करती हैं—

उतरु न आव विकल वैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।
बरबस रोकि विलोचन बारी। धरी धीरजु उर अवनिकुमारी।।
लागि सासु पग कहकर जोरी। छमवि देवि बड़ि अविनय मोरी।।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि विधि मोर परम हित होई।।
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय वियोग सम दुखु जग नाहीं।

मानस—अयोध्या काण्ड।।६३।।२,३,४)

और तब धरणी-पुत्री सीता अपनी प्रखर बुद्धि, अपने अचल मन और अपनी दृढ़

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मान्यताओं के विस्तृत विश्लेषण के अनुरूप ही अपने भविष्य का निर्माण करती हैं, कौशल्या और राम की इच्छानुसार नहीं। वास्तव में राम को हटाकर ही सीता के चरित्र की सबलता और दृढ़ता को देखा जा सकता है। यहाँ आदि शक्ति सीता केवल अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का प्रदर्शन ही नहीं करतीं अपितु अति विनम्र भाव से परम पुरुष राम को उनके पुरुषत्व का पाठ पढ़ाती हुई भी प्रतीत होती हैं—

को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा।।

वही ।।६६।।४

सम्भवतः यह उक्ति राम के कथन—

ब्याल कराल विहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा।
डरपहिं धीर गहन सुधि आएं। मृगलोचिन तुम्ह भीरु सुभाएं।।

वही ।।६२।।२

का सतर्क उत्तर है जिससे स्पष्ट व्यंजित होता है कि सीता राम से यह कहना चाहती है कि तुम अपने पौरुष को क्यों भुला रहे हो ? मैंने तो उस परम पुरुष को वरण किया है, जिसके साथ रहते मुझे कोई भय नहीं है; मैंने तो स्वयं को सिंह की वधू जाना है। अतः स्पष्ट ही यह राम के पौरुष को चुनौती है। पुनः सीता की यह वक्रोक्ति—"मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुं भोगू।।" भी उनकी दृढ़ता, प्रखरता और स्वतन्त्र व्यक्तित्व का परिचय ही देती है। राम को सीता के इस तर्क सम्मत आग्रह को मान कर उन्हें साथ चलने की अनुमति देनी ही पड़ी। साथ-ही-साथ सीता के व्यक्तित्व की शील संयुक्त मर्यादा कहीं भी विच्छिन्न नहीं होती। वन जाती हुई सीता माता कौशल्या की सेवा से वंचित रह जाने के कारण अपने दुर्भाग्य का वर्णन करती हुई देव को दोष देती है तथा अपने मनोरथ सास की सेवा की विफलता पर खेद प्रकट करती हैं।[२७] ऐसी विनम्र वधू को सास का असीमित दुलार और सुखद आशीष प्राप्त होता है—

बारहि बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही।
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।६८।।४

इस प्रकार सीता के चरित्र में शील, सौजन्य और संकोच का निर्वाह सर्वत्र ही हुआ है। राजा दशरथ जब उन्हें घर रह जाने के लिए समझाते हैं तथा गुरु-पत्नी अरुंधती, मंत्री सुमंत्र की योग्य पत्नी और नगर की स्त्रियाँ एवं अन्य सभी लोगों के समझाने पर कि तुम सास-ससुर की इच्छानुसार ही कार्य करो, तुम्हें तो किसी ने वनवास नहीं दिया है इस पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्यथा वन में सीता न कहीं वानरों को देखकर भयभीत ही हुई और न ही उन्होंने वन के पथों पर कठोर धरती पर चलते हुए पलंग और हिंडोले का स्मरण ही किया।

सम्भवतः सीता के इसी रूप को देखकर डॉ० नगेन्द्र ने कहा है कि तुलसी ने—"मध्यकालीन हिन्दू परम्परा के अनुसार सीता का गुड़ियानुमा वधू-चित्र ही अंकित किया है।"[२३] उनका विचार है कि राम को हटाकर सीता के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर उनमें वांछित शक्ति और दृढ़ता का अभाव मिलता है। परम पुरुष की आदि शक्ति सीता के व्यक्तित्व में जो शक्ति प्रखरता होनी चाहिए वह तुलसी की सीता में नहीं है, वे राम की छाया मात्र हैं।[२४] वास्तव में सीता के सम्पूर्ण चरित्र पर सूक्ष्म रूप से दृष्टिपात करने पर उपरोक्त आक्षेप उचित प्रतीत नहीं होता। सीता के चरित्र में ओज, गरिमा अथवा व्यक्तिगत स्वाभिमान की कमी नहीं है। अनेक विद्वानों ने इस विचार की पुष्टि की है।[२५] सीता के चरित्र की सुकोमलता, सुकुमारता और संकोचशीलता उनके चरित्र की एक मुद्रा मात्र है। श्यामसुन्दर दास एवं डॉ० बड़थ्वाल के विचारानुसार भी "तुलसी को जो स्वभाव जिस पात्र को देना अभीष्ट रहा है उसे उन्होंने कोमलवय में बीज रूप में दिखलाकर आगे बढ़ते हुए भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उसका नैसर्गिक विकास दिखलाया है।"[२६] इसी कारण वधू सीता के चरित्र में जीवनव्यापी शील की संकोच भरी मुद्रा उनकी प्रकृति का एक अभिन्न अंग बन कर आई है। परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि सीता का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही नहीं है अथवा वह राम की छाया मात्र हैं।

सीता गुड़ियावत् जिस स्थिति में रख दी जाये उसी में बैठी रह जाने वाली निर्जीव पात्र नहीं है वरन् अवसर पड़ने पर दृढ़ता और बलपूर्वक अपनी परिस्थितियों का स्वयं निर्माण करती है। माता कौशल्या हृदय की मातृ भावना से प्रेरित होकर सीता को अपने पास ही रखना चाहती हैं। राम भी अनेक प्रकार से वन के भय दिखलाकर तथा सास-श्वसुर के सेवा धर्म को सिखलाकर सीता को घर ही छोड़ जाना चाहते हैं परन्तु सीता शील की रक्षा करते हुए इसका दृढ़ता से तर्क पूर्वक सफल विरोध करती हैं—

उतरु न आव विकल वैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।
बरबस रोकि विलोचन बारी। धरी धीरजु उर अवनिकुमारी।।
लागि सासु पग कहकर जोरी। छमवि देवि बड़ि अविनय मोरी।।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि विधि मोर परम हित होई।।
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय वियोग सम दुखु जग नाहीं।
मानस—अयोध्या काण्ड।।६३।।२,३,४)

और तब धरणी-पुत्री सीता अपनी प्रखर बुद्धि, अपने अचल मन और अपनी दृढ़

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मान्यताओं के विस्तृत विश्लेषण के अनुरूप ही अपने भविष्य का निर्माण करती हैं, कौशल्या और राम की इच्छानुसार नहीं। वास्तव में राम को हटाकर ही सीता के चरित्र की सबलता और दृढ़ता को देखा जा सकता है। यहाँ आदि शक्ति सीता केवल अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का प्रदर्शन ही नहीं करतीं अपितु अति विनम्र भाव से परम पुरुष राम को उनके पुरुषत्व का पाठ पढ़ाती हुई भी प्रतीत होती हैं—

को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा।।

वही ।।६६।।४

सम्भवतः यह उक्ति राम के कथन—

ब्याल कराल विहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा।
डरपहिं धीर गहन सुधि आएं। मृगलोचिन तुम्ह भीरु सुभाएं।।

वही ।।६२।।२

का सतर्क उत्तर है जिससे स्पष्ट व्यंजित होता है कि सीता राम से यह कहना चाहती है कि तुम अपने पौरुष को क्यों भुला रहे हो ? मैंने तो उस परम पुरुष को वरण किया है, जिसके साथ रहते मुझे कोई भय नहीं है; मैंने तो स्वयं को सिंह की वधू जाना है। अतः स्पष्ट ही यह राम के पौरुष को चुनौती है। पुनः सीता की यह वक्रोक्ति—"मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुं भोगू।।" भी उनकी दृढ़ता, प्रखरता और स्वतन्त्र व्यक्तित्व का परिचय ही देती है। राम को सीता के इस तर्क सम्मत आग्रह को मान कर उन्हें साथ चलने की अनुमति देनी ही पड़ी। साथ-ही-साथ सीता के व्यक्तित्व की शील संयुक्त मर्यादा कहीं भी विच्छिन्न नहीं होती। वन जाती हुई सीता माता कौशल्या की सेवा से वंचित रह जाने के कारण अपने दुर्भाग्य का वर्णन करती हुई देव को दोष देती है तथा अपने मनोरथ सास की सेवा की विफलता पर खेद प्रकट करती हैं।[२७] ऐसी विनम्र वधू को सास का असीमित दुलार और सुखद आशीष प्राप्त होता है—

बारहि बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही।
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।६८।।४

इस प्रकार सीता के चरित्र में शील, सौजन्य और संकोच का निर्वाह सर्वत्र ही हुआ है। राजा दशरथ जब उन्हें घर रह जाने के लिए समझाते हैं तथा गुरु-पत्नी अरुंधती, मंत्री सुमंत्र की योग्य पत्नी और नगर की स्त्रियाँ एवं अन्य सभी लोगों के समझाने पर कि तुम सास-ससुर की इच्छानुसार ही कार्य करो, तुम्हें तो किसी ने वनवास नहीं दिया है इस पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीता संकोचवश ही मौन रहती हैं कुछ उत्तर नहीं देतीं।[२८] सम्भवतः राम और कौशल्या की अनुमति प्राप्त हो जाने के कारण उन्होंने कुछ उत्तर देना अनावश्यक समझा। परन्तु जब मंत्री सुमंत्र राजा दशरथ का संदेश देते हुए घर लौट चलने का आग्रह करते हैं[२९] और राम भी जब—*पितु संदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि विधाना।।*

वही।।९६।।१

सास ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटैं खभारू।।

वही ।।९६।।२

इस पर सीता जैसे एक बार पुनः राम के विवेक को सचेत करती हुई कहती हैं कि परम पुरुष प्रभु और आदि शक्ति क्या भिन्न-भिन्न हैं। जैसे चन्द्र और चन्द्रिका, सूर्य और सूर्य की प्रभा अभिन्न है वैसे ही मैं और आप भी अपृथक् हैं; आप तो स्वयं परम ज्ञानी और विवेकवान हैं अतः स्वयं सोचें कि मैं आपसे कैसे पृथक् रह सकती हूँ ?[३०] साथ ही मंत्री सुमंत्र को ससुर तुल्य आदर देती हुई विनम्र वाणी से तर्क-संयुक्त उत्तर देकर अपनी प्रखर बुद्धि और दृढ़ता का परिचय देती हैं। पति की सच्ची सहधर्मचारिणी सीता का एक ही दृढ़ उत्तर था कि बिना प्रियतम राम के उनके लिए सम्पूर्ण ऐश्वर्य और भोग विलास तुच्छ एवं त्याज्य हैं। राम के बिना उन्हें मातृ तुल्य सास, प्रभावशाली ससुर, प्रिय कुटुम्बी और अयोध्या का निवास स्वप्न में भी सुखप्रद नहीं है।[३१] यहाँ तक कि परम ऐश्वर्यशाली पिता का घर भी—जो एक प्रकार से सुखों का भण्डार है, पति के विना उन्हें भूलकर भी भला प्रतीत नहीं होता।[३२] इसके अतिरिक्त पति के साथ वन भी उन्हें अपार सुख देने वाला है। अतः वे अति विनम्रता से सुमंत्र से प्रार्थना करती हैं कि—

सासु ससुर सन मोरि हुँति विनय करवि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ।।

मानस —अयोध्या काण्ड।९८।

इस शील और संकोच, दृढ़ता और तर्कपटुता की मिली-जुली प्रतिमूर्ति में क्या मध्ययुगीन गुड़िया वधू की ही भाव भंगिमा का आभास है ? क्या उसमें सजीवता और चेतनता नहीं ? विद्वानों का मत है कि सीता के चरित्र में अलौकिकता के साथ-साथ स्वाभाविकता, आकर्षण और पर्याप्त सजीवता है।[३३] अतः कहा जा सकता है कि यदि शील और संकोच सीता के चरित्र की एक मुद्रा है तो गरिमा, ओज और प्रखर व्यक्तित्व से मंडित पति परायणता उनके चरित्र की प्रमुख विशेषता है। यदि सीता की पति-परायणता को देखकर आलोचक यह सोचें कि सीता की महिमा का वर्णन तुलसी ने केवल राम के नाते से ही किया है[३४] तो यह उनका एकांगी दृष्टिकोण ही है। सीता स्वयं महिमामयी हैं —

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपने दैवी स्वरूप में भी और लौकिक रूप में भी। महिमामयी सीता जगज्जननीत्व की गरिमा से विभूषित ब्रह्म आदि देवताओं से वंदित, सर्वगुण सम्पन्न और सदा अनिन्दित हैं।[३५] देवता भी जिनके कृपा कटाक्ष के आकांक्षी हैं, परन्तु जिनकी और वे देखती भी नहीं, वे ही गौरवमयी जानकी जी अपने महामहिम स्वभाव को छोड़कर श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रीति करती हैं।[३६] इसीलिए तुलसी निर्मल बुद्धि पाने के लिए सीता जी के ही चरणों की उपासना करते हैं—

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।
ताके जुग पद कमल मनावउँ जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।

मानस —बालकाण्ड।।१७।।४

और विनय पत्रिका में अम्बा जानकी से ही अपनी सिफारिश करने की प्रार्थना करते हैं।[३७] इसके अतिरिक्त जनकपुर में राजा दशरथ के बारात सहित आने पर सीता अपनी महिमा का प्रदर्शन करती हैं—

जानी सियं बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई।।
हृदयं सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई।।

मानस —बालकाण्ड।।३०५।।४

सिद्धि सब सिय आयसु अकनि गई जहाँ जनवास।
लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग विलास।।

वही।।३०६।।

राम भी सीता की इस महिमा को देखकर हर्षित होते हैं।[३८] अतः यह नहीं माना जा सकता कि राम के बिना सीता की कोई महिमा ही नहीं है। लौकिक रूप में भी सीता अपनी चारित्रिक गरिमा की ऊष्मा से तेजमयी हैं। जब रावण सीता का हरण करने आता है तब उसके नाम और भयंकर रूप को देखकर यद्यपि सीता भयभीत सी हो जाती हैं तथापि उनका स्वाभिमान युक्त वाक्य सुनकर जगत्-प्रसिद्ध बली राक्षसराज रावण भी नतमस्तक हो जाता है—

जिमि हरिवधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाथ।
सुनत वचन दससीस रिसाना। मन महुं चरन बंदि सुख माना।।

मानस —अरण्य काण्ड ।।२७।।८

रावण के क्रोधित होने का कारण स्वयं को क्षुद्र खरगोश और राम को सिंह कहना है। परन्तु सती के ओज के सम्मुख तो उसे मन ही मन प्रणाम करना पड़ा। अतः सीता का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही नहीं है ऐसा नहीं माना जा सकता। सीता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का गरिमामय साहस पूर्ण व्यक्तित्व तो लंकेश की नगरी में भी उतनी ही उग्रता और प्रखरता से अभिव्यंजित हुआ है।

मिश्र बन्धुओं ने सीता के शील गुण में पति-प्रेम और समय प्रकृति को प्रधान माना है।[३६] सीता का चरित्र आदर्श पतिव्रत का प्रतिनिधित्व करता है इसमें दो मत नहीं हैं। उनके चरित्र में भीरुता का भ्रम केवल भ्रम ही है। मिश्र बन्धुओं ने सीता की उक्ति—"मास दिवस बीते मोहिं मारिहि निसिचर पोच।" उद्धृत करते हुए कहा है कि रावण ने एक मास में वध करने की इन्हें धमकी मात्र दी थी परन्तु इनको सचमुच डर मालूम हुआ।[३७] यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता। क्या सीता मृत्यु के भय से भयभीत थीं अथवा उनके स्वभाव में भीरुता थी ? रावण सीता को अनेक प्रकार के साम, दाम, भय, भेद आदि दिखलाकर मन्दोदरी आदि सब रानियों को सीता की दासी बनाने का प्रणपूर्वक वचन देकर सीता को पटरानी पद देने का प्रलोभन देता है।[३९] तब तेजस्विनी स्वाभिमानि सीता दर्पपूर्ण वाणी में यही कहती हैं—

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुं कि नलिनी करइ विकासा।।

मानस —सुन्दर काण्ड ।।८।।४

और भी —*सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।*

वही।।८।।५

शठ, अधम, निर्लज्ज जैसी अपमान जनक कटु-वाणी का प्रयोग सीता महाबली राक्षसराज रावण के लिए उसके सम्मुख ही उसी की नगरी में बैठकर करती है। क्या इससे भी सीता की भीरुता ही प्रकट होती है ? इस पर खीजकर रावण—

आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान।
पुरुष वचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन।।

मानस—सुन्दर काण्ड।।९।।

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी।।

वही ।।९।।१

इसके उत्तर में भी सीता की जो वाणी प्रस्फुटित होती है उसमें न तो कहीं भीरुता है और न खेद ! वरन् असीम साहस से परिपूरित होकर जैसे वे दृढ़ता पूर्वक रावण को चुनौती देती हैं—

स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।।

वही ।।९।।२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ये वचन क्या सीता के भीरु स्वभाव और परतन्त्र व्यक्तित्व के परिचायक हैं अथवा सीता के हृदय के मृत्यु भय की अभिव्यंजना करते हैं ? जहाँ तक 'मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच' की भावना है तो यह सीता का मृत्युभय नहीं है क्योंकि सीता तो राम के असह्य वियोग से मुक्ति प्राप्त करने के लिए स्वयं ही मृत्यु की आकांक्षा करती हैं।[१२] अतः उपरोक्त उक्ति सीता के क्षोभ की परिचायक है कि नीच रावण के हाथों मरना पड़ेगा। अन्यथा वे मृत्यु से भयभीत नहीं थीं क्योंकि तुरन्त ही वे त्रिजटा से चिता बना देने की प्रार्थना करती हैं जिससे रावण की शूलवत् निर्लज्ज वाणी न सुननी पड़े।[१३] अतः सीता भीरू नहीं वरन् परम तेजोमयी महिमामयी एवं स्वाभिमानी नारी के रूप में अंकित की गई हैं।

राम द्वारा अग्नि परीक्षा आदि के अवसर पर प्रतिरोध में एक भी शब्द न कहकर स्वाभिमान की गरिमा से युक्त मन, कर्म और वचन से पावन सीता जैसे ओज पूर्ण वाणी में लक्ष्मण को आज्ञा देती हैं—

लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह देगी।।

मानस —लंका काण्ड।।१०८।।१

इस वाणी में न तो गिड़गिड़ाहट है, न क्षोभ, न लज्जा और न ग्लानि। यह तो सीता की दर्पमयी वाणी है जो विरह की गरिमा, विवेक के ओज, धर्म की पावनता और नीति की मर्यादा से ओत-प्रोत है—

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिवेक धरम निति सानी।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ।।

मानस—लंका काण्ड।।१०८।।२

और प्रज्वलित अग्नि शिखाओं में तप कर निष्कलंक सीता ओज, तेज, गरिमा और लावण्य की प्रतिमूर्ति के रूप में परम वन्दनीय और अभ्यर्थनीय है जिनकी पावनता की साक्षी स्वयं अग्नि देवता प्रगट होकर देते हैं।[१४] वास्तव में तुलसी ने सीता के रूप में भारतीय नारी का शास्त्रीय आदर्श प्रस्तुत किया है।

पतिव्रत के असीमित तेज, गौरव की दीप्ति और स्वाभिमान की गरिमा से महामहिम सीता अभिमान और दम्भ से भी रहित हैं। विशाल साम्राज्य की साम्राज्ञी बनकर भी सीता वही शील संयुक्त, संकोचशीला वधू हैं—

कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं।

मानस —उत्तर काण्ड।।२३।।४

और — *जद्यपि गृहं सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा विधि गुनी।*
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।

वही ।।२३।।३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः सीता का चरित्र सर्वत्र—

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील विनीता।।

वही ।।२३।।२

के रूप में ही चित्रित किया गया है। सीता केवल पति के अनुकूल आचरण करने वाली ही नहीं हैं वरन् —'अतिसय प्रिय करुनानिधान की', 'रघुवीर प्रिय', 'पियहिं-पियारी' और 'पति प्रेम पुनीता' होकर, प्रिय के हृदय की सम्पूर्ण भावनाओं को जानने वाली भी हैं। नाव से पार उतारने पर जब राम संकोच में पड़े हैं कि केवट को कुछ उतराई नहीं दी तब—

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी।

सीता का यह आचरण उनकी पतिपरायणता और पति के साथ एकात्मता एवं अभिन्नता का परिचायक है। राम सीता के इसी गुण और विशिष्टता की पुष्टि करते हुए ही उन्हें संदेश भेजते हैं—

तत्व प्रेम कर मम अरू तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।।

मानस —सुन्दर काण्ड।।१४।।३

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं।।

वही।।१४।।४

इस प्रकार सीता सब प्रकार से भारतीय नारी का मूर्त आदर्श हैं जो पिता और पति दोनों कुलों को पवित्र करने वाली हैं और जिनका नाम पतिव्रत धर्म का प्रेरक है।[४५]

सीता की कीर्ति रूपी नदी—

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह विधि अंड करोरी।
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे ।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।२८६।।२

इसप्रकार देव नदी गंगा की महिमा से भी अधिक महिमामयी है। ऐसी महिमामयी सीता तुलसी की अधिष्ठात्री देवी और उनके द्वारा सर्वत्र वन्दनीय और पूजनीय है।

आलोचकों का विचार है कि तुलसी दास ने सीय त्याग एवं लव-कुश उपाख्यान जान बूझकर इस कारण उड़ा दिए कि उससे श्री राम की निन्दा होती।"[४६] परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि राम निन्दा के भय के कारण ही नहीं अपितु सीता त्याग का प्रसंग तुलसी को इसलिए अवांछित था कि वे सीता सी महामहिम पत्नी का त्याग अनुचित मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने मानस को सुखान्त ही रखा क्योंकि यह करुण प्रसंग हृदय को म्लान करने वाला था। गीतावली में तुलसी ने इस प्रसंग का उल्लेख किया है और राम के दोष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का परिहार करने का सफल प्रयास भी किया है।[४७] राम सीता के प्रेम और पवित्रता को जानते थे और वन भेजते समय उनके मन में बहुत सन्ताप भी था।[४८] परन्तु लोक मर्यादा के कारण ही उन्हें सीता को त्यागना पड़ा। यद्यपि उनका अपराध झूठा ही था—

झूंठे अघ सिय परिहरी तुलसी साइं ससंक।।

दोहावली ।।१६६।।

सीता का यह त्याग निश्चय ही तुलसी के हृदय को क्षुब्ध करने वाला था जिसकी आभेव्यंजना तुलसी ने गीतावली में की है। वाल्मीकि सीता को देखकर अनुमान से सभी बाते जान लेते हैं और सीता का सहस्रों प्रकार से सम्मान करते हैं किन्तु यह विचार कर कि सम्पूर्ण सद्गुणों के धाम और सीमा राम ने यह क्या किया ? वे क्षुब्ध हो गए।[४९] यह क्षोभ सीता त्याग के अप्रिय प्रसंग से उत्पन्न तुलसी का ही क्षोभ है, राम की निन्दा का भय नहीं क्योंकि उनके राम तो परम पुरुष भगवान ही हैं। अतः स्पष्ट है कि मानस में सीता त्याग के प्रसंग को स्थान न देने का कारण उसे सुखान्त बनाना और सीता त्याग के अवांछनीय और अनुचित प्रसंग को निकाल देना ही है। इससे भी तुलसी के हृदय में नारी के प्रति न्यायोचित भावना का ही प्रदर्शन होता है।

गीतावली में परित्यक्ता सीता के मन में यद्यपि पति वियोग की असीम पीड़ा व्याप्त है तथापि वन में रहकर असीम धैर्य और सन्तोष के साथ पुत्रों का लालन-पालन कर उनको सुयोग्य बना देने की क्षमता उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की दिव्यता और महत्ता की परिचायक ही बनी है।

इस प्रकार सीता के आदर्श चरित्र पर कहीं कोई कालुष्य दृष्टिगत नहीं होता, शील सदाचार, दृढ़ स्वामिभक्ति, सहज सौहार्द, पावन साहचर्य, अखण्ड मर्यादा विचार, स्वाभाविक सलज्जता, दंभहीन स्वाभिमान, स्त्रीजनोचित संकोच और सुकोमल भाव विभूति के अवयवों तथा दैवी सौन्दर्य की सुधा से अभिसिंचित सीता का चरित्र आदर्श की परिसीमा है। बाह्य और अभ्यन्तर सौन्दर्य की अटूट एवं अनुपम लड़ी में सीता का चरित्र आद्योपांत अनुस्यूत है जिसके कारण सीता भारतीय नारी के मन प्राणों का आकर्षण बनी हुई है।

कौशल्या—तुलसी के लगभग सभी सत् पात्रों में कोई न कोई आदर्श मूर्त होता हुआ दिखलाई पड़ता है। कौशल्या में माता और कुल ज्येष्ठा का आदर्श रूप स्पष्टतया परिलक्षित होता है। कौशल्या के सहज सरल और विशाल हृदय के ममतामय मातृत्व के साथ ही साथ ज्ञान की गरिमा एवं अलौकिक विवेक से परिपूरित गंभीर व्यक्तित्व को भी प्रमुख रूप से लक्षित किया जा सकता है। स्पष्ट है कि राजा दशरथ और कौशल्या ने मनु-शतरूपा और दूसरे कल्प में कश्यप-अदिति के रूप में जो कठोर तप किया था[५०] उसमें वरदान रूप में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः सीता का चरित्र सर्वत्र—

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील विनीता।।

वही ।।२३।।२

के रूप में ही चित्रित किया गया है। सीता केवल पति के अनुकूल आचरण करने वाली ही नहीं हैं वरन् —'अतिसय प्रिय करुनानिधान की', 'रघुवीर प्रिय', 'पियहिं-पियारी' और 'पति प्रेम पुनीता' होकर, प्रिय के हृदय की सम्पूर्ण भावनाओं को जानने वाली भी हैं। नाव से पार उतारने पर जब राम संकोच में पड़े हैं कि केवट को कुछ उतराई नहीं दी तब—

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी।

सीता का यह आचरण उनकी पतिपरायणता और पति के साथ एकात्मता एवं अभिन्नता का परिचायक है। राम सीता के इसी गुण और विशिष्टता की पुष्टि करते हुए ही उन्हें संदेश भेजते हैं—

तत्व प्रेम कर मम अरू तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।।

मानस —सुन्दर काण्ड।।१४।।३

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं।।

वही।।१४।।४

इस प्रकार सीता सब प्रकार से भारतीय नारी का मूर्त आदर्श हैं जो पिता और पति दोनों कुलों को पवित्र करने वाली हैं और जिनका नाम पतिव्रत धर्म का प्रेरक है।[४५]

सीता की कीर्ति रूपी नदी—

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह विधि अंड करोरी।
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे ।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।२८६।।२

इसप्रकार देव नदी गंगा की महिमा से भी अधिक महिमामयी है। ऐसी महिमामयी सीता तुलसी की अधिष्ठात्री देवी और उनके द्वारा सर्वत्र वन्दनीय और पूजनीय है।

आलोचकों का विचार है कि तुलसी दास ने सीय त्याग एवं लव-कुश उपाख्यान जान बूझकर इस कारण उड़ा दिए कि उससे श्री राम की निन्दा होती।"[४६] परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि राम निन्दा के भय के कारण ही नहीं अपितु सीता त्याग का प्रसंग तुलसी को इसलिए अवांछित था कि वे सीता सी महामहिम पत्नी का त्याग अनुचित मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने मानस को सुखान्त ही रखा क्योंकि यह करुण प्रसंग हृदय को म्लान करने वाला था। गीतावली में तुलसी ने इस प्रसंग का उल्लेख किया है और राम के दोष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का परिहार करने का सफल प्रयास भी किया है।[४७] राम सीता के प्रेम और पवित्रता को जानते थे और वन भेजते समय उनके मन में बहुत सन्ताप भी था।[४८] परन्तु लोक मर्यादा के कारण ही उन्हें सीता को त्यागना पड़ा। यद्यपि उनका अपराध झूठा ही था—

झूंठे अघ सिय परिहरी तुलसी साइं ससंक।।

दोहावली ।।१६६।।

सीता का यह त्याग निश्चय ही तुलसी के हृदय को क्षुब्ध करने वाला था जिसकी आभेव्यंजना तुलसी ने गीतावली में की है। वाल्मीकि सीता को देखकर अनुमान से सभी बाते जान लेते हैं और सीता का सहस्रों प्रकार से सम्मान करते हैं किन्तु यह विचार कर कि सम्पूर्ण सद्गुणों के धाम और सीमा राम ने यह क्या किया ? वे क्षुब्ध हो गए।[४९] यह क्षोभ सीता त्याग के अप्रिय प्रसंग से उत्पन्न तुलसी का ही क्षोभ है, राम की निन्दा का भय नहीं क्योंकि उनके राम तो परम पुरुष भगवान ही हैं। अतः स्पष्ट है कि मानस में सीता त्याग के प्रसंग को स्थान न देने का कारण उसे सुखान्त बनाना और सीता त्याग के अवांछनीय और अनुचित प्रसंग को निकाल देना ही है। इससे भी तुलसी के हृदय में नारी के प्रति न्यायोचित भावना का ही प्रदर्शन होता है।

गीतावली में परित्यक्ता सीता के मन में यद्यपि पति वियोग की असीम पीड़ा व्याप्त है तथापि वन में रहकर असीम धैर्य और सन्तोष के साथ पुत्रों का लालन-पालन कर उनको सुयोग्य बना देने की क्षमता उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की दिव्यता और महत्ता की परिचायक ही बनी है।

इस प्रकार सीता के आदर्श चरित्र पर कहीं कोई कालुष्य दृष्टिगत नहीं होता, शील सदाचार, दृढ़ स्वामिभक्ति, सहज सौहार्द, पावन साहचर्य, अखण्ड मर्यादा विचार, स्वाभाविक सलज्जता, दंभहीन स्वाभिमान, स्त्रीजनोचित संकोच और सुकोमल भाव विभूति के अवयवों तथा दैवी सौन्दर्य की सुधा से अभिसिंचित सीता का चरित्र आदर्श की परिसीमा है। बाह्य और अभ्यन्तर सौन्दर्य की अटूट एवं अनुपम लड़ी में सीता का चरित्र आद्योपांत अनुस्यूत है जिसके कारण सीता भारतीय नारी के मन प्राणों का आकर्षण बनी हुई है।

कौशल्या—तुलसी के लगभग सभी सत् पात्रों में कोई न कोई आदर्श मूर्त होता हुआ दिखलाई पड़ता है। कौशल्या में माता और कुल ज्येष्ठा का आदर्श रूप स्पष्टतया परिलक्षित होता है। कौशल्या के सहज सरल और विशाल हृदय के ममतामय मातृत्व के साथ ही साथ ज्ञान की गरिमा एवं अलौकिक विवेक से परिपूरित गंभीर व्यक्तित्व को भी प्रमुख रूप से लक्षित किया जा सकता है। स्पष्ट है कि राजा दशरथ और कौशल्या ने मनु-शतरूपा और दूसरे कल्प में कश्यप-अदिति के रूप में जो कठोर तप किया था[५०] उसमें वरदान रूप में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रभु को अपने पुत्र होने का वर मांग लिया था, साथ ही साथ कौशल्या को प्रभु से एक वरदान और भी मिला था कि "मेरी कृपा से तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट न होगा।"[५१] अतः कौशल्या का सम्पूर्ण चरित्र इस अलौकिक ज्ञान की गरिमा एवम् परात्पर ब्रह्म की माता के गौरव से गौरवान्वित है। फलस्वरूप उनका चरित्र विश्लेषण के स्थान पर वन्दना का ही अधिक अधिकारी रहा है—

बंदउं कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची।

मानस —बाल काण्ड।।१५।।२

प्रगटेउ जहं रघुपति ससि चारू। विस्व सुखद खल कमल तुसारू।।

वही ।।१५।। छंद

कौशल्या सहज रूप से ही पवित्र आचरण वाली थीं। वे विनीत और पति के अनुकूल चलने वाली थीं और श्री हरि के चरण कमलों में उनका दृढ़ प्रेम था।[५२] कौशल्या का श्री हरि चरणों में यह दृढ़ प्रेम ज्ञान, भक्ति और विवेक से परिपूर्ण है। प्रभु जन्म लेने पर माता कौशल्या को अपने चतुर्भुज रूप के दर्शन देते हैं।[५३] पुनः इष्टदेव को नैवेद्य चढ़ाते समय कौशल्या भगवान् के अखंड रूप के दर्शन करती हैं[५४] तथा वे बार-बार हाथ जोड़ कर विनती करती हैं कि आपकी माया अब मुझे कभी न व्यापे।[५५] अतः माता कौशल्या का चरित्र सर्वत्र ही माया मोह से रहित एवं परम ज्ञान से परिपूर्ण है। वे अनेक प्रकार के दान पुण्य करती हुई पवित्र और गौरवमय जीवन व्यतीत करती हैं। परम प्रभु की माता होने का गौरव सर्वत्र ही उन्हें गौरवान्वित करता है। केवल 'रामलला नहछू' में कवि ने उनके इस गौरव को भुला दिया है और एक साधारण परिवार की गृहिणी के रूप में अंकित किया है। वहाँ पर नाइन को भी तुलसी ने राजमाता से परिहास करने का अधिकार दे डाला है[५६] और कुल ज्येष्ठाएँ कौशल्या को आज्ञा देती हुई दिखाई देती हैं।[५७] परन्तु इस हास परिहास के अतिरिक्त सर्वत्र ही कौशल्या का चरित्र गरिमामय है।

आलोचकों का विचार है कि कौशल्या आदि की महिमा का वर्णन तुलसी ने केवल राम के नाते से ही किया है।"[५८] परन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता। कौशल्या स्वयं ही महिमामयी हैं। मातृ भाव का गौरव स्वतः ही उनके स्वरूप को गरिमामय बनाए हुए है, क्योंकि उन्हों ने ब्रह्म की माता होने के गौरव को अपने पूर्वजन्म में ही कठोर तप और सदाचरण से प्राप्त किया था। वाल्मीकि रामायण की कौशल्या के विषय में तो यह कथन सत्य हो भी सकता है कि उनका गौरव राम की माता होने के कारण है, जैसा वी० एस० शास्त्री ने माना है।[५९] मानसकार ने तो कौशल्या को उनके अपने गुणों के कारण ही मातृत्व के चरम आदर्श से परिपूरित किया है। यहाँ तक कि राम वन गमन के मार्मिक अवसर पर भी कौशल्या अपना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञान-गरिमायुक्त व्यक्तित्व नहीं छोड़तीं और असीम धैर्य एवं विवेक का परिचय देती हुई राम को अवसरानुकूल उपदेश देता हैं।[६०]

राज्याभिषेक के आनन्द मंगलकारी लग्न के शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा में आह्लादित कौशल्या जब सुनती हैं कि पिता ने राम को वन का राज्य दे दिया है तो वे विषाद से परिपूरित हो विकल हो उठती हैं; परन्तु जब वन-गमन की आज्ञा का पूर्ण प्रसंग सुनती हैं तो गूंगी जैसी मौन रह जाती हैं।[६१] राम को वे न घर रख सकती हैं और न ही वन जाने को कह सकती हैं। दोनों ही तरह से हृदय में बड़ा भारी संताप हो रहा है। केवल मन ही मन विधाता को दोष देती हैं।[६२] माता कौशल्या स्नेह और ममता से अधिक ज्ञान और धर्म पर एवं परिवार और लोक कल्याण पर अधिक बल देती हैं। भाइयों में विरोध न हो इसीलिए वे धीरज धर कर सरल वचन कहती हैं—"कि हे राम तुमने अच्छा ही किया।" पिता की आज्ञा पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है।[६३] यद्यपि वे माता के महत्त्व और मातृ अधिकार की गुरुता से अनभिज्ञ नहीं थीं उन्हें पूर्ण ज्ञान था कि माँ का अधिकार और स्थान पिता से श्रेष्ठ है—

जौं केवल पितु आयसु ताता। तो जानि जाहु जानि बड़ि माता।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।५५।।१

कौशल्या कठिन से कठिन स्थिति में संयम नहीं छोड़तीं। यह जानते हुए भी कि कैकेयी के कारण ही राम को वनवास दिया गया है, वे कैकेयी के गौरव की रक्षा करती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी कौशल्या माया मोह से रहित विशुद्ध ज्ञान का उपदेश देती हुई प्रतीत होती हैं। कौशल्या राम से यह भी नहीं कह पातीं कि मुझे भी साथ ले चलो क्यों कि उन्हें भय है कि ऐसा कहने पर कहीं राम यह न सोचें कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती हैं।[६४] फिर भी उनके मन का पछतावा उनके मातृ हृदय की अभिव्यंजना करता है—

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के।।
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि वचन बैठि पछिताउं।

वही।।५५।।४

लेकिन मानस में कौशल्या का मातृत्व अति आदर्श से आवृत्त-सा दिखलाई पड़ता है। मानस का यह अभाव तुलसी ने गीतावली में पूर्ण कर दिया है। गीतावली में यह प्रसंग अधिक करुण और सजीव हो उठा है। वहाँ माँ की ममता की आर्द्र पुकार सुनाई पड़ती है जो बड़ी ही मार्मिक है। वहाँ माता कौशल्या में ज्ञान की गरिमा कम और स्नेहमयी माँ की आत्मविभोरता अधिक है। यहाँ तक कि कौशल्या राजा दशरथ पर भी व्यंग्य करती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुई देखी जाती हैं।[६५] वे अपने जननीत्व के अधिकार की दुहाई देकर राम से घर ही रह जाने का अनुरोध करती हैं।[६६] कौशल्या अनेक प्रकार से विलाप करती हैं कि राम तुम्हारे बिना मैं किस प्रकार घर में रह सकूँगी।[६७] माता के करुण विलाप को सुनकर राम भी प्रेम से अधीर हो जाते हैं। उनका कंठ भर आता है और नेत्रों से जल बहने लगता है।[६८] प्राणों से भी प्रिय पुत्र राम को मौन रूप से विदा कर देने के पश्चात् एक माँ के हृदय की करुण अवस्था का कुशल चित्रण तुलसी ने प्रस्तुत किया है। चित्रकूट से राम अयोध्या लौटने को तैयार नहीं होते और भरत अयोध्या लौट कर नन्द-ग्राम में तपस्वियों सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, किन्तु कौशल्या को फिर भी महलों में ही रहना पड़ता है, अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए और अन्य पुरवासियों को सान्त्वना देने के लिए। ऐसी माँ की व्यथा का स्वाभाविक और मार्मिक चित्रण है—

हाथ मीजिबो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहुतें, ह्यां कहा जाता बह्यो।।
पति सुरपुर, सिय-राम-लषन बन, मुनिव्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो।।
मेरोइ हिय कठोर करिये कहं विधि कहुं कुलिस लह्यो।
तुलसी बन पहुंचाइ फिरी सुप्त, क्यों कछु परत कह्यो ? ।।

गीतावली—अयोध्या काण्ड।।८४।।

कौशल्या के दुःख का अनुमान लगाना सहज नहीं है। वे किसी के सम्मुख राम का नाम भी नहीं ले पातीं कि कोई यह न कहे कि कैसी कठोर माता है जो राम जैसे पुत्र के वन में रहते हुए भी जीवन धारण किए हुए हैं। कौशल्या का यह सन्ताप, संकोच और गहन पीड़ा हृदय को छलनी कर देती है किन्तु जिह्वा मौन रहती है।[६९] मानस की कौशल्या तो और भी धीर एवं गम्भीर चित्रित हुई हैं। मानसकार ने उन्हें कहीं रोते बिलखते नहीं दिखाया है, अतः गीतावली में चित्रित कौशल्या का मातृ रूप अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है।[७०] क्योंकि मानस की माता में ममता का जो अभाव अखरता है वह गीतावली में ही पूर्ण होता है।

कौशल्या केवल मातृ रूप में ही नहीं सास रूप में भी ममतामयी हैं। सीता के प्रति उनका व्यवहार स्नेह और अपनत्व से भरा हुआ है—

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउं प्रान जानकिहिं लाई।।
कलपबेलि जिमि बहुविधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।५८।। १-२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा *जिअनभूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।।*

वही।।५८।।३

कौशल्या की जीवन मूल सीता यदि घर रह जातीं तो उन्हें बड़ा सहारा हो जाता[३१] परन्तु पत्नी-धर्म की बात कहकर जब सीता वन जाना ही चाहती हैं तब भी कौशल्या बार-बार उन्हें हृदय से लगाकर शुभाशीष ही देती हैं।[३२]

इसके अतिरिक्त कौशल्या में असीम संयम और अपरिमित धैर्य का दर्शन पुनः तब होता है जब कि सुमन्त्र के लौटने पर राजा दशरथ व्याकुल हो उठते हैं और मरणान्तक पीड़ा से अभिभूत हो जाते हैं, तब कौशल्या ही उन्हें समझाती हुई अनेक प्रकार से धैर्य बँधाती हैं।[३३]

माता कौशल्या परम उदार और सब पुत्रों पर समान स्नेह करने वाली हैं। सबसे ज्येष्ठ रानी होते हुए भी कैकेयी के प्रति उनका व्यवहार कभी सौत का सा नहीं रहा वरन् उस पर उनका सदा भगिनीवत् स्नेह ही रहा। परस्पर सौहार्द बढ़ाने के लिए वे सदा यही कहती रहीं कि हे राम ! तुम्हारी माता कैकेयी हैं, मैं तो भरत की माता हूँ। इस पर भी कैकेयी के दुर्व्यवहार को देखकर वे कैकेयी को दोष न देकर दैव पर ही दोषारोपण करती हैं।[३४] भरत के प्रति उनके मन में कहीं भी किसी प्रकार की कटुता नहीं है। उन्हें वे परम पवित्र मानते हुए राम के समान ही स्नेह करती हैं।[३५]

कौशल्या भरत को अनेक प्रकार से समझाते हुए राजा दशरथ की मृत्यु और राम के वन में चले जाने की अवस्था में राज्यभार संभालने के लिए बार-बार समझाती हैं। किन्तु भरत की सहमति न होने पर वे स्वयं भी उनके साथ चित्रकूट जाती हैं। उन्हें भरत का ही नहीं सारी प्रजा का भी ध्यान है। वे भरत से रथ पर चढ़ने का आग्रह करती हैं क्योंकि भरत के पैदल चलने से सारी प्रजा भी, जो राम के विरह में दुर्बल हो गई थी, पैदल चलती है।[३६] वन में भी सीता की जननी सुनयना से मिलने पर माता कौशल्या अपनी ज्ञान गरिमा का ही परिचय देती हैं। अपनी उदारता और विशाल हृदयता का प्रमाण देती हुई वे कैकेयी के दोष का परिहार करती हैं—

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू।
कठिन करम गति जान विधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।२८१।।२

वास्तव में वे सर्वत्र ही गरिमामय मातृत्व से गौरवान्वित रही हैं तथा परम उदार हैं। यहाँ तक कि उनके सम्पूर्ण सुखों पर तुषारापात करने वाली कैकेयी को भी वे किसी प्रकार दोषी नहीं मानतीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माता कौशल्या की महानता का दिग्दर्शन पुनः तब होता है जब संजीवनी बूटी ले जाते हुए हनुमान भरत के बाण से घायल होकर गिर जाते हैं। माता कौशल्या लक्ष्मण मूर्च्छा का समाचार सुनती हैं—

भेंट कहि कहियो कह्यो यों कठिन-मानस माय।
लाल ! लोने लषन-सहित सुललित लागत नाय।।

गीतावली—लंका काण्ड ।।१४।।१४

कौशल्या का यह अत्यधिक गूढ़ और मार्मिक संदेशा है। वास्तव में राम की शोभा लक्ष्मण के साथ ही लौटने में थी। राम के वन से लौटने पर उनके सभी मित्रों अंगद, हनुमान आदि से वे राम के समान ही प्रेम पूर्वक मिलती हैं। यह उनकी उदार हृदयता और शाश्वत मातृत्व का प्रतीक है।

इस प्रकार राम की माता कौशल्या एक कोमल हृदया, सरल, पावन और परम् ज्ञानवान आदर्श चरित्र हैं जिन्होंने श्री राम के मातृत्व पद, राजा दशरथ के पत्नी-पद और सीता आदि के सास-पद को सार्थक किया है। राम की महिमा से ही वे महिमामयी नहीं हैं वरन् परम पुरुष की माता का सम्पूर्ण गौरव उनमें स्वतः ही संचित है जिसके आधार पर वे पुत्र को उपदेश देती हुई, धर्म सिखाती हुई तथा मार्मिक संदेश भेजती हुई गौरवमय रूप में देखी जाती हैं।

कैकेयी—कैकेयी को तुलसी के सत् पात्रों की कोटि में नहीं रखा जा सकता और न ही वह नितान्त असत् पात्रों की श्रेणी में रखी जा सकती है। कैकेयी भाग्य की विडम्बना के कारण मूल रूप में सत् पात्र होते हुए भी मानव मन की असत् प्रवृत्तियों ईर्ष्या, द्वेष, दंभ, क्रोध आदि से प्रेरित होकर निर्दय और क्रूर दिखलाई पड़ती है, परन्तु शीघ्र ही अपने असफल प्रयासों के कारण जीवन की दुरभिसंधियों के मध्य असहाय और विवश होकर ग्लानि और पश्चाताप् की अग्नि में जलती हुई दिखलाई देती है। शुक्ल जी का विचार है कि "आत्मग्लानि का उदय शुद्ध और सात्त्विक अंतःकरण में ही हो सकता है।"[७७] अतः कैकेयी भी सहानुभूति की पात्र बनकर अपनी स्वाभाविक दुर्बलता के लिए क्षम्य हो जाती है। फिर भी समाज, लोक और ग्लानि-ग्रस्त भरत की कटूक्तियों की बौछार से आहत कैकेयी का चरित्र पर्यवेक्षण का आकांक्षी है।

कैकेयी के चरित्र की संक्षिप्तता उसके चरित्र विश्लेषण में सबसे बड़ी बाधक है। अयोध्या-काण्ड के प्रारम्भ में उसकी सत् एवं असत् प्रवृत्तियों का परिचय प्राप्त होता है। सुर प्रपंच में फँस कर वह देवताओं की इच्छानुसार राम को वन भेजने के लिए जैसे सम्पूर्ण हथियारों का प्रयोग करके कठोर और कुटिल वाणी का उद्घोष करती हुई सर्वाधिक मुखरा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पात्र दिखलाई देती है परन्तु अयोध्या-काण्ड के समाप्त होने से पूर्व ही भरत द्वारा राज्याधिकार ठुकराए जाने पर और देव-कार्य राम-वन-गमन पूर्ण हो जाने पर वह चिर मौन हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओं द्वारा सम्मोहित मैस्मैराइज्ड कैकेयी उनकी प्रेरणा से, जो उन्होंने चाहा करती और कहती रही परन्तु जब वह सम्मोहन समाप्त हुआ तो शिथिल हतप्रभ और विक्षुब्ध होकर वह सदा-सदा के लिए मौन हो गयी। कैकेयी का चरित्र जितना संक्षिप्त है कथा-विस्तार और प्रबन्ध की सूत्रबद्धता के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक भी है। साहित्यिक परम्परा के अनुरूप ही तुलसी ने कैकेयी के चरित्र का अंकन किया है। केवल बार-बार देवताओं की माया प्रसार के अलौकिक, तत्त्व का उल्लेख करके उसे क्षम्य और सहानुभूति की पात्र बना दिया है।

रामचरितमानस के सर्वाधिक पावन धर्मनिष्ठ और निर्दोष पात्र भरत की माता कैकेयी अपमानित, लांछित, कलंकित और सर्वाधिक अभागी भी है, जिसको अनेकानेक पात्रों से भर्त्सना और निन्दा मिलती है परन्तु फिर भी जो अपने अन्तर-मन से दुष्ट नहीं है। जिसकी प्रकृति भोली और सरल है, जो देवताओं के कुचक्र और मंथरा की कुसंगति का शिकार बनकर स्वयं अपना ही सर्वनाश कर लेती है। विषम परिस्थति, क्रूर नियति और निर्मम भवितव्यता ने एक साथ ही मिलकर जिस पर प्रबल प्रहार किया है ऐसी कैकेयी घृणा की नहीं अपितु दया और सहानुभूति की पात्र ही अधिक है।

कैकेयी इतनी दोषी कठोर और कलंकिनी नहीं थी जितना समझा जाता रहा है। तुलसी ने कौशल्या के समान ही उसे भी पवित्र आचरण वाली, विनीत और पति के अनुकूल चलने वाली कहकर परिचय दिया है।[२८] कैकेयी अपने रूप, गुण और शील के कारण ही राजा को सर्वाधिक प्रिय थी। राजा दशरथ द्वारा दिए गए दो वरदान भी, कैकेयी की वीरता और पतिपरायणता की ओर ही संकेत करते हैं और उनको भूल जाना कैकेयी की सरलता का परिचायक ही है। मंथरा ही उन दो वरदानों की याद दिलाकर और कैकेयी को उलटी-सीधी बातें सिखाकर उसका मन विषाक्त कर देती है। निरीह कैकेयी तो राम के वनवास का निमित्त मात्र थी अन्यथा राम का वन जाना तो नियति का विधान ही था। मंथरा-कैकेयी संवाद का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि कैकेयी सत्त्व गुण से रहित नहीं थी। उसका हृदय निर्मल, प्रकृति सरल और मन निश्छल था। जब मंथरा अश्रु बहाती और बिलखती हुई कैकेयी के सम्मुख जाती है तो कैकेयी की सरल उक्ति—

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।१२।।४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी कैकेयी की सरलता का परिचय देती है। इस पर जब मंथरा लम्बी-लम्बी साँस छोड़ने लगती है तो कैकेयी का भयभीत होकर यह प्रश्न "अरी कहती क्यों नहीं, राम, राजा दशरथ, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशल से तो हैं ?"[७६] भी यही अभिव्यक्त करता है कि कैकेयी के मन में राम, दशरथ, लक्ष्मण एवं भरत सभी के लिए समान प्रेम एवं सौहार्द की भावना थी। सर्वप्रथम वह राम का ही नाम लेती है, भरत का नहीं, इससे स्पष्ट हो जाता है कि राम की कुशल भरत से कुछ अधिक ही चाहती थी कम नहीं।

राम के राज्याभिषेक की बात सुनकर और मंथरा की सीख पर कैकेयी द्वारा अभिव्यक्त किए गए मनोद्‌गार उसकी उदारता और सरलता के साक्षी हैं। मलिन हृदया मंथरा की भर्त्सना करती हुई कैकेयी कहती है—

पुनि अस कबहुं कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी।।

मानस —*अयोध्या काण्ड।।१३।।४*

तथा— *काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।*
तिय विसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि।।

वही ।।१४।।

कैकेयी के विचार में वही दिन मंगलदायक और शुभ था जिस दिन मंथरा का कथन राम-राज्याभिषेक सत्य होता।[७७] कैकेयी को सूर्य वंश की यह रीति कि बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक हो बड़ी सुहावनी प्रतीत होती है, अतः कैकेयी मंथरा से कहती है, यदि सच ही कल श्री राम का तिलक है तो वह मन-वांछित वस्तु माँग ले।[७९] यह कथन कैकेयी की सात्त्विकता और उदारता का ही उदाहरण है। कैकेयी को राम पर पूर्ण विश्वास था उसका निश्चित मत था कि राम उसे सब माताओं से अधिक चाहते हैं।[८२] उसकी उत्कट अभिलाषा थी कि जन्म-जन्मान्तरों में वह राम सा पुत्र और सीता सी वधू प्राप्त करें।[८३] राम उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय थे, उनके तिलक की बात से मंथरा का क्षोभ उसे आश्चर्य में डाल देता है।[८४] हृदय की गहराइयों तक स्थित राम के प्रति कैकेयी के प्रेम और कैकेयी के सरल स्वभाव का दिग्दर्शन इन मनोद्‌गारों से पूर्णतया अभिव्यक्त हो जाता है।

राम के प्रति ऐसा पावन स्नेह रखने वाली कैकेयी उनका अहित चाहने वाली हो गई, यह भाग्य की विडम्बना नहीं तो और क्या है ? सरस्वती द्वारा प्रेरित मन्थरा के कपट वचन और देवताओं की कुचाल ने भोली रानी के मन को विभ्रान्त कर दिया और उसे एक ऐसे मार्ग की ओर अग्रसर कर दिया जो उसके लिए विनाशकारी था। तुलसी ने स्वयं ही कैकेयी के सम्पूर्ण कार्य कलाप को सुर-माया और होनहार के वशीभूत कहकर एक प्रकार से कैकेयी को पूर्णतया क्षम्य माना है। दैव माया ही थी कि भोली कैकेयी ने उस मंथरा का जिसे वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वयं 'बढ़-बढ़ कर बोलने वाली', 'घर फोड़ी', 'कुटिल', और 'कुचाली' मानती थी—विश्वास कर लिया—

सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।१६।।

सादर पुनि पुनि पूंछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही।
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी।।

वही ।।१६।।१

कुटिल मंथरा ने अनेक बातें बनाकर रानी का अपने ऊपर विश्वास जमा लिया।[८५] मंथरा ने सौत का भय अनेक कथाओं द्वारा पोषित करके प्रकट किया[८६] और कैकेयी की कोमल भावनाओं पर प्रहार करके उसके मर्म स्थल पर चोट की—

कंद्रू विनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।१६।।

तथा— *रेख खंचाइ कहहुं बलु भाषी। भामिनी भइहु दूध कइ माखी।।*
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु, न आन उपाई।।

वही।।१८।।४

शुक्ल जी का विचार है—"इस भावी दृश्य की कल्पना से भला कौन स्त्री क्षुब्ध न होगी।"[८७] अतः कैकेयी भी स्वभावतः मंथरा पर विश्वास कर लेती है। साथ ही होनहार भी कैकेयी को विवश कर देती है—

भावी बस प्रतीति उर आई। पूंछ रानि पुनि सपथ देवाई।
का पूँछहु तुम्ह अबहुं न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना।।

वही।।१८।।१

इसके अतिरिक्त मंथरा ने और भी करोड़ों कहानियाँ[८८] कपट पूर्वक कहीं जिन्हें सुनकर कैकेयी भयभीत हो जाती है, कुछ बोल नहीं सकती और वह केले की भाँति काँपने लगती है।[८९] पुनः अत्यधिक निरीह भाव से वह कहती है—"काह करों सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊँ।।"

अपने चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअं दुसह दुखु दीन्ह।।
नैहर जनमु भरब बरू गाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई।
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही।।[९०]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी कैकेयी की सरलता का परिचय देती है। इस पर जब मंथरा लम्बी-लम्बी साँस छोड़ने लगती है तो कैकेयी का भयभीत होकर यह प्रश्न "अरी कहती क्यों नहीं, राम, राजा दशरथ, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशल से तो हैं ?"[७६] भी यही अभिव्यक्त करता है कि कैकेयी के मन में राम, दशरथ, लक्ष्मण एवं भरत सभी के लिए समान प्रेम एवं सौहार्द की भावना थी। सर्वप्रथम वह राम का ही नाम लेती है, भरत का नहीं, इससे स्पष्ट हो जाता है कि राम की कुशल भरत से कुछ अधिक ही चाहती थी कम नहीं।

राम के राज्याभिषेक की बात सुनकर और मंथरा की सीख पर कैकेयी द्वारा अभिव्यक्त किए गए मनोद्‌गार उसकी उदारता और सरलता के साक्षी हैं। मलिन हृदया मंथरा की भर्त्सना करती हुई कैकेयी कहती है—

पुनि अस कबहुं कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।१३।।४

तथा— *काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।*
तिय विसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि।।

वही ।।१४।।

कैकेयी के विचार में वही दिन मंगलदायक और शुभ था जिस दिन मंथरा का कथन राम-राज्याभिषेक सत्य होता।[८०] कैकेयी को सूर्य वंश की यह रीति कि बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक हो बड़ी सुहावनी प्रतीत होती है, अतः कैकेयी मंथरा से कहती है, यदि सच ही कल श्री राम का तिलक है तो वह मन-वांछित वस्तु माँग ले।[८१] यह कथन कैकेयी की सात्त्विकता और उदारता का ही उदाहरण है। कैकेयी को राम पर पूर्ण विश्वास था उसका निश्चित मत था कि राम उसे सब माताओं से अधिक चाहते हैं।[८२] उसकी उत्कट अभिलाषा थी कि जन्म-जन्मान्तरों में वह राम सा पुत्र और सीता सी वधू प्राप्त करें।[८३] राम उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय थे, उनके तिलक की बात से मंथरा का क्षोभ उसे आश्चर्य में डाल देता है।[८४] हृदय की गहराइयों तक स्थित राम के प्रति कैकेयी के प्रेम और कैकेयी के सरल स्वभाव का दिग्दर्शन इन मनोद्‌गारों से पूर्णतया अभिव्यक्त हो जाता है।

राम के प्रति ऐसा पावन स्नेह रखने वाली कैकेयी उनका अहित चाहने वाली हो गई, यह भाग्य की विडम्बना नहीं तो और क्या है ? सरस्वती द्वारा प्रेरित मन्थरा के कपट वचन और देवताओं की कुचाल ने भोली रानी के मन को विभ्रान्त कर दिया और उसे एक ऐसे मार्ग की ओर अग्रसर कर दिया जो उसके लिए विनाशकारी था। तुलसी ने स्वयं ही कैकेयी के सम्पूर्ण कार्य कलाप को सुर-माया और होनहार के वशीभूत कहकर एक प्रकार से कैकेयी को पूर्णतया क्षम्य माना है। दैव माया ही थी कि भोली कैकेयी ने उस मंथरा का जिसे वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वयं 'बढ़-बढ़ कर बोलने वाली', 'घर फोड़ी', 'कुटिल', और 'कुचाली' मानती थी—विश्वास कर लिया—

सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।१६।।

सादर पुनि पुनि पूंछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही।
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी।।

वही ।।१६।।१

कुटिल मंथरा ने अनेक बातें बनाकर रानी का अपने ऊपर विश्वास जमा लिया।[८५] मंथरा ने सौत का भय अनेक कथाओं द्वारा पोषित करके प्रकट किया[८६] और कैकेयी की कोमल भावनाओं पर प्रहार करके उसके मर्म स्थल पर चोट की—

कंद्रू विनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।१६।।

तथा— *रेख खंचाइ कहहुं बलु भाषी। भामिनी भइहु दूध कइ माखी।।*
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु, न आन उपाई।।

वही।।१८।।४

शुक्ल जी का विचार है—"इस भावी दृश्य की कल्पना से भला कौन स्त्री क्षुब्ध न होगी।"[८७] अतः कैकेयी भी स्वभावतः मंथरा पर विश्वास कर लेती है। साथ ही होनहार भी कैकेयी को विवश कर देती है—

भावी बस प्रतीति उर आई। पूंछ रानि पुनि सपथ देवाई।
का पूँछहु तुम्ह अबहुं न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना।।

वही।।१८।।१

इसके अतिरिक्त मंथरा ने और भी करोड़ों कहानियाँ[८८] कपट पूर्वक कहीं जिन्हें सुनकर कैकेयी भयभीत हो जाती है, कुछ बोल नहीं सकती और वह केले की भाँति काँपने लगती है।[८९] पुनः अत्यधिक निरीह भाव से वह कहती है—"काह करों सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊँ।।"

अपने चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअं दुसह दुखु दीन्ह।।
नैहर जनमु भरब बरू गाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई।
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही।।[९०]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह सभी बातें कैकेयी के मन में घोर निराशा को उत्पन्न करने वाली हैं। उस रानी के लिए जिसने सदा पटरानी से बढ़कर आदर, मान और स्नेह पाया हो, जो सदा सर्वोपरि रही हो, उसे वह स्थिति (सौत की चाकरी) स्वीकार्य हो भी कैसे सकती थी। कैकेयी स्वयं बुरी न थी, मन्थरा की कुसंगति और कुचक्र ने ही उसे कलंक का भागीदार बनाया।

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।२३।।४

इस प्रकार स्वयं तुलसी का यही मत है कि कैकेयी स्वभाव से चतुर और सुशील थी लेकिन नीच मंथरा के मत ने उसकी समस्त चातुरी हरण कर ली और उसके कुसंग ने कैकेयी को सदा सर्वदा को विनष्ट कर डाला। वह बलि का निरीह पशु बन गई—

कुबरीं करि कबुली कैकई। कपट छुरी उर पाहन टेई।।
लखइ न रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसें।

वही।।२१।।१

विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि राम वनवास से सर्वाधिक अहित कैकेयी का ही होता है।[६१]

कैकेयी को देव ने कहीं का न छोड़ा। राजा के मनप्राणों पर जिसका एकछत्र राज्य था, जिसका जीवन पति प्रेम के कारण गौरवमय था, उसी को जब राजा विक्षुब्ध भाव से कहते हैं—"तोर कलंकु मोर पिछताऊ। मुएहुं न मिटहि न जाइहि काऊ।" और उसकी सूरत भी देखना नहीं चाहते। अपनी ही कोख से उत्पन्न पुत्र ने अनेक प्रकार से भर्त्सना की और जीवन पर्यन्त माँ से बोला भी नहीं।[६२] सारी प्रजा, सम्बन्धी, कोल, भील और ग्राम के सभी नर-नारियों ने बार-बार कैकेयी पर दोषारोपण करके उसे 'कलंक पिटारी', मूर्खा, दुष्टा, पापिन आदि सम्बोधनों से सम्बोधित किया।[६३] और अन्त में —'फिरि पछितैहसि अंत अभागी'[६४] की भविष्यवाणी ही सत्य हुई। जब कि वह केवल राम के यश और देवताओं के कार्य की निमित्त मात्र ही थी। ग्लानि ग्रस्त कैकेयी का संकोच कभी न मिट सका। राम के लौट आने पर सभी माताएँ दौड़कर उनसे मिलीं परन्तु कैकेयी अपने महल से बाहर न निकल सकी।[६५]

इस प्रकार कैकेयी की दुर्बलताओं के प्रति तुलसी का दृष्टिकोण उदारता पूर्ण और उसके दुर्भाग्य के प्रति सहानुभूतिपूर्ण ही रहा है। अतः तुलसी ने स्थान-स्थान पर देवताओं की इस कुटिलता और भाग्य की प्रतिकूलता पर क्षोभ प्रकट किया है। कहीं कवि कथन के रूप में और कहीं पात्रों के द्वारा। इसके अतिरिक्त मानस के सभी श्रेष्ठ, उत्तम और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विवेकवान पात्र, कौशल्या, राम, गुरु वशिष्ठ, मुनि भारद्वाज आदि ने भी कैकेयी के कार्य के पीछे 'विधि गति', 'सुर-प्रपंच', 'देव-इच्छा', 'भावी','विधि करतब' और सरस्वती की चाल[६६] को मानकर कैकेयी के अपराध की सम्पूर्ण गुरुता को समाप्त करने का सफल प्रयास किया है। राम के मतानुसार—

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।२६२।।४

अतः विवेकहीन पात्र ही कैकेयी की निन्दा करते हुए देखे गए हैं। कैकेयी के प्रति कहे गए दुर्वचन अधिकतर जन-साधारण द्वारा ही कहे गए हैं अथवा आत्मग्लानि से पीड़ित भरत कुछ कटु-वचन कहते हैं। सम्भवतः तुलसी ने ऐसा दो कारणों से किया है—एक तो काव्य में नाटकीयता बनाए रखने के लिए और दूसरे पात्रों के चरित्रों में स्वाभाविकता और सजीवता स्थापित करने के लिए। अतीव दुःख के आवेग में कटु वचन मुख से निकल जाना स्वाभाविक ही है और यही भरत, निषाद तथा अन्य पात्रों के साथ हुआ है। अन्यथा तुलसी तो राम वनवास के लिए दैव कुचक्र का ही उत्तरदायित्व मानते थे। निषादराज तथा ग्राम-वधुओं के मुख से यह बात कहलाकर तुलसी ने कैकेयी के दोष का परिहार करने का यत्न किया है।[६७] इस प्रकार कवि की कैकेयी के साथ भरपूर सहानुभूति दृष्टिगोचर होती है।

चित्रकूट पर राम लक्ष्मण के सद्व्यवहार और सरलता को देखकर कैकेई के मन में घोर पश्चाताप होता है। पश्चाताप की अग्नि में जलती हुई वह अभागी रानी धरती से फट जाने की और विधाता से मृत्यु की याचना करती है परन्तु धरती फटती नहीं और विधाता मृत्यु नहीं देता।[६८] इसी प्रकार चित्रकूट पर अपने सम्बन्धी राजा जनक के आगमन के समाचार को सुनकर भी—

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।२७२।।१

कैसा विवशता पूर्ण आत्मपीड़न है। राम के अयोध्या वापिस लौट आने पर भी कैकेयी अपनी करनी पर पछताती है और राम से मिलते हुए सकुचाती है।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि तुलसी ने कैकेयी को प्रारम्भ से ही एक दुष्ट चरित्र की भाँति चित्रित न कर एक गुणशीला नारी के रूप में उसका चित्रण किया है। अतः कैकेयी तुलसी की असत् नारी पात्रा की श्रेणी में नहीं रखी जा सकती। वह स्वभाव से सत् पात्र ही है परन्तु परिस्थितियाँ उसके सत्त्व को असत्त्व से आवृत कर देती हैं। यह आवरण पश्चाताप करने पर छिन्न-भिन्न हो जाता है और कैकेयी सहृदय पाठकों की सम्पूर्ण सहानुभूति की अधिकारिणी बन जाती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुमित्रा—तुलसी के अधिकतर पात्र रामभक्त हैं। सुमित्रा माता भी राम की अनन्य भक्त और राम-माता कौशल्या की विशेष कृपा-पात्री हैं। राजा दशरथ की तीन ही प्रमुख रानियाँ हैं (वैसे तो गीतावली में रानियों की संख्या ७०० तक कही गई है)। राजमाता कौशल्या पटरानी हैं और सुन्दरी कैकेयी राजा दशरथ को सर्वाधिक प्रिय है, इन दोनों के बाद सुमित्रा का ही प्रमुख स्थान है। कौशल्या और कैकेयी के सम्मुख गौण स्थान रखते हुए भी सुमित्रा किसी प्रकार महत्त्वहीन नहीं है। तुलसी की दृष्टि में सुमित्रा प्रातः वन्दनीय है जो स्त्रियाँ नियम पूर्वक सुमित्रा जी का नाम लेती हैं, वे लक्ष्मण और शत्रुघ्न से पुत्र और पति चरणों में प्रेम प्राप्त करती हैं।[९९]

कहीं-कहीं सुमित्रा का बड़ा ही तेजस्वी रूप दिखलाई पड़ता है, उनके चरित्र में कोई भी दुर्बलता नहीं दिखलाई पड़ती। वे राम की परम भक्त हैं, उनके लिए जगत् में जो पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं वे सब भगवान राम के नाते से ही मानने योग्य हैं।[१००]

अतः वे अपने पुत्र लक्ष्मण को बिना किसी दुविधा के उत्साह पूर्वक वन जाने की आज्ञा दे देती हैं। यही नहीं वे उपदेश भी देती हैं जिसमें एक भक्त हृदय की गहन भक्ति, ज्ञान और निष्काम कर्म की अभिव्यंजना हुई है।[१०१] जिसके कारण सुमित्रा में मातृत्व के स्थान पर भक्ति भावना ही अधिक प्रबल दिखलाई पड़ती है। लक्ष्मण तो माता से आज्ञा मांगने जाते हुए भयभीत होते हैं कि कहीं स्नेहवश माँ मुझे रोक न लें[१०२] परन्तु वे इस अवसर को लक्ष्मण का बड़ा भारी सौभाग्य समझती हैं—

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जो तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ।

मानस —अयोध्या काण्ड।।७४।।

उनका विचार है कि लक्ष्मण के भाग्य से ही राम वन को जा रहे हैं, उसका अन्य कोई कारण नहीं है।[१०३] सम्पूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि श्री राम और सीता जी के चरणों में सहज प्रेम हो।[१०४] इनकी दृष्टि में राम भक्त पुत्र की जननी ही सच्चे अर्थों में पुत्रवती है, अन्यथा राम से विमुख पुत्र की माँ तो बाँझ ही भली है।[१०५] इस प्रकार सुमित्रा का चरित्र वैष्णव भक्ति से ओत-प्रोत श्रेष्ठ आदर्शों पर अवलम्बित है। वे बार-बार लक्ष्मण को राम की सेवा करने का उपदेश ही देती हैं।[१०६] फलस्वरूप उनके चरित्र का मातृ-पक्ष अभिव्यक्त नहीं हो पाता और वह यथार्थ से बहुत ऊपर केवल एक आदर्श पात्र के रूप में शेष रह जाती हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि —"कैकेयी में नारी का यथार्थ पक्ष प्रधान है और आदर्श पक्ष गौण, कौशल्या में उसके विपरीत आदर्श तत्त्व अधिक हैं यथार्थ तत्त्व कम, परन्तु सुमित्रा में विशुद्ध आदर्श तत्त्व हैं।"[१०७] वास्तव में यह अति आदर्शात्मकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुमित्रा के चरित्र को कुछ निर्जीव और अस्वाभाविक सा बना देती है जिसे डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने कला की दृष्टि से भी असंगत माना है।[१०८]

राम वियोग से विदग्ध माता कौशल्या जब खिन्न होती हैं उस समय सुमित्रा ही उनकी अन्तरंग सखी और सच्ची हितैषिणी के रूप में मधुर वचनों से स्नेहपूर्वक सान्त्वना देती हैं। इस प्रकार सुमित्रा एक महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। उनकी सहज बुद्धिमत्ता और नीति कुशलता चित्रकूट के प्रसंग में दर्शनीय है। उत्तेजित सुनयना (सीता की माँ) जब रोष से परिपूरित कटु व्यंग्य वचनों द्वारा कैकेयी पर प्रहार करती है तब शान्त, धीर और उचितानुचित के विचार से परिपूर्ण सुमित्रा ही उस अप्रिय प्रसंग का अन्त करती है।[१०९] यह प्रसंग भारतीय पारिवारिक शील का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

एक अन्य स्थल पर सुमित्रा की गहन गौरव गरिमा एवं अनन्य राम भक्ति से परिपूरित श्रेष्ठ आदर्शात्मकता परिलक्षित होती है। संजीवनी बूटी ले जाते समय भरत बाण से आहत हनुमान के द्वारा युद्ध स्थल में लक्ष्मण की मूर्च्छा का समाचार सुनकर सुमित्रा के मातृ-हृदय की दशा का ऐसा स्वाभाविक एवं मार्मिक चित्रण हुआ है, जहाँ ममता और ज्ञान समान रूप से एक साथ अंकित हुए हैं।[११०]

वास्तव में माता सुमित्रा की यह मूर्ति अनुपम और कल्पनातीत है। राम भक्ति और त्याग की सीमा माता सुमित्रा को देखकर हनुमान् और भरत भी संकुचित होकर लज्जित हो जाते हैं।[१११] सुमित्रा एक ऐसा पात्र है जो मन, वाणी और कर्म में समरूप है। आदर्श चरित्रों की शृंखला में सुमित्रा उच्चतम सोपान पर अवस्थित हैं। राम-लक्ष्मण और सीता के वन से लौटने पर भी वे पुत्र लक्ष्मण से इसी लिए भेंट करती हैं क्योंकि वे रामचन्द्र के चरणों में सच्चा प्रेम रखते हैं।[११२] इस प्रकार सुमित्रा के रूप में एक ऐसे आदर्श नारी पात्र के दर्शन होते हैं जो पतिव्रता और स्नेहशीला, शान्त, धीर, गम्भीर और रामभक्ति से गौरवान्वित है।

सती—शिवजी की पत्नी दक्ष सुता स्त्रियों में भूषण, पतिव्रताओं में शिरोमणि शंकर प्रिया और जगत-वन्दित भवानी हैं। पति-भक्ति, पति वचनों में निष्ठा और पति-परायणता आदि उनके श्रेष्ठ गुण हैं। साथ ही सहज औत्सुक्य की मानवीय भावना भी उनमें दिखलाई पड़ती है। कैकेयी की भाँति सती भी हरिमाया की शिकार बनी हैं। सीता के विरह में व्याकुल राम साधारण मनुष्य की भाँति उसे वन में खोजते फिरते हैं। सती के मन में संदेह उत्पन्न हो जाता है कि शिव ऐसे राम को सच्चिदानन्द कैसे कह रहे हैं ?[११३] अंतर्यामी शिव सती की शंका को दूर करने का उपाय करते हैं। परन्तु उनकी शंका मिटती नहीं जिसका कारण हरिमाया ही था।[११४]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शिवजी की आज्ञा पाकर सती राम की परीक्षा लेने के लिए जाती हैं और सीता का वेष धारण कर लेती हैं। परन्तु राम की महिमा जान लेने पर सती चिंतित हो उठती हैं कि शिवजी से क्या कहूँगी ? और एक साधारण नारी के समान पति से झूठ बोल देती हैं कि मैंने तो राम की परीक्षा ली ही नहीं।"[५] यहाँ स्पष्ट ही सती का चरित्र हीन हो उठता है, लेकिन सम्भवतः तुलसी सहन न कर पाए कि शिव की शिवानी सती शिरोमणि सती असत्य भाषण करें। अतः हरिमाया की प्रबलता का बखान करते हुए सारा दोष राम माया के मत्थे मढ़ देते हैं—

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूँठ कहावा।
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ विचारत संभु सुजाना।।

मानस ---बाल काण्ड।।५५।।३

प्रकट है कि सती साधारण नारी के गुण दोषों से विभूषित हैं परन्तु कवि की सुकोमल लेखनी उनके चरित्र के उस भव्य रूप का स्पर्श करती है जिसके फलस्वरूप दोष होते हुए भी हृदय की समस्त करुणा हाहाकार कर उठती है। शिव चिंतित एवं संतप्त हैं कि—

परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेमबड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु।।

मानस —बाल काण्ड।।५६।।

क्योंकि— *सती कीन्ह सीता कर वेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा।।*
जों अब करउँ सती सन प्रीति। मिटइ भगति पथु होइ अनीती।।

वही।।५५।।४

और दूसरी और सती संतप्त है कि मैंने शिवजी से कपट ही क्यों किया—

कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य।

इस प्रकार क्षुब्ध सती नारी मात्र को धिक्कारने लगती हैं तथा अपने कपट व्यवहार के लिए आत्मपीड़ा से दुःखी हो प्रभु से मरण की याचना करने लगती हैं। शिवजी के व्यवहार से सती समझ जाती हैं कि शिवजी ने उनका त्याग कर दिया है। वह असह्य विपत्ति से छुटकारे के लिए प्रभु से प्रार्थना करती हैं—

तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह विपत्ति बिहाइ।।

मानस —बालकाण्ड।।५६।।

पति द्वारा त्याज्य सती अपने अपराध का स्मरण कर ग्लानि वश कुछ कहने की स्थिति में नहीं है किन्तु दुःसह दुःख उनके हृदय को आन्दोलित करता रहता है। सती की इस अवस्था का चित्रण अत्यधिक करुण एवं मार्मिक है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पति परित्याग हृदयं दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी।।
वही ।।६०।।४

दुःखी सती पिता के यहाँ होने वाले यज्ञ का समाचार सुनकर शिव की अनिच्छा पर भी वहाँ जाती है परन्तु यज्ञ में शिवजी की उपेक्षा और अपमान देखकर सती क्रोध से तिलमिला उठती है। यहाँ तेज से प्रदीप्त गरिमामय चरित्र की अभिव्यंजना होती है। सच्ची पतिव्रता स्त्री सभी कुछ सहन कर सकती है किन्तु अन्य व्यक्तियों के द्वारा की हुई अपने पति की उपेक्षा उसमें क्रोधानल प्रज्वलित करने के लिए पर्याप्त है। वे अत्यन्त क्रोध से भरकर भरी सभा को ताड़ना देती हैं और चन्द्रमौलि शिवजी को हृदय में धारण कर योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर डालती हैं।[१६] तुलसी ने ऐसी सती को पतिव्रताओं में श्रेष्ठ, गहन, गम्भीर एवं तेजोमय रूप में अंकित किया है। यही सती पुनः हिमाचल के घर जाकर पार्वती के रूप में जन्म लेती हैं।[१७] जहाँ वे अपने आराध्य और प्राप्य शिवजी को पुनः प्राप्त करती हैं। इस प्रकार शिवजी के चरणों में अटूट भक्ति रखने वाली सती का चरित्र अपनी सम्पूर्ण दुर्बलताओं के साथ भी सहज स्वाभाविक सुन्दर और महान् है।

पार्वती—सती ही पार्वती रूप में नूतन जन्म धारण करती हैं। यहाँ अपने पूर्व जन्म के समस्त श्रेष्ठतम संस्कारों एवं शिव की दृढ़ प्रीति से युक्त उनका आदर्श चरित्र और निखर जाता है। पार्वती का चरित्र परम उज्ज्वल, निर्मल, पावन और तपस्या की अग्नि से दीप्तिमान है। नारी जीवन का जितना भी उत्कर्ष सम्भव है वह हमें पार्वती के चरित्र में उपलब्ध हो जाता है।

बालिका पार्वती के रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिसने उसे देखा है वही जान सकता है।[१८] मानस में नारद मुनि पार्वती के रूप गुण का वर्णन करते हैं—

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी।
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी।।
सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी।।
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता।।
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं।
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असिधारा।।[१९]

वास्तव में पार्वती का चरित्र इन्हीं दैवी गुणों पर आधारित दैवी शक्ति से युक्त अभिव्यंजित किया गया है। उन्हें पूर्व जन्म का स्मरण है अतः वे नारद के वचन सुनकर और अपने पति के रूप में शिवजी के लक्षणों को सुनकर मन ही मन प्रसन्न होती हैं।[२०] वे स्वयं ही व्याकुल होती हुई अपनी माता को संतोष देने के लिए स्वप्न की बात बताती हैं।[२१] और माता-पिता को समझाकर सहर्ष तप हेतु वन को जाती हैं।[२२]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शिवजी की आज्ञा पाकर सती राम की परीक्षा लेने के लिए जाती हैं और सीता का वेष धारण कर लेती हैं। परन्तु राम की महिमा जान लेने पर सती चिंतित हो उठती हैं कि शिवजी से क्या कहूँगी ? और एक साधारण नारी के समान पति से झूठ बोल देती हैं कि मैंने तो राम की परीक्षा ली ही नहीं।"[५५] यहाँ स्पष्ट ही सती का चरित्र हीन हो उठता है, लेकिन सम्भवतः तुलसी सहन न कर पाए कि शिव की शिवानी सती शिरोमणि सती असत्य भाषण करें। अतः हरिमाया की प्रबलता का बखान करते हुए सारा दोष राम माया के मत्थे मढ़ देते हैं—

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूँठ कहावा।
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ विचारत संभु सुजाना।।

मानस —बाल काण्ड।।५५।।३

प्रकट है कि सती साधारण नारी के गुण दोषों से विभूषित हैं परन्तु कवि की सुकोमल लेखनी उनके चरित्र के उस भव्य रूप का स्पर्श करती है जिसके फलस्वरूप दोष होते हुए भी हृदय की समस्त करुणा हाहाकार कर उठती है। शिव चिंतित एवं संतप्त हैं कि—

परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेमबड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु।।

मानस —बाल काण्ड।।५६।।

क्योंकि— *सती कीन्ह सीता कर वेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा।।*
जों अब करउँ सती सन प्रीति। मिटइ भगति पथु होइ अनीती।।

वही।।५५।।४

और दूसरी और सती संतप्त है कि मैंने शिवजी से कपट ही क्यों किया—

कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य।

इस प्रकार क्षुब्ध सती नारी मात्र को धिक्कारने लगती हैं तथा अपने कपट व्यवहार के लिए आत्मपीड़ा से दुःखी हो प्रभु से मरण की याचना करने लगती हैं। शिवजी के व्यवहार से सती समझ जाती हैं कि शिवजी ने उनका त्याग कर दिया है। वह असह्य विपत्ति से छुटकारे के लिए प्रभु से प्रार्थना करती हैं—

तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह विपत्ति बिहाइ।।

मानस —बालकाण्ड।।५६।।

पति द्वारा त्याज्य सती अपने अपराध का स्मरण कर ग्लानि वश कुछ कहने की स्थिति में नहीं है किन्तु दुःसह दुःख उनके हृदय को आन्दोलित करता रहता है। सती की इस अवस्था का चित्रण अत्यधिक करुण एवं मार्मिक है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पति परित्याग हृदयं दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी।।
वही ।।६०।।४

दुःखी सती पिता के यहाँ होने वाले यज्ञ का समाचार सुनकर शिव की अनिच्छा पर भी वहाँ जाती है परन्तु यज्ञ में शिवजी की उपेक्षा और अपमान देखकर सती क्रोध से तिलमिला उठती है। यहाँ तेज से प्रदीप्त गरिमामय चरित्र की अभिव्यंजना होती है। सच्ची पतिव्रता स्त्री सभी कुछ सहन कर सकती है किन्तु अन्य व्यक्तियों के द्वारा की हुई अपने पति की उपेक्षा उसमें क्रोधानल प्रज्वलित करने के लिए पर्याप्त है। वे अत्यन्त क्रोध से भरकर भरी सभा को ताड़ना देती हैं और चन्द्रमौलि शिवजी को हृदय में धारण कर योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर डालती हैं।[११६] तुलसी ने ऐसी सती को पतिव्रताओं में श्रेष्ठ, गहन, गम्भीर एवं तेजोमय रूप में अंकित किया है। यही सती पुनः हिमाचल के घर जाकर पार्वती के रूप में जन्म लेती हैं।[११७] जहाँ वे अपने आराध्य और प्राप्य शिवजी को पुनः प्राप्त करती हैं। इस प्रकार शिवजी के चरणों में अटूट भक्ति रखने वाली सती का चरित्र अपनी सम्पूर्ण दुर्बलताओं के साथ भी सहज स्वाभाविक सुन्दर और महान् है।

पार्वती—सती ही पार्वती रूप में नूतन जन्म धारण करती हैं। यहाँ अपने पूर्व जन्म के समस्त श्रेष्ठतम संस्कारों एवं शिव की दृढ़ प्रीति से युक्त उनका आदर्श चरित्र और निखर जाता है। पार्वती का चरित्र परम उज्ज्वल, निर्मल, पावन और तपस्या की अग्नि से दीप्तिमान है। नारी जीवन का जितना भी उत्कर्ष सम्भव है वह हमें पार्वती के चरित्र में उपलब्ध हो जाता है।

बालिका पार्वती के रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिसने उसे देखा है वही जान सकता है।[११८] मानस में नारद मुनि पार्वती के रूप गुण का वर्णन करते हैं—

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी।
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी।।
सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी।।
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता।।
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं।
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असिधारा।।[११९]

वास्तव में पार्वती का चरित्र इन्हीं दैवी गुणों पर आधारित दैवी शक्ति से युक्त अभिव्यंजित किया गया है। उन्हें पूर्व जन्म का स्मरण है अतः वे नारद के वचन सुनकर और अपने पति के रूप में शिवजी के लक्षणों को सुनकर मन ही मन प्रसन्न होती हैं।[१२०] वे स्वयं ही व्याकुल होती हुई अपनी माता को संतोष देने के लिए स्वप्न की बात बताती हैं।[१२१] और माता-पिता को समझाकर सहर्ष तप हेतु वन को जाती हैं।[१२२]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'पार्वती मंगल' में मानस से विशेष अन्तर न होते हुए भी जो अन्तर है उसमें पार्वती देवी का अवतार न होकर एक पावन पवित्र, दृढ़ एवं तेजोमयी कन्या के रूप में चित्रित की गई हैं। वहाँ माता मैना उन्हें तप के लिए शिक्षा देती हैं जिसे सहर्ष स्वीकार कर वे कठोर तप में निरत हो जाती हैं, जहाँ उनके आदर्श और पावन प्रेयसी रूप का अंकन हुआ है।

'पार्वती मंगल' और 'मानस' दोनों में ही पार्वती ने असीम निष्ठा एवं अटूट दृढ़ता से घोर तप किया है।[१२३] पार्वती ने निराहार रह कर जैसा तप किया वैसा किसी ने न सुना था और न किसी ने किया था।[१२४] मानस में सप्त ऋषियों द्वारा पार्वती की परीक्षा ली गई है जिसमें पार्वती सफल सिद्ध होती हैं और वासना रहित पावन प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। 'पार्वती मंगल' में स्वयं शिव ब्रह्मचारी ब्राह्मण के रूप में पार्वती की परीक्षा लेते हैं और उन्हें सब प्रकार से अपने चरणों में अनुरक्त पाकर उनके अनन्य व अडिग प्रेम के सम्मुख बिना मूल्य बिक जाते हैं।[१२५] प्रेम नीति में चतुर मर्यादावान उमा, सखी द्वारा शिवजी से पिता के अधीन होने की बात प्रकट करती हैं[१२६] जिस पर—

परितोष गिरिजहिं चले बरनत प्रीति नीति प्रवीनता।।

पार्वतीमंगल ।।८३।।

अन्ततः जगदम्बा पार्वती का विवाह शिव से हो जाता है। शिव और पार्वती जगत् के माता-पिता हैं। उनका चरित्र दिव्य, अलौकिक और अनुपम है। तुलसी की दृष्टि में पार्वती श्रद्धा रूप में परम वन्दनीय हैं।[१२७] यही पार्वती देवी रूप में सीता को मन वांछित वर देने वाली उनकी पूज्या गौरी भवानी हैं।

पार्वती का चरित्र लौकिक रूप में पुत्री और पत्नी का आदर्श है। दृढ़ निश्चयी पवित्र, सुकोमल, सुन्दर, मधुरभाषिणी और भगवत भक्ति से परिपूरित पार्वती का चरित्र गौरवशाली और गरिमामय है।

मैना—राजा हिमाचल की गृहस्वामिनी मैना तेजस्विनी रानी और पार्वती की ममतामयी माता है। मैना का चरित्र बहुत ही स्वाभाविक और लौकिक दृष्टि से सजीव बन पड़ा है। इसमें पत्नी की पूर्ण गरिमा के साथ माँ के हृदय की वत्सलता और पुत्री के प्रति सहज प्रेम की प्रबल भावना के दर्शन होते हैं।

मैना एक स्त्री रत्न है, जो तीनों लोकों की स्त्रियों में मणि के समान श्रेष्ठ है।[१२८] पार्वती मंगल में मैना का चरित्र कुशलता पूर्वक सुकोमल तूलिका से अंकित किया गया है। राजकुमारी पार्वती को सयानी होते देखकर माता-पिता उचित वर के लिए चिंतित हो उठते हैं।[१२९] नारद मुनि के आगमन पर हिमवान के साथ मैना उनकी पूजा करती है और पुत्री

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को लाकर मुनि के चरणों में प्रणाम करवाती है। मैना नारद मुनि से अपनी पुत्री के शुभाशुभ के विषय में जानने को उत्सुक दिखाई देती है,[१३०] जिसमें कन्या के विवाह आदि की चिन्ता से व्याकुल साधारण माता का रूप दिखलाई पड़ता है। नारद से यह सुनकर कि पार्वती को बावला वर मिलेगा, मैना और हिमाचल सहम जाते हैं। उनका जीवन सुख सम्पत्ति सब गिरिजा के हेतु ही है।[१३१] अति आकुल व्याकुल मैना दोष के परिहार की बात पूछती है—

नाथ ! कहिय सोइ जतन मिटइ जेहि दूषनु।
दोष दलनु मुनि कहेउ बालबिधु भूषनु।।

पार्वती मंगल ।।२१।।

बुद्धिमती मैना शिवजी की उपासना करने की सम्मति पाकर यद्यपि पार्वती के कल्याण के लिए उसे तप करने की शिक्षा देती है तथापि तपस्या के लिए तत्पर सुकोमल पुत्री को देखकर वह वात्सल्यमयी माँ स्नेह विह्वल हो उठती है।[१३२] इस प्रसंग में मानस की मैना घर की बागडोर संभाले हुए तेजस्विनी पत्नी के रूप में अंकित हुई है। मुनि की अटपटी वाणी कि पार्वती को बावला वर मिलेगा अतः कोमलांगिनी पार्वती को शिव की प्राप्ति के लिए तप करना चाहिए मैना की समझ में ही नहीं आती। अतः एकान्त में पति से पूर्ण अधिकार एवं गरिमामय मृदु वाणी में कहती है—

पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि बैना।।
जो घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा।।
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी।।
जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू।।
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहु। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू।।[१३३]

स्पष्ट ही यह पति को चेतावनी देती हुई दिखलाई पड़ती है कि अनुपयुक्त वर से विवाह करने पर तुम स्वभाव से जड़ और मूर्ख कहे जाओगे। साथ ही वह विनम्रता पूर्वक पति के चरणों में मस्तक भी नवा देती हैं।[१३४] अपनी प्राणाधार सुकोमल पुत्री पार्वती को तप करने के लिए वन जाने की शिक्षा देते हुए ममतामयी माता का हृदय विदीर्ण हो उठता है—

उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी।।
बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई।।

मानस —बाल काण्ड।७१।। ३,४

इस प्रकार मानस की मैना तेजस्विनी पत्नी और वात्सल्यमयी माता है।

मैना का यही वात्सल्यमय मातृत्व उस समय प्रदर्शित होता है जब अमंगल वेषधारी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शिव को वर रूप में देखकर वह भयभीत हो उठती है। स्नेह विह्वल हो रुदन करती हुई विधाता को ही उलाहना देने लगती है—

अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी।
जेहिं विधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहि जड़ बरु बाउर कस कीन्हा।।[३३५]

साथ ही मैना दृढ़ निश्चय करती है कि भले ही घर उजड़ जाए, संसार में अपयश हो, परन्तु ऐसे बावले वर को वह अपने प्राणों से भी प्रिय कन्या नहीं देगी—

कस कीन्ह बरु बौराह विधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई।।
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरों जलनिधि महुं परौं।
घरु जाऊ अपजसु होउ जग जीवत विबाहु न हौं करों।।

मानस —बाल काण्ड।।६५।। छंद

कैसा सहज, स्वाभाविक रोष है कि हे पार्वती ! तुम्हारे साथ पर्वत से कूद पड़ूँगी, अग्नि में समा जाऊँगी अथवा समुद्र में प्रवेश कर जाऊँगी पर ऐसे बावले वर से तुम्हारा विवाह जीते जी न होने दूँगी।

पुनः विलाप करती हुई मैना नारद जी पर रोष प्रकट करती हुई कहती हैं कि मैंने नारद का ऐसा क्या बिगाड़ा था जिसने मेरे बसे घर को उजाड़ दिया ? जिसने बावले वर की प्राप्ति के लिए पार्वती को तप करने की शिक्षा दी।[३३६] पुनः मैना ममता से आकुल-व्याकुल होकर बिलख उठती हैं और नारद को भला बुरा कहती हैं कि बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा क्या जाने ? वैरागी का ममता से क्या नाता, सन्तान का सुख-दुःख निःसन्तान क्या जाने ? नारद को तो न किसी का मोह है न माया। वह तो धन, घर, स्त्री सभी से विहीन है। दूसरों के घर उजाड़ने वाले नारद को न किसी का भय है और न ही लाज।[३३७] मैना का ऐसा सहज स्वाभाविक और सजीव चरित्र है जो अनायास ही मन को आकर्षित कर लेता है। मैना के चरित्र में देवत्व का कोई अंश नहीं है वह पूर्ण रूप से मानवीय और लौकिक है साथ ही मातृत्व का बड़ा सुकुमार और सरस चित्रण है। पार्वती को विदा करते समय वह ममतामयी माँ पार्वती को नारी धर्म, पति सेवा और पति-पूजा का उपदेश करती हुई बिलखने लगती है।[३३८] मैना बार-बार भेंटती है और बार-बार विदा करती है—

भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुंचावहि।।
हुंकरि हुंकरि सुलवाई धेनू अनुधावहि।।

पार्वती मंगल।।१५८।।

और मैना के मुख से उसके सच्चे उद्‌गार अभिव्यक्त हो उठते हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कत विधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।
भै अति प्रेम विकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमय विचारी।।

मानस —बाल काण्ड ।।१०१।।३

इस असीम व्यथा और मार्मिक पीड़ा से अभिभूत मैना में आज की माता के मन की तरल वेदना व्याप्त है। मैना के इस चरित्र से आज की माँ का हृदय एकाकार हो जाता है। वह एक शाश्वत माँ है जिसके हृदय में प्रेम का अगाध सागर हिलोरें ले रहा है, एक विनम्र पत्नी है जो अपनी सीमाओं व अधिकारों से भली भाँति परिचित है। वह एक कुशल गृहस्वामिनी है, जो घर की बागडोर हाथ में लिए है। मैना पूर्णतया लौकिक और साधारण नारी पात्र होते हुए भी कवि की सूक्ष्म लेखनी से सुन्दर रूप में अंकित है, और सहज आदर और सम्मान की अधिकारिणी है।

सुनयना—सुनयना महाराजा जनक की पटरानी और सीता की माता हैं। इनका चरित्रांकन तुलसी ने अधिक विस्तार से नहीं किया है। वाल्मीकि रामायण में तो सुनयना के विषय में कुछ कहा ही नहीं गया है।[१३६] तुलसी दास ने मानस के अतिरिक्त जानकीमंगल में सुनयना की झाँकी प्रस्तुत की है परन्तु वहाँ वह केवल राम के चरित्र को उत्कर्ष प्रदान करती हुई ही दिखलाई पड़ती है।[१४०]

मानस में सुनयना का चित्रण कुछ विस्तार के साथ हुआ है। सुनयना का परिचय देते हुए कवि कहता है—

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी।।
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि विधि रची बनाई।।

मानस —बाल काण्ड।।३२३।।१

धनुष यज्ञ के अवसर पर मानस की सुनयना साधारण स्त्री की भाँति धनुर्भंग से पूर्व व्याकुल होती हुई दिखलाई पड़ती हैं, जिन्हें उनकी सखी समझाती है। तत्पश्चात् परशुराम लक्ष्मण संवाद सुनकर वे भयभीत हो उठती हैं कि अब बनी बनाई बात बिगड़ी।[१४१] सीता विवाह के समय परछन (आरता) के लिए सुहागिन स्त्रियों की सहायता से मंगल द्रव्य सजाती हुई दिखलाई पड़ती हैं और पुत्री विदा के अवसर पर वे वात्सल्य की साक्षात् प्रतिमा जान पड़ती हैं—

पहुंचावहि फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी।
पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई।।

वही ।।३३६।।४

चित्रकूट पर सुनयना कुलीन पारिवारिक रीति-रिवाज़ और व्यवहार कुशलता युक्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिखलाई पड़ती हैं। जो पहले दासियों को भेजकर समाचार मंगाती है कि राजा दशरथ की रानियाँ फुरसत में हैं अथवा नहीं, परोक्ष रूप से वे अपने आगमन की सूचना भेजती हैं और तब कौशल्या आदि से मिलने के लिए जाती हैं,[१४२] जहाँ भारतीय पारिवारिक प्रेम और शील का अनुपम दृश्य उपस्थित हो जाता है। स्नेहातिरेक से सभी रानियाँ शिथिल हो जाती हैं, किसी से कुछ कहते नहीं बनता, तब सीता माता सुनयना ही विधाता को दोष देती हुई मौन भंग करती हैं। उनके कथन में एक ओर कैकेयी के प्रति रोष भरा है और दूसरी ओर दुःख एवं खेद। कैकेयी को लक्ष्य कर वे कुछ कटु वचन भी कहती हैं[१४३] जिससे उनकी स्वाभाविक मनःस्थिति का दिग्दर्शन होता है। फलस्वरूप सुनयना का चरित्र अधिक स्वाभाविक और सजीव बन जाता है।

माता कौशल्या के निरीह कथन पर कि 'अब तो मिथिलेश ही हमारे सहायक हैं' रानी सुनयना कौशल्या के चरण पकड़कर अत्यधिक विनम्रता और सदाचार का परिचय देती हैं—

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनक प्रिया गह पाय पुनीता।।
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ घरिनि राम महतारी।।
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं।।
सेवकु राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेसु भवानी।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।२८४।।१-२

इस प्रकार सुनयना का व्यक्तित्व सीता की माता, राम की सास, जनक की प्रिय पाटमहिषी और कौशल्या की समधिन के अनुरूप शिष्ट, सौम्य, गंभीर, विनम्र और विवेक से युक्त है। सुनयना का चरित्र सहज स्वाभाविक सत् नारी पात्र के गुणों से परिपूरित व सुन्दरता से चित्रित है।

मन्दोदरी—तुलसी ने मन्दोदरी का परिचय, स्त्रियों में शिरोमणि (मयदानव की) परम सुन्दरी कन्या कहकर दिया है।[१४४] रावण को महान् योद्धा और राक्षसों का राजा जानकर ही मयदानव ने अपनी पुत्री का विवाह उससे किया। ऐसी भली स्त्री पाकर रावण अति प्रसन्न होता है।[१४५] मन्दोदरी नीतिकुशल, धर्म-परायण, बुद्धिमती, राजनीतिविद्, पतिव्रता और परम विवेकमयी स्त्री के रूप में अंकित की गई है। मन्दोदरी के चरित्र का पत्नी पक्ष, और उसके भी सखी और मंत्रिणी रूप को ही अधिक अभिव्यक्ति मिली है। मन्दोदरी रावण की परम प्रिय पाटमहिषी है।

सर्व प्रथम मन्दोदरी, सीता को मारने के लिए उद्यत रावण को नीति सिखाकर वर्जित करती है।[१४६] तत्पश्चात् हनुमान द्वारा लंका को जला दिए जाने पर राक्षसों के गिरते हुए मनोबल की बात दूतियों द्वारा सुनकर चिन्ताकुल होती हुई तथा एकान्त में अपने पति को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हितकर सीख देती हुई दिखलाई गई है।[१७७] जहाँ मन्दोदरी राम को ईश्वर मानती हुई, पति की सच्ची हितैषिणी, नीति परायण और विनम्र पत्नी के रूप में रावण के हाथ जोड़ और चरण छूकर प्रार्थना करती हुई दिखलाई गई है वहाँ मूर्ख और जगत् प्रसिद्ध अभिमानी रावण स्त्रियों के डरपोकपन की बात कहता हुआ उसकी बात हँसी में टाल देता है कि जिसके भय से लोक पाल भी काँपते हैं उसकी स्त्री डरती हो यह हँसी की बात है। और—

अस कहि बिहसि ताहि उर लाई। चलेउ सभाँ ममता अधिकाई।
मंदोदरी हृदयँ कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता।।

मानस —सुन्दर काण्ड।३६।३

इसी प्रकार पति के अनिष्ट की चिंता से व्याकुल मन्दोदरी जब खेल में ही समुद्र बाँध कर राम के लंका में प्रविष्ट हो जाने के समाचार को सुनती है तब स्वाभाविक रूप से ही उसका भय और चिन्ता बढ़ जाती है। उसे निश्चय हो जाता है कि राम अवश्य ही भगवान् का रूप हैं तब—

कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी।।
चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा।।

मानस —लंका काण्ड ।५।२

मंदोदरी अति विनम्र भाव और याचनापूर्ण मधुर स्वर से पुनः आग्रह करती है कि राम भगवान् के अवतार हैं। अतः विरोध करने योग्य नहीं हैं क्योंकि —"नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुद्धि बल सकिअ जीति जाही सों।" इसी प्रकार भगवान् राम को सीता देकर उनकी शरण में जाने का उपदेश भी मंदोदरी अपने सुहाग की चिन्ता में ही भयभीत होकर देती है—

अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात।।७।।

वही

परन्तु अभिमानी रावण— 'कहै लाग खल निज प्रभुताई।' जिससे मन्दोदरी विवश होकर यही समझती है कि 'काल वस्य उपजा अभिमाना' और मौन हो जाती है।

पति प्रेम में आकंठ निमग्न और पति की सच्ची हितैषिणी पत्नी मन्दोदरी जब लंका शिखर पर स्थित विचित्र महल के अखाड़े में नृत्य गान आदि के मध्य चमत्कारिक रूप में रावण के छत्र मुकुट और अपने कर्णफूल कटकर धरती पर गिरते हुए देखती है[१७८] (जिन्हें राम ने ही काटा था) तब 'मन्दोदरी सोच डर बसेऊ' और पुनः वह चिन्तातुर होती हुई—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी।
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू।।

मानस—लंका काण्ड ।।१३ख।।४

परन्तु रावण हँस कर स्त्रियों के आठ अवगुण गिनाने लगता है और मन्दोदरी 'मन महुं अस ठयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयऊ।' इस प्रकार मन्दोदरी विवेकशील और पति परायण पत्नी ही है जो गुरु के समान सीख देने वाली है परन्तु—

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयं न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम।।

वही ।।१६ख।।

घमंड में अंधा रावण सुनता नहीं—

सहज असंक लंकपति सभाँ गयऊ मद अंध।।

वही ।।१६क।।

स्पष्ट है कि तुलसी ने सर्वत्र ही मन्दोदरी को भगवान् राम की भक्त और पति से अतिशय प्रेम करने वाली उसकी हित चिंतक और श्रेष्ठ गुरु के समान सीख देने वाली पतिव्रता नारी के रूप में ही चित्रित किया है। राम के दूत बालि पुत्र अंगद, रावण के पुत्र को मारकर रावण की भरी सभा में पहुँच चरण को दृढ़तापूर्वक रोप, सबको चुनौती देता है और रावण के सभी सभासदों को बलहीन सिद्ध करता हुआ नीचा दिखाकर प्रण करता है—

हतौं न खेत खेलाई खेलाई। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई।।

मानस —लंका काण्ड।।३४ख।।६

और —*जातुधान अंगद पन देखी। भय व्याकुल सब भए बिसेषी।।*

वही ।।३४ख।।७

ऐसी स्थिति में मन्दोदरी अंतिम बार फिर अपने पति को विनाश से बचाने का प्रयास करती है। अनेक बार की गई विनम्र अनुनय विनय, प्रीतिपूर्ण प्रार्थना, करुण याचना और कल्याणकर आग्रह की अवहेलना कर दिए जाने से सम्भवतः मन्दोदरी खीज जाती है और सहज रूप से ही रावण के प्रति कुछ व्यंग्य वचन मुखरित होते हैं, जो यथार्थ ज्ञान और हित भावना से ही प्रेरित हैं—

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोइ न समर तुम्हहि रघुपतिही।।
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई।।
पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा।।
कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयऊ कपि केहरी असंका।।

वही।। ३५ख।।२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा— *जनक सभाँ अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला।।*
भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही।।
सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदयं नहिं लाज बिसेषी।।
वही।।३५ख।।५,६,७

इसके साथ ही—"मन्दोदरी राम द्वारा विराध, खर-दूषण, कबन्ध और बालि की मृत्यु तथा जयन्त की दुर्दशा का वर्णन करके अंगद और हनुमान् के शौर्य का उल्लेख कर शुद्ध भाव से कहती है—'पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुल बल जानहु।' (मानस लंका काण्ड।।३५ख।।४) इसके साथ ही मन्दोदरी क्रोध, खेद और दुःख के आवेश में—

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा।।
वही ।।३५ख।।५

आदि शब्दों का प्रयोग भी करती है और अन्त में—

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि विचारा।।
निकट काल जेहि आवत साई। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाई।।
दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुं पूर पिय देहु।
मानस —लंका काण्ड ३६।।४।। तथा ३७।।

रावण को समझाने और मृत्यु से बचाने का अंतिम असफल प्रयास करती है। यह कथन यद्यपि मन्दोदरी को आदर्श से उठाकर यथार्थ के धरातल पर स्थापित कर देते हैं जो सत् एवं तम के बीच रजोगुणी धर्म से ही विशेषतः परिचालित है। मन्दोदरी तुलसी की मध्यवर्गीय नारी पात्र है तथापि उसमें शील वैविध्य की मनोरम मुद्राएँ देखने को मिलती हैं। यही मन्दोदरी आँसू भरे हाथ जोड़ पैर पड़ती हुई दीन विनम्र पत्नी है तो यही हिताहित का ज्ञान कराती हुई सच्ची सखी बन गई है। यही राजनीति और नीति समझाती गुरु और मंत्रिणी पद पर स्थित है तो यही कुमार्गगामी बालक को समझाने की भावना से प्रेरित मातृत्व लिए हठी बालक के समान पति को समझाती हुई परम हितू साध्वी पत्नी है।

ऐसी मन्दोदरी तुलसी के सम्पूर्ण सम्मान और पूज्य भाव की अधिकारिणी ही हो सकती है परन्तु आलोचकों का कथन है कि "रावण के प्रति तो तुलसी की अत्यधिक अनुदारता और कवि सुलभ सहृदयता का अभाव व्यक्त है ही परन्तु उसकी पत्नी के प्रति भी वे न्याय नहीं कर सके। उसके मुख से शत्रु की अत्यधिक प्रशंसा और उसकी भर्त्सना कराके उन्होंने राम के प्रति पक्षपात किया है और सम्पूर्ण प्रतिनायक पक्ष की हीनता प्रकट की है।"[१४६]—कुछ स्पष्ट नहीं होता क्योंकि मन्दोदरी के प्रति न तो कवि ने कहीं कटु वचनों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का प्रयोग ही किया है और न ही किसी अन्य पात्र से उसकी भर्त्सना व निन्दा कराई है। यहाँ तक कि रावण, जो हितकारी नीति सिखाने और राम की प्रशंसा करने के अपराध पर मंत्री को दरबार से निकाल देता है, भाई को लात मारकर भगा देता है और पुत्र प्रहस्त को भी कटु वचन कहता है, उसी अपराध पर अपनी पत्नी को कहीं ताड़ना देता हुआ भी दिखलाई नहीं पड़ता अपितु प्रेम पूर्वक हृदय से लगाकर हँसता ही है। अतः स्वयं तुलसी ने मन्दोदरी को न कहीं गिराया है और न उसकी निन्दा ही की है।

आलोचकगण सम्भवतः मन्दोदरी के द्वारा उस विशेष मनःस्थिति में– जब कि उसके दो पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे, लंका अनाथ की भाँति जल चुकी थी, शत्रु सिर पर खड़ा था, सगा भाई शत्रु का भेदी बन गया था और जिस बलवान् शत्रु का दूत सभा में पैर रोप कर सबको निर्बल सिद्ध कर गया था, अर्थात जब भयंकर विनाश और राक्षस जाति का अंत समीप दिखाई दे रहा था—(क्योंकि रावण स्वयं भगवान् को ही शत्रु मान विरोध कर रहा था) रोष, दुःख, खेद, भय तथा हित भावना से प्रेरित होकर कहे गए कुछ अपशब्दों, नीच और जड़ आदि के आधार पर उसके चरित्र को गिरा हुआ मानते हैं और इसे तुलसी का अक्षम्य अपराध मानते हैं।

डॉ० अग्रवाल ने कहा है कि—"पतिव्रताओं का परमेश्वर पति ही होता है (तुलसी के अनसूया-उपदेश द्वारा) तो इस आदर्श से वह गिर गई है, क्योंकि वह तो राम को परमेश्वर मानती है।"[१५०] और डॉ० गुप्त ने कहा है कि जहाँ मन्दोदरी को —"अपने पति को नीच आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हुए देखते हैं वहाँ पर स्वतः कवि अपने स्त्रियोचित धर्म के आदर्श का उल्लंघन करता हुआ प्रतीत होता है, और स्वनिर्मित नैतिक नियमों के अनुसार एक अक्षम्य अपराध करता है : 'वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।। ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।' कवितावली में मन्दोदरी का चरित्र कदाचित् और भी गिर गया है।"[१५१] मन्दोदरी के चरित्र की समीक्षा करते समय स्पष्ट हो जाता है कि उसके पतिव्रत में कोई कमी नहीं है; पति के प्रति अतिशय प्रेम के कारण ही वह उसकी निन्दा करती है।"[१५२] इसे स्वयं डॉ० अग्रवाल ने स्वीकार किया है फिर उसे आदर्श च्युत कैसे माना जा सकता है। वह एक जीवन्त और विवेकशील पात्र है—मन्दोदरी पर-पुरुष राम को परमेश्वर मानने नहीं जाती अपितु उसका विश्वास है कि—

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ।।

मानस —लंका काण्ड ।।१५क,ख।।

स्पष्ट है कि वह अपने सुहाग की रक्षा के हेतु ही अपने प्राणपति से प्रभु का विरोध न करने की प्रार्थना करती है। राम साधारण नर नहीं हैं। वे विष्णु के अवतार साक्षात् प्रभु ही हैं। अतः मन्दोदरी पर अपने पति को छोड़ पर-पुरुष को परमेश्वर मानने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

इसी प्रकार "वृद्ध रोगबस.....दुख नाना।" भी तुलसी का स्वनिर्मित आदर्श नहीं है इसका विवेचन किया जा चुका है।[५३] फिर तुलसी नियम और शील के अन्तर को समझते थे। मन्दोदरी स्त्रियोचित नियम का पालन न करने की दोषी कही जा सकती है, शील आचरण से गिरी हुई नहीं, क्योंकि मन्दोदरी का लक्ष्य पति का अपमान करना नहीं अपितु उसके प्राणों की रक्षा करना था। नियम विवेक और आचरण की वस्तु है और शील सात्त्विक हृदय और सत् भावना का। लोकभय और यश लालसा से नियम का पालन तो ढोंगी और पाखण्डी भी कर सकता है परन्तु शील का सम्बन्ध पावन और सात्त्विक हृदय से ही होता है, अतः मन्दोदरी नियम का उल्लंघन करने पर भी शील संयुक्त सात्त्विक हृदय को लिए हुए उच्चतम धरातल पर अवस्थित है। उसे पतित या गिरा हुआ नहीं माना जा सकता। यदि मनःस्थिति और परिस्थिति विशेष में पति को कहे गए दो कटु वचन उसके चरित्र को गिरा देने वाले हो सकते हैं तो स्वयं तुलसी के विचारानुसार प्रस्तुत नियम—

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभु तिन्ह जन्म कर नतरु जनमु जग जाय।।

—दोहावली ।।५४०।।

के अनुरूप तो भरत का जन्म ही व्यर्थ सिद्ध हो जाता है क्योंकि वे माता की सीख की अवहेलना ही नहीं करते वरन् मनमाने कटु वचनों से उसकी निन्दा और भर्त्सना भी करते हैं। तुलसी की दृष्टि में माता निश्चय ही माननीय और आदरणीय है। उसका अपमान उन्हें वांछनीय नहीं है क्योंकि आदर्श पात्र राम के विचारानुसार—

दोषु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।२६२।।४

के अनुसार भी माँ को दोष देने वाले भरत जड़ सिद्ध होते हैं साथ ही—

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन।।

दोहावली ।।५४१।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का प्रयोग ही किया है और न ही किसी अन्य पात्र से उसकी भर्त्सना व निन्दा कराई है। यहाँ तक कि रावण, जो हितकारी नीति सिखाने और राम की प्रशंसा करने के अपराध पर मंत्री को दरबार से निकाल देता है, भाई को लात मारकर भगा देता है और पुत्र प्रहस्त को भी कटु वचन कहता है, उसी अपराध पर अपनी पत्नी को कहीं ताड़ना देता हुआ भी दिखलाई नहीं पड़ता अपितु प्रेम पूर्वक हृदय से लगाकर हँसता ही है। अतः स्वयं तुलसी ने मन्दोदरी को न कहीं गिराया है और न उसकी निन्दा ही की है।

आलोचकगण सम्भवतः मन्दोदरी के द्वारा उस विशेष मनःस्थिति में– जब कि उसके दो पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे, लंका अनाथ की भाँति जल चुकी थी, शत्रु सिर पर खड़ा था, सगा भाई शत्रु का भेदी बन गया था और जिस बलवान् शत्रु का दूत सभा में पैर रोप कर सबको निर्बल सिद्ध कर गया था, अर्थात जब भयंकर विनाश और राक्षस जाति का अंत समीप दिखाई दे रहा था—(क्योंकि रावण स्वयं भगवान् को ही शत्रु मान विरोध कर रहा था) रोष, दुःख, खेद, भय तथा हित भावना से प्रेरित होकर कहे गए कुछ अपशब्दों, नीच और जड़ आदि के आधार पर उसके चरित्र को गिरा हुआ मानते हैं और इसे तुलसी का अक्षम्य अपराध मानते हैं।

डॉ० अग्रवाल ने कहा है कि—"पतिव्रताओं का परमेश्वर पति ही होता है (तुलसी के अनसूया-उपदेश द्वारा) तो इस आदर्श से वह गिर गई है, क्योंकि वह तो राम को परमेश्वर मानती है।"[१५०] और डॉ० गुप्त ने कहा है कि जहाँ मन्दोदरी को —"अपने पति को नीच आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हुए देखते हैं वहाँ पर स्वतः कवि अपने स्त्रियोचित धर्म के आदर्श का उल्लंघन करता हुआ प्रतीत होता है, और स्वनिर्मित नैतिक नियमों के अनुसार एक अक्षम्य अपराध करता है : 'वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।। ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।' कवितावली में मन्दोदरी का चरित्र कदाचित् और भी गिर गया है।"[१५१] मन्दोदरी के चरित्र की समीक्षा करते समय स्पष्ट हो जाता है कि उसके पतिव्रत में कोई कमी नहीं है; पति के प्रति अतिशय प्रेम के कारण ही वह उसकी निन्दा करती है।"[१५२] इसे स्वयं डॉ० अग्रवाल ने स्वीकार किया है फिर उसे आदर्श च्युत कैसे माना जा सकता है। वह एक जीवन्त और विवेकशील पात्र है—मन्दोदरी पर-पुरुष राम को परमेश्वर मानने नहीं जाती अपितु उसका विश्वास है कि—

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ।।

मानस —लंका काण्ड ।।१५क,ख।।

स्पष्ट है कि वह अपने सुहाग की रक्षा के हेतु ही अपने प्राणपति से प्रभु का विरोध न करने की प्रार्थना करती है। राम साधारण नर नहीं हैं। वे विष्णु के अवतार साक्षात् प्रभु ही हैं। अतः मन्दोदरी पर अपने पति को छोड़ पर-पुरुष को परमेश्वर मानने का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

इसी प्रकार "वृद्ध रोगबस.....दुख नाना।" भी तुलसी का स्वनिर्मित आदर्श नहीं है इसका विवेचन किया जा चुका है।[५३] फिर तुलसी नियम और शील के अन्तर को समझते थे। मन्दोदरी स्त्रियोचित नियम का पालन न करने की दोषी कही जा सकती है, शील आचरण से गिरी हुई नहीं, क्योंकि मन्दोदरी का लक्ष्य पति का अपमान करना नहीं अपितु उसके प्राणों की रक्षा करना था। नियम विवेक और आचरण की वस्तु है और शील सात्त्विक हृदय और सत् भावना का। लोकभय और यश लालसा से नियम का पालन तो ढोंगी और पाखण्डी भी कर सकता है परन्तु शील का सम्बन्ध पावन और सात्त्विक हृदय से ही होता है, अतः मन्दोदरी नियम का उल्लंघन करने पर भी शील संयुक्त सात्त्विक हृदय को लिए हुए उच्चतम धरातल पर अवस्थित है। उसे पतित या गिरा हुआ नहीं माना जा सकता। यदि मनःस्थिति और परिस्थिति विशेष में पति को कहे गए दो कटु वचन उसके चरित्र को गिरा देने वाले हो सकते हैं तो स्वयं तुलसी के विचारानुसार प्रस्तुत नियम—

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभु तिन्ह जन्म कर नतरु जनमु जग जाय।।

—दोहावली ।।५४०।।

के अनुरूप तो भरत का जन्म ही व्यर्थ सिद्ध हो जाता है क्योंकि वे माता की सीख की अवहेलना ही नहीं करते वरन् मनमाने कटु वचनों से उसकी निन्दा और भर्त्सना भी करते हैं। तुलसी की दृष्टि में माता निश्चय ही माननीय और आदरणीय है। उसका अपमान उन्हें वांछनीय नहीं है क्योंकि आदर्श पात्र राम के विचारानुसार—

दोषु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।२६२।।४

के अनुसार भी माँ को दोष देने वाले भरत जड़ सिद्ध होते हैं साथ ही—

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन।।

दोहावली ।।५४१।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस नियम के अनुरूप भी राम ही, जो पिता के वचन वनवास की आज्ञा शिरोधार्य करते हैं—यश के पात्र हैं और भरत इस नियम से गिर जाते हैं क्योंकि उन्होंने तो पिता की आज्ञा का उल्लंघन और पिता के वचनों की (अयोध्या का राज ठुकराकर) अवहेलना ही की परन्तु भरत तो अत्यधिक निर्दोष और निर्विवाद रूप से अद्वितीय पात्र हैं। डॉ० अग्रवाल उन्हें धर्म पालन की दृष्टि से राम से भी ऊँचा मानते हैं[१५३] और डॉ० गुप्त भरत में राम से भी अधिक दोष रहित भव्य चरित्र देखते हैं।[१५४] वास्तव में भरत हैं भी ऐसे ही क्योंकि वे हृदय से सात्त्विक हैं। अतः मन्दोदरी की सात्त्विक भावनाओं और प्राणपति की रक्षा के उत्तम लक्ष्य को देखकर उसे गिरा हुआ कैसे माना जा सकता है ? वास्तव में आचार्य शुक्ल के अनुसार सिद्धान्त और अर्थवाद में भेद न समझने के कारण ही आलोचक प्रसंग विशेष में कवि के भीतरी उद्देश्य की खोज न करके केवल शब्दार्थ ग्रहण करके तर्क-वितर्क करते हैं।[१५५] स्पष्ट है कि अनसूया द्वारा दिए गए स्त्रियोचित परम्परागत नियमों के उल्लेख में तुलसी पतिपरायणता के साधारण नियमों का विवेचन कर स्त्रियों को पति प्रेम निरत करना तो अवश्य चाहते थे परन्तु पुराणों की घिसी-पिटी लीक के अनुरूप 'शांडिली' धर्म को कदापि मान्य नहीं मानते थे। कुमार्गगामी पति की उचितानुचित इच्छाओं के अनुरूप अंध भक्ति उन्हें मान्य नहीं थी अपितु अवसरानुकूल पति को उचित मार्ग दिखलाना भी उसका धर्म ही था। यही कारण है कि मन्दोदरी पतिव्रत धर्म से च्युत नहीं मानी गई हैं। वह एक उद्बुद्ध नारी पात्र है जिसे पति को उचित मार्ग दिखाने का पूर्ण अधिकार मिला है जिसे स्वयं नीच वृत्ति वाले रावण ने भी सहर्ष स्वीकार किया है। रावण मन्दोदरी के हृदय की सात्त्विकता और पावनता से परिचित था। यही कारण है कि वह कहीं भी उसका अपमान नहीं करता।

रावण की मृत्यु पर प्रस्तुत उक्ति—

अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम विमुख यह अनुचित नाहीं। खेद जनक प्रतीत होती है।[१५६] प्रश्न हो सकता है कि क्या यह कथन मन्दोदरी का ही है। मानस में यह स्पष्ट नहीं हो पाया है। यह कथन रावण की अन्य स्त्रियों का भी हो सकता है जो—पति के सिर देखते ही, व्याकुल और मूर्च्छित धरती पर पड़ी हुई मन्दोदरी को उठाकर रावण के पास ले जाती हैं और अनेक प्रकार से विलाप करती हैं।[१५७] सम्भव है मन्दोदरी ने केवल भगवान राम की स्तुति मात्र छंद में की हो[१५८] जिसे सुनकर देवता-मुनि और सिद्ध सभी सुखी हुए हैं।[१५९] यदि उपरोक्त कथन मन्दोदरी का मान भी लिया जाए तब भी उसमें तुलसी के भक्त व्यक्तित्व का प्रभाव ही माना जा सकता है इस दृष्टिकोण से भी तुलसी की चरित्र-चित्रण कला को ही दोष दिया जा सकता है कि भक्ति भाव के आधिक्य के कारण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह पात्र अवस्था और परिस्थिति को भूल गए। मन्दोदरी का चरित्र फिर भी हीन नहीं माना जा सकता।

अन्ततः कहा जा सकता है कि मन्दोदरी विदुषी, नीति कुशल, राजनीति-विज्ञ, पति-परायण, कुल और परिवार की हितचिंतक, ईश्वरभक्त, तर्क कुशल तथा तेजमयी उद्‌बुद्ध नारी के रूप में अंकित हुई है।

तारा—तारा सुग्रीव बन्धु वीर वानरराज बालि की पत्नी और वीर अंगद की माता है। पाँच सती कन्याओं में तारा की भी गिनती की जाती है। यद्यपि मानस में तारा के व्यक्तित्व का विशेष प्रकाशन नहीं हो पाया है तथापि तुलसी साहित्य में भी तारा को सती नारियों में ही स्थान दिया गया है, तारा पति प्रेम से युक्त एवं नीति परायण कुशल नारी है।

जब राम से मित्रता कर उनकी शक्ति पाकर सुग्रीव बालि को युद्ध के लिए ललकारता है तो बुद्धिमती तारा बड़ी विनम्रता से पति को समझाने का प्रयास करती है—

सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा।।
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा।।
मानस—किष्किंधा काण्ड ६।।१४।।

लेकिन बालि उसकी बात नहीं मानता और युद्ध में राम द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है। तारा पति को मृत जान देह की सुध-बुध भूल अवसाद वश अनेकों प्रकार से विलाप करती है।[१६०] इस समय स्वयं राम उसे ज्ञान देते हैं, भगवान् से भक्ति का वरदान भी वह मांग लेती है। राम ने भी तारा का कहा न मानने के कारण बालि की भर्त्सना की है जिससे तारा की विद्वता का परिलक्षण होता है।[१६१] कहा जाता है कि वानर जाति के नियमानुसार सुग्रीव के राजा होने पर तारा पटरानी बनी।[१६२] लेकिन मानस अथवा अन्य तुलसी ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है। हाँ, राम यह अवश्य कहते हैं—

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी। पावा राजा कोस पुर नारी।
वही ।।१७।।२

यहाँ नारी के तात्पर्य तारा से लगाए जा सकते हैं और बालि द्वारा हरण कर ली गयी उसकी अपनी पत्नी से भी। अतः तुलसी के ग्रन्थों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि तारा सुग्रीव की पटरानी बन गई अथवा नहीं। हाँ जब लक्ष्मण क्रोधित हो सुग्रीव के पास जाते हैं तब अवश्य सुग्रीव हनुमान् के साथ तारा को भेजता है कि वो लक्ष्मण का क्रोध शान्त करें। तारा को भेजने से कई कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रथम तो तारा बुद्धिमती थी अतः उसके बुद्धि बल पर भरोसा कर सुग्रीव ने उसे लक्ष्मण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का क्रोध शांत करने भेज दिया हो, साथ ही तारा को राम भक्ति का वरदान मिला हुआ था तथा अंगद माता तारा की तेजस्विता से और नारी मात्र को सम्माननीय समझने के कारण लक्ष्मण उसके समक्ष क्रोध नहीं करते, हुआ भी यही हनुमान् और तारा लक्ष्मण की क्रोधाग्नि शान्त करने में समर्थ हो गए।

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि वानर समाज की सभ्यता व संस्कृति के अनुरूप तारा सती पतिव्रता स्त्री थी और भगवान् से भक्ति का वरदान प्राप्त कर वह और भी उन्नत हो गई। तारा के चरित्र में नीति, निपुणता और बुद्धिमत्ता आदि गुण स्वभाव से ही संचित किए गए हैं।

मंथरा—कैकेयी की मुँहलगी दासी मंथरा रामचरितमानस का महत्त्वपूर्ण किन्तु असत् नारी पात्र है। परिवार में विघटन उत्पन्न कराने वाली, राम विरोधी, अयोध्या की साढ़साती रूपी[१६३] मंथरा सर्वत्र ही तुलसी द्वारा निन्दनीय और भर्त्सनीय रही। अति कुरूप, कुबुद्धि, कुजाति, कुचाली, कुबड़ी मंथरा अत्यधिक कुटिल हृदया और मंदबुद्धि [illegible] गई है।[१६४] इस प्रकार कोई दुर्गुण शेष नहीं रह गया है जो मंथरा में न हो परन्तु मन्दमति ही उसके चरित्र को निरीह बना देती है।

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकेई केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।१२।।

यद्यपि इस कथन के द्वारा तुलसी ने अपनी सहानुभूति के कुछ कण मंथरा को भी दिए हैं तथापि राम वन-गमन का कारण मंथरा ही मानी जाती है, जो अपयश की पिटारी बनकर शत्रुघ्न द्वारा दंडित होती है। फिर भी कलात्मक दृष्टि से मंथरा एक सजीव और अमर नारी चरित्र है।[१६५]

मंथरा के चरित्र के द्वारा गोस्वामी जी ने मानव मन के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया है जो उनकी सूक्ष्म बुद्धि का परिचायक है।[१६६] मंदबुद्धि के विश्लेषण से विभूषित मंथरा मंदबुद्धि दिखलाई नहीं पड़ती। नगर में राम के राज्याभिषेक की बात सुनकर महल को लौटती हुई मंथरा तुरन्त ही रात ही रात में अयोध्या की राजनीति को पलट देने वाले सफल कुचक्र की रचना कर लेती है,[१६७] जो उसकी चतुरता और कूटनीतिज्ञता का ही प्रमाण है। आलोचकों ने इस कुचक्र रचना के कारणों पर विभिन्न अनुमान प्रस्तुत किए हैं। डॉ० गुप्त के अनुसार मंथरा की स्वामिभक्ति ही इसका कारण प्रतीत होती है,[१६८] तो आचार्य शुक्ल ने मूर्ख स्त्रियों की साधारण प्रवृत्ति को इसका कारण कहा है[१६९] और डॉ० अग्रवाल ने 'काने खोरे कूबरे कुटिल कुचालि जानि' मनोवैज्ञानिक आधार को इसका कारण बतलाया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है—"जिस आपसी कलह से उनका समाज पीड़ित रहता है, उसी प्रकार का कलह वे उच्च वर्ग या स्वामी वर्ग में उत्पन्न करके आत्म सन्तोष लाभ करते हैं।"[१७०]

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर इसमें स्पष्ट विरोध जान पड़ता है। यदि मंथरा में स्वामिभक्ति थी तो स्वामी वर्ग में कलह कराने की प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती। यदि कलह करा कर आत्म तुष्टि ही उसका लक्ष्य था तो स्वामिभक्ति को कहीं स्थान नहीं रह जाता और मूर्ख स्त्रियों की साधारण प्रवृत्ति को इसका कारण माना जाए तो कहा जा सकता है कि मंथरा मूर्ख नहीं थी, मूर्खों में ऐसी कूट चातुरी नहीं होती जैसी उसमें दिखलाई पड़ती है। कैकेयी के कथन—

हंसि कह रानि गालु बड़तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें।

को सुनकर उसके उत्तर में वस्तुतः मंथरा की प्रथम उक्ति—"कत सिख देइ हमहि कोऊ माई। गालु करब केहि कर बलु पायी।" में इस कुचक्र का कारण खोजा जा सकता है। 'गालु करब केहि कर बलु पाई', का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि राजा दशरथ की सर्वाधिक सम्माननीय रानी की चहेती दासी का निश्चय ही समाज में अधिक मान रहा होगा और वह बढ़-बढ़ कर बोलती होगी। परन्तु अपनी स्वामिनी के स्थान पर कौशल्या के राजमाता के गौरवपूर्ण पद पर अवस्थित हो जाने से कैकेयी की स्थिति नगण्य हो जाने की सम्भावना थी, जिसके फलस्वरूप उसकी अपनी स्थिति और शक्ति भी कम होती थी, जो उसे सह्य नहीं हुई। अतः अपनी स्वामिनी को, राजमाता के उच्च पद पर प्रतिष्ठित करके वह अपनी स्थिति को भी सुदृढ़ और उन्नत बनाना चाहती थी। संभवतः मंथरा का यही स्वार्थ था। उसका विचार था कि—

रेख खंचाई कहउँ बलु भाषी। भामिनी भइहु दूध कइ माखी।
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई।।

मानस—अयोध्या काण्ड।।१८।।४

जब उसकी स्वामिनी की ऐसी अवस्था होने की सम्भावना थी तो फिर स्वयं उसकी क्या दशा होती। अतः वह रात ही रात में भरत के राज्याभिषेक और राम को चौदह वर्ष के वनवास की व्यवस्था कराकर मार्ग निष्कंटक कर लेती है।

मंथरा केवल राजनीति की कुंजी घुमाने वाली ही नहीं वरन् मनोविज्ञान विशारद भी है। सरल हृदया कैकेयी को बहकाने में यद्यपि मंथरा को बहुत देर नहीं लगी परन्तु उसे अपने विचारानुकूल कराने के लिए उसने जिन मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का आधार लिया वह अद्वितीय है। मंथरा का प्रत्येक वाक्य, उसकी मौन मुद्राएँ यहाँ तक कि साँसों का लेना भी उसके प्रयोजन की सिद्धि में सहायक बना है। कुछ भी न कहकर केवल उदास मुख मुद्रा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बनाकर रानी के पास जाना और रानी के हँसकर उदासी का कारण पूछने पर मौन होकर लम्बी-लम्बी साँस लेना, रानी के विनोद करने पर कि अवश्य ही लक्ष्मण ने तुझे सीख दी है, वह पुनः मौन मुद्रा बना लेती है और लम्बी साँस छोड़कर हँसती हुई रानी को उसकी स्वाभाविक मनः स्थिति से उठाकर सकपकाहट भरी भयपूर्ण स्थिति में डाल देती है, जहाँ रानी की अपनी विचार शक्ति क्षीण हो जाती है और तब उसका प्रथम वाक्य अभिव्यंजित कर देता है कि किसका बल पाकर मैं बोलूंगी, हे मेरी स्वामिनी ! तुम्हारा प्रभुत्व तो अब समाप्त हो चुका, अब तुम्हारी स्थिति ही क्या है ? पुनः सपत्नी कौशल्या के गर्व और गरिमा का वर्णन कर उसके प्रभुत्व और कैकेयी की दुर्दशा का भयंकर चित्र, सौत दुर्व्यवहार की अनेक कथाओं के माध्यम से अंकित करती है। यही नहीं उसके मातृ हृदय पर भी सीधी चोट करती है कि—'पूत विदेस न सोचु तुम्हारे' तथा

कद्दूँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देव।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब।।

मानस —अयोध्या काण्ड ।।१६।।

अंत में कैकेयी भयभीत होकर उस पर विश्वास कर लेती है। यदि कैकेयी के स्थान पर कोई अन्य सरल हृदया स्त्री होती तो वह भी विश्वास कर लेती, क्योंकि मंथरा का प्रत्येक शब्द व्यंजना शक्ति से परिपूरित और तर्कपूर्ण था, जो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी अत्यधिक प्रभावशाली था।

स्थूल रूप से देखा जाये तो मंथरा का सम्पूर्ण प्रयास स्वामिनी के लिए राजमाता पद की व्यवस्था करने के कारण स्वामिभक्ति के अन्तर्गत लिया जा सकता है।[७१] परन्तु तुलसी ने ऐसा नहीं माना है। प्रथम तो राम विरोधी मंथरा का कोई गुण राम भक्त तुलसी देख ही नहीं सकते थे क्योंकि मानस के सभी सत् और असत् पात्रों में मंथरा और शूर्पणखा ही ऐसे चरित्र हैं जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी प्रकार भी राम के ईश्वरत्व से प्रभावित नहीं हैं फिर मंथरा का कार्य तो वस्तुतः उसकी स्वामिनी के लिए ही हितकर सिद्ध नहीं हुआ। उसकी सीख पर चलने से सबसे अधिक अहित कैकेयी का ही होता है। प्राणप्रिय पति की मृत्यु और एक मात्र पुत्र के द्वारा की गई अवहेलना और जीवन पर्यन्त बात न करने की स्थिति में ग्लानि ग्रस्त कैकेयी की मानसिक पीड़ा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। तुलसी के विचार से तो मंथरा स्वामिभक्त दासी नहीं वरन् कैकेयी को बलि-पशु बनाकर कपट छुरी से उसके सत् स्वरूप की हत्या कर उसके विनाश को आमन्त्रित करने वाली उसकी शत्रु ही थी।[७२] क्योंकि उसकी बातें सुनने में मधुर किन्तु परिणाम में भयानक थीं।[७३]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शूर्पणखा—राक्षसराज रावण की भगिनी शूर्पणखा राक्षसी वृत्ति से युक्त, दुष्टहृदया और भयंकर सर्पिणी के समान चित्रित की गई है, जिसका परिचय देते हुए कवि कहता है—

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।
पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा।।

मानस—अरण्य काण्ड ।।१६।।२

यही नहीं वह एक शील रहित स्वैरिणी, निर्लज्ज, रूपगर्विता और अभिमानिनी स्त्री भी है जो —*रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली वचन बहुत मुसुकाई।।*
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी।।

वही।।१६।।४

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउं खोजि लोक तिहु नाहीं।
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।

वही ।।१६।।५

अति मर्यादावादी, समाज सुधारक, लोक नायक तुलसी, जिन्होंने सीता और पार्वती के शालीन, कन्या रूप में स्त्रियोचित लज्जा, संकोच, शील और पावनतम प्रेम के अनुपम रूप के दर्शन किए हैं, इस उच्छृंखलता और असभ्यता को सहन न कर सके। शूर्पणखा की कामुकता ने उन्हें वितृष्णा और घृणा से भर दिया। अतः विक्षुब्ध तुलसी कह उठे—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।।
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबि मनि द्रव रबिहि बिलोकी।।

वही ।।१६।।३

आलोचकगण इसे —'नारी मात्र पर काम जन्य दुर्बलता का खुला आक्षेप' मानते हैं परन्तु वास्तव में यह आरोप केवल शूर्पणखा पर ही लगाया गया है। डॉ० जगदीश नारायण अग्रवाल का विचार है कि तुलसी ने शूर्पणखा पर यह आरोप इसलिए लगाया है कि तुलसी की दृष्टि में राक्षस संस्कृति निकृष्टतम थी।[३१] किन्तु यह विचार ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि शूर्पणखा के अतिरिक्त अन्य राक्षस नारियों मन्दोदरी, त्रिजटा आदि का चरित्र किसी प्रकार से भी हीन नहीं कहा जा सकता। अतः यह कथन केवल शूर्पणखा के लिए है, जो उसके व्यक्तिगत दुर्गुण अति कामुकता के कारण आरोपित है। राक्षस संस्कृति में भी जिस प्रकार पर-स्त्री गमन नीति और धर्म के विरुद्ध माना जाता था, जिसका उल्लेख विभीषण ने—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।
सो परनारि लिलार गोसाई। तजउ चउथि के चन्द कि नाई।।

मानस —सुन्दर काण्ड।।३७।।३

कहकर किया है, उसी प्रकार पर-पुरुष के प्रति शूर्पणखा का व्यवहार भी धर्म, शील और मर्यादा के विरुद्ध माना जाता होगा। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि शूर्पणखा का आचरण राक्षसी संस्कृति के अनुरूप ही था, इसलिए निन्दनीय और दंडनीय नहीं था। समाज सुधारक और मर्यादावादी तुलसी पर-स्त्री पर कुदृष्टि डालने वाले पुरुष के वध को पाप नहीं मानते थे।[१७५] इसी प्रकार पर-पुरुषों के सम्मुख अति कामुकता पूर्ण निर्लज्ज स्त्री, जो अपनी उत्तेजित वासना के कारण भयंकर रूप धारण कर प्रहार करने को तत्पर हो,[१७६] को विरूप करके दंडित करना भी उपयुक्त ही मानते थे। इसके अतिरिक्त राम के वन आगमन के प्रयोजन की सिद्धि के लिए 'ताके कर रावन कहं मनौ चुनौती दीन्हि"[१७७] के लिए भी परम्परागत कथा के अनुरूप शूर्पणखा के नाक, कान काटना आवश्यक रहा होगा। अतः कथा सन्धि पर महत्त्वपूर्ण कार्य करके संक्षिप्त चरित्र प्रकटकर शूर्पणखा चिर मौन हो गई है, परन्तु यह क्षणिक होकर भी प्रभावशाली रही है।

विकलांग होने पर शूर्पणखा विलाप करती हुई अपने भाइयों—खर, दूषण के पास जाकर उनके पौरुष और बल को धिक्कारती है,[१७८] जो स्वाभाविक भी है। फलस्वरूप युद्धरत खर, दूषण का संहार देख कर भी उसका रोष घटता नहीं वरन् और बढ़ ही जाता है। तब वह विलाप करती हुई रावण की भरी सभा में जाकर अपनी दयनीय स्थिति का मार्मिक दृश्य उपस्थित करती है—

सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ।।

मानस —अरण्य काण्ड ।।२१ख।।

जगत् विजयी बलवान् भ्राता की भगिनी होते हुए भी निरीह प्राणी जैसी उसकी अवस्था उसमें प्रतिहिंसा रोष की स्वाभाविक प्रवृत्ति जाग्रत करती है। यही नहीं यहाँ वह अपने विलासी और शराबी भाई की भर्त्सना करते हुए सिर पर खड़े सबल शत्रु की सूचना देकर अपने गूढ़ राजनीतिक व नीतिज्ञान का परिचय देती है।[१७९] साथ ही वह वाक् चातुरी प्रकट करती हुई रावण की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन कर उसकी अहंकारी और स्त्रीलोलुप प्रवृत्ति को राम के बल शौर्य और सुकुमारी सीता के सौन्दर्य का वर्णन कर अपनी कूटनीतिज्ञता का परिचय देती है। यही नहीं वह अपने दोष को छिपाकर और यह कहकर कि —"मुझे तेरी बहिन जानकर वे मेरी हँसी करने लगे और मेरा यह हाल कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया।' वह रावण के स्वाभिमान को जाग्रत कर देती है। इस प्रकार युद्ध का द्वार खोल वह चिर मौन हो जाती है। अतः कथा विस्तार की दृष्टि से शूर्पणखा का वही स्थान है जो मंथरा का है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि शूर्पणखा के चरित्र में लज्जाहीनता, मर्यादा विहीन अति कामुकता, स्वाभिमान, रूप गर्व, चालाकी आदि का संयोजन कर तुलसी ने उसे मानस का निम्नतम कोटि का असत् नारी पात्र बना दिया है, जिसकी राजनीति कुशलता, वाक्चातुरी और नीति बखान भी विनाशकारी प्रयोजन के हेतु प्रयुक्त होने के कारण प्रेक्षणीय नहीं बन पाए हैं।

शबरी—रामचरितमानस की शबरी राम भक्त नारी पात्रों में शिरोमणि है। यूं तो मानस के अनेक पात्रों पर राम भक्ति आरोपित दिखलाई पड़ती है परन्तु शबरी शुद्ध भक्ति के नाते से राम की अनन्य उपासिका है, जो नीच जाति की भीलनी होते हुए भी नवधा भक्ति से सम्पन्न होने के कारण प्रभु को अतिशय प्रिय है।[१८०] शबरी राम के आगमन की प्रतीक्षा में मतंग मुनि के आश्रम के समीप ही अपना आश्रम बनाकर तपस्वी जीवन व्यतीत कर रही थी।[१८१] राम के आगमन पर भक्ति और प्रेमाधिक्य से शिथिल शबरी बार-बार उनके चरणों में मस्तक नवाती है, मुख से वचन नहीं निकलते और अत्यधिक विनम्रता तथा दास्य भाव की भक्ति से अनुप्राणित वह बार-बार अपने को अधम, जड़मति और मन्द बुद्धि कहती है—

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि विलोकि प्रीति अति बाढ़ी।
केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
मानस—अरण्य काण्ड ।।३४।।१

इसके साथ ही साथ—

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महं मैं मतिमंद अघारी।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।।
वही ।।३४।।२

कहकर वह अपना अतिशय दैन्य भाव अभिव्यक्त करती है, जिसको लेकर आलोचक तुलसी पर स्त्रियों को अधम मानने का आरोप लगाते हुए उनकी कटु आलोचना करते हैं। स्पष्ट ही है यह कथन केवल शबरी की दास्य भक्ति भावना का परिचायक है तुलसी ने सर्वत्र ही शबरी को सम्मान की दृष्टि से देखा है। उनके आराध्य राम भी शबरी के भक्ति भाव से अनुगृहीत होकर उसका आदर करते हैं और निःसंकोच भाव से राम भक्ति की अधिकारिणी मानकर बड़े-बड़े मुनियों के समकक्ष ही नहीं अपितु उनसे श्रेष्ठ स्थान देते हैं।[१८२]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।
सो परनारि लिलार गोसाई। तजउ चउथि के चन्द कि नाई।।

मानस —सुन्दर काण्ड।।३७।।३

कहकर किया है, उसी प्रकार पर-पुरुष के प्रति शूर्पणखा का व्यवहार भी धर्म, शील और मर्यादा के विरुद्ध माना जाता होगा। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि शूर्पणखा का आचरण राक्षसी संस्कृति के अनुरूप ही था, इसलिए निन्दनीय और दंडनीय नहीं था। समाज सुधारक और मर्यादावादी तुलसी पर-स्त्री पर कुदृष्टि डालने वाले पुरुष के वध को पाप नहीं मानते थे।[१७५] इसी प्रकार पर-पुरुषों के सम्मुख अति कामुकता पूर्ण निर्लज्ज स्त्री, जो अपनी उत्तेजित वासना के कारण भयंकर रूप धारण कर प्रहार करने को तत्पर हो,[१७६] को विरूप करके दंडित करना भी उपयुक्त ही मानते थे। इसके अतिरिक्त राम के वन आगमन के प्रयोजन की सिद्धि के लिए 'ताके कर रावन कहं मनौ चुनौती दीन्हि"[१७७] के लिए भी परम्परागत कथा के अनुरूप शूर्पणखा के नाक, कान काटना आवश्यक रहा होगा। अतः कथा सन्धि पर महत्त्वपूर्ण कार्य करके संक्षिप्त चरित्र प्रकटकर शूर्पणखा चिर मौन हो गई है, परन्तु यह क्षणिक होकर भी प्रभावशाली रही है।

विकलांग होने पर शूर्पणखा विलाप करती हुई अपने भाइयों—खर, दूषण के पास जाकर उनके पौरुष और बल को धिक्कारती है,[१७८] जो स्वाभाविक भी है। फलस्वरूप युद्धरत खर, दूषण का संहार देख कर भी उसका रोष घटता नहीं वरन् और बढ़ ही जाता है। तब वह विलाप करती हुई रावण की भरी सभा में जाकर अपनी दयनीय स्थिति का मार्मिक दृश्य उपस्थित करती है—

सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ।।

मानस —अरण्य काण्ड ।।२१ख।।

जगत् विजयी बलवान् भ्राता की भगिनी होते हुए भी निरीह प्राणी जैसी उसकी अवस्था उसमें प्रतिहिंसा रोष की स्वाभाविक प्रवृत्ति जाग्रत करती है। यही नहीं यहाँ वह अपने विलासी और शराबी भाई की भर्त्सना करते हुए सिर पर खड़े सबल शत्रु की सूचना देकर अपने गूढ़ राजनीतिक व नीतिज्ञान का परिचय देती है।[१७९] साथ ही वह वाक् चातुरी प्रकट करती हुई रावण की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन कर उसकी अहंकारी और स्त्रीलोलुप प्रवृत्ति को राम के बल शौर्य और सुकुमारी सीता के सौन्दर्य का वर्णन कर अपनी कूटनीतिज्ञता का परिचय देती है। यही नहीं वह अपने दोष को छिपाकर और यह कहकर कि —"मुझे तेरी बहिन जानकर वे मेरी हँसी करने लगे और मेरा यह हाल कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया।' वह रावण के स्वाभिमान को जाग्रत कर देती है। इस प्रकार युद्ध का द्वार खोल वह चिर मौन हो जाती है। अतः कथा विस्तार की दृष्टि से शूर्पणखा का वही स्थान है जो मंथरा का है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि शूर्पणखा के चरित्र में लज्जाहीनता, मर्यादा विहीन अति कामुकता, स्वाभिमान, रूप गर्व, चालाकी आदि का संयोजन कर तुलसी ने उसे मानस का निम्नतम कोटि का असत् नारी पात्र बना दिया है, जिसकी राजनीति कुशलता, वाक्चातुरी और नीति बखान भी विनाशकारी प्रयोजन के हेतु प्रयुक्त होने के कारण प्रेक्षणीय नहीं बन पाए हैं।

शबरी—रामचरितमानस की शबरी राम भक्त नारी पात्रों में शिरोमणि है। यूं तो मानस के अनेक पात्रों पर राम भक्ति आरोपित दिखलाई पड़ती है परन्तु शबरी शुद्ध भक्ति के नाते से राम की अनन्य उपासिका है, जो नीच जाति की भीलनी होते हुए भी नवधा भक्ति से सम्पन्न होने के कारण प्रभु को अतिशय प्रिय है।[१८०] शबरी राम के आगमन की प्रतीक्षा में मतंग मुनि के आश्रम के समीप ही अपना आश्रम बनाकर तपस्वी जीवन व्यतीत कर रही थी।[१८१] राम के आगमन पर भक्ति और प्रेमाधिक्य से शिथिल शबरी बार-बार उनके चरणों में मस्तक नवाती है, मुख से वचन नहीं निकलते और अत्यधिक विनम्रता तथा दास्य भाव की भक्ति से अनुप्राणित वह बार-बार अपने को अधम, जड़मति और मन्द बुद्धि कहती है—

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि विलोकि प्रीति अति बाढ़ी।
केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
मानस —अरण्य काण्ड ।।३४।।१

इसके साथ ही साथ—

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महं मैं मतिमंद अघारी।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता।।
वही ।।३४।।२

कहकर वह अपना अतिशय दैन्य भाव अभिव्यक्त करती है, जिसको लेकर आलोचक तुलसी पर स्त्रियों को अधम मानने का आरोप लगाते हुए उनकी कटु आलोचना करते हैं। स्पष्ट ही है यह कथन केवल शबरी की दास्य भक्ति भावना का परिचायक है तुलसी ने सर्वत्र ही शबरी को सम्मान की दृष्टि से देखा है। उनके आराध्य राम भी शबरी के भक्ति भाव से अनुगृहीत होकर उसका आदर करते हैं और निःसंकोच भाव से राम भक्ति की अधिकारिणी मानकर बड़े-बड़े मुनियों के समकक्ष ही नहीं अपितु उनसे श्रेष्ठ स्थान देते हैं।[१८२]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राम तो भक्ति भाव के भूखे हैं उन्होंने शबरी का मातृवत आदर किया है—

सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भाय कै।।

गीतावली —अरण्य काण्ड।।१७।।५

शबरी भक्ति की उपयुक्त पात्री थी, जो राम के द्वारा नवधा भक्ति का ज्ञान और उनकी अमर भक्ति का वरदान पाकर दुर्लभ हरि पद प्राप्त करती हुई अमर हो गई।[१८३] इस प्रकार शबरी का चित्रण राम की अनन्य भक्त के रूप में ही हुआ है।

अनसूया—महामुनि अत्रि की धर्म परायण साध्वी पत्नी अनसूया सीता जी के द्वारा वन्दित, सीता को आशीष देती हुई ज्येष्ठाओं की गरिमा और तपस्विनी की महिमा से मंडित दृष्टिगोचर होती है।[१८४] सीता से मिलकर सुखाभिभूत अनसूया उन्हें नित्य नए निर्मल और सुहावने बने रहने वाले दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करती हैं।[१८५] तत्पश्चात् वे स्त्रियों के धर्मो का उल्लेख करती हैं, जिसमें यही आभासित होता है कि उस वनस्थली पर सीता, जो स्वयं स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म की प्रेरक हैं को उपदेश देने वाली अनसूया का प्रयोजन केवल उनके बहाने नारी धर्म का बखान करना ही है। स्पष्ट है कि तुलसी ने वेद पुराण एवं संत वचनों से सम्मत नारी धर्म का उपदेश देवी अनसूया के द्वारा सीता के बहाने से संसार हित के लिए ही दिया है।[१८६] निश्चय ही अनसूया अनुभवी और विदुषी थीं।

संक्षेप में अनसूया व्यवहार कुशल, सती-परायण साध्वी नारी हैं। उनमें तप और ज्ञान का तेज है साथ ही वे वेद एवं पुराणों का अध्ययन तथा मनन करने वाली तेजस्विनी ऋषि पत्नी हैं। पति के साथ वन में सात्विक जीवन व्यतीत करने वाली, अपने पति की अनुगामिनी साध्वी और तपस्विनी पत्नी हैं।

त्रिजटा—राक्षस राज रावण के भाई विभीषण की भाँति ही त्रिजटा भी राम भक्ति से युक्त निपुण और विवेकमति है—

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।

मानस —सुन्दर काण्ड।।१०।।१

इस पात्र का महत्त्व आगे होने वाली घटनाओं की पूर्व सूचना देने के कारण और भी बढ़ जाता है। स्वप्न में भविष्य की सभी घटनाओं को ज्यों की त्यों देख लेना अलौकिक बात है फिर भी वह सभी राक्षसियों को स्वप्न की बात, जिस पर सभी दासियाँ पूर्ण विश्वास भी कर लेती हैं, बताकर उन्हें सीता के अनुकूल बना देती है। त्रिजटा का परिचय यद्यपि कवि ने राक्षसी और दासी कहकर दिया है तथापि उसके चरित्र में राक्षसत्व अथवा दासत्व के कोई लक्षण दिखलाई नहीं पड़ते। उसके चरित्र की विलक्षणताएँ भविष्य द्रष्टा के समान रावण के पतन की निश्चयात्मक घोषणा,[१८७] कुशल राजनीतिविज्ञ के समान सीता को प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घटना की सूचना देना,[१८८] यहाँ तक कि सीता का आकुल-व्याकुल होकर बार-बार उससे यह पूछना कि—

होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता।
रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई।।

मानस —लंका काण्ड।।९८।।२, ३

और इसके उत्तर में परम ज्ञानी के समान त्रिजटा द्वारा रावण के मरण का उपाय और न मरने के कारण का विस्तृत उल्लेख[१८९] उसके चरित्र में अलौकिक तत्त्वों का समावेश कर देता है। साथ ही त्रिजटा के मुख से रावण के लिए सुरारि, रिपु आदि निरादर व्यंजक सम्बोधन और अवहेलना का उग्र भाव कुछ अनुचित तथा अस्वाभाविक प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिजटा कोई दासी नहीं शाप ग्रस्त देवी है जो विवश हो रावण की चाकरी कर रही है।

त्रिजटा सीता की विपत्ति की संगिनी और उनके सम्मान एवं आदर की पात्र है। गीतावली में भी त्रिजटा सीता की परम हितैषिणी, सहृदय और सहानुभूति शीला आदरणीय सखी के रूप में अंकित की गई है।[१९०] कवितावली में भी त्रिजटा और सीता के मधुर सम्बन्ध दृष्टिगत होते हैं।[१९१]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि त्रिजटा राम के असीम बल और प्रताप में अमित विश्वास रखने वाली उनकी भक्त, सीता की सखी और अप्रत्याशित रूप से विवेकशीला तथा भविष्य द्रष्टा है। त्रिजटा का व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक और चरित्र दृढ़ है जिसमें उदारता, सज्जनता और विवेक शीलता आदि गुणों का सुन्दर रूप से संयोजन हुआ है।

अहल्या—पति द्वारा शापित अहल्या धैर्य पूर्वक राम के चरणों की धूलि की प्रतीक्षा में शिलावत् पड़ी हुई, तपोभूमि के रूप में अंकित की गई है।[१९२] भगवान् के चरणों की रज के स्पर्श और उनके दर्शनों की सुखानुभूति में उसे मुनि का श्राप भी भला प्रतीत हुआ जिसके लिए वह अनुग्रह की अनुभूति करती है और भगवान् की अमर प्रेमभक्ति का वरदान पाकर वह बड़भागिनी उनकी स्तुति करके आनन्दपूर्वक पति लोक को चली गई।[१९३] ऐसा प्रतीत होता है यह पात्र केवल भगवान की भाव-विह्वल स्तुति और बिना कारण ही दया करने वाले दीनबन्धु प्रभु की महिमा के दिग्दर्शनार्थ प्रस्तुत किया गया है।[१९४]

स्वयंप्रभा—अज्ञात कुल और अज्ञात नाम वाली यह एक राम भक्त नारी पात्र है जिसका तुलसी ने मन्दिर में बैठी 'नारि तप पुंज' कहकर परिचय कराया है।[१९५] स्वयं प्रभा अलौकिक रूप से सभी वानरों को नेत्र मूंद लेने पर समुद्र तट पर पहुँचा देती है और स्वयं भगवान् राम के सम्मुख जाकर स्तुति करके अचल भक्ति का वरदान पाकर बदरिकाश्रम चली जाती है।[१९६]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति—राजा जनक की पुत्री उर्मिला का पाणिग्रहण संस्कार लक्ष्मण के साथ और माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति का, जो कि राजा जनक के भाई कुशध्वज की पुत्रियाँ थीं, क्रमशः भरत व शत्रुघ्न के साथ हो जाता है। तीनों ही वधुएँ रूप, गुण एवं शील में अनुपम थीं व अपने-अपने पतियों के अनुकूल थीं।

उर्मिला सब सुन्दरियों में शिरोमणि, माण्डवी गुण, शील, सुख और शोभा की साक्षात् प्रतिमा है और श्रुतिकीर्ति सुन्दर नेत्रों वाली, सुन्दर मुख वाली, सब गुणों की खान और रूप तथा शील में उजागर है।[१६७]

विवाह मण्डप में चारों वरों राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न के साथ चारों बहिनें सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति जो रूप गुण में उनके अनुरूप ही थीं, इस प्रकार सुशोभित हुईं जैसे जीव के हृदय में चारों अवस्थाएँ जाग्रत, स्वप्न, सुषप्ति और तुरीय अपने चारों स्वामियों विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म के साथ विराजमान हों।[१६८]

वधुओं सहित पुत्रों को देखकर राजा दशरथ को ऐसा प्रतीत हुआ कि राजाओं के शिरोमणि क्रियाओं (यज्ञ क्रिया, श्रद्धा क्रिया, योग क्रिया और ज्ञान क्रिया) सहित चारों फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष पा गये हों। अयोध्या पहुँचने पर राजकुँवरों की माताओं ने वधुओं का बहुत आदर सम्मान किया, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानों योगी ने परम तत्त्व को प्राप्त कर लिया हो, सदा के रोगी ने अमृत पा लिया हो। रात्रि के समय माताएँ वधुओं को अपने साथ लेकर इस प्रकार सो गईं मानों सर्पों ने अपने सिर की मणियों को हृदय में छिपा लिया हो।

इसके अतिरिक्त अन्य किसी स्थल पर इन तीनों पात्रों का कोई चित्रण नहीं हुआ है और स्वयं ये पात्र पूर्णतया मौन रहते हैं। इनकी मूकता इनके चरित्र-चित्रण की बाधा है लेकिन कवि की उपेक्षा की द्योतक नहीं क्योंकि जितना भी वर्णन इन तीनों वधुओं का हुआ है उसमें कहीं भी अनादर या अवहेलना नहीं दिखाई देती। तुलसी ने प्रबन्ध लाघव के हेतु भी इनका अधिक विस्तृत विवेचन नहीं किया है फिर भी ये तीनों पात्र कवि के समान आदर के अधिकारी हैं।

निष्कर्ष—तुलसी साहित्य में चित्रित लगभग सभी सत् नारी पात्रों का चरित्र-चित्रण उनकी सुकोमल तूलिका से अत्यन्त अनुपम हुआ है। उनके असत् नारी पात्र भी सजीव महत्त्वपूर्ण और अपने ढंग के अनूठे बन पड़े हैं।

शूर्पणखा और मंथरा को छोड़कर सभी नारी पात्रों की प्रवृत्ति सतोन्मुखी है। कैकेयी यद्यपि असत्त्व के आवरण से आच्छादित दिखलाई पड़ती है तथापि उसका कारण प्रबल भवितव्यता और देवताओं का कुचक्र एवं प्रभु की माया ही माना गया है। मंथरा की बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को भी सरस्वती द्वारा प्रेरित दिखलाकर एक प्रकार से उसके दोष के परिहार का प्रयास भी किया गया है। अतः सम्पूर्ण तुलसी साहित्य में केवल शूर्पणखा को ही शुद्ध रूप से असत् नारी पात्रों की कोटि में रखा जा सकता है।

सीता सभी दृष्टिकोणों से आदर्श नारीत्व की परिसीमा हैं और कौशल्या शाश्वत मातृत्व की प्रतिमूर्ति। कैकेयी गुण और दोषों से परिपूरित लोक-निन्दित नारी पात्र होते हुए भी मूलतः शुद्ध और सात्विक अंतःकरण को लिए हुए अंकित की गई है, अतः सहानुभूति की पात्र ही अधिक रही है। सुमित्रा के मातृत्व में राम भक्ति ही अधिक प्रखर है फिर भी वह दृढ़ उत्सर्गमयी और महिमामयी है। दक्ष-सुता सती का चरित्र नितान्त सहज और स्वाभाविक है एवं पतिव्रत की गरिमा से अभिमंडित है। पार्वती पतिव्रताओं में शिरोमणि, शिव की प्रियतमा पत्नी है तथा पावन प्रेयसी और अनुकरणीय वासना रहित प्रेम को लिए अमर प्रणयिनी है। मैना पूर्ण रूप से लौकिक और स्वाभाविक नारी पात्र है जो सच्चे अर्थो में गृहस्वामिनी है। पुत्री के प्रति प्रेम की प्रबल और ममत्वपूर्ण भावना से परिपूरित उसका चरित्र अत्यन्त सुकोमल और भव्य अंकित हुआ है। सीता की माता सुनयना का चरित्र भी सुन्दर पावन और सहज है परन्तु यह तुलसी साहित्य में अधिक विस्तार प्राप्त नहीं कर सका है।

राक्षसराज रावण की पत्नी मन्दोदरी, मय दानव की परम सुन्दरी कन्या और रावण की प्रियतमा और पटरानी है। वह सर्वत्र ही कुमार्गगामी पति को सत्पथ दिखलाती हुई दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रयास में वह पति रावण के प्रति कुछ कटु वचनों का प्रयोग करती है किन्तु उसका यह व्यवहार उसके हृदय की सात्त्विकता, पवित्रता अथवा पति प्रेम परायणता के विरोध में नहीं है।

तारा पतिव्रता और नीतिकुशल नारी के रूप में चित्रित हुई है परन्तु उसके चरित्र का भी तुलसी साहित्य में अधिक परिपाक नहीं हो पाया है।

शूर्पणखा आसुरी वृत्तियों से युक्त चरित्रहीन नारी पात्र है। मर्यादा रहित कामुकता और रूप-गर्व, चालाकी और लज्जा हीनता आदि अवगुणों से आवेष्टित निम्नतर स्तर का नारी पात्र है।

शबरी नीच जाति की भीलनी है परन्तु अपनी भक्ति के आधार पर दुर्लभ भक्ति की अधिकारिणी बनी है।

तप और ज्ञान के तेज से परिपूरित अनसूया वनों में संन्यासी जीवन व्यतीत करने वाली पतिपरायणा सती साध्वी और विदुषी नारी है।

त्रिजटा राक्षसराज रावण की दासी होते हुए भी राम भक्ति से अनुरंजित नारी पात्र है। सज्जनता, नैतिकता, दूरदर्शिता और विवेकशीलता उसके प्रमुख गुण हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अहल्या, स्वयंप्रभा, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति आदि तुलसी के गौण नारी पात्र हैं। अहल्या और स्वयंप्रभा भगवान की भक्त हैं और उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति सीता की अनुजाएँ हैं, जो रूप गुण और शील में उसके समान ही हैं, परन्तु इन चरित्रों का अधिक विश्लेषण नहीं हुआ है।

इस प्रकार लगभग बीस नारी पात्रों का चरित्र विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी साहित्य में सत् नारी पात्रों की संख्या ही अधिक है जो नारी मात्र के प्रति कवि के समादर का प्रमाण है। इन सत् और असत् सभी नारी पात्रों में तुलसी ने नारी जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में नारी के विभिन्न स्वरूपों को प्रस्तुत किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २३७
२. सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी।
—रामचरितमानस —बालकाण्ड।।५०।। छंद
३. तिन्ह कें गृह अवतरिहउं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।
नारद वचन सत्य सब करिहउं। परम सक्ति समेत अवतरिहउं।
—रामचरितमानस —बालकाण्ड।।१८६।।३
४. वही, श्लोक ।।५।।
५. रामचरितमानस—बालकाण्ड ।।२४५।।१,२४६।।१,३।।२४७।।१ और ।।२८६।। तथा अरण्य काण्ड वन्दना श्लोक—६ कवितावली —बालकाण्ड।।१५।।, जानकीमंगल ।।५।।
६. चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखई न कोई।। रामचरितमानस—बालकाण्ड।।२२८।।४
७. वही—अयोध्या काण्ड ।।२५१।।१
८. वही ।।२५१।।२
९. वही —अरण्य काण्ड ।।२३।।२
१०. वही —बालकाण्ड ।।३०६।।
११. वही —लंकाकाण्ड ।।१०८।।२-४, छंद
१२. माडर्न वर्नाक्युलर लिट्‌रेचर ऑफ हिन्दुस्तान—ग्रियर्सन, पृ० ४८
१३. रामचरितमानस —बालकाण्ड ।।२२८।।१-४
१४. वही ।।२२९।।३-४
१५. वही ।।२३०।।२-३
१६. वही ।।२३१।।४
१७. वही ।।२३३।।१
१८. वही ।।२३३।।४
१९. वही ।।२३४।।
२०. वही ।।२५७।।१
२१. वही ।।३३७।।१
२२. वही ।।३३७।।२
२३. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र पृ० ४८
२४. वही, पृ० ४७
२५. मानसदर्शन —डॉ० श्री कृष्णलाल, पृ० १३० तथा वाल्मीकि और तुलसीः साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २१० और मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पाण्डेय, पृ० १२६
२६. गोस्वामी तुलसी दास —बाबू श्यामसुन्दर दास —पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० १५२
२७. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।६८।।२
२८. वही ।।७७।।२-४ तथा ।।७८।।१
२९. वही ।।९५।।४ तथा ।।९६।।
३०. वही ।।९६।।३
३१. वही ।।९७।।३
३२. वही ।।९७।।१
३३. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप : विकास —शम्भूनाथ सिंह, पृ० ५४४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अहल्या, स्वयंप्रभा, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति आदि तुलसी के गौण नारी पात्र हैं। अहल्या और स्वयंप्रभा भगवान की भक्त हैं और उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति सीता की अनुजाएँ हैं, जो रूप गुण और शील में उसके समान ही हैं, परन्तु इन चरित्रों का अधिक विश्लेषण नहीं हुआ है।

इस प्रकार लगभग बीस नारी पात्रों का चरित्र विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी साहित्य में सत् नारी पात्रों की संख्या ही अधिक है जो नारी मात्र के प्रति कवि के समादर का प्रमाण है। इन सत् और असत् सभी नारी पात्रों में तुलसी ने नारी जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में नारी के विभिन्न स्वरूपों को प्रस्तुत किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास —आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २३७
२. सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी।
—रामचरितमानस —बालकाण्ड।।५०।। छंद
३. तिन्ह कें गृह अवतरिहउं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।
नारद वचन सत्य सब करिहउं। परम सक्ति समेत अवतरिहउं।
—रामचरितमानस —बालकाण्ड।।१८६।।३
४. वही, श्लोक ।।५।।
५. रामचरितमानस—बालकाण्ड ।।२४५।।१,२४६।।१,३।।२४७।।१ और ।।२८६।। तथा अरण्य काण्ड वन्दना श्लोक—६ कवितावली —बालकाण्ड।।१५।।, जानकीमंगल ।।५।।
६. चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई।। रामचरितमानस—बालकाण्ड।।२२८।।४
७. वही—अयोध्या काण्ड ।।२५१।।१
८. वही ।।२५१।।२
९. वही —अरण्य काण्ड ।।२३।।२
१०. वही —बालकाण्ड ।।३०६।।
११. वही —लंकाकाण्ड ।।१०८।।२-४, छंद
१२. माडर्न वर्नाक्युलर लिट्‌रेचर ऑफ हिन्दुस्तान—ग्रियर्सन, पृ० ४८
१३. रामचरितमानस — बालकाण्ड ।।२२८।।१-४
१४. वही ।।२२९।।३-४
१५. वही ।।२३०।।२-३
१६. वही ।।२३१।।४
१७. वही ।।२३३।१
१८. वही ।।२३३।४
१९. वही ।।२३४।।
२०. वही ।।२५७।।१
२१. वही ।।३३७।।१
२२. वही ।।३३७।।२
२३. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र पृ० ४८
२४. वही, पृ० ४७
२५. मानसदर्शन —डॉ० श्री कृष्णलाल, पृ० १३० तथा वाल्मीकि और तुलसीः साहित्यिक मूल्यांकन — डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २१० और मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पाण्डेय, पृ० १२६
२६. गोस्वामी तुलसी दास —बाबू श्यामसुन्दर दास —पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० १५२
२७. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।६८।।२
२८. वही ।।७७।।२-४ तथा ।।७८।।१
२९. वही ।।९५।।४ तथा ।।९६।।
३०. वही ।।९६।।३
३१. वही ।।९७।।३
३२. वही ।।९७।।१
३३. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप : विकास —शम्भूनाथ सिंह, पृ० ५४४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३४. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४७
३५. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।२३।।५
३६. वही ।।२४।।
३७. विनय पत्रिका ।।४१,४२।।
३८. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।३०६।।२
३९. हिन्दी नवरत्न —मिश्रबन्धु, पृ० ३८१
४०. वही
४१. रामचरितमानस —सुन्दर काण्ड ।।८।।२,३
४२. वही, ।।९।।३
४३. वही, ।।११।।१,२
४४. वही —लंका काण्ड ।।१०८।। छंद २
४५. वही —अयोध्या काण्ड ।।२८६।।१ और —अरण्य काण्ड ।।५ख।।
४६. हिन्दी नवरत्न —मिश्रबन्धु, पृ० १३७
४७. गीतावली —उत्तर काण्ड ।।२५-२७।।
४८. वही ।।२६।।
४९. वही ।।२८।।३
५०. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१८६।।२
५१. वही ।।१५०।।२
५२. वही ।।१८८।।
५३. वही ।।१९१।।१
५४. वही ।। २००।।१ तथा २०१।।, १-३
५५. वही, ।।२०२।।
५६. रामलला नहछू ।।१२।।
५७. वही ।।९।।
५८. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४७
५९. लैक्चर्स ऑन रामायण —वी० एस० शास्त्री —लैक्चर-२९ पृ० ४२७
६०. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।५५।।१,२
६१. वही ।।५४।।
६२. राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूं भाँति उर दारुन दाहू।।
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। विधि गति बाम सदा सब काहू।।
—मानस —अयोध्या काण्ड ।।५४।।१
६३. वही ।।५४।।४
६४. वही ।।५५।।३
६५. बिनु प्रयास सब-साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहि संभारे
हरि तजि धरमसील भयो चाहत, नृपति नारिबस सरबस हारे।
रुचिर काँचमनि देखि मूढ़ ज्यों करतलतें चिंतामनि डारे।।
—गीतावली —अयोध्या काण्ड ।२।।२
६६. वही ।।३।।१
६७. वही ।।४।।१-३
६८. वही ।।४।।५
६९. वही ।।८५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

७०. तुलसीदास —माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६२।।
७१. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।५६।।४
७२. वही ।।६८।।४
७३. वही ।।१५३।।२,४ तथा ।।१५४।।
७४. कवितावली —अयोध्या काण्ड ।।३।।
७५. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१६४।।१,२,३,४
७६. वही ।।१८७।।३
७७. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६६
७८. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१८८।।
७९. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।१३।।
८०. वही, ।।१४।।१
८१. वही, ।।१४।।२
८२. वही, ।।१४।।३
८३. वही, ।।१४।।४
८४. वही, ।।१४।।४, ।।१५।।
८५. वही, ।।१६।।२
८६. वही, ।।१८।।
८७. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १३४
८८. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१६।।२
८९. वही, ।।१६।।१
९०. वही, ।।२०।। ।।२०।।,१
९१. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।८३।।
९२. वही —उत्तर काण्ड ।।३७।।
९३. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड।।१६०।।३, ।।४६।।२, तथा ।।६१।।, ।।१५६।।४
९४. वही ।।३५।।४
९५. वही —उत्तर काण्ड ।।६।।१
९६. वही —अयोध्या काण्ड ।।२०५।।४,।।२०६।।३, ।।२४३।।४, और ।।२४।।
९७. वही ।।२२२।।३
९८. लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई।।
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई।।
—वही ।।२५१।।३
९९. दोहावली ।।२१३।।
१००. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।७३।।४
१०१. वही ।।७३।।१-३
१०२. वही ।।७२।।४
१०३. वही ।।७४।।२।।
१०४. वही
१०५. वही ।।७४।।१
१०६. वही ।।७४।।४
१०७. वाल्मीकि और तुलसीः साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २२४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३४. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४७
३५. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।२३।।५
३६. वही ।।२४।।
३७. विनय पत्रिका ।।४१,४२।।
३८. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।३०६।।२
३९. हिन्दी नवरत्न —मिश्रबन्धु, पृ० ३८१
४०. वही
४१. रामचरितमानस —सुन्दर काण्ड ।।८।।२,३
४२. वही, ।।९।।३
४३. वही, ।।११।।१,२
४४. वही —लंका काण्ड ।।१०८।। छंद २
४५. वही —अयोध्या काण्ड ।।२८६।।१ और —अरण्य काण्ड ।।५ख।।
४६. हिन्दी नवरत्न —मिश्रबन्धु, पृ० १३७
४७. गीतावली —उत्तर काण्ड ।।२५-२७।।
४८. वही ।।२६।।
४९. वही ।।२८।।३
५०. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१८६।।२
५१. वही ।।१५०।।२
५२. वही ।।१८८।।
५३. वही ।।१९१।।१
५४. वही ।। २००।।१ तथा २०१।।, १-३
५५. वही, ।।२०२।।
५६. रामलला नहछू ।।१२।।
५७. वही ।।९।।
५८. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४७
५९. लैक्चर्स ऑन रामायण —वी० एस० शास्त्री —लैक्चर-२९ पृ० ४२७
६०. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।५५।।१,२
६१. वही ।।५४।।
६२. राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूं भाँति उर दारुन दाहू।।
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। विधि गति बाम सदा सब काहू।।
—मानस —अयोध्या काण्ड ।।५४।।१
६३. वही ।।५४।।४
६४. वही ।।५५।।३
६५. बिनु प्रयास सब-साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहि संभारे
हरि तजि धरमसील भयो चाहत, नृपति नारिबस सरबस हारे।
रुचिर काँचमनि देखि मूढ़ ज्यों करतलतें चिंतामनि डारे।।
—गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।२।।२
६६. वही ।।३।।१
६७. वही ।।४।।१-३
६८. वही ।।४।।५
६९. वही ।।८५

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

७०. तुलसीदास —माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६२।।
७१. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।५६।।४
७२. वही ।।६८।।४
७३. वही ।।१५३।।२,४ तथा ।।१५४।।
७४. कवितावली —अयोध्या काण्ड ।।३।।
७५. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१६४।।१,२,३,४
७६. वही ।।१८७।।३
७७. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६६
७८. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१८८।।
७९. रामचरितमानस—अयोध्या काण्ड ।।१३।।
८०. वही, ।।१४।।१
८१. वही, ।।१४।।२
८२. वही, ।।१४।।३
८३. वही, ।।१४।।४
८४. वही, ।।१४।।४, ।।१५।।
८५. वही, ।।१६।।२
८६. वही, ।।१८।।
८७. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १३४
८८. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१६।।२
८९. वही, ।।१६।।१
९०. वही, ।।२०।। ।।२०।।,१
९१. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।८३।।
९२. वही —उत्तर काण्ड ।।३७।।
९३. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड।।१६०।।३, ।।४६।।२, तथा ।।६१।।, ।।१५६।।४
९४. वही ।।३५।।४
९५. वही —उत्तर काण्ड ।।६।।१
९६. वही —अयोध्या काण्ड ।।२०५।।४,।।२०६।।३, ।।२४३।।४, और ।।२४।।
९७. वही ।।२२२।।३
९८. लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई।।
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई।।
—वही ।।२५१।।३
९९. दोहावली ।।२१३।।
१००. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।७३।।४
१०१. वही ।।७३।।१-३
१०२. वही ।।७२।।४
१०३. वही ।।७४।।२।।
१०४. वही
१०५. वही ।।७४।।१
१०६. वही ।।७४।।४
१०७. वाल्मीकि और तुलसीः साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २२४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१०८. तुलसीदास —माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३०३
१०९. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२८३।।४
११०. सवन सोक, संतोष सुमित्रहि रघुपति भगति वरेहें।
छिनछिन गात सुखात, छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं।
कपि सो कहति सुमाय अबके अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनन्दन विनु बंध कुअवसर जयपि धनु दुसरे हैं।
तातै जाहु कपि संगे, रिपुसदन उठि कर जोरि खड़े हैं। —गीतावली —लंका काण्ड।।१३।।
१११. वही, ।।१३।।५
११२. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।६क।।
११३. वही —बाल काण्ड ।।४६।।३,४
११४. लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवं बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियं।।
—वही ।।५१।।
११५. रामचरितमानस —बालकाण्ड ।।५५।।१
११६. वही, ।।६३।।४,
११७. वही ।।६४।।३
११८. पार्वती मंगल ।।१३।।
११९. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।६६।।१-३
१२०. वही ।।६७।।१-३
१२१. वही ।।७२।।
१२२. वही ।।७२।।४
१२३. वही ।।७३।।४
१२४. पार्वती मंगल ।।४४।।
१२५. वही ।।८१।।
१२६. वही ।।८३।।
१२७. रामचरितमानस —बाल काण्ड, श्लोक।।२।।
१२८. पार्वती मंगल ।।६।।
१२९. वही ।।१०।।
१३०. तुम त्रिभुवन तिहुं काल विचार विसारद।
पारवती-अनुरूप कहिय वर, नारद।
—वही ।।१५।।
१३१. वही ।।२०।।
१३२. वही, ।।२५।।
१३३. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।७०।।१-३
१३४. वही ।।७०।।४
१३५. वही, ।।९५।।४
१३६. वही ।।९६।।१
१३७. वही, ।।९६।।१-२ तथा देखिए—पार्वती मंगल ।।१२०-१२१।।
१३८. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।१०१।।१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१३६. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २४८
१४०. जानकी मंगल ।।८१।,८२।।, तथा ।।८४।।
१४१. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२६६।।४
१४२. वही —अयोध्या काण्ड ।।२८०।।१-२
१४३. वही ।।२८१।।
१४४. वही —बाल काण्ड ।।१७७।।१
१४५. वही ।।१७७।।२
१४६. वही —सुन्दर काण्ड ।।६।।४
१४७. रामचरितमानस---सुन्दर काण्ड ।।३५।।२-५
१४८. वही —लंका काण्ड ।।१३क।।
१४६. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २३०-२३१
१५०. वही, पृ० २३२
१५१. तुलसी दास —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६८
१५२. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २३२
१५३. वही, पृ० १६२
१५४. तुलसी दास-- डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २७८-२८१
१५५. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५०
१५६. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २२८
१५७. रामचरितमानस —लंका काण्ड ।।१०३।।१,७
१५८. वही ।।१०२।। छंद तथा ।।१०४।।
१५६. वही ।।१०४।।१
१६०. रामचरितमानस —किष्किन्धा काण्ड ।।१०।।१
१६१. वही, ।।८।।५
१६२. कल्याण नारी अंक, गोरखपुर, पृ० ५४६
१६३. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१६।।२
१६४. वही ।।१५।।२, ।।१२।।२, ।।१४।।१,२
१६५. तुलसी दास —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६७।।
१६६. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १३५
१६७. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१२।।२
१६८. तुलसी दास —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६७-२६८
१६६. गोस्वामी तुलसी दास --रामचन्द्र शुक्ल —पाद टिप्पणी, पृ० १३१
१७०. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २२५-२२६
१७१. तुलसी —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६७-२६८
१७२. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२१।।१
१७३. वही, ।।८।।४
१७४. रामचरितमानस और रामचन्द्रिका का तुलनात्मक अध्ययन, —डॉ० जगदीश नारायण अग्रवाल, पृ० २७७-२७८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१०८. तुलसीदास —माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३०३
१०९. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२८३।।४
११०. सवन सोक, संतोष सुमित्रहि रघुपति मगति बरेहें।
छिनछिन गात सुखात, छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं।
कपि सो कहति सुमाय अबके अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनन्दन बिनु बंध कुअवसर जयपि धनु दुसरे हैं।
तातै जाहु कपि संगे, रिपुसदन उठि कर जोरि खड़े हैं। —गीतावली —लंका काण्ड।।१३।।
१११. वही, ।।१३।।५
११२. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।६क।।
११३. वही —बाल काण्ड ।।४६।।३,४
११४. लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवं बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियं।।
—वही ।।५१।।
११५. रामचरितमानस —बालकाण्ड ।।५५।।१
११६. वही, ।।६३।।४,
११७. वही ।।६४।।३
११८. पार्वती मंगल ।।१३।।
११९. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।६६।।१-३
१२०. वही ।।६७।।१-३
१२१. वही ।।७२।।
१२२. वही ।।७२।।४
१२३. वही ।।७३।।४
१२४. पार्वती मंगल ।।४४।।
१२५. वही ।।८१।।
१२६. वही ।।८३।।
१२७. रामचरितमानस —बाल काण्ड, श्लोक।।२।।
१२८. पार्वती मंगल ।।६।।
१२९. वही ।।१०।।
१३०. तुम त्रिभुवन तिहुं काल विचार विसारद।
पारवती-अनुरूप कहिय वर, नारद।
—वही ।।१५।।
१३१. वही ।।२०।।
१३२. वही, ।।२५।।
१३३. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।७०।।१-३
१३४. वही ।।७०।।४
१३५. वही, ।।६५।।४
१३६. वही ।।६६।।१
१३७. वही, ।।६६।।१-२ तथा देखिए—पार्वती मंगल ।।१२०-१२१।।
१३८. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।७०१।।१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१३६. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २४८
१४०. जानकी मंगल ।।८१।।८२।।, तथा ।।८४।।
१४१. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२६६।।४
१४२. वही —अयोध्या काण्ड ।।२८०।।१-२
१४३. वही ।।२८१।।
१४४. वही —बाल काण्ड ।।१७७।।१
१४५. वही ।।१७७।।२
१४६. वही —सुन्दर काण्ड ।।६।।४
१४७. रामचरितमानस---सुन्दर काण्ड ।।३५।।२-५
१४८. वही —लंका काण्ड ।।१३क।।
१४६. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २३०-२३१
१५०. वही, पृ० २३२
१५१. तुलसी दास —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६८
१५२. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २३२
१५३. वही, पृ० १६२
१५४. तुलसी दास– डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २७८-२८१
१५५. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५०
१५६. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २२८
१५७. रामचरितमानस —लंका काण्ड ।।१०३।।१,७
१५८. वही ।।१०३।। छंद तथा ।।१०४।।
१५६. वही ।।१०४।।१
१६०. रामचरितमानस —किष्किन्धा काण्ड ।।१०।।१
१६१. वही, ।।८।।५
१६२. कल्याण नारी अंक, गोरखपुर, पृ० ५४६
१६३. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१६।।२
१६४. वही ।।१५।।२, ।।१२।।२, ।।१४।।१,२
१६५. तुलसी दास —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६७।।
१६६. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १३५
१६७. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।१२।।२
१६८. तुलसी दास —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६७-२६८
१६६. गोस्वामी तुलसी दास —रामचन्द्र शुक्ल —पाद टिप्पणी, पृ० १३१
१७०. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २२५-२२६
१७१. तुलसी —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६७-२६८
१७२. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२१।।१
१७३. वही, ।।८।।४
१७४. रामचरितमानस और रामचन्द्रिका का तुलनात्मक अध्ययन, —डॉ० जगदीश नारायण अग्रवाल, पृ० २७७-२७८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१७५. रामचरितमानस—किष्किंधा काण्ड ।।८।।४
१७६. वही —अरण्य काण्ड ।।१६।।१०
१७७. वही, ।।१७।।
१७८. वही, ।।१७।।१
१७९. वही ।।२०ख।।, ।।२१ख।।
१८०. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।३५।।४
१८१. गीतावली —अरण्य काण्ड ।।१७।।३
१८२. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।३५।।४
१८३. वही ।।३५।।४,५
१८४. वही, ।।४।।१
१८५. वही, ।।४।।२
१८६. वही, ।।५क।।
१८७. रामचरितमानस —सुन्दर काण्ड ।।१०।।२-४
१८८. रामचरितमानस —लंका काण्ड ।।६८।।१
१८९. वही ।।६८।।६, छंद तथा ।।६६।।
१९०. गीतावली —सुन्दर काण्ड ।।४६,५०,५१।।
१९१. कवितावली —लंका काण्ड ।।३।।
१९२. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२१०।।, छंद
१९३. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।२१०।।, छंद १,२,३,४
१९४. वही ।।२११।।
१९५. वही - किष्किंधा काण्ड ।।२४।।१
१९६. वही, ।।२५।।
१९७. रामचरितमानस–बाल काण्ड ।। २२४।। छंद २ व ३
१९८. वही, ।।२२४।। छंद ४, ।।२२५।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

८ अध्याय

तुलसी की नारी भावना का तुलनात्मक अध्ययन

किसी भी साहित्यकार की रचना का तुलनात्मक अध्ययन ही उसके प्रति दृष्टिकोण बनाने की सही कसौटी माना जा सकता है क्योंकि कवि सदा अपने पूर्व साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करता है, समकालीन साहित्य और परिस्थितियों से प्रभावित होता है और भावी सन्तति के लिए भावधारा की एक परम्परा छोड़ जाता है।

१. संस्कृत काव्य की नारी भावना से तुलना—वैदिक-संस्कृत काव्य की नारी भावना से तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा के लिए संस्कृत काव्य को तीन भागों —वैदिक-उपनिषद, सूत्र, स्मृति और पुराण तथा संस्कृत महाकाव्य में विभक्त कर लिया गया है।

(क) वैदिक-उपनिषद् साहित्य की नारी भावना से तुलना—वैदिककालीन संस्कृति जिसमें नारी सर्वाधिक गरिमा एवं गौरव के साथ प्रतिष्ठित दिखलाई पड़ती है, संसार की श्रेष्ठतम संस्कृति मानी जा सकती है। तुलसी के नारी समाज को अनेक स्थलों पर इसके समकक्ष रखा जा सकता है और उत्तर वैदिक काल से तो उसकी स्थिति अनेक स्थलों पर श्रेष्ठतर प्रतीत होती है।

जिस प्रकार वैदिक कालीन समाज यद्यपि पितृसत्तात्मक था परन्तु परिवार में स्त्री की स्थिति श्रेष्ठ और उन्नत थी ठीक इसी प्रकार तुलसी साहित्य में भी परिवार के पितृ सत्तात्मक होते हुए भी नारी के गरिमामय पारिवारिक रूप पुत्री, पत्नी, माता में उसकी उन्नत अवस्था का दिग्दर्शन होता है।

ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर पुत्रोत्पत्ति अथवा वीर पुत्र की कामना की गई है और तेजस्विनी पुत्री भी माता के संतोष और गर्व की वस्तु कही गई है, कन्या की उत्पत्ति कल्याणप्रद और उसका दर्शन मांगलिक कहा गया है। ठीक इसी प्रकार तुलसी साहित्य में पुत्रोत्पत्ति की अभिलाषा राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा व्यक्त की गई है परन्तु पुत्रियों का जन्म भी परम आह्लाद का विषय है। पुत्रियों का पालन भी परिवार में पुत्र के समान ही उल्लास और लाड़ दुलार से किया जाता है, साथ ही पुत्रियों की उत्पत्ति पर ऋद्धि-सिद्धि और ऐश्वर्य वृद्धि का चित्रण भी किया गया है। कन्याओं के रूप, गुण और शील के लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और ऐश्वर्य वृद्धि का चित्रण भी किया गया है। कन्याओं के रूप, गुण और शील के लिए माताओं के गर्व और पिताओं के गौरव की अभिव्यंजना भी हुई है। राजा जनक के इस कथन 'पुत्री पवित्र किए कुल दोउ' में उनके गौरव और परम संतोष की अभिव्यंजना होती है। गुणवती कन्या अमृत और अमूल्य रत्नवत् चित्रित की गई है जिसे पाने के लिए अनेक सुयोग्य वर लालायित हैं।[1]

अथर्ववेद (८।६।२५) में पुरुष गर्भ के स्त्री गर्भ में परिवर्तित न होने की कामना की गई है। ऐतरेय ब्राह्मण (७।१३) के अनुसार पुत्र स्वर्ग तुल्य सुख लेकिन कन्या कृपण अर्थात् विपत्ति या कष्ट मानी गई है और काठक संहिता (२७।६) में कन्या की उत्पत्ति पर उसके पड़े रहने का तथा पुत्र की उत्पत्ति पर उसे हर्ष से गोद में उठा लेने का उल्लेख है। स्पष्ट है यहाँ कन्या अवहेलना और उपेक्षा की पात्र बनी है। तुलसी साहित्य में कहीं भी ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। अतः इस दृष्टि से तुलसी बहुत अधिक उदार रहे हैं।

वैदिक युग में बाल विवाह की कुरीति नहीं थी। कन्याएँ पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करके जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर स्वयं निर्णय ले सकती थीं और अपने लिए स्वयं वर चुनने वाली कन्याएँ प्रशंसनीय मानी जाती थीं। उसी प्रकार तुलसी ने भी सयानी हो जाने पर ही माता-पिता को उनके लिए सुयोग्य वर प्राप्त करने के हेतु प्रयासवान दिखाया है। सम्भवतः तुलसी कन्या के लिए उपयुक्त वर की प्राप्ति के लिए भी माता-पिता को ही उत्तरदायी मानते थे परन्तु स्वयं ही अपने उपयुक्त वर की प्राप्ति के लिए प्रयास करने वाली कन्या भी प्रशंसनीय मानी गई है, जैसे पार्वती अपनी कठोर तपस्या के बल पर शिव को प्राप्त करती हैं और उनका यह प्रयास सभी के द्वारा सराहा गया है। यद्यपि माता-पिता सुयोग्य वर की प्राप्ति में सहयोगी होते थे परन्तु अन्तिम निर्णय कन्या का ही होता था। जैसे मानस में सीता स्वयंवर के अवसर पर सभी उपस्थित राजा राम के सौन्दर्य को देखकर कहते हैं—"धनुष न तोड़ सकने पर भी सीता राम के गले में ही जयमाला डालेगी" और सीता भी मन ही मन राम को ही प्राप्त करने का तन-मन से व्रत ठान लेती है। स्पष्ट है कि तुलसी के विचार से भी कन्या अपनी इच्छानुकूल वर प्राप्त कर सकती है।

वैदिक युग में कन्याएँ स्वतन्त्रता पूर्वक समन (मेले) उत्सव आदि में जाती थीं तुलसी साहित्य में भी कन्याओं पर कोई बंधन नहीं है। कन्याएँ उपवन, वाटिका और मंदिर आदि में स्वतन्त्रापूर्वक जाती हुई दिखलाई पड़ती हैं। सरोवरों में स्नान आदि करती हैं और स्वच्छन्दता पूर्वक वे वाटिका आदि में विचरण करती हैं। पर्दा प्रथा का कहीं कोई उल्लेख नहीं है परन्तु यह स्वतन्त्रता उच्छृंखलता की सीमा को कहीं नहीं छू सकी है। कन्याओं को अधिक देर तक इधर-उधर घूमने की छूट नहीं थी। इसीलिए सीता वाटिका में विलम्ब हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाने से माता का भय मानती हैं। वैदिक युग में सम्भवतः अधिक स्वतन्त्रता थी जिसके दुष्परिणाम होते होंगे। अतः इधर-उधर घूमने वाली कन्याओं को वेदों में (ऋग्वेद ।४।५।५) भी निन्दनीय कहा गया है।

कन्याओं के दाय का वेदों में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। केवल भाई और पिता प्रसन्नतापूर्वक यौतुक (दहेज) देते थे ठीक इसी प्रकार तुलसी साहित्य में भी दहेज का ही उल्लेख है। पिता अपनी पुत्री को स्नेहवश उसकी प्रिय वस्तुओं को दहेज में देता है।

वैदिक काल में स्त्रियों का विवाहित होना कोई आवश्यक बन्धन नहीं था। कुछ कन्याएँ बड़ी आयु तक कुँआरी रहती थीं जिनका उल्लेख वेदों में (ऋग्वेद १।११७।७, में घोषा का उल्लेख) हुआ है परन्तु साधारण कन्याओं का विवाहित होना अनिवार्य सा ही समझा जाता था।[२] उत्तर वैदिक काल में तो अविवाहित स्त्रियों को समाज में अमाजुर और अग्रू आदि कहकर घृणात्मक दृष्टि से देखा जाता था। क्योंकि अविवाहित कन्याओं के माँ बन जाने के और ऐसी स्थिति में अवैध सन्तान के दूर फेंक दिए जाने के उल्लेख हैं।[३] सम्भवतः ऐसी कन्याएँ वेश्यावृत्ति के लिए विवश हो जाती थीं।[४] तुलसी साहित्य में यद्यपि पुत्री का विवाह एक पुण्य कृत्य था और कन्या का विवाह आवश्यक सा ही माना जाता था। कन्या का कुँआरी रह जाना क्षोभ और सन्ताप का कारण था तथापि उपयुक्त वर के अभाव में कन्या का कुँआरी रह जाना असम्भव नहीं था। पार्वती की माता मैना स्पष्ट ही कहती है कि भले ही मेरी कन्या कुँआरी रह जाए परन्तु उपयुक्त घर-वर और कुल न मिलने पर मैं अपनी प्राण प्रिय कन्या का विवाह नहीं करूँगी।[५] इसी प्रकार की भावना सीता स्वयंवर के समय धनुर्भंग के पूर्व राजा जनक भी अभिव्यक्त करते हैं। कन्या पावनता का प्रतीक मानी गई है। वेश्यावृत्ति अथवा बलात्कार आदि का कोई उल्लेख तुलसी द्वारा चित्रित पावन एवं आदर्श समाज में नहीं है। इस प्रकार तुलसी के समाज में नारी की स्थिति अधिक सुदृढ़ और सम्माननीय दिखलाई पड़ती है।

पत्नी और कुल-वधू रूप की दृष्टि से भी वैदिककालीन नारी समाज और तुलसी का नारी समाज समकक्ष रखा जा सकता है। पति-पत्नी सम्बन्धों में ऋग्वैदिक काल के समान तुलसी साहित्य में भी माधुर्य, सरसता, मित्र भाव और अटूटता की स्थापना की गई है। अथर्ववेद (१४।१।५०) में विवाह धर्म, प्रेम और आस्था का पावन बन्धन कहा गया है जो सौभाग्य प्राप्ति और कर्तव्य पालन के लिए अविच्छिन्न रूप से बाँधा जाता था। यही कामना तुलसी साहित्य में भी परिलक्षित होती है। मानस में तो पति-पत्नी सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तरों तक अविच्छिन्न दिखलाया गया है।[६] अथर्ववेद (१४।२।७१) में पति-पत्नी ऋक् और साम, द्यौ और पृथ्वी, वीर्य और वीर्य धारण करने वाली तथा मन और वाणी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के समान एक और अभिन्न कहे गए हैं तो मानस में भी पति-पत्नी वाणी और उसके अर्थ, जल और उसकी लहर, विश्वास और श्रद्धा, ज्ञान और भक्ति, सूर्य और उसकी प्रभा, चन्द्रमा और चाँदनी के समान सदा अभिन्न और एकात्म कहे गए हैं[७], जहाँ पति-पत्नी का सम्बन्ध सरस और सौहार्द पूर्ण है।

अथर्ववेद (२।२८।३) में वधुएँ पति गृह में सबके लिए परम कल्याणकारिणी गृह स्वामिनी बनकर सबको वश में रखने वाली, सास-ससुर, देवर और ननद सबके मध्य दीप्तिमान सम्राज्ञीवत् आदर और सम्मान की पात्री कही गई हैं। मानस में भी पुत्र वधुएँ ससुर के सम्पूर्ण दुलार की अधिकारिणी बनकर उनके लिए नेत्रों की पुतली और सास के लिए सर्प की मणि के सदृश अमूल्य और प्रिय हैं।[८] श्वसुर गृह में उनका आगमन योगी को परम तत्त्व, रोगी को अमृत, जन्म के दरिद्री को पारस पत्थर, अन्धे को नेत्र, गूँगे को वाणी और सूर्यवीर को युद्ध में विजय के समान परमानन्द की अनुभूति कराने वाला है।[९] वैदिक रीति के अनुसार मंगलों की निधान दुल्हनें दूल्हों के साथ धूप-दीप-नैवेद्य आदि द्वारा पूज्य और सब प्रकार से सम्माननीय हैं।[१०] देवरों के लिए उनका स्थान माता के समान ही गौरवपूर्ण है।

वैदिक कालीन पत्नी, गृह की व्यवस्था करने वाली पति की शक्ति तथा पति के सम्पूर्ण प्रेम की एक मात्र अधीश्वरी कही गई हैं।[११] तुलसी साहित्य में भी पत्नी पति द्वारा सम्माननीय, उसके हृदय की अधिकारिणी और पति-पत्नी एकात्म और अभिन्न कहे गए हैं। मैत्रायणी संहिता (१।५।८) में पति के दोषों के लिए पत्नी को भर्त्सना करने का अधिकार भी दिया गया प्रतीत होता है। यह अधिकार तुलसी ने महाबली रावण की पत्नी मन्दोदरी को सहर्ष प्रदान किया है।

वैदिक युग में माता का स्थान माननीय और पूजनीय था। तुलसी भी माता को सब प्रकार से सम्माननीय मानते हैं। ऋग्वेद (८।९८।११) तथा १०।८६।१०) में पुत्रों को उत्पन्न करने वाली माता अधिक प्रतिष्ठित होती थी और दस पुत्रों की माता असीमित मान और गौरव की अनुभूति करती है। पुत्रों को जन्म देने वाली पत्नी ही महिषी (मुख्य पत्नी) पद की अधिकारिणी होती थी (अथर्ववेद-२।३।६।३)। यह स्थिति बंध्या अथवा पुत्र हीन पत्नी की स्थिति को हीन बना देने वाली है। मानस में पुत्रवती माता हो अथवा पुत्रीवती दोनों समान गर्व और गौरव की अधिकारिणी बनी हैं। मैना, सुनयना पुत्रियों को जन्म देकर भी कौशल्या या सुमित्रा से हीन नहीं हैं। भगवत शरण उपाध्याय ने वैदिक काल में पुत्री के विवाह आदि में माता का महत्त्वपूर्ण स्थान माना है। तुलसी साहित्य में मैना पुत्री के विवाह में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिखलाई पड़ती है।[१२] ऋग्वेद से पता चलता है कि वैदिक युग में माता के अधिकार सीमित थे और उसका स्थान पिता से दूसरा था।[१३] इन्द्र जब पिता द्वारा त्याग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया जाता है तब उसकी माता विवश भाव से केवल इतना ही कहती है कि हे पुत्र ये देव तुम्हें त्याग रहे हैं (ऋग्वेद ४।८।११) परन्तु मानस में माता की स्थिति अधिक सुदृढ़ दिखलाई पड़ती है। राम को वन जाने की पिता की आज्ञा पर माता कौशल्या स्पष्ट ही अधिकारपूर्ण स्वर से कहती है कि यदि केवल पिता की आज्ञा है तो माता को पिता से बड़ी जानकर तुम वन को न जाओ। अतः मानस में माता का स्थान पिता से ऊँचा ही कहा गया है।

वेदों में वैधव्य अपार दुःख का कारण था। परन्तु ऋग्वेद (१०।१८।४) और अथर्ववेद (१८।३।१,२) के उल्लेखों से पता चलता है कि उस काल में सती प्रथा नहीं थी। मानस में भी वैधव्य दुःख और विलाप का कारण बना है परन्तु सती प्रथा यहाँ भी नहीं दिखलाई गई है। दशरथ की मृत्यु पर कौशल्या आदि रानियाँ सती होना चाहती हैं परन्तु भरत के आग्रह पर रुक जाती हैं। तारा और मन्दोदरी को भी सती होते हुए नहीं दिखलाया गया है और न ही उनका पुनर्विवाह ही दिखलाया गया है। परन्तु तुलसी के साहित्य में विधवाओं की स्थिति सुदृढ़ और सम्माननीय ही रही है। राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् माता कौशल्या राज सभा में बैठ अपनी सम्मति देती हुई दिखलाई पड़ती हैं। इसी प्रकार तारा भी बालि की मृत्यु पर राम से भक्ति का वरदान पाकर समादरणीय तथा महत्त्वपूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं। क्रोधित लक्ष्मण को समझाने के लिए भयभीत सुग्रीव तारा को ही भेजता है, जिसे देखकर लक्ष्मण शान्त हो जाते हैं। यह उद्धरण नारी की सम्माननीय स्थिति के परिचायक हैं।

वैदिक कालीन साहित्य में पर्दा प्रथा का कोई संकेत नहीं है। स्त्री पुरुषों के साथ सभी सामाजिक उत्सवों में स्वतन्त्रता पूर्वक भाग लेती थी। स्त्री पुरुष नृत्य गान में रुचि पूर्वक सम्मिलित होते थे तथा सुरा व सोम का पान करते थे।[१४] मर्यादावादी तुलसी ने मानस में यद्यपि सुरा-सोम के पान का वर्णन नहीं किया है तथापि स्त्रियाँ प्रत्येक सामाजिक उत्सव, तीज-त्यौहार, फाग आदि पर्वों पर पूर्ण उल्लास रत गान और नृत्य आदि में संलग्न दिखलाई गई हैं। नहछू के अवसर पर बन ठन कर निकलने वाली स्त्रियों का तुलसी ने सरस चित्रण प्रस्तुत किया है। सभी जगह स्त्रियाँ पुरुषों के साथ पूर्ण स्वच्छन्दता से उनकी सहयोगिनी बनी हैं।

वैदिक काल में बहु पत्नी विवाह की प्रथा का प्रचलन था। यद्यपि बेनी प्रसाद का कथन है कि—अनेक विवाह राजा, पुरोहित या अन्य धनवान व्यक्ति ही कर सकते थे।[१५] फिर भी स्त्रियों को सौत का दुःख सहन करना पड़ता था ऋग्वेद (१०।१५ ६।४-६;१०।१४५।१।१-६) में सपत्नी से रहित होने, अपनी प्रभुता बनाने तथा सौत के विनाश और पति पर एकाधिकार पाने की प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद (७।३५।३) में एक पत्नी सौत को शाप देती है तथा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऋग्वेद (१।१०४।३ तथा १।१०५।८) में सपत्नियों की गृह कलह से पुरुषों के दुखित होने का स्पष्ट वर्णन है। तुलसी ने भी राजा दशरथ की प्रमुख रूप से तीन और अन्य अनेक पत्नियों का उल्लेख किया है। कौशल्या और सुमित्रा यद्यपि स्नेहमयी आदर्श सपत्नियाँ हैं तथापि कैकेयी सौतिया डाह से पीड़ित दिखाई गई है। मानस की कैकेयी की ईर्ष्या, द्वेष और डाह का अंकुर वैदिक काल में ही पनप चुका था। वास्तव में पुरुष के स्वार्थ और बहु पत्नी प्रथा ने प्रारम्भ से ही नारी में उन दुर्गुणों को मूल रूप में बो दिया था। तुलसी ने समाज तथा साहित्य में इस कुप्रथा के परिणामों को परखा और कैकेयी के द्वारा वस्तु स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करके समाज में एक पत्नी व्रत के स्वस्थ आदर्श की कल्पना की। फलस्वरूप तुलसी ने राम, उनके सभी भाई लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और राम राज्य में सम्पूर्ण प्रजा को एक पत्नीव्रत के आदर्श पर अवस्थित दिखलाया है।[१६] स्पष्ट ही यह नारी की सुदृढ़ स्थिति और उसके अधिकारों के प्रति तुलसी की पक्षपातविहीन न्याय बुद्धि का परिचायक है। इस प्रकार वैदिक साहित्य और तुलसी साहित्य में नारी समाज की अवस्था लगभग एक समान ही अंकित की गई है।

उत्तर वैदिक काल में तो स्त्रियों की पतनावस्था के स्पष्ट चिह्न प्रकट हो गए थे, जो तुलसी साहित्य में नहीं हैं। जहाँ तक तुलसी साहित्य में कही गई नारी मात्र के प्रति कटूक्तियों का प्रश्न ह वह प्रसंग के संदर्भ में ही देखी जा सकती हैं।

नारी जाति के प्रति अनेक कटु और तुलसी से भी उग्र भाव की अभिव्यंजक उक्तियाँ उत्तर वैदिक काल में देखी जा सकती हैं। श्री बेनी प्रसाद ने कहा हैं कि मैत्रायणी संहिता में स्त्रियाँ जुए और शराब की भाँति बुरी कही गई हैं।[१७] इसी प्रकार मैत्रायणी संहिता (१।१०।११) में वह अनृता कही गई है। तैतिरीय संहिता (१।५।१०), ऐतरेय ब्राह्मण (२।१६।१) तथा कौषीतकी ब्राह्मण (२।३) में स्त्री हीन शूद्र से भी निकृष्ट उद्घोषित की गई है। ऐतरेय ब्राह्मण (५।१६) तथा कौषीतकी ब्राह्मण (२।६) में पत्नियों को अपने पतियों को कभी उत्तर न देने तथा आज्ञा पालन करने की कठोर आज्ञा दी गई है। ऋग्वेद (८।३३।१७) में इन्द्र स्त्रियों को हीन बुद्धि और संयमहीन, चंचल चित वाली कहता है। ऋग्वेद (१०।६५।१५) में तो स्त्रियों की मित्रता अस्थिर और उनके हृदयों की तुलना सालावृकों, लकड़भग्गों से दी गई है तथा उनके ऊपर पाषाण हृदयता का स्पष्ट आरोप लगाया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुषों द्वारा सृजित काव्यों में धुर वैदिक काल से लेकर अब तक ऐसा ही एकांगी मत अभिव्यक्त किया गया है। तुलसी की तो कृपा ही रही कि उन्होंने जो कहा वह उतना उग्र नहीं था साथ ही ऐसे कथन उन्होंने प्रसंगों में इस प्रकार संजोए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं कि वे या तो हीन पात्रों के प्रति कहे गए हैं अथवा स्वयं हीन निर्बुद्धि और जड़ पात्रों द्वारा प्रस्तुत हैं अथवा परिस्थिति और पात्र की मनः स्थिति के कारण अभिव्यक्त हैं या फिर वैराग्य को दृढ़ करने के लिए प्रमदा नारी को निवृत्ति पथ की बाधक मान उसके प्रति अभिव्यक्त हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से वैदिक कालीन संस्कृति के समकक्ष रखने पर भी उनका नारी समाज तुलना में कुछ श्रेष्ठ ही प्रतीत होता है हीन नहीं। नारी के प्रति तुलसी की भावना उदार और शालीन है।

(ख) सूत्र, स्मृति और पुराण साहित्य की नारी भावना से तुलना—ए० एस० अल्तेकर के विचारानुसार उत्तर वैदिक काल से ही स्त्रियाँ अपने पूर्व सम्मान, स्वत्व एवं पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक अधिकारों से पूर्णतया वंचित की जाने लगी थी।[१८] सूत्र, स्मृति और पुराण ग्रन्थों में यद्यपि माता, पुत्री और पत्नी रूप में नारी के प्रति आदर, स्नेह तथा पर्याप्त सम्मान की अभिव्यंजना हुई है तथापि साधारणतः नारी मात्र के प्रति कही गई गर्हित, निन्दनीय और अपमान सूचक उक्तियों की इतनी बहुलता है कि तुलसी साहित्य की उक्तियाँ उनकी तुलना में बहुत ही हल्की जान पड़ती हैं।

भागवत पुराण (१।४।२५) में स्त्रियाँ वेद आदि धर्म ग्रन्थ पढ़ने के अधिकारों से वंचित कर दी गई थीं, फलस्वरूप अशिक्षा और उपनयन संस्कार के अभाव ने स्त्रियों को शूद्रों की श्रेणी में ला बिठाया।[१९] इसके विपरीत तुलसी ने शूद्र जाति की स्त्रियों को भी भक्ति का पूर्ण अधिकार देकर, मुनियों को भी दुर्लभ गति की अधिकारिणी बनाया है। स्वयंप्रभा, अहल्या और कौशल्या आदि रानियों को भी भगवान की भक्ति से पूर्ण दिखलाया गया है। धर्म और भक्ति भावना से परिपूरित अपने ग्रन्थ मानस के अध्ययन और मनन करने का अधिकार सभी स्त्री-पुरुषों को समान रूप से देकर उन्हें मानस के रखवाले अधिकारी देवता बताया है।[२०]

'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवताः' जैसे आदर्श सूत्र वाक्य कहने वाले मनु ने भी मनु स्मृति (१।१४६।४८) में स्त्रियों को नितान्त अविश्वसनीय माना है। मनु स्मृति (५।१४७। तथा १४६।४८) के अनुसार स्त्रियों को बाल्यावस्था में पिता के, यौवनावस्था में पति के और पति की मृत्यु पर वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहने का आदेश दिया गया है। यही नहीं नारद स्मृति (१६।३०) के अनुसार तो प्रजापति ने ही स्त्रियों के लिए पराधीनता की व्यवस्था की है क्योंकि स्वतन्त्रता से कुलीन स्त्रियाँ भी भ्रष्ट हो जाती हैं। इन सभी कथनों की पुष्टि वशिष्ठ, व्यास और याज्ञवल्क्य द्वारा और भी तीव्र स्वरों में की गई है।[२१]

इस काल में नारी की जितनी भी भर्त्सना और निन्दा हो सकती थी वह की गई है। इस युग में स्त्रियाँ पापी पुरुषों से भी हीन, झूठ, विनाश, आपत्ति या मृत्यु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के देवता से सम्बद्ध अनृत, साहस, छल, मूर्खता, अति-लोभ और निर्दयता एवं अपवित्रता की स्वाभाविक प्रतीक बना दी गईं। साथ ही उसे अग्नि, सर्पिणी, अतिकामासक्त और निर्लज्ज आदि भी कहा गया है। यहाँ नारी निन्दा का जैसा उग्र स्वर सुनाई पड़ता है उसकी तुलना तुलसी साहित्य से किसी प्रकार भी नहीं की जा सकती क्योंकि उन्होंने यद्यपि कुछ उक्तियाँ इनसे प्रभावित होकर अपने साहित्य में रख दी हैं फिर भी उनकी उग्रता प्रसंग के प्रकाश में देखने पर उपेक्षणीय हो जाती है क्यों कि उनका प्रयोग केवल असत् नारी पात्रों के लिए ही हुआ है।

संस्कृत काव्यकारों ने शांडिली आदि की अतिश्योक्ति पूर्ण कथाओं के माध्यम से नारियों पर पतिव्रत धर्म का अनुचित रूप से आरोपण करके स्त्रियों को पुरुषों की सभी उचितानुचित इच्छाओं की पूर्ति का साधन बनाया। उन्होंने साध्वी पत्नी को कुमार्गगामी पति के प्रति भी पूज्य भाव बनाए रखने का अन्यायपूर्ण आदेश दिया तथा गोद में सोए पति की निद्रा भंग होने के भय से बालक को अग्नि कुंड में गिरते हुए देखते रहने की कथाओं का चित्रण करके शाश्वत मातृत्व की विडम्बना भी की।[२२]

सूत्र, स्मृति और पुराणकारों का अन्याय तब एक दम स्पष्ट हो जाता है जब वे स्त्रियों को छड़ी या हाथ से पीटने का विधान बनाते हैं, और जब मनु (मनु स्मृति ५।१६५।६) पति के दुःशील होने पर भी पत्नी के साध्वी और उसके अनुकूल रहने की बात कहते हैं और (मनु स्मृति ६।४६ के अनुसार) जब पत्नी को विक्रय कर देने और त्याग देने पर भी पति के विमुख न होने का उपदेश देते हैं। तुलसी इतने अनुदार और अन्यायी कहीं नहीं हुए हैं। मानस की मन्दोदरी अपने कुमार्गगामी पति को सत् मार्ग की ओर प्रेरित करने का पूर्ण प्रयास करती है और न मानने पर कटु वचन भी कहती है तथा इस पर भी तुलसी ने उसकी कहीं निन्दा नहीं की है अपितु नीति कुशल, चतुर आदि विशेषणों से उसको विभूषित किया है। अतः स्पष्ट है कि तुलसी के नारी समाज की अवस्था सूत्र, स्मृति और पुराण युग से बहुत उन्नत है।

(ग) संस्कृत महाकाव्य की नारी भावना से तुलना—जिन नारी निन्दक उक्तियों के लिए तुलसी की निन्दा की जाती है वे उनकी अपनी मौलिक सूझ नहीं हैं। वे सभी कटूक्तियाँ या तो संस्कृत काव्यों से सीधा अनुवाद हैं अथवा भाव की दृष्टि से उनके समरूप हैं। अतः केवल ऐसी कुछ कटूक्तियों के आधार पर तुलसी की नारी भावना को नहीं परखा जा सकता। उनकी भावना को परखने की सही कसौटी यही है कि उन्होंने अपने साहित्य में नारी समाज को क्या स्थान दिया है और इसका विश्लेषण तुलसी के नारी समाज को वैदिक कालीन नारी समाज के समकक्ष स्थापित करता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी का सम्पूर्ण साहित्य राम कथा से आप्लावित है और उस राम कथा का मूल स्रोत आदि कवि वाल्मीकि की रामायण में ही है। अतः तुलसी स्वाभाविक रूप से ही उनसे सर्वाधिक प्रभावित रहे हैं। उनके अतिरिक्त अन्य राम कथा सम्बन्धी साहित्य का प्रभाव उन्हों ने स्वयं ही स्वीकार किया है। यही कारण है कि मध्ययुगीन काल में जब कि नारी पतनावस्था के गहन गर्त में पड़ी हुई थी वे रामायण और वैदिक युगीन समाज के समकक्ष ही अपने नारी समाज की संस्कृति और सभ्यता का निर्माण करने में समर्थ हो सके। जहाँ तुलसी ने एक सुसंस्कृत और सभ्य समाज का निर्माण किया वहाँ चिर प्रचलित परम्परा के अनुकूल नारी निन्दक वाणी भी सहज रूप से उनके साहित्य में अवतरित हुई जो उनका अक्षम्य अपराध कही गई।

डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल ने अपने शोध प्रबन्ध के परिशिष्ट में वाल्मीकि और तुलसी के नारी समाज का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। यद्यपि उन्होंने पर्याप्त वकालत करके तुलसी के दोष का तर्क सम्मत परिमार्जन प्रस्तुत किया है तथापि उनके ये कथन कि—"वाल्मीकि तथा तुलसी दोनों ने ही नारी जाति के प्रति पुरुष जाति के प्राकृतिक एवम् परम्परागत विचारों का ही प्रतिनिधित्व किया है, जो मध्य युग के वातावरण के कारण तुलसी के साहित्य में (और समस्त मध्ययुगीन साहित्य में ही) विशेष उग्र स्वर में प्रकट हुए हैं।"[२३] तथा "तुलसी ने अपने युग की वाणी को, अपनी वैराग्य परक दृष्टि के दबाव से, संतों की दो टूक भाषा में अधिक सफाई और अशालीनता के साथ कह डाला, यही उनका अपराध है और साहित्यिक दृष्टि से बड़ा अपराध है"[२४] तुलसी के नारी निन्दक होने के अपराध को कम नहीं कर सके हैं। उन्होंने भी अन्य आलोचकों की भाँति ही तुलसी को उग्र स्वर में नारी निन्दा करने वाला, अशालीन और साहित्यिक दृष्टि से अपराधी ही मान लिया है परन्तु वास्तविकता यह है कि तुलसी न तो अधिक अशालीन थे और न तुलसी का नारी निन्दक स्वर ही अधिक उग्र था।

यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से निश्चित रूप से तुलसी से कहीं अधिक श्रेष्ठ अवस्था में जीने और रहने वाले वाल्मीकि और व्यास, नारद और मनु, वशिष्ठ और कालिदास आदि कवि भी नारी के प्रति उनसे अधिक अनुदार रहे हैं। निश्चय ही उनकी वाणी नारी निन्दा में तुलसी से अधिक उग्र रही है।

शान्ति कुमार नानूराम व्यास ने रामायण कालीन समाज में नारी की स्थिति का चित्रण करते हुए कहा है कि—"रामायण कालीन समाज का अपहृत नारियों के प्रति संकुचित दृष्टिकोण था। वह उन्हें अपने बीच पुनः सम्मानित स्थान देने के किसी भी प्रयास का प्रबल विरोध करता था।"[२५] वाल्मीकि रामायण (७।८०।१) में वर्णित भार्गव मुनि कन्या अरजा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के साथ राजा दंड के बलपूर्वक बलात्कार के करुण प्रसंग का उल्लेख करके उन्होंने कहा है कि भार्गव मुनि अपनी बलपूर्वक दूषित की गई पुत्री को स्वीकार न कर सके और राम भी सीता को कटु वचन कहकर अग्नि परीक्षा लेने के पश्चात् भी प्रजा की अप्रसन्नता के भय से ग्रहण न कर सके। इसके विपरीत तुलसी ने न समाज को और न राम को ही इतना कठोर दिखलाया है। रामचरितमानस में तो सीता त्याग का प्रसंग है ही नहीं और न ही अरजा अथवा अन्य किसी स्त्री के ऊपर बलात्कार अथवा दूषित करने का ही प्रसंग अवतरित किया गया है। यह मर्यादावादी तुलसी की नारी समाज के प्रति शालीन भावना का ही परिचायक है।

वाल्मीकि रामायण में स्त्री निजी सम्पत्ति मानी गई है जो इच्छानुसार ली दी जा सकती है। रावण बालि से मैत्री स्थापित करते हुए राज्य, नगर, अन्न, वस्त्र जैसी सम्पत्ति के साथ अपनी स्त्रियों को भी दोनों के लिए समान रूप से उपभोग्य होने का उल्लेख करता है।[२६] रामायण (२।३०।८) में 'शैलूषों' का वर्णन है जो अपनी स्त्रियों को दूसरो को उपभोग के लिए दे देते थे। उस युग के ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में स्त्री दान से बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं था।[२७] कन्याएँ पुरस्कार में दी जाने वाली वस्तु थीं। भरत प्रसन्न होकर हनुमान को १६ कन्याएँ देते हैं।[२८] तत्कालीन यज्ञों में राजागण अपनी पत्नियों को ही दक्षिणा रूप में पुरोहितों को भेंट कर देते थे।[२९] स्पष्ट है कि पति-पत्नी का निरंकुश स्वामी माना जाता था।

इसके अतिरिक्त रामायण में स्त्री पूर्णतया परतन्त्र भी कही गई है। स्त्री की पहली शरण उसका पति, दूसरी उसके पुत्र और तीसरी उसके सम्बन्धी हैं चौथी शरण कोई नहीं है।[३०] राम के कथनानुसार पत्नी और पुत्र गुरुजनों के नियन्त्रण में रहने वाले होते हैं।[३१] स्त्री को स्वच्छंद नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि वह स्वतन्त्र होने पर परिवार पर अपयश का टीका लगा सकती है।[३२] जब कि तुलसी ने केवल—"ज्यो सुतंत्र भये बिगरहीं नारी" कहकर उपमा के माध्यम से अति स्वातंत्र्य (उच्छृंखलता) के दुष्परिणामों की ओर संकेत मात्र किया है जिसे अनुचित नहीं कहा जा सकता।

वाल्मीकि रामायण में कन्या के पिता को चाहे वह इन्द्र के समान ही क्यों न हो समान और निम्न श्रेणी वाले व्यक्तियों से भी अनादृत कहा गया है।[३३] नानू राम व्यास ने इससे निष्कर्ष निकाला है कि "कन्या के जन्म पर परिवार में प्रसन्नता की लहर नहीं दौड़ती होगी।"[३४] इसके विपरीत तुलसी साहित्य में पुत्री और पुत्र दोनों के पिता समान ही कहे गए हैं—

सकल भाँति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू।
मानस —बाल काण्ड।।३१६।।३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथ ही तुलसी साहित्य में पुत्री जन्म समान उल्लास तथा प्रसन्नता का विषय रहा है और पुत्री का पिता कहीं भी अपमानजनक स्थिति में नहीं रखा गया है। तुलसी की दृष्टि में पुत्र और पुत्री समान रूप से पुण्य कर्मों के फल हैं—

रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरे देही।

मानस —बाल काण्ड।।३०६।।१

दोनों काव्यों का यह वैषम्य इस बात की पुष्टि करता है कि तुलसी निश्चित रूप से अधिक उदार दृष्टिकोण के व्यक्ति थे। उनकी दृष्टि में कन्या रत्न की प्राप्ति जीवन का बहुत बड़ा लाभ था।[३५] श्रेष्ठ कन्या तो संसार में माता-पिता का यश प्रदान कराने वाली[३६] तथा वह अमृत और वह श्रेष्ठ रत्न है, जिन्हें रोगी और राजा रूपी वर स्वयं खोजता है।[३७]

साथ ही रामायण कालीन समाज के लेखक ने इस ओर भी संकेत किया है कि वाल्मीकि रामायण में समाज में नवजात कन्याओं के निर्जन वन में छोड़ आने तथा त्याग दिए जाने के प्रमाण भी मिलते हैं।[३८] जब कि तुलसी साहित्य में ऐसे कोई उद्धरण प्राप्त नहीं होते।

नानूराम व्यास ने इसके अतिरिक्त रामायण कालीन समाज में वाल्मीकि द्वारा वर्णित स्त्रियों के अवगुणों की विस्तृत तालिका भी प्रस्तुत की है।[३९] जिसमें स्त्रियों की तीव्र निन्दा कौशल्या, अनसूया और स्वयं राम के मुख से कराई है। जिसके अनुसार नारी तन-मन से दुर्बल, काम भोग की अबुझ लालसा से संयुक्त, वासना की पुतली, दुष्ट, स्वार्थी, धिक्कार की पात्र, निराशा और लघु हृदया, अस्थिर हृदया, चंचल, चपल, सृष्टि के आदि से ही विषमस्थ (दरिद्र, रोगादिग्रस्त) पति का परित्याग कर देने वाली दुराग्रही, प्रबल उत्सुकता (जो अनुचित यौन आकांक्षा भी जगा दे) से संयुक्त, संकुचित दृष्टिकोण वाली है। अतः नानूराम व्यास का कथन है कि रामायण में स्त्रियों को तीव्र भर्त्सना और उपालम्भ का पात्र बनाया है।[४०] इन सभी उक्तियों को एकत्रित करके उनका विश्लेषण करने से ज्ञात हो जाता है कि तुलनात्मक दृष्टि से और उग्रता, अशालीनता और बहुलता की दृष्टि से भी तुलसी की नारी निन्दक उक्ति बहुत हल्की और कम जान पड़ती है।

इस प्रकार रामायण में तथा उसी के समान महाभारत और कालिदास आदि के काव्य में भी नारी निन्दक उक्तियों की कमी नहीं है। संस्कृत काव्य का निम्नांकित द्रष्टान्त ही नारियों को सभी अवगुणों की खान सिद्ध कर देता है—

आवर्तः संशयानामविनयम वनं पत्तनं साहसानां,
दोषाणां सन्निधानं कपटशतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुर्ग्राह्यं यन्महद्भिर्नरवृषभैः सर्वमायाकरण्डम,
स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतयुतं धर्मनाशाय सृष्टम्,।।[४१]

धर्म देव विद्या वाचस्पति ने संस्कृत काव्य के अनेक नारी निन्दक स्थलों का उल्लेख करते हुए कहा है कि "संस्कृत काव्यों, नाटकों तथा वेदान्त विषयक ग्रन्थों में स्त्री जाति मात्र के विषय में जिन हीन भावों का प्रकाशन किया गया है उनको देखकर सभ्य देशों के आगे सिर नहीं उठाया जा सकता।"[४२] अतः तुलनात्मक दृष्टि से तुलसी बहुत अधिक उदार और श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं।

शूर्पणखा के विषय में कही गई उक्ति—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।
होइ विकल सक मनहि न रोकी। जिमि रविमनि द्रव रविहि विलोकी।।

आलोचकों की दृष्टि में तुलसी का अक्षम्य अपराध बन गई है।[४३] इस विषय में डॉ० अग्रवाल ने विश्लेषण करते हुए कहा है कि—"शब्दों को न पकड़ कर यदि उक्त पंक्तियों का आशय ग्रहण किया जाय तो यही है कि कामातिरेक और असंयम स्त्रियों में अधिक होता है।"[४४] सम्भवतः आलोचक भी इसी मत से सहमत हैं क्योंकि उन्होंने इसके साथ ही लिखा है—"इसी का परिष्कृत रूप विरह के विषय में आचार्य शुक्ल जी के इस कथन में मिलता है कि 'भारतीय साहित्य में विरह अधिकतर स्त्रियों के मत्थे मंढी गई है।' जयशंकर प्रसाद ने भी कहा 'भारतीय साहित्य में पुरुष विरह विरल हैं और स्त्रियों का अधिक।' विरह की जितनी मार्मिक अनुभूति स्त्रियों को होती है उतनी पुरुषों को नहीं।"[४५] पुनः वे कहते हैं कि हमें— 'होइ विकल सक मनहिं न रोकी' के विषय में वाल्मीकि रामायण का विशेष अध्ययन करने वाले विद्वानों की राय जाननी है।"[४६]

अपने विचारों की पुष्टि के लिए डॉ० अग्रवाल ने अपने शोध प्रबन्ध में श्रीमती धैर्य बाला पी० वोरा[४७] और ई० डब्लू हॉपकिन्स[४८] के विचार प्रस्तुत किए हैं—"स्त्रियों की स्थिति के विषय में भारतीय आर्य परम्परा का अध्ययन करने पर उसमें बड़ा विचार-वैषम्य दिखलाई पड़ता है। हम देखते हैं कि यद्यपि पत्नी और माता के रूप में उनका सम्मान किया गया है, परन्तु नारी के रूप में उनकी निन्दा ही की गई है। धुर वैदिक काल से लेकर अब तक भारतीय साहित्य में नारी-विरोधी, व्यंग्यात्मक, उपहास और घृणा की सूचक मनोवृत्ति, अन्तर्धारा के रूप में, प्रवाहित होती हुई दिखलाई पड़ती है। स्त्रियों के अवगुणों का राग अलापते हुए—उनका दर्प, अलंकार, अस्थिरता, जीवन के उथले तल के प्रति अनुराग आदि बतलाते हुए —उन्हें सदैव एक छली, धूर्त या मायावी प्राणी के रूप में देखा गया है जिसका जन्म ही मनुष्य को सत् मार्ग से विचलित करने के लिए हुआ है। महाकाव्यों से भी इस विचार का समर्थन होता है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"स्त्रियों का वर्णन कामसुख के लिए अतृप्त लालसा (इनसेटियेबल लस्ट फार सेक्सुएल प्लेजर्स) रखने वाले प्राणी के रूप में हुआ है। रतिसुख (कोइटस) को वे समस्त सुखों से ऊपर समझती हैं।"

"स्त्रियों की इस अतृप्त लालसा के वर्णन में निश्चय ही अत्युक्ति है। अवश्य ही इस विषय में पुरुष भी उतने ही दुर्बल हैं, लेकिन इन दोनों महाकाव्यों ने, स्त्री को रति से अधिक आनन्द मिलता है, इस पर बल देते हुए अधिकांश दोष स्त्रियों के ही मत्थे मढ़ने का प्रयत्न किया है।"

"स्त्रियों में दूसरा दोष जो महाकाव्यों में बढ़ा चढ़ाकर कहा गया है वह है उनकी अदम्य उत्सुकता (लेखिका ने कैकेयी की माता का प्रसंग दिया है, जो वाल्मीकि रामायण २४५ में सुमंत्र ने सुनाया है)। स्त्रियों के विषय में सामान्य धारणा थी कि वे चंचल, अविश्वसनीय और काम-प्रवृत्ति के अधीन हो जाने वाली (ऐप्ट टु सकम्ब टू सेक्सुअल प्लेजर्स) होती हैं।"

पुनः आलोचक ने उद्धृत किया है—"यद्यपि स्त्रियों के लिए स्नेह और सम्मान की काफी वकालत की गई है, काफी आदर और गौरव प्रदिर्शत किया गया है, परन्तु यह तथ्य ज्वलंत रूप में प्रकट है कि अपने पुरुष साथी के प्रति स्त्री का आत्मसमर्पण ही महाकाव्यों में स्त्री का आदर्श माना गया है।"[४६]

संस्कृत महाकाव्यों में नारी भावना के विषय में ई० डब्लू हापकिन्स के विचार हैं—"महाकाव्यों में नारी केवल मनोविनोद का साधन है, उसके गुणों और अवगुणों का आकलन केवल पुरुषों के संदर्भ से किया गया है,—उसके काम-सुख, उसकी शक्ति, श्रेष्ठता और उसके अहंकार को तुष्ट करने की दृष्टि से।"[५०]

श्रीमती पी० वोरा और हापकिन्स की विचारधारा से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत काव्यों में नारी को अति लालसामयी, चंचल, अविश्वसनीय और काम प्रवृत्ति के अधीन हो जाने वाली माना गया है जो केवल मनोविनोद की साधन रही है। तुलसी साहित्य की नारी भावना के विश्लेषण से स्पष्ट है कि तुलसी ने नारी को इतना गर्हित कहीं नहीं माना है।

श्रीमती पी० वोरा और हापकिन्स का कथन है कि अब तक संस्कृत महाकाव्यकार यद्यपि स्त्रियों को ऐसा (अतिकामुक) मानते आए हैं परन्तु स्त्रियां वास्तव में ऐसी होती ही हैं यह नहीं कहा गया है। श्रीमती वोरा ने स्पष्ट ही कहा है कि महाकाव्यों में—"स्त्रियों की इस अतृप्त लालसा के वर्णन में निश्चय ही अत्युक्ति है।" परन्तु खेद है कि डॉ० अग्रवाल ने सम्भवतः महाकाव्यकारों के वर्णन को सत्य माना है और स्त्रियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को प्राकृतिक रूप से इसी प्रवृत्ति का मानते हुए अपना विचार अभिव्यक्त किया है कि—"ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी के उद्‌गारों का उद्‌गम न केवल आदिकाव्य और पुरातन साहित्य में वरन् स्त्री और पुरुषों की प्राकृतिक स्थिति तथा उसके आधार पर विनिर्मित उनकी मनोवृत्तियों में है।"[५१]

वास्तव में तुलसी के इस उद्‌गार 'भ्राता पिता पुत्र उर गारी' का मूल तो हितोपदेश की इन पंक्तियों में है—

सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्।
योनिः विलयति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद।

इससे तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी की उक्ति इतनी गर्हित, घृणित और अश्लील नहीं है। फिर तुलसी की उक्ति निश्चित रूप से केवल शूर्पणखा के लिए ही कही गई है नारी मात्र के लिए नहीं। वस्तुतः तुलसी का यह उद्‌गार स्त्री और पुरुषों की प्राकृतिक स्थिति तथा उसके आधार पर विनिर्मित उनकी मनोवृत्ति में नहीं है क्योंकि तुलसी सभी स्त्रियों की वृत्ति इतनी घिनौनी नहीं मान सकते थे, कारण उनके स्वयं की, जीवन की अनुभूति ही थी। उनकी पत्नी ने तो स्वयं ही तुलसी की भर्त्सना उनकी कामुक वृत्ति के लिए की थी, फलस्वरूप वे वैरागी बने और ईश्वर प्रेम में निमग्न होकर उन्होंने पत्नी के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यंजना की—"हम तो चाखा प्रेम रस पतिनी के उपदेश।" अतः तुलसी नारी मात्र पर कामुकता का आरोप लगा भी कैसे सकते थे। तुलसी का यह कथन—

दीप सिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग।

मानस —अरण्य काण्ड।४६ख।।

भी इसी बात का परिचायक है कि नारी के दीप शिखा से सुन्दर रूप को देखकर पुरुष हृदय कामना के वशीभूत हो जाता है जिसमें निश्चय ही स्त्री का अपना कोई दोष नहीं है। तुलसी भी यहाँ स्वयं के कामुक मन को ही वर्जित करते हुए कहते हैं कि काम मद को त्याग कर सत्संग करते हुए राम का भजन कर। अतः इस कथन में पुरुषों के मन की कामुकता पूर्ण लालसा का ही चित्रण है। नारी पुरुष हृदय की कामवासना, मद और मत्सर को उत्तेजित करने का कारण बन सकती है। उसके मोह के विकास के लिए वसन्त ऋतु कही जा सकती है। उसके हृदय की सम्पूर्ण ममता का आधार मानी जा सकती है।[५२] परन्तु उसमें पुरुष हृदय से अधिक वासना है अथवा उसकी मनोवृत्ति ही अधिक कामुक है, यह तुलसी ने कहीं नहीं कहा है—'भ्राता पिता पुत्र उरगारी' की उक्ति भी केवल अत्यन्त कामुक और वासनामयी शूर्पणखा के लिए प्राचीन साहित्य के प्रभाववश ही उनके साहित्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में अवतरित हो गई है। तुलसी ने तो पुरुष मात्र में भी 'नही मानत कोउ अनुजा तनुजा' कहकर इसी तीव्र वासना का भाव देखा है। तुलसी ने अपने ग्रन्थ मानस के सबसे अंतिम दोहे में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि पुरुष के हृदय में स्त्री के लिए ही सर्वाधिक मोह होता है। नारी के प्रति पुरुष की इस तीव्र कामना को देख कर ही वे भगवान को इसी उत्कट लालसा से प्रेम करना चाहते हैं—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।

पुरुष हृदय में कामवासना की यह तीव्रता सम्भवतः तुलसी का अनुभूत सत्य रहा है अतः वे स्त्री पर काभुकता का एकांगी आरोप लगा ही नहीं सकते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन विस्तार से किया था जिसमें धुर वैदिक काल से बहु-पत्नी प्रथा तथा छल-बल से कुमारिकाओं के हरण पुरुष वर्ग की सीमाहीन लालसा के ही परिचायक हैं। साथ ही प्राचीन साहित्य में वर्णित बलात्कार की अनेक करुण और मार्मिक कथाएँ भी पुरुष वर्ग की अबुझ और संयमहीन वासना का ही ज्वलन्त प्रमाण हैं। यहाँ तक कि वैदिक युग में देवताओं के राजा इन्द्र की इन्द्राणी चाह कर भी अपने सतीत्व की रक्षा करने में असमर्थ रही है। वृषाकपि द्वारा इन्द्राणी के साथ छेड़खानी करने पर[५३] और इन्द्राणी द्वारा शिकायत किए जाने पर इन्द्र अपनी पत्नी का अपमान करने वाले के प्रति अत्यधिक शान्त रहता है और कहता है कि—"इन्द्राणि ! मित्र वृषाकपि के बिना मुझे सुख नहीं है।"[५४] निर्धन पति की पत्नी के अपमानित होने के तो फिर अनेक उल्लेख हैं।[५५]

साधारणतः स्त्री-पुरुष दोनों में ही कामवासना समान रूप से प्रकृति प्रदत्त वस्तु है। फिर भी व्यक्तिगत विभिन्नताएँ देखी जा सकती हैं। स्त्रियाँ अधिकांशतः आत्म संयम, आत्मिक बल और पतिव्रत धर्म के चिर संचित संस्कारों के कारण उस पर अंकुश रखने में समर्थ दिखलाई पड़ती हैं जब कि पुरुष के लिए कोई अंकुश नहीं है। अतः इसके लिए स्त्रियों को लांछित नहीं किया जा सकता। तुलसी तो इतने मर्यादावादी थे कि उन्होंने पुरुष वर्ग के स्त्रियों पर बलात्कार आदि की कथाओं को जिनका उल्लेख आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण तथा अन्य संस्कृत महाकाव्यों में आया है—अपने साहित्य में कोई स्थान नहीं दिया है। अतः तुलसी, नारी सम्बन्धी विचारों के लिये, संस्कृत काव्य की तुलना में निश्चय ही बहुत अधिक उदार कहे जा सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी केवल कवि ही नहीं अपितु नूतन जन्म धारण करने वाले कोई महर्षि ही हैं जिन्होंने अपने अनुभूत तथ्यों और जीवन के विस्तृत अध्ययन के बाद वास्तविक मान्यताओं को अपने साहित्य में स्थान दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२. वीर काव्य की नारी भावना से तुलना

तुलसी साहित्य पर न तो वीर काव्य का कोई स्पष्ट प्रभाव ही परिलक्षित किया जा सकता है और न ही तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन करने के लिए उनमें कोई समता ही परिलक्षित होती है। वीर काव्य की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ नितान्त भिन्न हैं।

वीर काव्य में नारी के दो प्रमुख रूप देखने को मिलते हैं—नारी का वीर रूप तथा उसका शृंगारिक रूप। तुलसी साहित्य में ये दोनों ही रूप किसी प्रकार का विकास नहीं पा सके हैं। वीर काव्य में जबकि वीर नारी पति को स्वयं युद्ध के लिए प्रेरित करती हुई और युद्ध से भागकर लौट आने वाले पति के स्थान पर युद्ध क्षेत्र में मृत्यु का आलिंगन करने वाले पति की प्राप्ति में ही भलाई देखती है[५६] तो तुलसी साहित्य में इसके विपरीत नारी पति को युद्ध से विरत करने का उपदेश देती हुई भगवान् की शरण में जाने का उपदेश देती है।[५७]

ऐसा प्रतीत होता है कि युग की राजनीतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप, वीर-काव्य यदि मारने और मर मिट जाने के अदम्य उत्साह से परिपूरित शौर्य प्रदर्शन का युग था तो भक्ति काल राजनीतिक पराभव से निराश जनता के लिए भक्ति भावना से अभिभूत हो जाने का युग था। अतः इस क्षेत्र में इनकी तुलना नहीं की जा सकती।

वीर काव्य में नारी के अति शृंगारिक रूप का चित्रण हुआ है जहाँ विलास वृत्ति को उद्दीप्त करने वाले नारी के नख-शिख वर्णन, नायिका-भेद और काम-केलि आदि का वर्णन भी अधिक हुआ है। अतः उसकी ओर तो मर्यादावादी भक्त कवि तुलसी की कोई रुचि है ही नहीं।

वीर काव्य की नारी का सामाजिक रूप भी विशेष सम्माननीय नहीं प्रतीत होता। नारी के वीर रूप में तो उसकी प्रतिष्ठा और सम्मान प्रदर्शित किया भी गया है परन्तु अपने शृंगारिक रूप में नारी बहुत ही विवश और दीन-हीन जीवन व्यतीत करती हुई दिखलाई पड़ती है। वीर और शृंगारिक रूप दोनों रूपों में वीर काव्य की नारी के जीवन का केवल एक ही लक्ष्य है—पति के साथ ही साथ चिता की प्रज्वलित अग्नि शिखाओं का चुम्बन करना।

वीर काव्य में भी नारी निन्दा की परम्परागत रूप से चली आती हुई धारा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित रही है। वीर काव्य में भी नारी अविश्वसनीय, चंचल और अपावन ही रही है। कवियों का मत है—"बत्तीस हृदय, साठ मन और सौ चित्त वाली स्त्रियों पर जो मनुष्य विश्वास करते हैं वे मूर्ख हैं।"[५८] वीर काव्य में स्त्रियाँ इतनी अपवित्र मानी गई हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि उनकी उपमा कुकरी[५६] से दी गई है।[६०] अतः तुलसी साहित्य की नारी भावना से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वीर काव्य में यद्यपि ऐसे निन्दात्मक स्थल कम ही हैं तथापि उग्रता की दृष्टि से वे तुलसी साहित्य से अधिक तुच्छ और उग्र ही हैं।

३. संत काव्य की नारी भावना से तुलना

सिद्धान्त रूप से सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति में कोई विरोध न होने पर निर्गुण भक्ति शाखा और सगुण भक्ति शाखा दो पृथक् धारायें हैं। तुलसी साहित्य और संत साहित्य की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ लगभग समान ही हैं। अतः दोनों में कुछ समानताएँ परिलक्षित की जा सकती हैं।

तुलसी साहित्य का आधार प्राचीन साहित्य की चिर-परिचित कथा राम कथा ही है अतः उसमें नारी के विभिन्न रूपों पारिवारिक, धार्मिक और सामाजिक का विकसित और उन्नत रूप दिखलाई पड़ता है, जब कि संत कवियों की रचना मुक्तक होने के कारण नारी के इन विविध रूपों को कोई विस्तार नहीं दे सकी है। संत काव्य में फिर भी नारी के सत्-असत् दोनों रूपों का चित्रण हुआ है।

संत काव्य में पतिव्रत धर्म पर आरूढ़ पति में निष्ठा और आत्मोत्सर्ग की भावना से परिपूरित नारी ही संतों की अभ्यर्थना की पात्र रही है। नारी की इस पति भक्ति और एक निष्ठा ने संत-कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया है। फलस्वरूप उन्होंने प्रेम साधना के तत्त्वों पर आधारित आत्मा (पत्नी अथवा स्त्री) और परमात्मा (पति या पुरुष) के परिचय की सम्पूर्ण आध्यात्मिक अन्तर्दशाओं तथा पवित्र प्रेम की अनुभूतियों का निरूपण, स्वाभाविक दांपत्य भाव के लौकिक आधार पर किया है। अतः पतिव्रत धर्म से युक्त नारी उनकी प्रशंसा और आकर्षण की पात्र रही है।

संत दादूदयाल के अनुसार सती नारी के लिए पति ही गुरु, गोविन्द और देवता है। पति सेवा ही उसकी सम्पूर्ण पूजा, अर्चना, ज्ञान, ध्यान, तीर्थ, व्रत, मुक्ति तथा मोक्ष है।[६१] सूत्र, स्मृति और पुराण साहित्य से सम्मत ठीक इसी नारी धर्म का निर्देश तुलसी ने मानस में देवी अनसूया के द्वारा सीता के बहाने सभी सांसारिक स्त्रियों के हेतु किया है।[६२]

कबीर सच्ची पतिव्रता के प्रति असीम आस्था अभिव्यक्त करते हैं कि वह उसी प्रकार अन्य पुरुष में आसक्त नहीं हो सकती जैसे सिंह लंघन करने पर भी घास नहीं खा सकता।[६३] तुलसी ने सती नारी के प्रति यही आस्था अभिव्यक्त की है—

डगई न संभु सरासनु कैसें। कामी वचन सती मनु जैसें।

मानस —बाल काण्ड।।२५०।।१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः संत काव्य तथा तुलसी साहित्य दोनों में ही सती नारी के प्रति प्रशंसनीय और पूजात्मक भावों की अभिव्यक्ति समान रूप से की गई है।[६४]

नारी यद्यपि अपने सत् स्वरूप में धुर वैदिक काल से ही प्रशंसनीय रही है तथापि उत्तर वैदिक काल से ही उसकी निन्दा भी अबाध गति से की जाती रही है। इस प्राचीन परम्परा से प्रभावित प्रायः सभी कवियों में निन्दा का यही स्वर ध्वनित होता रहा है, कहीं मंद और संयत तो कहीं प्रबल, उग्र और अमर्यादित। संत काव्य में नारी के प्रति भर्त्सनात्मक उक्तियाँ अत्यन्त उग्र वाणी में अभिव्यंजित हुई हैं।

तुलसी साहित्य की नारी निन्दक उक्तियों से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी की वाणी अति मर्यादित और शालीन रही है। साथ ही उनकी उक्तियाँ प्रबन्ध काव्य में संचित होने के कारण प्रसंग और संदर्भ के प्रकाश में ही देखी जा सकती हैं, जो पात्रों के चरित्र, परिस्थिति और मनःस्थिति के प्रकाशनार्थ ही प्रयुक्त हुई हैं। अतः प्रत्येक स्थल पर उन्हें तुलसी की नारी निन्दक उक्तियाँ नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त जो उक्तियाँ स्वयं कवि की हैं वे भी संत काव्य की तुलना में बहुत अधिक संयत स्वर में कही गई हैं।

निवृत्ति पथ की अवरोधक नारी को जब संत कवि सुन्दर दास—

नारी घट दीपक भयो हो, तामे रूप प्रकाश।
आई परै निकसै नहीं। करत सबनि को नाश।।[६५]

कहकर नारी को सबका नाश करने वाली कहते हैं और कबीर—

सुन्दरि थै सूली भली, विरला बचै कोई।
लोह निहाला अगनि में जलि बलि कोइला होई।

कहकर पुरुष की दुर्बलता को छिपाकर नारी पर ही प्रबल स्वर में आक्षेप करते हुए दिखलाई पड़ते हैं, तब तुलसी बहुत ही मर्यादित वाणी में—

दीप सिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजसि राम तजि काममद करहि सदा सतसंग।।

दोहावली ।।२६६।।

नारी रूप के आकर्षण की प्रबलता का चित्रण करके भी काम मद के त्याग, संत संगति और राम भजन पर ही अधिक बल देकर मन को सचेत करते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

इसी प्रकार संत कवि नारी के जननी रूप को भी कलंकित करने में पीछे नहीं रहे हैं। कबीर स्वर्ण निर्मित जननी के समीप बैठने का भी निषेध करते हैं और पर-स्त्री तथा स्वभार्या दोनों को ही नितान्त त्याज्य घोषित करते हैं। जबकि तुलसी जननी की पावनता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर विशेष बल देते हुए—"जननी सम जानहु पर नारी" कहकर नारी के जननीत्व की शुचिता और गरिमा को स्थापित करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। जननी के समान ही तुलसी पुत्र-वधू, अनुज-वधू और भगिनी की ऋजुता को कन्या के समकक्ष रखकर उनके प्रति पावन भावों की अभिव्यंजना करते हैं। स्पष्ट है कि तुलसी नारी मात्र को न त्याज्य समझते हैं और न निन्दनीय। तुलसी केवल नारी के असत् और अमर्यादित स्वरूप के ही निन्दक हैं जब कि संत कवियों ने निवृत्ति पथ की अवरोधक मानकर नारी मात्र को विशेष उग्रता के साथ—'नरक कुंड', 'डाकिनी', 'नागिन' और 'पापिणी' आदि विशेषणों से अभिव्यंजित किया है। अतः तुलनात्मक दृष्टि से तुलसी और संत कवियों का विस्तृत अध्ययन करने पर स्पष्ट परिलक्षित होता है कि तुलसी विशेष सौम्य और मर्यादित रहे हैं।

४. कृष्ण काव्य की नारी भावना से तुलना

राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा दोनों ही वैष्णव धर्म को लेकर चली हैं। रामानुजाचार्य के अनुयायी रामानन्द विष्णु और नारायण के अवतार राम को लेकर उनकी भक्ति का प्रचार करने में लगे तो निम्बार्क, मध्व और विष्णु स्वामी के अनुयायी वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया।

कृष्णकाव्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि प्रेम भक्ति की परम्परा पर आधारित है। जिसका उद्गम श्रीमद्भागवत है। तुलसी के राम की भाँति कृष्ण भी ब्रह्म का ही स्वरूप हैं। कृष्ण कवियों ने कृष्ण को विष्णु का अवतार और राधा को लक्ष्मी का अवतार माना है। कृष्ण और राधा जगनायक और जगत्जननी कहे गये हैं जो अभिन्न रूप से वृन्दावन में नित्य विहार करते हैं।[६६] सूरदास जी ने यद्यपि राधा-कृष्ण का शृंगार-वर्णन बहुलता से किया है तथापि उनके राधा-कृष्ण दिव्य शक्तियों से पूरित उनके आराध्य हैं। अतः उनके शृंगारिक वर्णन में भी एक पावनता है जो वासना को उत्तेजित नहीं करती। परन्तु कृष्ण काव्य की साहित्यिक परम्परा जो जयदेव और विद्यापति में दृष्टिगत होती है भक्ति भाव से प्रेरित न होकर वासनात्मक है। जिसमें लौकिक प्रेम की स्पष्ट अभिव्यंजना हुई है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने कहा है कि विद्यापति के चित्रण में —"राधा कृष्ण के जीवन का तत्त्व प्रेम के सिवाय कुछ नहीं रह गया है।"[६७] तथा "राधा का प्रेम लौकिक और वासनामय है, आनन्द ही उसका उद्देश्य है और सौन्दर्य ही उसका कार्य कलाप.....इस प्रेम में सदाचार की मात्रा कम है। विद्यापति की राधा सदाचार करना जानती ही नहीं।"[६८]

सूर तथा अन्य कृष्ण कवि भी इस साहित्यिक परम्परा से प्रभावित हुए हैं यद्यपि तुलसी के राम और सीता के समान ही उनके कृष्ण परम ब्रह्म और राधा आदि-शक्ति-स्वरूपा हैं। परन्तु फिर भी उनमें तुलसी के लोक रक्षक राम के दिव्य रूप के स्थान पर कृष्ण के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः संत काव्य तथा तुलसी साहित्य दोनों में ही सती नारी के प्रति प्रशंसनीय और पूजात्मक भावों की अभिव्यक्ति समान रूप से की गई है।[६४]

नारी यद्यपि अपने सत् स्वरूप में धुर वैदिक काल से ही प्रशंसनीय रही है तथापि उत्तर वैदिक काल से ही उसकी निन्दा भी अबाध गति से की जाती रही है। इस प्राचीन परम्परा से प्रभावित प्रायः सभी कवियों में निन्दा का यही स्वर ध्वनित होता रहा है, कहीं मंद और संयत तो कहीं प्रबल, उग्र और अमर्यादित। संत काव्य में नारी के प्रति भर्त्सनात्मक उक्तियाँ अत्यन्त उग्र वाणी में अभिव्यंजित हुई हैं।

तुलसी साहित्य की नारी निन्दक उक्तियों से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी की वाणी अति मर्यादित और शालीन रही है। साथ ही उनकी उक्तियाँ प्रबन्ध काव्य में संचित होने के कारण प्रसंग और संदर्भ के प्रकाश में ही देखी जा सकती हैं, जो पात्रों के चरित्र, परिस्थिति और मनःस्थिति के प्रकाशनार्थ ही प्रयुक्त हुई हैं। अतः प्रत्येक स्थल पर उन्हें तुलसी की नारी निन्दक उक्तियाँ नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त जो उक्तियाँ स्वयं कवि की हैं वे भी संत काव्य की तुलना में बहुत अधिक संयत स्वर में कही गई हैं।

निवृत्ति पथ की अवरोधक नारी को जब संत कवि सुन्दर दास—

नारी घट दीपक भयो हो, तामे रूप प्रकाश।
आई परै निकसै नहीं। करत सबनि को नाश।।[६५]

कहकर नारी को सबका नाश करने वाली कहते हैं और कबीर—

सुन्दरि थै सूली भली, विरला बचै कोई।
लोह निहाला अगनि में जलि बलि कोइला होई।

कहकर पुरुष की दुर्बलता को छिपाकर नारी पर ही प्रबल स्वर में आक्षेप करते हुए दिखलाई पड़ते हैं, तब तुलसी बहुत ही मर्यादित वाणी में—

दीप सिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजसि राम तजि काममद करहि सदा सतसंग।।

दोहावली ।।२६६।।

नारी रूप के आकर्षण की प्रबलता का चित्रण करके भी काम मद के त्याग, संत संगति और राम भजन पर ही अधिक बल देकर मन को सचेत करते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

इसी प्रकार संत कवि नारी के जननी रूप को भी कलंकित करने में पीछे नहीं रहे हैं। कबीर स्वर्ण निर्मित जननी के समीप बैठने का भी निषेध करते हैं और पर-स्त्री तथा स्वभार्या दोनों को ही नितान्त त्याज्य घोषित करते हैं। जबकि तुलसी जननी की पावनता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर विशेष बल देते हुए—"जननी सम जानहु पर नारी" कहकर नारी के जननीत्व की शुचिता और गरिमा को स्थापित करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। जननी के समान ही तुलसी पुत्र-वधू, अनुज-वधू और भगिनी की ऋजुता को कन्या के समकक्ष रखकर उनके प्रति पावन भावों की अभिव्यंजना करते हैं। स्पष्ट है कि तुलसी नारी मात्र को न त्याज्य समझते हैं और न निन्दनीय। तुलसी केवल नारी के असत् और अमर्यादित स्वरूप के ही निन्दक हैं जब कि संत कवियों ने निवृत्ति पथ की अवरोधक मानकर नारी मात्र को विशेष उग्रता के साथ—'नरक कुंड', 'डाकिनी', 'नागिन' और 'पापिणी' आदि विशेषणों से अभिव्यंजित किया है। अतः तुलनात्मक दृष्टि से तुलसी और संत कवियों का विस्तृत अध्ययन करने पर स्पष्ट परिलक्षित होता है कि तुलसी विशेष सौम्य और मर्यादित रहे हैं।

४. कृष्ण काव्य की नारी भावना से तुलना

राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा दोनों ही वैष्णव धर्म को लेकर चली हैं। रामानुजाचार्य के अनुयायी रामानन्द विष्णु और नारायण के अवतार राम को लेकर उनकी भक्ति का प्रचार करने में लगे तो निम्बार्क, मध्व और विष्णु स्वामी के अनुयायी वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया।

कृष्णकाव्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि प्रेम भक्ति की परम्परा पर आधारित है। जिसका उद्गम श्रीमद्भागवत है। तुलसी के राम की भाँति कृष्ण भी ब्रह्म का ही स्वरूप हैं। कृष्ण कवियों ने कृष्ण को विष्णु का अवतार और राधा को लक्ष्मी का अवतार माना है। कृष्ण और राधा जगनायक और जगत्जननी कहे गये हैं जो अभिन्न रूप से वृन्दावन में नित्य विहार करते हैं।[६६] सूरदास जी ने यद्यपि राधा-कृष्ण का शृंगार-वर्णन बहुलता से किया है तथापि उनके राधा-कृष्ण दिव्य शक्तियों से पूरित उनके आराध्य हैं। अतः उनके शृंगारिक वर्णन में भी एक पावनता है जो वासना को उत्तेजित नहीं करती। परन्तु कृष्ण काव्य की साहित्यिक परम्परा जो जयदेव और विद्यापति में दृष्टिगत होती है भक्ति भाव से प्रेरित न होकर वासनात्मक है। जिसमें लौकिक प्रेम की स्पष्ट अभिव्यंजना हुई है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने कहा है कि विद्यापति के चित्रण में —"राधा कृष्ण के जीवन का तत्त्व प्रेम के सिवाय कुछ नहीं रह गया है।"[६७] तथा "राधा का प्रेम लौकिक और वासनामय है, आनन्द ही उसका उद्देश्य है और सौन्दर्य ही उसका कार्य कलाप.....इस प्रेम में सदाचार की मात्रा कम है। विद्यापति की राधा सदाचार करना जानती ही नहीं।"[६८]

सूर तथा अन्य कृष्ण कवि भी इस साहित्यिक परम्परा से प्रभावित हुए हैं यद्यपि तुलसी के राम और सीता के समान ही उनके कृष्ण परम ब्रह्म और राधा आदि-शक्ति-स्वरूपा हैं। परन्तु फिर भी उनमें तुलसी के लोक रक्षक राम के दिव्य रूप के स्थान पर कृष्ण के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोक रंजक और मनोहारी रूप का विकास ही अधिक हुआ है। उनके राधा-कृष्ण माधुर्य और प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं, उनकी रामानुजा भक्ति की अबाध धारा मर्यादा की परिसीमाओं में नहीं बाँधी गई है जबकि तुलसी की दास्य भक्ति मर्यादा और नीति की परिसीमाओं का कहीं भी उल्लंघन नहीं कर पाई है। तुलसी साहित्य और कृष्ण काव्य का यह अन्तर उनकी नारी भावना में बहुत बड़ा विभेद उत्पन्न कर देता है।

कृष्ण की मुरली का मधुर रस और उनकी रूप माधुरी उन्मादकारिणी है। विवाहिता और अविवाहिता सभी लोक वेद की मर्यादाओं का बन्धन तोड़कर सामाजिक प्रतिबन्धों को भंग कर लोकापवाद की चिन्ता त्याग कर कृष्ण से प्रेम करती हैं, चाँदनी रातों में रास रचाती हैं। इसके विपरीत तुलसी के राम का दिव्य रूप भी यद्यपि सभी को आकर्षित और विमोहित करने वाला है, जनकपुर के नर नारी, पुष्प वाटिका में सीता और उनकी सखियाँ, वन पथ पर ग्रामीण नारियाँ तथा अयोध्या का नारी समाज सभी उनके रूप को देखकर विमोहित हो जाते हैं, किन्तु उनका नारी समाज सामाजिक मर्यादाओं और नैतिक बंधनों से पूर्णतया आबद्ध है। उनमें प्रेम की पावनता और लोक मर्यादा का ध्यान बहुत अधिक है।

सामान्य दृष्टि से देखने पर कृष्ण काव्य में गोपियाँ और राधा विलास क्रीड़ा में रत साधारण नारियाँ ही दृष्टिगत होती हैं परन्तु फिर भी ये नारियाँ कृष्ण रति में संलग्न होने के कारण वेद ऋचा सी पवित्र कही गई हैं। माता-पिता के स्नेह, अधिकार और मर्यादा बन्धनों को तोड़ कर भी वे श्लाघ्य ही हैं।[६६] लोकापवाद और माता-पिता तथा बन्धु बांधव के व्यवहार और ताड़ना से दुःखी राधा को समझाते हुए कृष्ण कहते हैं—

गुरुजन खिझे कतहि रिस पावत, काहे को पछितानी।
देह धरै को धर्म यही है, स्वजन कुटुम्ब गृह प्रानी।
कहन देहु कहि कहा करेंगे, अपनी सुरति हिरानी।[७०]

उपर्युक्त कथन यद्यपि राधा-कृष्ण के ब्रह्मत्व और आदि शक्तित्व की ओर संकेत करता है परन्तु फिर भी यही भावनाएँ रीतिकालीन मर्यादाहीन भावनाओं की प्रेरक भी बनी हैं।

तुलसी को यह मर्यादाहीनता अवांछित रही है। डॉ० वर्मा के अनुसार —"वैष्णव धर्म का रामकाव्य कृष्णकाव्य से श्रेष्ठ रहा क्योंकि रामकाव्य में किसी प्रकार की कलुषता नहीं आने पाई। कृष्ण काव्य ने आगे चलकर शृंगार रस के वासनामय आतंक के सामने सिर झुका दिया। उसमें धर्म की पवित्रता नहीं रह गई। साहित्य के दृष्टिकोण से भी उत्तरकालीन कृष्ण काव्य केवल मनोरंजन और विलासिता का साधन बन गया।[७१]

तुलसी का नारी समाज भी अति मर्यादित और धर्म भावनाओं से परिपूरित होने के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारण अधिक श्रेष्ठ कहा जा सकता है। तुलसी साहित्य में नारी अपने पत्नीत्व, पुत्रीत्व और मातृत्व की पूर्ण गरिमा के साथ प्रतिष्ठित है। साथ ही समाज में नारी के विभिन्न रूप और पारिवारिक सम्बन्धों में भी वह गौरवमयी है। जब कि कृष्ण कवियों ने जननी के वात्सल्य पूर्ण ममतामय मातृ हृदय का सुन्दर चित्रण किया, राधा और गोपिकाओं के पावन प्रेम के श्रेष्ठ चित्र भी अंकित हुए, परन्तु प्रेम के विभिन्न रूपों में नायिका भेद को भी पर्याप्त प्रश्रय मिला। "अष्टछाप के कवियों ने राधा तथा गोपियों को 'वासकसज्जा', 'अभिसारिका', 'खंडिता', 'स्वाधीन-पतिका', सम्भोगसुख-हर्षिता' एवम् 'मानिनी', 'प्रवत्स्य पतिका', 'आगतपतिका' आदि के रूप में अंकित किया है।"[५२] जब कि तुलसी नायिका भेद में नहीं रमे हैं। उनकी नारी का आदर्श रूप स्वकीया (पत्नी) का ही रहा है।

प्रेमाभक्ति के अन्तर्गत नारी की उच्छृंखलता को भी पावनता की दृष्टि से देखने वाले इन कृष्ण कवियों द्वारा सामान्य नारी परम्परानुसार ही भर्त्सना और तिरस्कार की पात्र रही है। नारी मात्र के प्रति उनके वही चिर-परिचित नारी निन्दक उद्‌गार प्रकट हुए हैं जो अब तक संस्कृत साहित्य में अभिव्यक्त होते रहे थे। नारी के लिए पतिव्रत धर्म के नियमों का वही माप दंड यहाँ भी निरूपित किया गया है जो पुराणकारों ने एक बार स्थापित कर दिया था।

तुलसी साहित्य में निरूपित कपटविहीन पतिव्रत धर्म की महिमा —"बिनु स्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहई।" तथा "एकई धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा।" और "मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी। अमित दानि भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।।" का चित्रण उनके अपने मन की उद्‌भावना मात्र नहीं है। यह निगम आगम एवम् पुराण सम्मत धर्म ही है।

जिसे तुलसी ने अपने युग के संस्कार हेतु प्रस्तुत किया है। पाराशर संहिता में—

न व्रतेनोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गभवाप्नोति केवलं पतिपूजनात्।।[५३]

और शिव पुराण में—

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सूतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं या न सेवते।।[५४]

यही धर्म पहले भी निरूपित कर दिया गया था जिसे सभी कवियों ने समान रूप से ग्रहण किया है। कृष्ण काव्य में सूरदास जी ने भी—

कपट तजि पति पूजा करौ कहा तुम जियं गुनौ।
कंत मानहु भव तरोगी और नही उपाई।"
ताहि तजि क्यो विपिन आई, कहा पायौ आई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहकर सर्वसाधारण नारी के लिए इसी धर्म का निरूपण किया है जब तुलसी—

पति वंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।

के द्वारा परलोक का भय दिखलाकर नारी को दृढ़ पतिव्रत का उपदेश देते हैं तब सूर की पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं जो उनके समकक्ष ही रखी जा सकती हैं—

तजि भरतार और को भजिए, सो कुलीन नहि होई।
भरै नरक जीवत इस जग में भला कहे नहि कोई।।

इसी प्रकार —*वृद्ध रोग बस जड़ धनहीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना।*
ऐसेहु पतिकर किए अपमाना नारि पाव जमपुर दुख नाना।।

की भावना भी संस्कृत काव्य की परम्परा के प्रभाव का परिणाम है। यह व्यवस्था सर्वप्रथम मनु ने दी पुनः शिव पुराण में अक्षरशः यही भाव अभिव्यक्त हुआ। फिर कृष्ण काव्य में—

बिरध अरु बिनु भागहूं को पतित जो पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाही जोइ।[७५]

सूरदास ने यही बात कही जिससे उन्होंने पतित पति को भी सम्मान का अधिकारी बताया है। अतः तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो तुलसी अपराधी नहीं हैं जबकि आलोचकगण इन्हें तुलसी के स्वनिर्मित नैतिक नियम[७६] तथा स्त्रियों की जाँच की कड़ी कसौटी[७७] और पुराण पंथी और कुनबा पंथी[७८] होने की बात कहकर उन पर दोषारोपण करते हैं और इसे उनका अक्षम्य अपराध मानते हैं ? वस्तुतः तुलसी मध्ययुगीन कवियों में तुलनात्मक दृष्टि से सर्वाधिक उदार कहे जा सकते हैं।

तुलसी की दार्शनिक विचारधारा में विद्यामाया और अविद्यामाया की भाँति ही कृष्ण काव्य में माया के दो रूप मान्य हैं—सत् और असत्। सूर भी ब्रह्म और जीव के साक्षात्कार में अविद्यामाया को बाधक मानते हैं जो अत्यधिक प्रबल है। अविद्यामाया हिंसा, मद, ममता आदि का बल लेकर मनुष्य को पशु के समान अपना अनुगामी बना लेती है।[७९] मनुष्य पुत्र, कलत्र आदि की ममता में बँधकर सांसारिक माया के वशीभूत हो जाता है। अतः यही अविद्या माया है जो प्रभु की भक्ति में बाधक है।[८०] तुलसी ने इसी अविद्यामाया को ही भक्तिमार्ग की बाधा माना है।[८१] माया का दूसरा रूप, जिसे तुलसी विद्यामाया कहते हैं, कृष्ण काव्य में भगवान् की योग माया माना गया है। गोपियाँ भगवान् की ही आनन्द प्रसारिणी शक्ति हैं जो भगवान की आदि शक्ति राधा के साथ कृष्ण से रासलीला करती हैं, जो गरिमामयी हैं और कृष्ण भक्त कवियों की आत्मा का प्रतीक हैं।

कृष्ण काव्य में आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नारी (गोपियों एवं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राधा) को साधना बनाने वाले कृष्ण काव्य के भक्त कवियों ने भी नारी की कम निन्दा नहीं की है।

सूत्र, स्मृति, पुराण और संतों की परम्परा के अनुरूप ही नारी निन्दा का स्वर कृष्ण कवियों में भी समान रूप से ही उग्र रहा है। सूरसागर में प्रारम्भ में ही राजा पुत्र की कथा के प्रसंग में नारी की तुलना नागिन से की गई है। कवि के अनुसार नागिन का विष तो काटने से ही चढ़ता है परन्तु नारी का विष तो उसके दृष्टिपात से ही मनुष्य को चेतनाहीन बना देने वाला है।[८२]

सूर काव्य में नारी हीन, तुच्छ, अविश्वसनीय और प्रीति करने पर भी पुरुष को त्याग देने वाली कही गई है।[८३] नारी दया, ममता आदि से रहित कठोर हृदय और बिना अपराध ही पुरुष को मार डालने वाली नृशंस मानी गई है।[८४] संतों के समान ही कृष्ण काव्य में भी पर-स्त्री और अपनी पत्नी से भी दूर रहने का उपदेश दिया गया है।[८५] कृष्ण काव्य में नारी काली भुजंगिनी, हठी, मिथ्या और गर्हित कही गई है।

स्पष्ट है कि तुलसी की नारी निन्दक उक्तियों से तुलना करने पर कृष्ण काव्य में नारी कुछ अधिक तिरस्कार की पात्र ही बनी है। डॉ० उषा पांडे के विचारानुसार "कृष्ण काव्यकारों का नारी निन्दा का स्वर यदि संतों से अधिक नहीं तो समान उग्र तो है ही।[८६] अतः कहा जा सकता है कि तुलसी की नारी निन्दक वाणी तुलनात्मक दृष्टि से तो कहीं भी अधिक उग्र नहीं रही है।

५. रीति काव्य की नारी भावना से तुलना

रीतिकाल ऐन्द्रिक भोग की उद्दाम लालसा और रति केलि एवम् विलास क्रीड़ा का युग था। कृष्ण काव्य की पवित्र आध्यात्मिक भावना से परिपूरित शृंगार से ही रीतिकाव्य की इस कलुषित शृंगार भावना का प्रस्फुटन हुआ। वस्तुतः रीतिकालीन कवि विद्यापति की पदावली में अनुस्यूत, नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, दूती शिक्षा, अभिसार आदि को लेकर राधा-कृष्ण के नाम की आड़ में अपनी उद्दाम वासनाओं की अभिव्यंजना ही कर रहे थे।

तत्कालीन समाज में नैतिकता के बन्धन विशृंखलित हो गए थे। मर्यादा और नीति को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। मुगल कालीन वैभव के आश्रय में पहले कवियों का जीवन के प्रति एक मात्र रसिकता का दृष्टिकोण ही शेष रह गया था। अतः उनकी सम्पूर्ण प्रतिभा और कल्पना नारी के नख-शिख चित्रण, उसके हाव-भाव निरूपण और भुवन विमोहन सौन्दर्य अंकन में ही निहित हो गई। नारी केवल क्रीड़ा कौतुक की सामग्री मात्र ही शेष रह गई थी। रीतिकालीन कवि कभी—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सोभा सब जौवन की निधि है मृदुलता की।
राजै नवनारी मानौ मदन की बारी है।[८७]

कहकर नारी की उत्प्रेक्षा मदन की बारी से देते हैं तो कभी 'काम की तलवार' शमादान, फूलदान, रागमाला, महाभारत की सेना आदि बनाते हैं और 'कभी नारी को केवल श्लेष चमत्कार के लिए बाँट और काँटे में डालकर सुवर्ण की मोहर के साथ उपमा देकर उसे परिहासास्पद बना देते हैं।"[८८] वस्तुतः रीतिकालीन कवियों के लिए नारी की 'सतरोही' भौहें 'अलसौंही' चितवन, 'तन की खरी निकाई', ही सर्वाधिक आकर्षण का विषय रही है जिसके फलस्वरूप उन्हें नारी के गरिमामय गृहस्वामिनीत्व, गौरवशाली पत्नीत्व, पावन भगिनीत्व और महिमामय मातृत्व के विश्लेषण का कोई अवसर प्राप्त न हो सका।

रीति काव्यकारों के नारी के प्रति रूप के अनुराग में भी कोई वास्तविकता नही दिखलाई पड़ती। उनके लिए नारी एक खिलौना मात्र है जिसका वास्तविक मूल्य कुछ भी नहीं है। उनमें केवल क्रीड़ा-आमोद की भावना ही प्रधान है। रीतिकालीन जीवन विलास की क्षुद्र सीमाओं में आबद्ध है। इस युग में काम प्रेरणा इस सीमा तक उद्दीप्त हुई कि श्वेत केश मन की सौम्य भावनाओं के प्रेरक न बनकर कवियों के क्षोभ का कारण बन उनके बैरी बन गए—

केशव केसनि अस करी बैरिहु जसि न कराहिं
चन्द्र बदनि मृगलोचनि बाबा कहि कहि जाहिं।।

केशव

स्पष्ट है कि रीतिकालीन कवि नारी के केवल कामिनी रूप को देखना चाहते हैं जो उनके लिए प्रलोभन और उपभोग की वस्तु है। अतः इन्होंने राधा-कृष्ण के नाम से खुलकर रतिविलास और क्रीड़ा कौतुक के चित्र अंकित किए, जिन्हें वे सुखकर न लगे उनके नेत्रों में रीति काव्यकार हजारों मुट्ठी धूल डालने को तत्पर हैं—

राधा मोहन लाल को जाहि न भावत नेह।
परियै मुठी हजार दस ताकी आखिन खेह।[८९]

मतिराम

साथ ही बिहारी चढ़ती आयु के पतन को क्षम्य और महत्त्वहीन ही नहीं, सम्भवतः आवश्यक भी मानते हैं—

इक भीजे चहलै परें, बूड़े बहै हजार।
किते न अवगुन जग करै, वै नै चढ़ती बार।

बिहारी

CC-0. In Public Domain: Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्पष्ट है रीतिकालीन कवियों की यह नारी भावना, समाज सुधारक, अति मर्यादावादी, विरत भक्त तुलसी की नारी भावना से तुलनीय नहीं हो सकती।

रीतिकाल के नैतिकता रहित और मर्यादाविहीन समाज में पति की उपस्थिति में भी नारी उप-पति की ओर स्नेहपूर्वक देखने में संकोच नहीं करती। "वह अपने घर की टट्टी चीरकर बाहर खड़े नायक की ओर निर्निमेष नयनों से निहारती रहती है। उस परकीया नायिका के स्नेह के चिकने घड़े पर सखियों के उपदेश का जल ठहरता नहीं। प्रेम की उद्दामता और प्रचंडता के समक्ष दुर्जनों की निन्दा, गुरुजनों के कटु शब्दों की चिन्ता नहीं है।"[६०] वह अपने प्रेमी के लिए इन सबको सहर्ष सहन करती है। ऐसा अमर्यादित रूप तुलसी के लिए नितान्त अवांछनीय रहा है।

केशव ने रामचन्द्रिका में सम्भवतः तुलसी और रामकथा की परम्परा के अनुरूप ही नारी के मर्यादित रूप का चित्रण करने का प्रयास किया है। उन्होंने भी पुराण के चिर-परिचित नारी धर्म (जिसके अनुसार केवल पति सेवा ही उपासना, प्रार्थना और धर्म कर्म का फल देने वाली है) का निरूपण किया है।[६१] यही नहीं केशव ने पति द्वारा दी गई यातनाओं को सुख मानकर ग्रहण करने का आदेश भी दिया है।[६२]

रीतिकालीन सामन्ती प्रभाव के फलस्वरूप इस युग के साहित्य में नारी कहीं तोता मैना को कोकशास्त्र के मन्त्र पढ़ाती हुई दिखलाई गई है,[६३] तो कहीं रामचन्द्र के साथ (अनेक नारियाँ) जल क्रीड़ा में निमग्न दिखलाई पड़ती हैं।[६४] कहीं स्त्रियाँ शतरंज खेलती हुई दृष्टिगोचर होती हैं तो कहीं राधा सखियों के साथ बैठी चौपड़ खेलती हुई चित्रित की गई हैं।[६५] केशव ने राजा वीर सिंह देव को भी तरुणियों के साथ जल क्रीड़ा में रत भोग विलास में लीन दिखलाया है।[६६] स्पष्ट है इस युग की नारी केवल भोग-विलास की सामग्री के रूप में अंकित की गई है। वैभव और विलास से परिपूरित इस वातावरण में नारी उच्छृंखल मदिरा के नशे में मस्त आदर एवम् सम्मान से रहित खिलवाड़ तथा बाज़ारू इश्क का विषय बनी हुई दिखलाई पड़ती है।

यह अत्यधिक आश्चर्य का विषय है कि रीतिकालीन कवि संतों की परम्परा के अनुरूप ही नारी निन्दा करने में भी पीछे नहीं रहे हैं। यद्यपि रीतिकालीन काव्य में नारी निन्दक स्थल कम ही हैं, परन्तु फिर भी नारी निन्दा का स्वर उतना ही उग्र रहा है। शृंगार रस प्रधान ग्रन्थों की रचना करने वाले रहीम का आदेश है—

उरगर तुरंग नारी, नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिये पलटन लगै न बार।[६७]

रहीम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यही नहीं अबाध रूप से नारी संसर्ग के सुख को भोगने वाले ये कवि स्त्री को तिरस्कृत मान कर विवाह को ही विपत्ति और पाँवों की बेड़ी मान बैठे हैं—

रहिमन व्याह वियाधि है, सकहु तो जाहु बचाइ।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाई बजाइ।[९९]

रहीम

सेनापति ने भी नारी सम्पर्क को त्याज्य घोषित किया है।[९६] यही नहीं नारी के अग्नि शिखा के समान ज्वलन्त आलिंगन से गुलाब जल सी शीतलता प्राप्त करने वाले[१००] बिहारी भी जब नारी की भर्त्सना करते हैं और उसे भव-पथ की छाया-ग्राहिणी बताते हैं,[१०१] तब वस्तुतः आश्चर्य होता है। स्पष्ट है कि नारी को जीवन के ऐन्द्रिक सुखों के लिए परमावश्यक मानते हुए भी रीतिकालीन कवियों ने उसे क्रीड़ा कौतुक की सामग्री मानकर केवल उसके सुन्दरम् का चित्रण किया है जो सत्यम् और शिवम् से रहित है। उसमें नारी केवल वासना और विलास की पुतली मात्र शेष रह गई है। कवि देव के अनुसार—

कौन गनै पुर वन नगर कामिनी एकै रीति।
देखत हरै विवेक कों चित्त हरैं करि प्रीति।।

देव

हजारी प्रसाद ने रीतियुग के लिए कहा है कि—"यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बन्धन से यथासंभव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है।'... नारी केवल एक टाइप है व्यक्ति नहीं"।[१०२] तुलसी साहित्य में चित्रित नारी के कल्याणकारी रूप और पारिवारिक जीवन में उसके पावन उत्सर्गमय स्वरूप की झाँकी तथा अमर व्यक्तित्व के चरित्र रीतिकाव्य में कहीं दिखलाई नहीं पड़ते। अतः तुलसी की नारी भावना से उसकी कोई तुलना नहीं है।

६. आधुनिक काव्य की नारी भावना से तुलना

रीतिकाल की रचनाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि रीतिकालीन काव्य की विलासमय कृतियों में नारी को भोग विलास का एक उपकरण मात्र माना गया है। रीतिकालीन कवियों का लक्ष्य नारी के नख-शिख का शृंगारिक वर्णन और उसके अंगों उपांगों का पोस्टमार्टम ही अधिक रहा है। इस युग की नारी विलास भावनाओं की बंदिनी नायिका है। आधुनिक काव्य में नारी के इस स्वरूप के सम्बन्ध में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। रीतिकालीन दैन्य से परिपूरित स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए पहले भारतेन्दु ने संकेत दिया।[१०३] पुनः मानवतावाद से अनुप्राणित युग के प्रमुख कवि पन्त ने नारी की स्वतन्त्रता का उद्घोष किया—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुक्त करो नारी को मानव। चिरबंदिनी नारी को
युग युग की बर्बर कारा से जननि सखी प्यारी को।[१०४]

स्पष्ट है भारतेन्दु काल से ही समाज के सुधारवादी दृष्टिकोण के प्रकाश में कुछ ऐसा काव्य रचा गया, जिसमें नारी को मध्ययुगीन शृंगार भावना से प्रेरित नायिका और भक्ति भावना के कारण वैराग्य मार्ग की बाधा मात्र ही नहीं माना गया अपितु वह पुरुष की चिर-सहचरी बनी।

द्विवेदी युग की उपयोगितावाद और इतिवृत्तात्मकता की भावनाओं से युक्त आदर्शोन्मुखी काव्य में यद्यपि नारी से चिर-परिचित आदर्शों और मर्यादाओं से युक्त रहने की अपेक्षा की गई है तथापि आधुनिक काव्य की नारी भावना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित हुआ है जिसमें प्राचीन सिद्धान्तों और रूढ़िगत नियमों के प्रति विद्रोह भावना का स्पष्ट आभास मिलता है। कैकेयी आदि चरित्रों की नई रूप रेखा बनी तथा उर्मिला आदि नितान्त उपेक्षित पात्रों का सरस और भावभीना चित्र अंकित किया गया। आगे चलकर छायावादी कवियों ने नारी के अशरीरी और काल्पनिक सौन्दर्य को सूक्ष्म दृष्टि से देखा। "यहाँ तक कि जीवन की यथार्थ सीमा रेखाएँ धुँधली और अस्पष्ट हो गईं। इन कवियों ने नारी को मानवी से देवी बना दिया।"[१०५]

वस्तुतः आधुनिक काव्य की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों ने कवियों के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया और अब उनकी विचारधारा पुनः अतीत के वैदिककालीन गौरवमय, सांस्कृतिक वैभव की ओर उन्मुख हुई।[१०६] नारी के पत्नी प्रेयसी एवं मातृ रूप में भव्य चित्रण प्रस्तुत किये गए।

आधुनिक काव्य में नारी पर विशेष अध्ययन करके डॉ० शैल कुमारी ने अपने शोध प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना' के अन्तर्गत नारी के विविध सम्बन्धों में सत् रूप का विकास दिखलाते हुए मुख्यतः तीन सम्बन्धों—प्रथम प्रेयसी और प्रणयिनी, द्वितीय पत्नी और तृतीय माता रूप की विवेचना ही की है तथा भगिनी, भ्रातृजाया, पुत्री और पुत्र-वधू आदि रूपों को छोड़ दिया है क्योंकि इन रूपों को आधुनिक काव्य में कोई अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है तथा उनका उल्लेख भी बहुत कम है।[१०७] जब कि तुलसी साहित्य में नारी के सभी सत् स्वरूप सुन्दर रूप में चित्रित हुए हैं जिनसे नारी का महत्त्व और इन सभी सम्बन्धों में उसके प्रति आदर, स्नेह तथा प्रेम की पूजात्मक भावनाएँ अर्पित की गई हैं। अतः नारी के सत् रूपों के प्रति दोनों काव्यों, तुलसी तथा आधुनिक, की भावना मूलतः वैदिक है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रेयसी रूप की विशेष प्रधानता छायावादी काव्य में पाई जाती है, जिसकी शैली और विचारधारा का पूरा-पूरा मेल तुलसी से नहीं बैठाया जा सकता, क्योंकि आधुनिक छायावादी कवियों के प्रेम का आधार अशरीरी एवम् काल्पनिक सौन्दर्य है। इसके अतिरिक्त तुलसी साहित्य में भी प्रेयसी और प्रणयिनी के शुद्ध स्वरूप का अंकन नहीं है। सीता और पार्वती में प्रणयिनी का स्वरूप देखा जा सकता है परन्तु उनमें भी प्रेयसी अथवा प्रणयिनी तत्त्व अधिक न होकर पत्नीत्व की गरिमा ही प्रधान है। फिर भी तुलसी की सीता और पार्वती के मन-प्राणों में जो वासनारहित पावन प्रीति अनुस्यूत है वह आधुनिक काव्य की शुद्ध और सात्त्विक प्रीति—

मेरे इस पवित्र बन्धन में मोह नहीं है, राग नहीं
मेरे इस स्नेही स्वभाव में है कलुषित अनुराग नहीं।[१०८]

के समकक्ष रखी जा सकती है। शिव की प्राप्ति के हेतु तप-रत पार्वती को सप्त ऋषि जब शिव द्वारा काम दहन का समाचार सुनाकर उनके तप की व्यर्थ साधना पर ध्यान आकर्षित कराते हैं तो पार्वती के दृढ़ उत्तर में यही भाव ध्वनित होता है कि —"मैंने तो कलुषित वासना से रहित मोह विहीन पावन प्रेम को ही आधार बनाया है, आप समझते हैं शिव ने अब काम को जलाया है मेरी दृष्टि में तो वे सदा से ही योगी हैं ऐसा समझकर ही मैंने उनसे प्रेम किया है।"[१०९] इसी प्रकार प्रसाद की लज्जा में जैसी स्वार्थहीन भावना दिखलाई पड़ती है[११०] वही भावना पार्वती के कथन में भी निहित है। जिस प्रकार आधुनिक काव्य में प्रणयिनी जीवन के सुखों को त्याग कर प्रिय में इष्ट देवता के दर्शन कर पूर्ण आत्मोत्सर्ग की भावना में लीन होती है—

जीवन के न्यौछावर करके तुच्छ सुखों की लेखा।
अर्पण कर सब कुछ चरणों पर तुममें ही सब देखा।
थे तुम मेरे इष्ट देवता, अधिक प्राण से प्यारे।
तन से, मन से, इस जीवन से कभी न थे तुम न्यारे।"

ठीक यही भावना प्रणयिनी पार्वती के मन में निहित है जब वे अपने प्राप्य शिव के लिए सब सुखों को तृणवत् त्याग कर उनकी प्राप्ति का कठिन व्रत लेती हैं।"[११२] अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ "नारी के नारीत्व (हृदय) की तथा कल्याणी रूप की रक्षा करते हुए आधुनिक कवि ने मुक्त प्रेम के मार्ग को स्वीकार किया है"[११३] और प्रणयिनी को गृह और समाज के बन्धनों की उपेक्षा करके जीवन के पथ पर अग्रसर होती हुई दिखलाया है वहाँ तुलसी की नारी प्रेयसी रूप में भी गृह और समाज की मर्यादाओं से बँधी है। परन्तु फिर भी वह कम उत्सर्गमयी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक कवि ने नारी को पत्नी रूप में गृह और परिवार के मध्य विकसित होते हुए अर्द्धांगिनी और गृह लक्ष्मी के महामहिम रूप में देखा है। डॉ० शैल कुमारी के मतानुसार "ऋक् और अथर्व में हमें गृह और परिवार की सरस शान्त कल्पना के मध्य पत्नी भी एक गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित मिलती है। वैदिक ऋषियों की इसी नारी भावना से आधुनिक कवि प्रभावित हैं।"[११४] पत्नी रूप में तुलसी की नारी भी वैदिक युगीन अधिकारों से युक्त गौरवमय रूप में ही अंकित की गई है। अतः तुलसी के काव्य में नारी के पत्नी रूप के प्रति वही आदर भाव तथा धारणाएँ प्राप्त होती हैं जिनका उल्लेख आधुनिक काव्य की नारी भावना में किया जा सकता है।

आधुनिक काव्य की नारी भावना पर शोध कार्य करने वाले विचारकों के मतानुसार इस युग के कवियों मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, गुरुभक्त सिंह आदि ने "यशोधरा और उर्मिला, सीता और दमयन्ती, माण्डवी और श्रद्धा, कांचनमाला और रत्नावली तथा नूरजहाँ आदि पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रियों को लेकर पत्नी रूप में नारी की जिन विशेषताओं को आदर भाव से देखा तथा जिन विशिष्ट धारणाओं का प्रतिपादन किया है वह निम्नांकित हैं—

१. भारतीय पत्नी का एकांत, स्थिर, वासनाहीन, त्यागमय, कर्त्तव्य तत्पर, धर्मनिष्ठ और तपस्वी प्रेम, २. नारी का सतीत्वः सती शक्ति, ३. नारी का अर्द्धांगिनी तथा सहचरी रूप, ४. नारी का शक्ति रूपः प्रेरणा तथा सत्पथ प्रदर्शन तथा ५. नारी का गृहिणी रूप।"[११५] नारी के पत्नी रूप के प्रति ये सभी धारणाएँ ज्यों-की-त्यों तुलसी साहित्य में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित हैं। अतः यहाँ निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि आधुनिक कवियों की नारी के सत् रूपों के प्रति जो भावना और धारणाएँ इस युग में देखी जाती हैं वे सब तुलसी में भी विद्यमान हैं।

आलोचकों का मत है कि "आधुनिक कवि ने पत्नी के प्रेम में वासनाहीनता और विवेकपूर्णता पाई है। यह भावना परम्परागत नारी भावना के सर्वथा विरूद्ध है तथा नवीन है।"[११६] इसको देखकर आश्चर्य होता है क्योंकि रीतिकाव्य की परम्परा में भी यद्यपि नारी शृंगारिकता का केन्द्र बनी है जिसके प्रति कवियों का दृष्टिकोण रसिकता का ही रहा तथापि डॉ० उषा पांडे, जिन्होंने मध्ययुगीन नारी भावना पर ही शोध कार्य प्रस्तुत किया है, का कहना है कि —"स्वकीया नायिका पतिव्रता की परिभाषा में आ जाती है। आपत्ति एवम् सुख, हर्ष-विषाद के अवसर पर वह सम भाव से प्रिय-पति में अनुरक्ति रखती है।.....स्वकीया नायिका का यह निर्मल उज्ज्वल रूप रीति काल के वातावरण में भी वासना एवम् विलास की गन्ध से परे पावन और महान है।"[११७] अतः रीतिकालीन परम्परा के पूर्व भक्ति काव्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रेयसी रूप की विशेष प्रधानता छायावादी काव्य में पाई जाती है, जिसकी शैली और विचारधारा का पूरा-पूरा मेल तुलसी से नहीं बैठाया जा सकता, क्योंकि आधुनिक छायावादी कवियों के प्रेम का आधार अशरीरी एवम् काल्पनिक सौन्दर्य है। इसके अतिरिक्त तुलसी साहित्य में भी प्रेयसी और प्रणयिनी के शुद्ध स्वरूप का अंकन नहीं है। सीता और पार्वती में प्रणयिनी का स्वरूप देखा जा सकता है परन्तु उनमें भी प्रेयसी अथवा प्रणयिनी तत्त्व अधिक न होकर पत्नीत्व की गरिमा ही प्रधान है। फिर भी तुलसी की सीता और पार्वती के मन-प्राणों में जो वासनारहित पावन प्रीति अनुस्यूत है वह आधुनिक काव्य की शुद्ध और सात्त्विक प्रीति—

मेरे इस पवित्र बन्धन में मोह नहीं है, राग नहीं
मेरे इस स्नेही स्वभाव में है कलुषित अनुराग नहीं।[१०८]

के समकक्ष रखी जा सकती है। शिव की प्राप्ति के हेतु तप-रत पार्वती को सप्त ऋषि जब शिव द्वारा काम दहन का समाचार सुनाकर उनके तप की व्यर्थ साधना पर ध्यान आकर्षित कराते हैं तो पार्वती के दृढ़ उत्तर में यही भाव ध्वनित होता है कि —"मैंने तो कलुषित वासना से रहित मोह विहीन पावन प्रेम को ही आधार बनाया है, आप समझते हैं शिव ने अब काम को जलाया है मेरी दृष्टि में तो वे सदा से ही योगी हैं ऐसा समझकर ही मैंने उनसे प्रेम किया है।"[१०९] इसी प्रकार प्रसाद की लज्जा में जैसी स्वार्थहीन भावना दिखलाई पड़ती है[११०] वही भावना पार्वती के कथन में भी निहित है। जिस प्रकार आधुनिक काव्य में प्रणयिनी जीवन के सुखों को त्याग कर प्रिय में इष्ट देवता के दर्शन कर पूर्ण आत्मोत्सर्ग की भावना में लीन होती है—

जीवन के न्यौछावर करके तुच्छ सुखों की लेखा।
अर्पण कर सब कुछ चरणों पर तुममें ही सब देखा।
थे तुम मेरे इष्ट देवता, अधिक प्राण से प्यारे।
तन से, मन से, इस जीवन से कभी न थे तुम न्यारे।"

ठीक यही भावना प्रणयिनी पार्वती के मन में निहित है जब वे अपने प्राप्य शिव के लिए सब सुखों को तृणवत् त्याग कर उनकी प्राप्ति का कठिन व्रत लेती हैं।"[११२] अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ "नारी के नारीत्व (हृदय) की तथा कल्याणी रूप की रक्षा करते हुए आधुनिक कवि ने मुक्त प्रेम के मार्ग को स्वीकार किया है"[११३] और प्रणयिनी को गृह और समाज के बन्धनों की उपेक्षा करके जीवन के पथ पर अग्रसर होती हुई दिखलाया है वहाँ तुलसी की नारी प्रेयसी रूप में भी गृह और समाज की मर्यादाओं से बँधी है। परन्तु फिर भी वह कम उत्सर्गमयी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक कवि ने नारी को पत्नी रूप में गृह और परिवार के मध्य विकसित होते हुए अर्द्धांगिनी और गृह लक्ष्मी के महामहिम रूप में देखा है। डॉ० शैल कुमारी के मतानुसार "ऋक् और अथर्व में हमें गृह और परिवार की सरस शान्त कल्पना के मध्य पत्नी भी एक गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित मिलती है। वैदिक ऋषियों की इसी नारी भावना से आधुनिक कवि प्रभावित हैं।"[११४] पत्नी रूप में तुलसी की नारी भी वैदिक युगीन अधिकारों से युक्त गौरवमय रूप में ही अंकित की गई है। अतः तुलसी के काव्य में नारी के पत्नी रूप के प्रति वही आदर भाव तथा धारणाएँ प्राप्त होती हैं जिनका उल्लेख आधुनिक काव्य की नारी भावना में किया जा सकता है।

आधुनिक काव्य की नारी भावना पर शोध कार्य करने वाले विचारकों के मतानुसार इस युग के कवियों मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, गुरुभक्त सिंह आदि ने "यशोधरा और उर्मिला, सीता और दमयन्ती, माण्डवी और श्रद्धा, कांचनमाला और रत्नावली तथा नूरजहाँ आदि पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रियों को लेकर पत्नी रूप में नारी की जिन विशेषताओं को आदर भाव से देखा तथा जिन विशिष्ट धारणाओं का प्रतिपादन किया है वह निम्नांकित हैं—

१. भारतीय पत्नी का एकांत, स्थिर, वासनाहीन, त्यागमय, कर्त्तव्य तत्पर, धर्मनिष्ठ और तपस्वी प्रेम, २. नारी का सतीत्वः सती शक्ति, ३. नारी का अर्द्धांगिनी तथा सहचरी रूप, ४. नारी का शक्ति रूपः प्रेरणा तथा सत्पथ प्रदर्शन तथा ५. नारी का गृहिणी रूप।"[११५] नारी के पत्नी रूप के प्रति ये सभी धारणाएँ ज्यों-की-त्यों तुलसी साहित्य में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित हैं। अतः यहाँ निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि आधुनिक कवियों की नारी के सत् रूपों के प्रति जो भावना और धारणाएँ इस युग में देखी जाती हैं वे सब तुलसी में भी विद्यमान हैं।

आलोचकों का मत है कि "आधुनिक कवि ने पत्नी के प्रेम में वासनाहीनता और विवेकपूर्णता पाई है। यह भावना परम्परागत नारी भावना के सर्वथा विरूद्ध है तथा नवीन है।"[११६] इसको देखकर आश्चर्य होता है क्योंकि रीतिकाव्य की परम्परा में भी यद्यपि नारी शृंगारिकता का केन्द्र बनी है जिसके प्रति कवियों का दृष्टिकोण रसिकता का ही रहा तथापि डॉ० उषा पांडे, जिन्होंने मध्ययुगीन नारी भावना पर ही शोध कार्य प्रस्तुत किया है, का कहना है कि —"स्वकीया नायिका पतिव्रता की परिभाषा में आ जाती है। आपत्ति एवम् सुख, हर्ष-विषाद के अवसर पर वह सम भाव से प्रिय-पति में अनुरक्ति रखती है।.....स्वकीया नायिका का यह निर्मल उज्ज्वल रूप रीति काल के वातावरण में भी वासना एवम् विलास की गन्ध से परे पावन और महान है।"[११७] अतः रीतिकालीन परम्परा के पूर्व भक्ति काव्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की परम्परा तो वासना की गन्ध से नितान्त अपरिवर्तित ही है फिर राम काव्य की परम्परा में अति मर्यादावादी तुलसी ने तो पत्नी ही क्या प्रणयिनी के प्रेम में भी वासना, अमर्यादा अथवा अविवेक को कोई स्थान नहीं दिया है। कौशल्या, पार्वती और सीता की प्रीति तो पावन वासनारहित और निष्कलुष है ही, मन्दोदरी, जो परम विलासी राक्षस रावण की पत्नी है, भी वासना रहित प्रेम से अनुरंजित, परम विवेकमयी तथा नीति कुशल और धर्म सम्मत विचारों से परिपूरित दिखलाई गई है। अतः यदि आधुनिक कवि पत्नी के प्रेम में वासनाहीनता और विवेकपूर्णता को संचित करता है तो न इसमें नूतनता है और ना परम्परागत नारी भावना से विरोध ही। तुलसी ने अपने काव्य में पत्नी, प्रेयसी और प्रणयिनी सभी के प्रेम में वासनाहीन ऋजुता को संजोया है। इसीलिए शूर्पणखा का कामुक वासनात्मक प्रेम उनकी भर्त्सना का विषय रहा है।

नारी के मातृ रूप के प्रति भी आधुनिक कवि और तुलसी ने समान रूप से पूजात्मक भावों की श्रद्धांजलि अर्पित की है। मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत, यशोधरा और द्वापर अयोध्या सिंह उपाध्याय ने वैदेही वनवास और जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में सुमित्रा, कौशल्या, कैकेयी, यशोधरा, यशोदा तथा सीता और श्रद्धा की वात्सल्यमयी मूर्तियों को अपना कर जिस पावन मातृत्व का विकास दिखलाया है वह शाश्वत मातृत्व हमें तुलसी साहित्य में कौशल्या, मैना, सुनयना और सीता में संचित दिखलाई पड़ता है। मानस की कैकेयी यद्यपि सौतिया डाह से विकार ग्रस्त हो जाती हैं तथापि वन में राम-लक्ष्मण और सीता की निश्छल मूर्तियों को देखकर पुनः उसका पावन मातृत्व जाग्रत् हो उठता है और वह ग्लानि और पश्चाताप से विक्षुब्ध होकर धरती से फटने और विधाता से मृत्यु की कामना करती हुई दिखलाई पड़ती है।[१५]

मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में जिस प्रकार कुल गौरव और धर्म भावना से प्रेरित होकर ममतामय मातृ हृदय लिए कौशल्या कल्याणकारी वाणी से राम को विदा देती है—

जाओ, तब बेटा वन ही पावो नित्य धर्म धन ही।
जो गौरव लेकर जाओ, लेकर वही लौट आओ।
पूज्य पिता-प्रण रक्षित हो, मां का लक्ष्य सुलक्षित हो।
घर में घर की शान्ति रहे, कुल में कुल की कांति रहे।[१६]

ठीक उसी प्रकार मानस की कौशल्या राम को वनवास दिए जाने का कारण जानकर गूँगी बहरी सी हो जाती है। धर्म और स्नेह, ममता और कर्त्तव्य उनके सम्मुख धर्म संकट उपस्थित कर देता है—

धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति सांप छुछुंदरि केरी।
राखउं सुतहि करउं अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु विरोधू।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहउं जान वन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भई रानी।
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।५४।।२,३

परन्तु धैर्य धारण कर वह विवेकमयी माता उदार मातृत्व और परिवार की कल्याण भावना से प्रेरित होकर भरत को राम के समान ही जानकर सरल और धर्म युक्त आदेश देती हैं—

तात जाऊँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।५४।।४

साथ ही उनमें अपने अधिकार की गरिमा भी है—

जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।
जो पितु मातु कहेउ वन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।

वही ।।५५।।१

भाव साम्य की दृष्टि से साकेत की कौशल्या मानस की कौशल्या की प्रतिच्छाया ही प्रतीत होती है।

उपाध्याय की कौशल्या भरत के प्रति अनुदार और व्यंग्यपूर्ण वाणी का प्रयोग करती हुई दिखलाई देती हैं—

छल से छलछद्म ! हा वृथा वनवासी मम राम को बना
सुख से धनधान्य पूरिता, तुम भोगो गत कंटका मही।
पर का अधिकार छीनना, यह कैसा अपराध घोर है।
इसका विधिवत् जवाब दो यम देगा तुमको सरग में।[१२०]

जबकि विशाल मातृत्व से युक्त मानस की कौशल्या भरत को राम के समान जानकर ही उनसे मिलती है—

मातु भरत के वचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाई लगाइ उर लोचन मोचति बारि।

मानस—अयोध्या काण्ड।।१६४।।

तथा— *सरल सुभाय मायँ हिय लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए।"*
मातां भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे।
अजहुं बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू।।
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।

वही ।।१६४।।१,२,३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की परम्परा तो वासना की गन्ध से नितान्त अपरिवर्तित ही है फिर राम काव्य की परम्परा में अति मर्यादावादी तुलसी ने तो पत्नी ही क्या प्रणयिनी के प्रेम में भी वासना, अमर्यादा अथवा अविवेक को कोई स्थान नहीं दिया है। कौशल्या, पार्वती और सीता की प्रीति तो पावन वासनारहित और निष्कलुष है ही, मन्दोदरी, जो परम विलासी राक्षस रावण की पत्नी है, भी वासना रहित प्रेम से अनुरंजित, परम विवेकमयी तथा नीति कुशल और धर्म सम्मत विचारों से परिपूरित दिखलाई गई है। अतः यदि आधुनिक कवि पत्नी के प्रेम में वासनाहीनता और विवेकपूर्णता को संचित करता है तो न इसमें नूतनता है और ना परम्परागत नारी भावना से विरोध ही। तुलसी ने अपने काव्य में पत्नी, प्रेयसी और प्रणयिनी सभी के प्रेम में वासनाहीन ऋजुता को संजोया है। इसीलिए शूर्पणखा का कामुक वासनात्मक प्रेम उनकी भर्त्सना का विषय रहा है।

नारी के मातृ रूप के प्रति भी आधुनिक कवि और तुलसी ने समान रूप से पूजात्मक भावों की श्रद्धांजलि अर्पित की है। मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत, यशोधरा और द्वापर अयोध्या सिंह उपाध्याय ने वैदेही वनवास और जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में सुमित्रा, कौशल्या, कैकेयी, यशोधरा, यशोदा तथा सीता और श्रद्धा की वात्सल्यमयी मूर्तियों को अपना कर जिस पावन मातृत्व का विकास दिखलाया है वह शाश्वत मातृत्व हमें तुलसी साहित्य में कौशल्या, मैना, सुनयना और सीता में संचित दिखलाई पड़ता है। मानस की कैकेयी यद्यपि सौतिया डाह से विकार ग्रस्त हो जाती हैं तथापि वन में राम-लक्ष्मण और सीता की निश्छल मूर्तियों को देखकर पुनः उसका पावन मातृत्व जाग्रत् हो उठता है और वह ग्लानि और पश्चाताप से विक्षुब्ध होकर धरती से फटने और विधाता से मृत्यु की कामना करती हुई दिखलाई पड़ती है।[१५]

मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में जिस प्रकार कुल गौरव और धर्म भावना से प्रेरित होकर ममतामय मातृ हृदय लिए कौशल्या कल्याणकारी वाणी से राम को विदा देती है—

जाओ, तब बेटा वन ही पावो नित्य धर्म धन ही।
जो गौरव लेकर जाओ, लेकर वही लौट आओ।
पूज्य पिता-प्रण रक्षित हो, मां का लक्ष्य सुलक्षित हो।
घर में घर की शान्ति रहे, कुल में कुल की कांति रहे।[१६]

ठीक उसी प्रकार मानस की कौशल्या राम को वनवास दिए जाने का कारण जानकर गूँगी बहरी सी हो जाती है। धर्म और स्नेह, ममता और कर्त्तव्य उनके सम्मुख धर्म संकट उपस्थित कर देता है—

धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति सांप छुछुंदरि केरी।
राखउं सुतहि करउं अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु विरोधू।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहउं जान वन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भई रानी।
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।५४।।२,३

परन्तु धैर्य धारण कर वह विवेकमयी माता उदार मातृत्व और परिवार की कल्याण भावना से प्रेरित होकर भरत को राम के समान ही जानकर सरल और धर्म युक्त आदेश देती हैं—

तात जाऊँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।५४।।४

साथ ही उनमें अपने अधिकार की गरिमा भी है—

जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।
जो पितु मातु कहेउ वन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।

वही ।।५५।।१

भाव साम्य की दृष्टि से साकेत की कौशल्या मानस की कौशल्या की प्रतिच्छाया ही प्रतीत होती है।

उपाध्याय की कौशल्या भरत के प्रति अनुदार और व्यंग्यपूर्ण वाणी का प्रयोग करती हुई दिखलाई देती हैं—

छल से छलछद्म ! हा वृथा वनवासी मम राम को बना
सुख से धनधान्य पूरिता, तुम भोगो गत कंटका मही।
पर का अधिकार छीनना, यह कैसा अपराध घोर है।
इसका विधिवत् जवाब दो यम देगा तुमको सरग में।[१२०]

जबकि विशाल मातृत्व से युक्त मानस की कौशल्या भरत को राम के समान जानकर ही उनसे मिलती है—

मातु भरत के वचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाई लगाइ उर लोचन मोचति बारि।

मानस—अयोध्या काण्ड।।१६४।।

तथा— *सरल सुभाय मायँ हिय लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए।"*
मातां भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे।
अजहुं बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू।।
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।

वही ।।१६४।।१,२,३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः स्पष्ट ही तुलसी ने मातृत्व को कालुष्य विहीन कल्याणमय और उदार दिखलाया है जिसकी परिधि की सीमाओं में राम, लक्ष्मण, भरत और सीता, हनुमान और सुग्रीव तथा राम के सभी सखा समान ममत्व के भागीदार बने हैं। गुप्त जी तुलसी की कौशल्या के स्वर में स्वर मिलाते हुए दिखलाई देते हैं—

वत्स रे आजा, जुड़ा वह अंक, भानु कुल के निष्कलंक मयंक
मिल गया मेरा मुझे तू राम, तू वही है भिन्न केवल नाम।[१२१]

स्पष्ट है गुप्त और तुलसी ने उदार मातृत्व को समान रूप में देखा है। इसी प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान जब—

तू मेरी गोदी की शोभा, सुख सुहाग की है लाली।
शाही शान भिखारिन की है मनो कामना मतवाली।

कहकर 'सन्तति' पुत्री के प्रति असीम ममत्व भाव की अभिव्यंजना करती हुई गर्व और गौरव की अनुभूति करती है तब तुलसी की मैना—

गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति

पार्वतीमंगल ।।२०।।

और *गौरी सजीवनि भूरि मोरि जिय जानबि।*

पार्वतीमंगल ।।१५७।।

तथा *कंत उमा मम प्रान पियारी।।*

मानस—बाल काण्ड।।७०।।२

कहकर कन्या के प्रति असीमित ममता की अभिव्यंजना करती है तथा—

भेटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुंचावहि।
हुंकरि हुंकरि सुलवाई धेनु जनु धावहि।।

पार्वती मंगल ।।१५८।।

में हुंकर-हुंकर की भावना अति मार्मिक बन पड़ी है।

प्रसाद की नारी में मातृत्व की जो व्याकुल साध दिखलाई पड़ती है—

देखो नीड़ो में बिहग युगल अपने शिशुओं का रहे चूम।
उनके घर में कोलाहल "मेरा सूना है गुफा द्वार।[१२२]

जयशंकर प्रसाद

तो तुलसी काव्य में रामवन गमन के पश्चात् सूने भवन को देखकर कौशल्या के आकुल-व्याकुल हृदय के सन्ताप और विह्वल भावनाओं का मार्मिक परिताप दिखलाई पड़ता है।[१२३] जब माता कौशल्या राम के विरह में आकुल-व्याकुल होती हैं तब जिस प्रकार साकेत की सुमित्रा जिस स्नेह सिंचित वाणी से कौशल्या को सांत्वना देती है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीजी। विकल न हो अब यौ आशा हमें जिलावेगी।

vofl vo'; feykoxhAb[१२४]

उसी प्रकार कवितावली में—

कीजे कहा जीजी जू। सुमित्रा परि पायें कहै,
तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है।[१२५]

यह भाव किंचित अन्तर से कौशल्या और सुमित्रा के गुप्त जी के समान ही चित्र प्रस्तुत करता है।

आधुनिक काव्य की उपेक्षिता यशोधरा निर्वासिता सीता और परित्यक्ता श्रद्धा का कष्ट लगभग एक-सा ही है। पति वियोग नेत्रों में आँसू भर देता है तो पुत्र का सुख आँचल में दूध—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आँखों में पानी।[१२६]

मैथिलीशरण गुप्त

नारी की यह कारुणिक मूर्ति तुलसी की गीतावली में सीता के रूप में साकार हुई है—

मोद विपिन विनोद चितवन लेत चितहि चोराइ।
राम बिनु सिय सुखद वन, तुलसी कहै किमि गाइ।[१२७]

गीतावली

'यशोधरा' की गोपा पीड़ा से गलती है, परन्तु पलते हुए पुत्र को देख राहत की अनुभूति करती है —*गोपा तो गलती है, पर उसका राहुल तो पलता है।।*

उसका कथन है—*बेटा मैं तो हूँ रोने को, तेरे सारे मल धोने को।*
हँस तू है सब कुछ खोने को।[१२८]

तथा *यह मुख देख देख दुख में भी सुख से देव दया गुण गाऊँ।*[१२९]

ठीक इसी प्रकार गीतावली की सीता—

निरखि बाल-विनोद तुलसी जात बासर बीति।
पिय चरित सिय जित चितेरो लिखत नित हित भीति।

गीतावली —उत्तर काण्ड।।३५।।४

और —*दुखी सिय पिय-विरह तुलसी सुखी सुत-सुख पाइ।*
आंच पय उफनात सीचत सलिल ज्यों सकुचाइ।।

वही ।।३६।।४

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक काव्य की पति विरह में विदग्ध परन्तु पुत्र सुख से परिपूरित तथा तुलसी की सीता में एक भावनात्मक एकता का सूक्ष्म सूत्र गुँथा हुआ है जो दोनों को लगभग समान रूप प्रदान करता है।

आधुनिक कवि जब क्षमा, करुणा और वत्सलता की प्रतिमूर्ति माता में विराट् तत्त्व देख विस्मित होता है—

मनु ने देखा कितना विचित्र ! वह मातृ मूर्ति थी विश्वमित्र ![३०]

और जब वह नारी में एक शाश्वत और विराट् मातृ रूप पाकर उसे आदि शक्ति के रूप में दिव्य शक्तियों से युक्त सृष्टि का सृजन, पालन और कल्याण तथा विनाश करते हुए देखता है—

जिनके कटाक्ष से करोड़ो शिव विष्णु अज कोटि-कोटि सूर्य-चंद्र तारा ग्रह कोटि इन्द्र सुरासुर जड़ चेतन मिले हुए जीव-जग बनते पलते हैं..नष्ट होते हैं अंत में..सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती है, आदि शक्ति रूपिणी।

शक्ति से जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है, माता है मेरी वे ![३१]

तब अनायास ही तुलसी द्वारा वन्दनीय 'आदि शक्ति छवि निधि जगमूला' का रूप परम शक्ति रूपा सीता का स्मरण हो आता है—

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई।।

मानस—बाल काण्ड।।१४७।२

यही शक्ति— *उद्भव स्थिति संहारकारिणी क्लेश हारिणीम्।*
सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

मानस—बाल काण्ड श्लोक ५

संसार का उद्भव पालन और संहार करने वाली कल्याणों को देने वाली राम वल्लभा सीता है और यही आदि शक्ति—

अजा अनादि सक्ति अविनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि।
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि।।

मानस—बाल काण्ड ।।९७।।२

शिव की शिवानी है जिनकी तुलसी सदा वन्दना और मातृवत् पूजा करते हैं।

आधुनिक कवि जब नारी को वसुधा में ऋद्धि-सिद्धि भरने वाली मानकर उसकी स्मित से सभी सिद्धियों को सुलभ देखता हुआ—

तुम कुटिया में मुस्काई तो वहाँ सिद्धियाँ बिखर पड़ीं।
दिन रात रमा वाणी, मुंह जोहा करती खड़ी खड़ी।[३२]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नारी के प्रति भव्य भावना अभिव्यक्त करता है तब इस भाव का मूल मानस में अंकित सीता के अलौकिक रूप में दिखलाई पड़ता है जिनके इच्छा करते ही उनके इंगितों पर ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ आज्ञा के लिए सम्मुख खड़ी रहती हैं।[१३३] यही नहीं तुलसी को पहले ही यह विश्वास है कि जहाँ नारी अपने इस मंगलमय रूप में जन्म लेती है वहाँ ऋद्धि-सिद्धि तथा संसार का सम्पूर्ण वैभव उपलब्ध हो जाता है।[१३४] अतः तुलसी ने नारी में इस आदि शक्ति की महिमा का दर्शन आधुनिक कवियों से बहुत पहले ही कर लिया था जिसकी अभिव्यंजना तुलसी ने अपने साहित्य में सर्वत्र ही की है। अतः नारी के सत् रूप में तुलसी की नारी भावना आधुनिक कवि के समकक्ष ही ठहरती है।

आधुनिक काव्य में नारी के असत् रूप का विश्लेषण अत्यन्त उग्र वाणी में हुआ है। इस युग के आलोचकों ने कहा है कि "नारी के विकृत रूप के उदाहरण स्वरूप ही आधुनिक कवि ने शूर्पणखा, जमीला और गुजरात की रानी कमला देवी को उपस्थित किया है इसमें हम रूप, गर्व, ईर्ष्या, भोग-लालसा, उच्छृंखलता और हिंसा का प्राधान्य पाते हैं।"[१३५]

पंचवटी में शूर्पणखा निःसंकोच, लज्जाहीन और अतृप्त वासना से परिपूरित दिखलाई पड़ती है।[१३६] जिसका व्यवहार ईर्ष्या और क्रोध से परिपूरित उच्छृंखलता पूर्ण है इसलिए कवि स्वतंत्र नारी की तुलना —'विषमतारों की तंत्री' से करता हुआ इसका विरोध करता है।"[१३७] तुलसी ने शूर्पणखा के इसी रूप को लेकर कुछ उग्र स्वर में भर्त्सना भी की है परन्तु आधुनिक कवि ने भी स्वयं शूर्पणखा के द्वारा ही स्त्रियों में निहित विध्वंसकारी विरोध और द्वेषपूर्ण प्रतिशोध की स्वीकृति करा दी है—

पक्षपातमय सानुरोध है जितना अटल प्रेम का बोध,
उतना की बलवत्तर समझो कामिनियों का वैर विरोध।
होता है विरोध से भी कुछ अधिक कराल हमारा क्रोध।
और क्रोध से भी अशेष है द्वेषपूर्ण अपना प्रतिशोध।[१३८]

अतः असत् रूप में भी नारी तुलसी की तुलना में कम निन्दनीय रूप में अंकित नहीं की गई है। 'नूरजहाँ' में गुरुभक्त सिंह ने जमीला को ईर्ष्या, क्रोध और प्रतिहिंसा की प्रतिमूर्ति के रूप में अंकित किया है—"उसका रूप गर्व ईर्ष्या को जन्म देता है, ईर्ष्या हिंसा में परिवर्तित हो जाती है और हिंसा षडयन्त्र में विकसित होती है।"[१३९] ठीक यही बात तुलसी की कैकेयी में दिखलाई पड़ती है। उसका सौतिया डाह और अहं भाव भी कौशल्या को नीचा दिखाने के लिए षड्यन्त्र का आयोजन करता है, जो मंथरा की कुसंगति का ही परिणाम था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक कवि ने भी कैकेयी को कुसंगति वश प्रतिहिंसा की प्रतिमूर्ति के रूप में ध्वंसकारिणी शक्ति के रूप में प्रदर्शित किया है।[१४०] डॉ० शैल कुमारी का विचार है कि कैकेयी के इस रूप को देखकर मध्ययुगीन कवि ने नारी के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाला था—

सत्य कहहि कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगहु अगाध दुराऊ।
निज प्रतिबिंब बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई।
काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाई
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाई।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।४८।।

किन्तु आधुनिक कवि इस रूप को नारी स्वभाव नहीं वरन् क्षणिक विकृति मात्र के रूप में ग्रहण करता है। कौशल्या की दया और क्षमाशीलता से प्रभावित होकर कैकेयी पुनः अपने मूल नारीत्व को प्राप्त कर लेती है। पश्चाताप की अग्नि में उसका समस्त विकार धुल जाता है और राम को पुनः निज सुत रूप में देखती हुई उन्हें वापिस लेने चित्रकूट जाती है।"[१४१] नारी के सम्बन्ध में तुलसी का उपर्युक्त निष्कर्ष उनका स्वयं का कथन नहीं है। यह संस्कृत कवियों का मत है और फिर तुलसी ने अपने प्रबन्ध में यह बात नगर-निवासी द्वारा कैकेयी की कुटिलता को देखकर कहलवाई है जो प्रसंगानुकूल और पात्रानुकूल है। अतः यह तुलसी की अपनी सम्मति नहीं है। उसका निष्कर्ष तो राम, कौशल्या, मुनि भारद्वाज के कथनों में तथा उनकी अपनी उक्तियों में देखा जा सकता है। कैकेयी के दोष का परिहार तुलसी ने भी किया है। पश्चाताप की अग्नि में दग्ध कैकेयी ग्लानि से गलती हुई पृथ्वी से फट कर जगह देने और विधाता से मृत्यु देने की कामना करती हुई तुलसी की सहानुभूति की पात्री बनी है। तुलसी ने कैकेयी के इस असत्त्व रूप में भ्रम का मिथ्या आवरण ही माना है वह देवताओं के कुचक्र की एक भ्रांति है। उसका दुर्गुण जन्मजात नहीं है।[१४४] तुलसी ने तो कुटिल मंथरा की बुद्धि को भी सरस्वती द्वारा प्रेरित कहकर उसकी रक्षा करने का भी प्रयास किया है।

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर आधुनिक युग का कवि भी तुलसी के समान ही सूत्र, स्मृति और पुराणों के प्रभाव से प्रभावित होकर कैकेयी के विषय में—"यह दुर्निवार है अबलाओ की माया।"[१४२] तथा—

अनृत, साहस, छद्म, छद्मप्रगल्भता
अदयता, अविवेक अशौचता।
यदि न ये अबला उर में रहे,
फिर उसे कवि निन्दित क्यों कहें।'[१४३]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के द्वारा जैसे स्मृति की वाणी की पुनरुक्ति करता है। आधुनिक कवि जैसे नारी को स्वच्छन्द नही देखना चाहता। —"स्त्री जग में स्वच्छन्दचारिणी कभी न यश पाती है, तरुवर के आश्रित हो करके लतिका रस पाती है।"[१४४]

इसके अतिरिक्त आधुनिक कवि के राम तो सीता के प्रति तुलसी के राम से बहुत अधिक अनुदार रहे हैं। रावण वध के बाद सीता के आने पर राम—

संसार में मुझको न कोई भीरु समझे, इसलिए
मैंने किया रण, तुम बताओ स्मित बदन हो किस लिए ?
होकर कलंकित मैं बहू क्यों ? राम मेरा नाम है,
चाहो वहाँ जावो चली तुमसे न कुछ भी काम है।[१४५]

यह भावना वाल्मीकि रामायण के राम की भावना के समान ही अनुदार और अन्याय पूर्ण है।[१४६]

इसके अतिरिक्त आधुनिक काव्य में भी नारी के प्रति भर्त्सनात्मक उक्तियाँ अपने उग्र रूप *स्त्री की मति उल्टी होती है, उभयकुलों को वह खोती है।*

वारिधि-सुता, विष्णु की जाया, उस श्री के मन शठ नर भाया।[१४७]

में दिखलाई पड़ती हैं। मालवीय ने तो नारी के प्रति, वैराग्यमयी घृणात्मक भावना की अभिव्यक्ति भी की है—

नारी उत्पादित करती है नर के मन में मद और प्यार।
आत्म ताप से उत्पीड़ित है पतितोन्मुखी प्रेम की धार।[१४८]

आधुनिक कवि ने नारी को स्वतन्त्रता और समता का अधिकार देना चाहा परन्तु वह भी उसे स्वतन्त्र न देख सका—

बनत स्वतन्त्र नारि ज्यहि देसो, तहं व्यभिचार बढ़ावै।
दंपति प्रेम रहत नहीं दुहुं बिच, कुल मरजाद नसावै।[१४९]

इसके सम्मुख तुलसी की 'ज्यो सुतंत्र भए बिगरहिं नारी' की उपमा तो अति नगण्य प्रतीत होती है। यही नहीं अयोध्या सिंह उपाध्याय के विचारों में—

है विलास वासना लुभाती अहंभाव है माता,
नारि धर्म को त्याग रहित है समता भाव बनाता।[१५०]

धर्म विहीन नारी पर व्यंग्य करते हुए नारी का मुख्य कार्य क्षेत्र गृह ही माना है।[१५१]

अन्ततः गुप्त जी ने भी यही महामति प्रदान की कि—

मेरी यही महामति है पति ही पत्नी की गति है।[१५२]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक कवि ने भी कैकेयी को कुसंगति वश प्रतिहिंसा की प्रतिमूर्ति के रूप में ध्वंसकारिणी शक्ति के रूप में प्रदर्शित किया है।[१४०] डॉ० शैल कुमारी का विचार है कि कैकेयी के इस रूप को देखकर मध्ययुगीन कवि ने नारी के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाला था—

सत्य कहहि कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगहु अगाध दुराऊ।
निज प्रतिबिंब बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई।
काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाई
का न करै अबला प्रबल केहि ज़ग कालु न खाई।।

मानस —अयोध्या काण्ड।।४८।।

किन्तु आधुनिक कवि इस रूप को नारी स्वभाव नहीं वरन् क्षणिक विकृति मात्र के रूप में ग्रहण करता है। कौशल्या की दया और क्षमाशीलता से प्रभावित होकर कैकेयी पुनः अपने मूल नारीत्व को प्राप्त कर लेती है। पश्चाताप की अग्नि में उसका समस्त विकार धुल जाता है और राम को पुनः निज सुत रूप में देखती हुई उन्हें वापिस लेने चित्रकूट जाती है।"[१४१] नारी के सम्बन्ध में तुलसी का उपर्युक्त निष्कर्ष उनका स्वयं का कथन नहीं है। यह संस्कृत कवियों का मत है और फिर तुलसी ने अपने प्रबन्ध में यह बात नगर-निवासी द्वारा कैकेयी की कुटिलता को देखकर कहलवाई है जो प्रसंगानुकूल और पात्रानुकूल है। अतः यह तुलसी की अपनी सम्मति नहीं है। उसका निष्कर्ष तो राम, कौशल्या, मुनि भारद्वाज के कथनों में तथा उनकी अपनी उक्तियों में देखा जा सकता है। कैकेयी के दोष का परिहार तुलसी ने भी किया है। पश्चाताप की अग्नि में दग्ध कैकेयी ग्लानि से गलती हुई पृथ्वी से फट कर जगह देने और विधाता से मृत्यु देने की कामना करती हुई तुलसी की सहानुभूति की पात्री बनी है। तुलसी ने कैकेयी के इस असत्त्व रूप में भ्रम का मिथ्या आवरण ही माना है वह देवताओं के कुचक्र की एक भ्रांति है। उसका दुर्गुण जन्मजात नहीं है।[१४४] तुलसी ने तो कुटिल मंथरा की बुद्धि को भी सरस्वती द्वारा प्रेरित कहकर उसकी रक्षा करने का भी प्रयास किया है।

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर आधुनिक युग का कवि भी तुलसी के समान ही सूत्र, स्मृति और पुराणों के प्रभाव से प्रभावित होकर कैकेयी के विषय में—"यह दुर्निवार है अबलाओ की माया।"[१४२] तथा—

अनृत, साहस, छद्म, छद्मप्रगल्भता
अदयता, अविवेक अशौचता।
यदि न ये अबला उर में रहे,
फिर उसे कवि निन्दित क्यों कहें।[१४३]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के द्वारा जैसे स्मृति की वाणी की पुनरुक्ति करता है। आधुनिक कवि जैसे नारी को स्वच्छन्द नही देखना चाहता। —"स्त्री जग में स्वच्छन्दचारिणी कभी न यश पाती है, तरुवर के आश्रित हो करके लतिका रस पाती है।"[१४४]

इसके अतिरिक्त आधुनिक कवि के राम तो सीता के प्रति तुलसी के राम से बहुत अधिक अनुदार रहे हैं। रावण वध के बाद सीता के आने पर राम—

संसार में मुझको न कोई भीरु समझे, इसलिए
मैंने किया रण, तुम बताओ स्मित बदन हो किस लिए ?
होकर कलंकित मैं बहू क्यों ? राम मेरा नाम है,
चाहो वहाँ जावो चली तुमसे न कुछ भी काम है।[१४५]

यह भावना वाल्मीकि रामायण के राम की भावना के समान ही अनुदार और अन्याय पूर्ण है।[१४६]

इसके अतिरिक्त आधुनिक काव्य में भी नारी के प्रति भर्त्सनात्मक उक्तियाँ अपने उग्र रूप *स्त्री की मति उल्टी होती है, उभयकुलों को वह खोती है।*

वारिधि-सुता, विष्णु की जाया, उस श्री के मन शठ नर भाया।[१४७]

में दिखलाई पड़ती हैं। मालवीय ने तो नारी के प्रति, वैराग्यमयी घृणात्मक भावना की अभिव्यक्ति भी की है—

नारी उत्पादित करती है नर के मन में मद और प्यार।
आत्म ताप से उत्पीड़ित है पतितोन्मुखी प्रेम की धार।[१४८]

आधुनिक कवि ने नारी को स्वतन्त्रता और समता का अधिकार देना चाहा परन्तु वह भी उसे स्वतन्त्र न देख सका—

बनत स्वतन्त्र नारि ज्यहि देसो, तहं व्यभिचार बढ़ावै।
दंपति प्रेम रहत नहीं दुहुं बिच, कुल मरजाद नसावै।[१४९]

इसके सम्मुख तुलसी की 'ज्यो सुतंत्र भए बिगरहिं नारी' की उपमा तो अति नगण्य प्रतीत होती है। यही नहीं अयोध्या सिंह उपाध्याय के विचारों में—

है विलास वासना लुभाती अहंभाव है माता,
नारि धर्म को त्याग रहित है समता भाव बनाता।[१५०]

धर्म विहीन नारी पर व्यंग्य करते हुए नारी का मुख्य कार्य क्षेत्र गृह ही माना है।[१५१]

अन्ततः गुप्त जी ने भी यही महामति प्रदान की कि—

मेरी यही महामति है पति ही पत्नी की गति है।[१५२]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शिव रत्न शुक्ल ने तो स्पष्ट ही नारी को चंचल और पुरुष की तुलना में हीन कहा है—

पुरुष सम अधिकार चाहै जौन चंचल तीय
गहति गुंजा छोड़ मुकता, राखि विवेक न हीय।

भरत —भक्ति सर्ग १५

पुनः हरिऔध आधुनिक नारी की लोक लाज रहित भावना का व्यंग्य पूर्ण चित्रण करते हुए कहते हैं—

जाति की कुल की धरम की लाज की।
बेतरह ले रही हैं फबतियां।
हैं लगाती ठोकरें मरजाद को
देवियां हैं या कि ये हैं बीबियां।

कल्पलता—हमारी देवियाँ, पृ० १८७

उनका विचार है—*पावन प्रेम पंथ को तजकर प्रेमिकता से ऊबी।*
लोक ललाम पूत ललना है लोलुपता में डूबी।।

कल्पलताः मनोवेदना, पृ० ६६

यद्यपि निराला— *क्या शान्ति चाहते हो तुम,*
गृहिणी गण को फुसलाकर।
बंधन कैसे रखा लोगे
उस क्षण भी उन्हे भुलाकर
जब प्रतिहिंसा का भाव
उठेगा झूम सभी हृदयों में।।"

जागृत—तोरन देवी लली, पृ० ११

की भावना अभिव्यक्त कर नारी को पूर्ण स्वतन्त्रता देना चाहते हैं परन्तु सभी कवि इसे न अपना सके उनमें सत् और असत् नारी पात्रो के प्रति विषम दृष्टिकोण बना ही रहा।

आधुनिक नारी की स्वच्छन्दता और समता की भावना को आधुनिक पुरुष भी सहन न कर सका और उसके प्रति व्यंग पूर्ण उद्‌गार अभिव्यक्त कर उठा—

पढ़े अखबार है सिगार का उड़ाती धुआँ।
करती सिंगार भी पामेड पाउडर से।
क्लब और सिनेमा जाती पर पुरुष के साथ
दाई पर बच्चों का उतार भार सर से।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पति से मांगती जल, खाती-खुद होटल में
वर्त्ता सुनाती पुरुषों को तार स्वर से
मित्रो संग घूमती है जाती चाय पार्टियों में,
आती है बाजार में निकल घर से।'[१५३]

स्पष्ट है आज का उद्‌बुद्ध नर भी नारी के इस अति स्वातंत्र्य को सह नहीं सका। आधुनिक कवि ने पुरुष को वृक्ष और नारी को लता माना और जिस सुधारवादी कवि ने उस लता को वृक्ष से विच्छिन्न करके उसे स्वतन्त्र रूप से विकसित होने को पुकारा था उसे गंवार माली की संज्ञा से विभूषित किया है—

उसने बेला का किया पक्ष, समझा अपने को बड़ा दक्ष।
जब स्वत्व बेलि का अलगाया, आपसी प्रेम को बिलगाया।
यों बीज फूट का डाल दिया, प्रिय प्रेम पैज-पामाल किया।
कहता फिरता इसको सुधार।
पाया न समझ माली गंवार।
बेली को तरु से हटा दिया, अपने पैरों पर खड़ा किया।
उसको स्वतन्त्रता सिखलाया, पश्चिम का रस्ता बतलाया।
वह भूल गई अपना स्वभाव, लायी अपने में वृक्ष भाव।।
पर रह सकती क्या निराधार ?
पाया न समझ माली गंवार
फिर पतित हुई वह बार-बार, कैसे कोई सकता संभार।
\+ + + + + +
दुर्दशा गर्त में गिरी हाय ! स्वातन्त्रय पाठ पढ़ निःसहाय !!
इस भांति हुआ उपवन उजार।
पाया न समझ माली गंवार।।'[१५४]

आधुनिक कवियों ने इसी प्रकार से आधुनिक नारियों के और भी अनेक व्यंग्यात्मक और भर्त्सनात्मक चित्र अंकित किए हैं।[१५५]

आज का उद्‌बुद्ध साहित्यकार पुनः रीतिकाव्य की वासनात्मक गलियों में लौटकर नारी के नख-शिख वर्णन का उनसे भी अधिक बीभत्स और घिनौना चित्र अंकित कर रहा है। सड़े हुए कागज, रूई, प्लास्टर और मिट्टी के घोल से बनी नारी की प्रतिमा (माडल) के विशेष तीन मापों (वक्ष, कटि और नितम्ब) चालीस, चौबीस और छत्तीस के पैमाने में सम्पूर्ण नारी जाति को मापते हुए उसका कथन है—"नारी के साथ लोगों ने जितने रूमानी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आदर्श जोड़ दिए हैं, सब झूठे हैं और इन तीन मापों के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं—"ऑनली स्टेटिस्टिक्....। शी हैज गॉट टू बी वाइटल"[१५६] नारी मात्र के ऐसे अंकन नारी के गौरवशाली मातृत्व, गरिमामय पत्नीत्व, पावन पुत्रीत्व और भगिनीत्व के लिए कलंकमय हैं और दूषित भावनाओं के प्रतीक हैं। ऐसे अनेक उदाहरण आज के साहित्य में पर्याप्त मात्रा में मिल जायेंगे।

प्रगति युग में कवियों की नारी भावना ने पुनः करवट ली जिसका कारण यूरोप के मार्क्स, फ्रायड, लुडविस, एडलर, बर्नार्डशॉ और लारेंस आदि की विचारधारा का प्रभाव है। लुडविस नारी की प्रवृत्ति अनैतिक, असामाजिक और अनियमित मानता है।[१५७] उसके द्वारा गिनाए हुए नारी मात्र के प्रमुख छः अवगुण हैं—"द्वित्व तथा सत्य के प्रति उपेक्षा भाव, सद् रुचि का अभाव, गँवारपन तथा अशिष्टता, अधिकार प्रेम, अहंकार तथा काम वासना की प्रबलता।..... फ्रॉयड तथा विनिनजर ने स्त्री का रुचि केन्द्र एक मात्र काम वासना को माना है।"[१५८] इससे प्रेरित आज का कवि पुनः उग्र स्वर में कहने लगा—

जानता मैं हूँ कि मृग भ्रम, तुम नही हो, धार जल की।[१५९] ..और कभी दृढ़ स्वर में चिल्लाने लगा—

नारी तुम एक पिपासा हो, तुम एक पिपासा हो केवल[१६०]

कवि ने नारी को विषम गुणों से युक्त देखा तथा मायाविनी मानते हुए कहा—

अपने प्रतिकूल गुणों की सब माया तू संग दिखाती है।[१६१]

उसका विचार है कि नारी का हृदय परिवर्तित होते देर नहीं लगती—

लगती है कुछ देर नहीं तेरे मन के परिवर्तन में।[१६२]

अतः उनकी दृष्टि में नारी—

तू प्रीति भीति, आसक्ति घृणा, की एक विषम संज्ञा बनकर,
परिवर्तित होने को आई, मेरे आगे क्षण प्रतिक्षण।[१६३]

इस प्रकार नारी एक विषम संज्ञा बन गई। यही नहीं बच्चन के मतानुसार 'नागिन' रूपिणी नारी यौवन और जीवन का साकार रूप है।[१६४] जो स्वेच्छाचारिणी है।[१६५] घूर्जटि में अपने तपोबल से उसे व्याली की काया देकर बाँधने का प्रयास किया है—

पर मदन कदन कर महायतन भी, तुझे न सब दिन बांध सके,
तू फिर स्वतंत्र बन फिरती है, सबके लोचन में, तन-मन में।[१६६]

आधुनिक कवि बच्चन ने संत कवियों की भाँति ही नारी को नागिन रूपिणी मान कर उसमें विचित्र छलना को देखा जो बुद्धि को गतिहीन बना देने वाली है—

मेरी मति सब सुध बुध भूली तेरे छलनामय लक्षण में।[१६७]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नारी उसकी दृष्टि में असाध्य रूप में 'अविचारिणी' है जिसके सम्मुख आत्मसमर्पण आवश्यक वन जाता है, क्योंकि उसके *यह इशारे हैं कि जिन पर काल ने भी चाल छोड़ी*[६८] और *—मैं तुझे कीलने चला मगर कीला तूने मेरे तन को।*[६९]

आज के यथार्थवादी कवि ने मनोवैज्ञानिकों के वासना पर आधारित जीवन के दृष्टिकोण से प्रभावित होकर नारी के द्वैत रूप को सामने रखने में किंचित संकोच नहीं किया है।

बच्चन द्वारा प्रारम्भ की हुई नागिन कविता को लेकर आरसी प्रसाद सिंह नारी को दो जिह्वा वाली काली नागिन तथा मायाविनी एवं भूखी वाघिन के रूप में देखते हैं—

आओ मेरे आगे बैठो।
जैसे बैठी होती काली, नागिन दो जिह्वा वाली।
एक हाथ धरती के ऊपर, ऐंठ गई हो, जो बल खाकर।
मार कुंडली फन फुत्कारे, अब काटे अब ठोकर मारे।[७०]

इस प्रकार 'नागिन' भावना को आरसी प्रसाद सिंह ने कई पग आगे बढ़ा दिया है।[७१]

प्रश्न होता है क्या तुलसी ने नारी के ऐसे वीभत्स और भयंकर चित्र अंकित किए हैं? निश्चय ही नहीं। इन उक्तियों की तुलना में तुलसी की उक्तियाँ जो आज के उद्‌बुद्ध आलोचकों की दृष्टि में अक्षम्य अपराध बनी हुई हैं, अत्यन्त नगण्य हो जाती हैं। फिर आज के युग में नारी के हिमायती ही जब ऐसी उक्तियों का प्रयोग करने में संकोच नहीं करते तव भक्ति के मध्ययुगीन वातावरण में जब कि नारी के प्रति एक विशेष प्रकार के निन्दात्मक दृष्टिकोण का पूर्ण रूप से आविर्भाव हो चुका था, तुलसी द्वारा समन्वयात्मक दृष्टि और मौलिक प्रतिभा से जिस गौरवपूर्ण मातृत्व, पावन पुत्रीत्व और जीवन की गरिमामय सहधर्मिणी के पत्नीत्व को चित्रित किया गया है, वस्तुतः वही अनुपमेय है। तुलसी ने संस्कृत साहित्य के प्रभाव के कारण नारी निन्दात्मक उक्तियों को ग्रहण करके भी प्रसंग, पात्र, परिस्थिति और मनः स्थिति के अनुरूप इस सुन्दरता से उनका संयोजन किया है कि अर्थ के अनर्थ करने पर ही वे खटकती हैं अन्यथा नहीं।

आज के युग में भी 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कहने वाले नवयुग नायक जयशंकर प्रसाद भी जब नारी को एक पहेली कहकर (स्कन्दगुप्त नाटक में अनन्तदेवी को लक्ष्य करके तथा अन्य स्थलों पर भी) नारी के प्रति विक्षोभ की अभिव्यक्ति करते हैं[७२] तब निश्चय ही आश्चर्य होता है। साथ ही आधुनिक काल के श्रेष्ठ कवियों में गणमान्य सुमित्रानन्दन पंत, एक ओर नारी के हृदय में स्वर्ग को देखते हुए भी जब यह कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आदर्श जोड़ दिए हैं, सब झूठे हैं और इन तीन मापों के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं—"ऑनली स्टेटिस्टिक्....। शी हैज गॉट टू बी वाइटल"[१५६] नारी मात्र के ऐसे अंकन नारी के गौरवशाली मातृत्व, गरिमामय पत्नीत्व, पावन पुत्रीत्व और भगिनीत्व के लिए कलंकमय हैं और दूषित भावनाओं के प्रतीक हैं। ऐसे अनेक उदाहरण आज के साहित्य में पर्याप्त मात्रा में मिल जायेंगे।

प्रगति युग में कवियों की नारी भावना ने पुनः करवट ली जिसका कारण यूरोप के मार्क्स, फ्रायड, लुडविस, एडलर, बर्नार्डशॉ और लारेंस आदि की विचारधारा का प्रभाव है। लुडविस नारी की प्रवृत्ति अनैतिक, असामाजिक और अनियमित मानता है।[१५७] उसके द्वारा गिनाए हुए नारी मात्र के प्रमुख छः अवगुण हैं—"द्वित्व तथा सत्य के प्रति उपेक्षा भाव, सद् रुचि का अभाव, गँवारपन तथा अशिष्टता, अधिकार प्रेम, अहंकार तथा काम वासना की प्रबलता।..... फ्रॉयड तथा विनिनजर ने स्त्री का रुचि केन्द्र एक मात्र काम वासना को माना है।"[१५८] इससे प्रेरित आज का कवि पुनः उग्र स्वर में कहने लगा—

जानता मैं हूँ कि मृग भ्रम, तुम नही हो, धार जल की।[१५९] ..और कभी दृढ़ स्वर में चिल्लाने लगा—

नारी तुम एक पिपासा हो, तुम एक पिपासा हो केवल[१६०]

कवि ने नारी को विषम गुणों से युक्त देखा तथा मायाविनी मानते हुए कहा—

अपने प्रतिकूल गुणों की सब माया तू संग दिखाती है।[१६१]

उसका विचार है कि नारी का हृदय परिवर्तित होते देर नहीं लगती—

लगती है कुछ देर नहीं तेरे मन के परिवर्तन में।[१६२]

अतः उनकी दृष्टि में नारी—

तू प्रीति भीति, आसक्ति घृणा, की एक विषम संज्ञा बनकर,
परिवर्तित होने को आई, मेरे आगे क्षण प्रतिक्षण।[१६३]

इस प्रकार नारी एक विषम संज्ञा बन गई। यही नहीं बच्चन के मतानुसार 'नागिन' रूपिणी नारी यौवन और जीवन का साकार रूप है।[१६४] जो स्वेच्छाचारिणी है।[१६५] घूर्जटि में अपने तपोबल से उसे व्याली की काया देकर बाँधने का प्रयास किया है—

पर मदन कदन कर महायतन भी, तुझे न सब दिन बांध सके,
तू फिर स्वतंत्र बन फिरती है, सबके लोचन में, तन-मन में।[१६६]

आधुनिक कवि बच्चन ने संत कवियों की भाँति ही नारी को नागिन रूपिणी मान कर उसमें विचित्र छलना को देखा जो बुद्धि को गतिहीन बना देने वाली है—

मेरी मति सब सुध बुध भूली तेरे छलनामय लक्षण में।[१६७]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नारी उसकी दृष्टि में असाध्य रूप में 'अविचारिणी' है जिसके सम्मुख आत्मसमर्पण आवश्यक वन जाता है, क्योंकि उसके *यह इशारे हैं कि जिन पर काल ने भी चाल छोड़ी*[६८] और *—मैं तुझे कीलने चला मगर कीला तूने मेरे तन को।*[६९]

आज के यथार्थवादी कवि ने मनोवैज्ञानिकों के वासना पर आधारित जीवन के दृष्टिकोण से प्रभावित होकर नारी के द्वैत रूप को सामने रखने में किंचित संकोच नहीं किया है।

बच्चन द्वारा प्रारम्भ की हुई नागिन कविता को लेकर आरसी प्रसाद सिंह नारी को दो जिह्वा वाली काली नागिन तथा मायाविनी एवं भूखी बाघिन के रूप में देखते हैं—

आओ मेरे आगे बैठो।
जैसे बैठी होती काली, नागिन दो जिह्वा वाली।
एक हाथ धरती के ऊपर, ऐंठ गई हो, जो बल खाकर।
मार कुंडली फन फुत्कारे, अब काटे अब ठोकर मारे।[७०]

इस प्रकार 'नागिन' भावना को आरसी प्रसाद सिंह ने कई पग आगे बढ़ा दिया है।[७१]

प्रश्न होता है क्या तुलसी ने नारी के ऐसे वीभत्स और भयंकर चित्र अंकित किए हैं? निश्चय ही नहीं। इन उक्तियों की तुलना में तुलसी की उक्तियाँ जो आज के उद्‌बुद्ध आलोचकों की दृष्टि में अक्षम्य अपराध बनी हुई हैं, अत्यन्त नगण्य हो जाती हैं। फिर आज के युग में नारी के हिमायती ही जब ऐसी उक्तियों का प्रयोग करने में संकोच नहीं करते तव भक्ति के मध्ययुगीन वातावरण में जब कि नारी के प्रति एक विशेष प्रकार के निन्दात्मक दृष्टिकोण का पूर्ण रूप से आविर्भाव हो चुका था, तुलसी द्वारा समन्वयात्मक दृष्टि और मौलिक प्रतिभा से जिस गौरवपूर्ण मातृत्व, पावन पुत्रीत्व और जीवन की गरिमामय सहधर्मिणी के पत्नीत्व को चित्रित किया गया है, वस्तुतः वही अनुपमेय है। तुलसी ने संस्कृत साहित्य के प्रभाव के कारण नारी निन्दात्मक उक्तियों को ग्रहण करके भी प्रसंग, पात्र, परिस्थिति और मनः स्थिति के अनुरूप इस सुन्दरता से उनका संयोजन किया है कि अर्थ के अनर्थ करने पर ही वे खटकती हैं अन्यथा नहीं।

आज के युग में भी 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कहने वाले नवयुग नायक जयशंकर प्रसाद भी जब नारी को एक पहेली कहकर (स्कन्दगुप्त नाटक में अनन्तदेवी को लक्ष्य करके तथा अन्य स्थलों पर भी) नारी के प्रति विक्षोभ की अभिव्यक्ति करते हैं[७२] तब निश्चय ही आश्चर्य होता है। साथ ही आधुनिक काल के श्रेष्ठ कवियों में गणमान्य सुमित्रानन्दन पंत, एक ओर नारी के हृदय में स्वर्ग को देखते हुए भी जब यह कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यदि कहीं नरक है इस भू पर तो वह नारि के अन्दर,
वासनावर्त में डाल प्रखर
वह अंध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर।[७३]

तब वास्तव में यह सोचने को बाध्य होना पड़ता है कि आज का कवि भी क्या नारी को संतों के समान नरक ही मानता है ? नारी के इतने सौम्य और सुन्दर रूप अंकित करने वाले कवि निश्चय ही नारी के प्रति ऐसी भावना नहीं रख सकते। यह विषमता वस्तुतः नारी के सत् और असत् दो रूपों के अंकन के कारण ही साहित्य में प्रस्फुटित हुई है। एक ओर जहाँ वे धरा का स्वर्ग नारी हृदय में ही मानते हैं,[७४] वह नारी का सत् स्वरूप है और दूसरा उसके विपरीत कलुषित भावनाओं से परिपूरित नारी का असत् रूप। अतः कवि के प्रति आक्रोश भावना धारण करना अनावश्यक है और "आधुनिक नारी की उद्‌बुद्ध चेतना को सहृदयता के न्यायालय में अपने प्रति न्याय की मांग"[७५] करने की आवश्यकता भी नहीं होगी क्योंकि ऐसे कथन वस्तुतः नारी मात्र के लिए नही हैं। प्रत्येक वस्तु के दो पहलू हैं— श्याम और शुभ। निन्दा और भर्त्सना नारी समाज के श्याम पक्ष की ही मानी जानी चाहिए और पूजा, अर्चना एवं अभ्यर्थना उसके शुभ पक्ष की। अतः कालुष्य को निरन्तर प्रयास से भस्मीभूत कर शुभ एवं उज्ज्वल बनने का यत्न ही श्रेष्ठतर है। तुलसी की नारी भावना को भी इसी दृष्टिकोण से देखते हुए उनके प्रति स्वस्थ, संतुलित और उदार दृष्टिकोण लेकर आलोचना करना ही अभीष्ट होगी। आधुनिक काव्य के उपर्युक्त उदाहरणों की तुलना में तो तुलसी बहुत अधिक उदार ही कहे जा सकते हैं क्योंकि उनके काव्य में केवल असत् पात्रों को लेकर ही कुछ उक्तियाँ कही गई हैं जो सूत्र, स्मृति, पुराण साहित्य तथा संत परम्परा में उसमें कहीं अधिक उग्र रूप में विद्यमान थीं। अतः आधुनिक काव्य की तुलना में भी तुलसी को नारी के प्रति अशालीन या अनुदार नहीं माना जा सकता।

निष्कर्ष—संस्कृत काव्य से तुलसी की नारी भावना के तुलनात्मक अध्ययन से निम्नांकित निष्कर्ष निकाले गए हैं—

तुलसी का नारी समाज वैदिक कालीन संस्कृति में प्रतिष्ठित नारी समाज के समकक्ष रखा जा सकता है।

बाल विवाह, सती प्रथा और पर्दा प्रथा आदि कुप्रथाओं को वैदिक साहित्य के समान ही तुलसी ने कोई प्रश्रय नहीं दिया है। बहु-पत्नी प्रथा का उल्लेख होने पर भी तुलसी साहित्य में सभी के लिए एक पत्नी व्रत का आदर्श ही प्रस्तुत किया गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उत्तर वैदिक काल से कुछ क्षेत्रों में तुलसी की नारी श्रेष्ठ स्थान पर स्थित दिखलाई पड़ती है।

भारतीय संस्कृति में नारी के जो गौरव और गरिमामय चित्र अंकित हैं वे ही तुलसी के आदर्श रहे हैं। उनके काव्य में नारी अपने माता, पत्नी, पुत्री और कुल-वधू आदि रूपों में महती गरिमा और गौरव से सम्पन्न महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है।

सूत्र, स्मृति और पुराणकारों द्वारा प्रस्तुत नारी धर्मों की स्थापना करने पर भी तुलसी की नारी उच्च धरातल पर स्थित दृष्टिगोचर होती है।

नारी निन्दक उग्रवाणी जितने असंयत और अमर्यादित रूप से सूत्र, स्मृति और पुराणों में प्रयुक्त हुई है उतनी तुलसी की संयत वाणी में नहीं।

तुलसी ने पुराणों के अन्यायपूर्ण और अनुचित 'शाण्डिली', जो कुमार्गगामी लंगड़े पति को उसकी इच्छानुसार कन्धे पर चढ़ा वेश्या के यहाँ ले जाती है, के धर्म को प्रश्रय नहीं दिया है। उनकी नारी कुमार्गगामी पति की भर्त्सना करने के अधिकार से सम्पन्न दिखलाई पड़ती है।

अतः तुलना में नारी के प्रति तुलसी का दृष्टिकोण अति उदार और शालीन है।

संस्कृत महाकाव्यों की नारी भावना से तुलना करने पर भी तुलसी नारी के प्रति अधिक उदार दिखलाई पड़ते हैं।

तुलसी साहित्य में चित्रित नारी समाज भी रामायण कालीन समाज से निश्चय ही अधिक शालीन रहा है। नारी के प्रति निन्दनीय उक्तियों के प्रयोग में भी महाकाव्यकार ही तुलसी से आगे रहे हैं।

वीर काव्य की नारी के दो ही प्रमुख रूप हैं—शृंगारिक और वीर। ये दोनों ही तुलसी साहित्य में उपलब्ध नहीं हैं फिर भी तुलसी की नारी अधिक सुदृढ़ स्थल पर अवस्थित है क्योंकि वीर काव्य में अपने वीर रूप में नारी वीर माता और वीर पत्नी होते हुए भी वीर भोग्या ही है।

संत वाणी नारी के प्रति जितनी उग्र और अशालीन रही है उसकी तो तुलसी में कल्पना भी नहीं की जा सकती।

संतों ने यद्यपि सती नारियों के एकनिष्ठ पतिव्रत धर्म से आकर्षित होकर भक्तों को पतिव्रता और ईश्वर को पति का प्रतीक मानकर दांपत्य भाव के भाव भीने चित्र प्रस्तुत किए हैं, परन्तु उनके निवृत्ति पक्ष की अवरोधक नारी कटुता पूर्वक भर्त्सना का केन्द्र बनी है। तुलसी भी भक्त थे और वैराग्य पथ पर नारी के प्रमदा रूप को अवरोध मानते थे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अतः इस रूप में संतों से प्रभावित होकर उन्होंने भी नारी, परन्तु प्रमदा के प्रति ही कटु वाणी का प्रयोग किया है। संतों की तुलना में वह भी नगण्य ही है क्योंकि उनकी निन्दाजनक वाणी नारी के असत् रूप के प्रति ही प्रस्फुटित हुई है और निश्चय ही तुलनात्मक दृष्टि से अधिक संयत है।

कृष्ण कवियों ने राधा-कृष्ण के मधुर रूप की उपासना की और स्वकीया एवं परकीया के सरस चित्र अंकित किए जो मर्यादावादी तुलसी का आदर्श नहीं थे। नारी निन्दा वाचक वाणी में तो मधुर रूप के उपासक, कृष्ण भक्त कवि भी पीछे दिखलाई नहीं पड़ते।

रीतिकाव्य में नारी केवल क्रीड़ा कौतुक की सामग्री, एक मात्र कामिनी रूप में ही चित्रित की गई है। वह केवल नायिका मात्र है। उसके पारिवारिक जीवन के अन्य सत् स्वरूपों माता, पुत्री, कुल-वधू, भगिनी आदि की नितान्त अवहेलना की गई है। रीतिकालीन नारी व्यक्तित्व विहीन एक टाइप है, उसके नख-शिख सौन्दर्य का भाव भरा अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रण करके जीवन के लिए उसे परमावश्यक मानने पर भी नारी निन्दा के स्वर संतों के समान ही ध्वनित हुए हैं। अतः तुलसी की उत्सर्गमयी, पावन, शील संयुक्त आदर्श नारी से उसकी कोई तुलना नहीं है।

आधुनिक काव्य में रीतिकालीन नारी भावना की प्रतिक्रिया में नारी की स्वतंत्रता के तीव्र स्वर मुखरित हुए, युग-युग से दीन हीन समझी जाने वाली नारी जाति—"नारी तुम केवल श्रद्धा हो' के स्वरों में श्रद्धा की पात्री बनी और इस युग में नारी उर के भीतर स्वर्ग को देखा गया। फिर भी कवियों ने नारी के सत् और असत् दोनों रूपों का अंकन किया है।

राम काव्य की परम्परा के अन्तर्गत आधुनिक काव्य में नारी के भव्य चित्र अंकित किए गए हैं तथा उपेक्षित पात्रो के मनोभावों की सरस अभिव्यंजना प्रस्तुत हुई है।

आधुनिक कवि नारी की वैदिक युगीन गरिमामय स्थिति से प्रभावित है, जैसा तुलसी साहित्य में भी देखा गया है।

आधुनिक काल में नारी में महाशक्तित्व और महामायात्व को देखा गया जो संसार का सृजन, पालन और कल्याण करने वाली है। तुलसी ने भी इस महामाया की अपरिमित शक्ति की सर्वत्र ही वन्दना की है।

माता, पत्नी और पुत्री आदि रूपों में तुलसी की नारी भी आधुनिक कवियों की नारी के समान, त्याग, वासनाहीनता, कर्तव्य तत्परता और धर्मनिष्ठ तपस्वी प्रेम से अभिसिंचित है। वह शक्ति रूप, पति की प्रेरणा और चिर सहचरी है जो कुमार्गगामी पति के सत्पथ प्रदर्शन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के उत्तरदायित्व से परिपूरित है। नारी का गृहिणी स्वरूप भी समान रूप से सुन्दर ही अंकित हुआ है। मातृ रूप के प्रति समान रूप से पूजात्मक भावों की अंजलि अर्पित की गई है।

आधुनिक काव्य में नारी के असत् रूपों का विश्लेषण तुलसी के समान ही हुआ है। नारी के असत् रूप के प्रति आधुनिक कवियों का आक्रोश भी कम नहीं है। अनेक स्थल सूत्र स्मृति और पुराणकारों के समकक्ष हैं और अनेक स्थानों पर संत कवियों की भाँति ही आधुनिक कवियों ने नारी का वित्रण भयंकर नागिन के समान किया है तथा नारी उर में नरक की स्थिति मानकर उसे उतना ही हीन बना दिया है।

अतः आधुनिक कवियों की तुलना में भी तुलसी को नारी के प्रति अनुदार अथवा उनकी नारी भावना को हीन नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः सभी युगों में लगभग सभी कवियों द्वारा नारी के सत् और असत् रूपों के प्रति प्रशंसनीय और निन्दनीय उद्‌गार अभिव्यक्त हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१. पार्वती मंगल ।।५२।।
२. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध —डॉ० शिवराज शास्त्री, पृ० १६४
३. ऋग्वेद ४।१६।६ और ४।३०।१६
४. वैदिक-इण्डेक्स —फस्ट, पृ० ३६५
५. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।७०।।१,२
६. वही ।।१५१।। तथा ।।१८६।।२ में मनु व शतरूपा ही कश्यप और अदिति हुए और इन्होंने पुनः दशरथ और कौशल्या के रूप में जन्म लिया। सती ही पार्वती रूप में जन्म लेकर पुनः शिवजी को पति रूप में पाती हैं।
७. रामचरितमानस —बाल काण्ड, श्लोक ।।२।।, ।।१४२।।,१ तथा अयोध्या काण्ड ।।६६।।३
८. वही ।।३५३।।२, ।।३५४।।४, ।।३५७।।२
९. वही ।।३४६।।३,४
१०. वही ।।३४६।।२
११. विमेन इन ऋग्वेद —भगवतशरण उपाध्याय, पृ० २१
१२. वही, पृ० ४५
१३. ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध —डॉ० शिवराज शास्त्री, पृ० २२६
१४. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता —बेनी प्रसाद, पृ० ६६
१५. वही, पृ० ५२
१६. रामचरितमानस —उत्तर काण्ड ।।२१।।४
१७. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता —बेनी प्रसाद, पृ० १०१
१८. पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन —ए०एस० अल्तेकर, पृ० २३ तथा २४३
१९. हिन्दू परिवार मीमांसा —हरिदत्त वेदालंकार, पृ० १३७
२०. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।३७।।१
२१. बौद्धायन २।२।५२, विष्णु पुराण १५।१ ३ तथा महाभारत ।१३।२०।२१
२२. पुत्रं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके नाबोधयामासपतिं पतिव्रता —वेद में स्त्रियाँ—गणेशदत्त शर्मा —गौड़
२३. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन — डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, परिशिष्ट, पृ० ५४६
२४. वही, पृ० ५४७
२५. रामायण कालीन समाज —शांतिकुमार नानूराम व्यास, पृ० २०३
२६. वाल्मीकि रामायण ७।३४।५१
२७. वही, ।४।२४।३८
२८. वही, ६।१२५।४४।५
२९. वही ।१।१४।४३।६
३०. वही २।६१।२४
३१. वही २।१०१।१८
३२. वही ।।७।६।११।।
३३. सदृशच्यापकृष्टाच्च लोके कन्या पिता जनात्। प्रधर्षणमवाप्नोति शक्रेणापि समो भुवि। —वाल्मीकि रामायण ।।२।।११८।३४-५।
३४. रामायणकालीन समाज —शांति कुमार नानूराम व्यास, पृ० १५०
३५. रामचरितमानस —बाल काण्ड।।२५१।।१
३६. पार्वतीमंगल ।।४६।।
३७. वही ।।५२।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३८. रामायणकालीन समाज—शांति कुमार नानूराम व्यास, पृ० १५०
३९. वही, पृ० २०४-२१०
४०. वही, पृ० २०४
४१. मेरा धर्म —प्रियव्रत वेद वाचस्पति, पृ० ३
४२. भारतीय समाज शास्त्र —धर्मदेव विद्यावाचस्पति, पृ० १७८
४३. तुलसी दास —डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ३०२
४४. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० ५४५
४५. वही
४६. वही
४७. इवोल्यन ऑफ मारल्स इन एपिक्स —(बम्बई १९५९) पृ० ११०-११३,१२१
४८. दि ग्रेट एपिक आफ इंडिया के लेखक —दि पोजीशन आफ रूलिंग कास्ट इन इंडिया, जर्नल आफ अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी —१८९७, पृ० १२१
४९. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० २४५-२४६
५०. वही, पृ० २४६
५१. वही, पृ० ५४७
५२. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।४३।।१,२,३
५३. अविराभिव मामयं शरारुरभि मन्यते। —ऋक् १०।८६।६
५४. नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपे ऋते। वही ।१०।८६।१२
५५. वही —।४।१८।१३
५६. हिन्दी साहित्य का इतिहास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २
५७. रामचरितमानस में मन्दोदरी सर्वत्र ही रावण को युद्ध से विरत करने का प्रयास करती है। तारा भी अपने पति को राम के साथ युद्ध न करने की सीख देती है।
५८. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग —डॉ० नामवर सिंह, पृ० ३०२
५९. कुकुरी से तात्पर्य कुतिया है।
६०. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग —डॉ० नामवर सिंह, पृ० ३१२
६१. संत सुधासार —स्वामी दादूदयाल, पृ० ४६६
६२. रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।४।।५ तथा ।।५क।।
६३. संत सुधासार —कबीर दास, पृ० १३१
६४. संत दर्शन —त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० १२५ तथा रामचरितमानस —अरण्य काण्ड ।।५क।। तथा उत्तर काण्ड ।।१२६।। (तुलना के लिए)
६५. संत सुधासार —सुन्दर दास, पृ० ६६३
६६. जगनायक जगदीश पियारी, जगत-जननी राधा रानी।
नित विहार गोपाल लाल संग वृन्दावन रजधानी।। — सूरसागर — प्रथम खंड, पृ० ६२४
६७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५९२
६८. वही, पृ० ५९३,५९५
६९. "ब्रज सुन्दरि नाहि नारि रिचा सतिरी।
भार भयो जब पृथ्वी पर तब हरि लियो अवतार।
वेद ऋचा है गोपिका हरि संग कियो विहार।। —सूरदास —सूरसागर खंड१ पृ० ६६३, पद ११७५
७०. वही, पृ० ८४१, पद १६८५।
७१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५६६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

७२. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडेय, पृ० १५३
७३. तुलसी और उनका काव्य —रामनरेश त्रिपाठी, पृ० १६३
७४. वही, पृ० १६८
७५. सूर—सूरसागर प्रथम खंड, पृ० ६११, पद १०१६
७६. तुलसी दास —माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६८
७७. हिन्दी नवरत्न —मिश्र बन्धु, पृ० १०६
७८. तुलसी और उनका युग —राजपति दीक्षित, पृ० ६३
७६. अब हौं। माया हाथ, बिकान्यो,
परबस भयौ पसू ज्यों, रजू बस भज्यो न त्रीपति रामै।
हिंसा मद ममता रस भूल्यो, आशा ही लपटायो। —सूर, सूरसागर प्रथम खंड, पृ० १७ पद ४७
८०. व्याकुल होत हरे ज्यौ सरबस, आंखिन धरि दई।
सुत-संतान-स्वजन-बनिता-रति, धन समान उतई।
राखे सूर पवन पाखंड ही, करौ जो प्रीति नई।
—वही पृ० १७ पद ५०
८१. विनय पत्रिका, पद ११६-११७
८२. सूरदास - सूरसागर प्रथम खण्ड - सं० नन्ददुलारे वाजपेयी नवम् स्कन्द, पृ० १८०
८३. नारी सो नर प्रीति लगावै, पै नारी तिह मन महि लावै।
नारी संगे प्रीति जो करै, नारी ताहि तुरत परिहरै —सूर, सूरसागर प्रथम खंड
—नन्द दुलारे वाजपेयी पृ० १८०
८४. वही, पृ० १८१
८५. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडे, पृ० १४५
८६. वही, पृ० १५६
८७. कवित्त रत्नाकर-सेनापति (उमाशंकर शुक्ल) पृ० ५-६
८८. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडे, पृ० १६४
८६. मतिराम ग्रन्थावली —सतसई, पृ० ४४३ द्वितीय संस्करण
६०. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडे, पृ० १६८
६१. रामचन्द्रिका —केशव —पूर्वार्द्ध —सम्पादक भगवानदीन, पृ० १३५
६२. पति देइ जो अति दुख, मन मानि लीजै सुक्ख। —केशव —वही, पृ० १३४
६३. वही, पृ० २२०
६४. वही, पृ० १६५
६५. केशव पंचरत्न — सम्पादक भगवानूदीन, पृ० १०
६६. वीरसिंह देवचरित —केशव, पृ० २६५
६७. रहिमन सुधा —अनूपलाल मंडल पृ० ४२ दोहा १६६ (द्वितीय संस्करण —१६३१, प्रयाग)
६८. वही, पृ० ५० दोहा १३७
६६. कवित्त रत्नाकर —सेनापति, पृ० १०० कवित्त १२
१००. ज्यों ज्यों पावक लपट सी पिय हिय सौ लपटाति।
त्यों-त्यों छुही गुलाब सी, छतिया अति सियराति। —बिहारी रत्नाकर, पृ० १४६
१०१. वही, पृ० १७८ दो० ४३३
१०२. हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास —हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३००

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१०३. जो हरि सोई, राधिका, जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष, या में कुछ न विभक्ति।
सीता अनसूया सती अरुंधती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण, लही सकल जग नारि।
वीर प्रसविनी वध बधे होई दीनता खोय —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बाल-बोधिनी।
नारी नर अरधंगे की, सोचेहि स्वामिनी होय।।
१०४. युगवाणी —सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ३८
१०५. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० २५५-२५६
१०६. "वैदिक ऋषियों की नारी भावना से आधुनिक कवि प्रभावित हैं।" —वही पृ० ११७
१०७. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० १०३ पाद टिप्पणी
१०८. त्रिधारा प्रेम शृंखला—सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ० ५१
१०९. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।८६।।१-४
११०. कामायनी—लज्जा—जयशंकर प्रसाद, पृ० ८३।
१११. मुकुल —आहत की अभिलाषा —सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ० २६
११२. पार्वतीमंगल ।।२७।।, ।।४१।।
११३. हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० ११३
११४. वही, पृ० ११७
११५. वही, पृ० ११८
११६. वही — पृ० १२१
११७. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडेय, पृ० १६५
११८. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२५१।३
११९. साकेत —मैथिलीशरण गुप्त, सर्ग ४, पृ० ६०-६१
१२०. रामचरित चिन्तामणि —रामचरित उपाध्याय —सर्ग ५
१२१. साकेत —मैथिलीशरण गुप्त, सर्ग ७, पृ० १८७
१२२. कामायनी —ईर्ष्या—जयशंकर प्रसाद, पृ० ११३
१२३. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।५३।।४।।
१२४. साकेत —मैथिलीशरण गुप्त, सर्ग १४, पृ० २५७
१२५. कवितावली —अयोध्या काण्ड ।।४।।
१२६. यशोधरा —मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ५६
१२७. गीतावली —उत्तर काण्ड ।।३३।।५
१२८. यशोधरा —मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ६४ तथा ५८
१२९. वही, पृ० ६७
१३०. कामायनी दर्शन —जयशंकर प्रसाद, पृ० १८८
१३१. परिमल : पंचवटी प्रसंग —निराला, पृ० २२२
१३२. नारी —मोहन लाल महतो —'विश्वमित्र' नवम्बर १९४३
१३३. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।३०५।।४, तथा ।।३०६।।
१३४. पार्वतीमंगल ।।८।।
१३५. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० १४६
१३६. थी अत्यन्त अतृप्त वासना दीर्घ दृगों से झलक रही —पंचवटी —मैथिलीशरण गुप्त, पृ० २२,३१
विष से भरी वासना है यह सुधा पूर्ण वह प्रीति नहीं। वही, पृ० ३६,६१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

७२. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडेय, पृ० १५३
७३. तुलसी और उनका काव्य —रामनरेश त्रिपाठी, पृ० १६३
७४. वही, पृ० १६८
७५. सूर—सूरसागर प्रथम खंड, पृ० ६११, पद १०१६
७६. तुलसी दास —माताप्रसाद गुप्त, पृ० २६८
७७. हिन्दी नवरत्न —मिश्र बन्धु, पृ० १०६
७८. तुलसी और उनका युग —राजपति दीक्षित, पृ० ६३
७६. अब हौं। माया हाथ, बिकान्यो,
परवस भयौ पसू ज्यों, रजू बस भज्यो न त्रीपति रामै।
हिंसा मद ममता रस भूल्यो, आशा ही लपटायो। —सूर, सूरसागर प्रथम खंड, पृ० १७ पद ४७
८०. व्याकुल होत हरे ज्यौ सरबस, आंखिन धरि दई।
सुत-संतान-स्वजन-वनिता-रति, धन समान उतई।
राखे सूर पवन पाखंड ही, करी जो प्रीति नई।
—वही पृ० १७ पद ५०
८१. विनय पत्रिका, पद ११६-११७
८२. सूरदास - सूरसागर प्रथम खण्ड - सं० नन्ददुलारे वाजपेयी नवम् स्कन्द, पृ० १८०
८३. नारी सो नर प्रीति लगावै, पै नारी तिह मन महि लावै।
नारी संगे प्रीति जो करै, नारी ताहि तुरत परिहरै —सूर, सूरसागर प्रथम खंड
—नन्द दुलारे वाजपेयी पृ० १८०
८४. वही, पृ० १८१
८५. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडे, पृ० १४५
८६. वही, पृ० १५६
८७. कवित्त रत्नाकर-सेनापति (उमाशंकर शुक्ल) पृ० ५-६
८८. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडे, पृ० १६४
८६. मतिराम ग्रन्थावली —सतसई, पृ० ४४३ द्वितीय संस्करण
६०. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडे, पृ० १६८
६१. रामचन्द्रिका —केशव —पूर्वार्द्ध —सम्पादक भगवानदीन, पृ० १३५
६२. पति देइ जो अति दुख, मन मानि लीजै सुक्ख। —केशव —वही, पृ० १३४
६३. वही, पृ० २२०
६४. वही, पृ० १६५
६५. केशव पंचरत्न — सम्पादक भगवानूदीन, पृ० १०
६६. वीरसिंह देवचरित —केशव, पृ० २६५
६७. रहिमन सुधा —अनूपलाल मंडल पृ० ४२ दोहा १६६ (द्वितीय संस्करण —१६३१, प्रयाग)
६८. वही, पृ० ५० दोहा १३७
६६. कवित्त रत्नाकर —सेनापति, पृ० १०० कवित्त १२
१००. ज्यों ज्यों पावक लपट सी पिय हिय सी लपटाति।
त्यों-त्यों छुही गुलाब सी, छतिया अति सियराति। —विहारी रत्नाकर, पृ० १४६
१०१. वही, पृ० १७८ दो० ४३३
१०२. हिन्दी साहित्य उसका उद्‌भव और विकास —हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३००

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१०३. जो हरि सोई, राधिका, जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष, या में कुछ न विभक्ति।
सीता अनसूया सती अरुंधती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण, लही सकल जग नारि।
वीर प्रसविनी वध बधे होई दीनता खोय —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बाल-बोधिनी।
नारी नर अरधंगे की, सोचेहि स्वामिनी होय।।
१०४. युगवाणी —सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ३८
१०५. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० २५५-२५६
१०६. "वैदिक ऋषियों की नारी भावना से आधुनिक कवि प्रभावित हैं।" —वही पृ० ११७
१०७. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० १०३ पाद टिप्पणी
१०८. त्रिधारा प्रेम शृंखला—सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ० ५१
१०९. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।८६।।१-४
११०. कामायनी—लज्जा—जयशंकर प्रसाद, पृ० ८३।
१११. मुकुल —आहत की अभिलाषा —सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ० २६
११२. पार्वतीमंगल ।।२७।।, ।।४१।।
११३. हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० ११३
११४. वही, पृ० ११७
११५. वही, पृ० ११८
११६. वही — पृ० १२१
११७. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना —डॉ० उषा पांडेय, पृ० १६५
११८. रामचरितमानस —अयोध्या काण्ड ।।२५१।३
११९. साकेत —मैथिलीशरण गुप्त, सर्ग ४, पृ० ६०-६१
१२०. रामचरित चिन्तामणि —रामचरित उपाध्याय —सर्ग ५
१२१. साकेत —मैथिलीशरण गुप्त, सर्ग ७, पृ० १८७
१२२. कामायनी —ईर्ष्या—जयशंकर प्रसाद, पृ० ११३
१२३. गीतावली —अयोध्या काण्ड ।।५३।।४।।
१२४. साकेत —मैथिलीशरण गुप्त, सर्ग १४, पृ० २५७
१२५. कवितावली —अयोध्या काण्ड ।।४।।
१२६. यशोधरा —मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ५६
१२७. गीतावली —उत्तर काण्ड ।।३३।।५
१२८. यशोधरा —मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ६४ तथा ५८
१२९. वही, पृ० ६७
१३०. कामायनी दर्शन —जयशंकर प्रसाद, पृ० १८८
१३१. परिमल : पंचवटी प्रसंग —निराला, पृ० २२२
१३२. नारी —मोहन लाल महतो —'विश्वमित्र' नवम्बर १९४३
१३३. रामचरितमानस —बाल काण्ड ।।३०५।।४, तथा ।।३०६।।
१३४. पार्वतीमंगल ।।८।।
१३५. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० १४६
१३६. थी अत्यन्त अतृप्त वासना दीर्घ दृगों से झलक रही —पंचवटी —मैथिलीशरण गुप्त, पृ० २२,३१
विष से भरी वासना है यह सुधा पूर्ण वह प्रीति नहीं। वही, पृ० ३६,६१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१३७. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० १४६
१३८. पंचवटी —मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ६०
१३९. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, पृ० १४७
१४०. वही
१४१. वही, पृ० १४५
१४२. रामचरित चिन्तामणि —रामचरित उपाध्याय, सर्ग ५, पृ० ५६
१४३. वही
१४४. वही, सर्ग ११, पृ० १५१
१४५. वही, सर्ग १२, पृ० ३२२
१४६. मिलाइए—वाल्मीकि रामायण ६।११८।२०-२३
१४७. रामचरितचिन्तामणि —रामचरित उपाध्याय, सर्ग २४, पृ० ३४४
१४८. त्रिवेणी —पद्माकांत मालवीय — पृ० ४१
१४९. भरत भक्ति —शिवरतन शुक्ल, सर्ग १५
१५०. कल्पलता —मनोवेदनी —अयोध्या सिंह उपाध्याय, पृ० ६६
१५१. संचिता गृहलक्ष्मी —पृ० १७०-१७२
१५२. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० १७३ पाद टिप्पणी।
१५३. कल्याण नारी अंक —आधुनिका नारी, पृ० १४३ सम्पादक- विजयानन्द त्रिपाठी
१५४. वही —पाया न समझ माली गँवार — पृ० १५६
१५५. वही, पृ० १४३, २६६, २३७
१५६. कांच घिरे स्तूप —मनहर चौहान —सारिका (कहानी पत्रिका) दिसम्बर १९६५, (सम्पादन चन्द्रगुप्त विद्यालंकार) (टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन)
१५७. बूमन, ए विंडीकेशन —ए० एम० लुडविस-दत्त पृ० ३०६-३०७
१५८. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० १६६
१५९. संतरंगिनी —मृगतृष्णा —हरिवंश राय बच्चन, पृ० ११७
१६०. आरसी—आरसी प्रसाद सिंह, पृ० ६२
१६१. संतरंगिनी —नागिन —हरिवंश राय बच्चन, पृ० ४८
१६२. वही, पृ० ४२
१६३. वही, पृ० ३७
१६४. वही, पृ० ४२
१६५. वही, पृ० ४७
१६६. वही, पृ० ३६
१६७. वही, पृ० ४८
१६८. वही, पृ० १३५
१६९. वही, पृ० ५०
१७०. नई दिशा —आरसी प्रसाद सिंह, पृ० ६८
१७१. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डॉ० शैल कुमारी, पृ० २२५
१७२. वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन —डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, पृ० ५४७
१७३. ग्राम्या —सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ८२
१७४. "यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर तो वह नारी उर के भीतर" —वही, पृ० ८२
१७५. विचार और विश्लेषण —डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उपसंहार

तुलसी भारतीय साहित्य के महान् कवि, समाज के सजग सुधारक और देश के सबसे बड़े समन्वयवादी लोकनायक माने गए हैं। उनकी सभी कृतियाँ, विशेष रूप से मानस केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, सामाजिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। यह कहना और भी उपयुक्त होगा कि एक धर्म ग्रन्थ के रूप में भी वह महती मान्यता प्राप्त कर श्रद्धालु भारतीय जनता के गहरे आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। फलतः मध्ययुगीन कवियों में जितना अधिक अध्ययन, मनन और परिशीलन उनके साहित्य का हुआ किसी अन्य कवि का नहीं।

तुलसी साहित्य में चित्रित विभिन्न नारी पात्र अपना अमर व्यक्तित्व लिये, आज भी भारतीय जनता के मन प्राणों को आकर्षित और पुलकित करते हैं किन्तु तुलसी की नारी भावना आलोचना और विवाद का विषय बनी हुई है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उसी के निराकरण का प्रयास, एक व्यापक, उदार, निष्पक्ष और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, उनके साहित्य के विशाल पट पर अंकित नारी के समग्र रूप को लेकर किया गया है।

तुलसी साहित्य में नारी के विविध रूपों के विस्तृत विश्लेषण से सुस्पष्ट हो जाता है कि तुलसी सामान्यतः नारी को आदर एवम् श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। तुलसी नारी की मातृ शक्ति के अनन्य उपासक दिखलाई पड़ते हैं। उन्होंने जगज्जननी महाशक्ति — महामाया नारी की, जो सम्पूर्ण संसार का पालन-पोषण और कल्याण करने वाली है, विमुग्ध भाव से पूजा और अर्चना की है तथा 'जननी सम जानहु पर नारी' की विशाल परिधियों में उन्होंने नारी मात्र को मातृत्व की महिमा से अभिमंडित कर उसको बहुत ऊँचे धरातल पर स्थित किया है। इसी प्रकार भगिनी, अनुज-वधू आदि सभी सम्बन्धों में पुत्रीत्व की सम्पूर्ण ऋजुता संजोकर, उसकी ओर पाप पंकिल दृष्टि डालने वाले के लिए वध के कठोर दंड का विधान बनाया। आज का साहित्यकार फ्रॉयड आदि मनोविज्ञान विशारदों के सिद्धान्त से प्रेरित, होकर पापवासना को भले ही जन्मजात प्रवृत्ति मानकर पतित पात्रों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करे परन्तु लोक नायक तुलसी की दृष्टि में वह व्यक्ति का अक्षम्य अपराध था।

तुलसी एक सजग सुधारक भी थे। अतः समाज के पाप और कालुष्य का पोषण उनके द्वारा सम्भव न था। समाज विध्वंसक व्यक्तित्व की, भले ही वह स्त्री हो अथवा पुरुष,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने समान रूप से निन्दा एवं भर्त्सना की है। अतः स्पष्ट है—कि केवल कुनारी ही उनकी निन्दा और कटु उक्तियों का लक्ष्य नहीं बनी है अपितु पुरुष जाति भी, अपने पतित रूप में, देव हो अथवा दानव, नर हो अथवा किन्नर, ब्राह्मण हो या शूद्र, राजा हो या ठाकुर —उनके द्वारा सभी व्यंग्यपूर्ण वाणी में निन्दनीय और भर्त्सनीय रहे हैं।

नारी-धर्म और आदर्शों के विषय में तुलसी ने परिभाषाएँ दी हैं, परन्तु वे सभी उनकी निजगत व्याख्याएँ नहीं मानी जा सकतीं। निगमागम सम्मत धर्म को ही उन्होंने ग्रहण किया है, फिर भी उनके ग्रहण और परित्याग में उनकी मौलिक अभिव्यंजनाएँ प्रस्फुटित हुई हैं, जो उनके नीर-क्षीर विवेक की ही परिचायक हैं। साहित्यिक परम्परा और सामाजिक परिस्थितियों के अनिवार्य प्रभाव के फलस्वरूप कुछ नारी निन्दक उक्तियों को अनुवाद रूप में अपने साहित्य में स्थान देने पर भी हमारा कवि नारी निन्दक अथवा नारी के प्रति अनुदार और अशालीन नहीं कहा जा सकता। तुलसी के द्वारा नारी का वासनामय, विध्वंसक, हिंसक, स्वार्थ पूर्ण और समाज तथा परिवार की पावन मान्यताओं को विशृंखलित करने वाला रूप ही निन्दनीय है अन्यथा उनके साहित्य में उनकी सुकोमल और पावन तूलिका से चित्रित नारी के गरिमामय और निष्कलंक चित्र सम्पूर्ण मध्ययुगीन साहित्य में तो दुर्लभ हैं ही, सम्पूर्ण हिन्दी और संस्कृत साहित्य में भी खोजने से शायद ही प्राप्त होंगे।

वस्तुतः तुलसी की नारी भावना को केवल उनकी कुछ नारी निन्दक उक्तियों के सन्दर्भ में देखना उनकी अन्तरात्मा के साथ अन्याय करना और अपने संकुचित एवं अनुदार दृष्टिकोण का परिचय देना ही है। तुलसी के नारी सम्बन्धी अथवा किसी भी क्षेत्र के विचारों को उनके विशिष्ट सन्दर्भों के साथ परखना ही न्याय संगत है, क्योंकि महाकाव्य में जीवन की नाना परिस्थितियों के मध्य विविध कर्मों, रूपों और विभिन्न व्यक्तियों का प्रकाशन होता है अतः किसी विशिष्ट प्रसंग में, किसी पात्र के जीवन की, किसी एक परिस्थिति अथवा मनःस्थिति में कही गई बात न तो उस पात्र के सम्पूर्ण जीवन पर लागू हो सकती है और न उसकी जाति पर ही। यद्यपि सूत्र, स्मृति और पुराण साहित्य के प्रभाव के फलस्वरूप कुछ नारी निन्दक कटु-उक्तियों को तुलसी ने अपने साहित्य में स्थापित किया है, तथापि प्रसंग, पात्र, स्थिति और अपने प्रबन्ध सौष्ठव के मध्य वे इस प्रकार सुनियोजित की गई हैं कि—कहीं केवल परिहास में, कहीं पात्र की मनोदशा और परिस्थिति के अनुसार उसकी कुंठा, ग्लानि अथवा जड़ता की अभिव्यंजना में और कहीं केवल असत् पात्रों के संदर्भ में नारी के पतित् रूप को लक्षित करते हुए ही प्रयुक्त हुई हैं। अतः निश्चय ही तुलसी को नारी निन्दक मानकर नारी विरोधी के रूप में उद्घोषित नहीं किया जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रत्येक युग में नारी, साहित्य और समाज का अभिन्न अंश रही है और सदा रहेगी। समाज और साहित्य से नारी को पृथक् करने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। ब्रह्मा ने अपने को द्विधा विभक्त करके स्त्री और पुरुष का निर्माण किया। अतः नर और नारी एक दूसरे के पूरक हैं। तुलसी ने अपने सरस स्वरों में इसका उद्घोष करते हुए उन्हें वाणी तथा उसके अर्थ, जल और उसकी लहर, सूर्य और उसकी प्रभा, चन्द्र और उसकी चन्द्रिका के समान अभिन्न और एकात्म कहा है। फिर भी जैसे प्रत्येक वस्तु के श्याम और शुभ्र दो पक्ष होते हैं, नारी के भी सत्त्व गुणों से अभिमंडित और असद् प्रवृत्तियों से परिपूरित पावन और पतित दो रूप हैं, जो प्रत्येक युग में प्रत्येक कलाकार की तूलिका से प्रशंसनीय और निन्दनीय रूप में अंकित किए गए हैं।

तुलसी साहित्य में भी नारी के दोनों रूप चित्रित किए गए हैं। सत्त्व-गुण-युक्त नारी उनकी सम्पूर्ण श्रद्धा, आदर और सम्मान को प्राप्त कर उनके साधुवाद की अधिकारिणी बनी है और असत् मनोवृत्तियों से युक्त अपने दोषों तथा दुर्बलताओं के फलस्वरूप कुनारी की संज्ञा से विभूषित की जाकर निन्दा की पात्री भी रही है जिसे अनपेक्षित नहीं कहा जा सकता।

तुलसी की नारी भावना और उनके पूर्ववर्ती, परवर्ती और समकालीन साहित्य की नारी भावना से तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट हो गया है कि मध्ययुगीन साहित्य की विशृंखलित परिस्थितियों के मध्य भी तुलसी ने नारी के जिन भव्य चित्रों का अंकन किया है, वह वस्तुतः अनुपम और अनूठे हैं।

तुलसी की नारी वैदिक कालीन संस्कृति में स्थित नारी के समकक्ष तथा सूत्र-स्मृति पुराण और संत कवियों की नारी से बहुत श्रेष्ठ है। रीतिकालीन काव्य की नारी जो केवल भोग की निर्जीव सामग्री के समान, विलास की लहरों पर तरंगित होने वाली केवल एक 'टाइप' के रूप में व्यक्तित्वहीन पात्र थी; तुलसी के सजीव और गरिमामय चरित्रों के समक्ष रख कर देखी ही नहीं जा सकती। आधुनिक काव्य में अंकित नारी के सत् रूप के समकक्ष भी तुलसी की नारी का सत् स्वरूप हेय और तुच्छ नहीं कहा जा सकता। असत् रूप का अंकन करते समय आज के युग का उद्बुद्ध मस्तिष्क जब नारी उर में स्वर्ग और उसके स्वरूप में श्रद्धा का प्रतिरूप देखकर भी, उसे एक छलना और उसके अन्तरतम में नरक की अनुभूति करता है; उसमें फुंकारती नागिन और अतृप्त वासनाओं के आधार पर भूखी बाघिन की कल्पना प्रस्तुत करता है तब वस्तुतः असीम आश्चर्य होता है। इसके सम्मुख तुलसी की नारी निन्दा नगण्य है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने समान रूप से निन्दा एवं भर्त्सना की है। अतः स्पष्ट है—कि केवल कुनारी ही उनकी निन्दा और कटु उक्तियों का लक्ष्य नहीं बनी है अपितु पुरुष जाति भी, अपने पतित रूप में, देव हो अथवा दानव, नर हो अथवा किन्नर, ब्राह्मण हो या शूद्र, राजा हो या ठाकुर —उनके द्वारा सभी व्यंग्यपूर्ण वाणी में निन्दनीय और भर्त्सनीय रहे हैं।

नारी-धर्म और आदर्शों के विषय में तुलसी ने परिभाषाएँ दी हैं, परन्तु वे सभी उनकी निजगत व्याख्याएँ नहीं मानी जा सकतीं। निगमागम सम्मत धर्म को ही उन्होंने ग्रहण किया है, फिर भी उनके ग्रहण और परित्याग में उनकी मौलिक अभिव्यंजनाएँ प्रस्फुटित हुई हैं, जो उनके नीर-क्षीर विवेक की ही परिचायक हैं। साहित्यिक परम्परा और सामाजिक परिस्थतियों के अनिवार्य प्रभाव के फलस्वरूप कुछ नारी निन्दक उक्तियों को अनुवाद रूप में अपने साहित्य में स्थान देने पर भी हमारा कवि नारी निन्दक अथवा नारी के प्रति अनुदार और अशालीन नहीं कहा जा सकता। तुलसी के द्वारा नारी का वासनामय, विध्वंसक, हिंसक, स्वार्थ पूर्ण और समाज तथा परिवार की पावन मान्यताओं को विशृंखलित करने वाला रूप ही निन्दनीय है अन्यथा उनके साहित्य में उनकी सुकोमल और पावन तूलिका से चित्रित नारी के गरिमामय और निष्कलंक चित्र सम्पूर्ण मध्ययुगीन साहित्य में तो दुर्लभ हैं ही, सम्पूर्ण हिन्दी और संस्कृत साहित्य में भी खोजने से शायद ही प्राप्त होंगे।

वस्तुतः तुलसी की नारी भावना को केवल उनकी कुछ नारी निन्दक उक्तियों के सन्दर्भ में देखना उनकी अन्तरात्मा के साथ अन्याय करना और अपने संकुचित एवं अनुदार दृष्टिकोण का परिचय देना ही है। तुलसी के नारी सम्बन्धी अथवा किसी भी क्षेत्र के विचारों को उनके विशिष्ट सन्दर्भों के साथ परखना ही न्याय संगत है, क्योंकि महाकाव्य में जीवन की नाना परिस्थितियों के मध्य विविध कर्मों, रूपों और विभिन्न व्यक्तियों का प्रकाशन होता है अतः किसी विशिष्ट प्रसंग में, किसी पात्र के जीवन की, किसी एक परिस्थिति अथवा मनःस्थिति में कही गई बात न तो उस पात्र के सम्पूर्ण जीवन पर लागू हो सकती है और न उसकी जाति पर ही। यद्यपि सूत्र, स्मृति और पुराण साहित्य के प्रभाव के फलस्वरूप कुछ नारी निन्दक कटु-उक्तियों को तुलसी ने अपने साहित्य में स्थापित किया है, तथापि प्रसंग, पात्र, स्थिति और अपने प्रबन्ध सौष्ठव के मध्य वे इस प्रकार सुनियोजित की गई हैं कि—कहीं केवल परिहास में, कहीं पात्र की मनोदशा और परिस्थिति के अनुसार उसकी कुंठा, ग्लानि अथवा जड़ता की अभिव्यंजना में और कहीं केवल असत् पात्रों के संदर्भ में नारी के पतित् रूप को लक्षित करते हुए ही प्रयुक्त हुई हैं। अतः निश्चय ही तुलसी को नारी निन्दक मानकर नारी विरोधी के रूप में उद्घोषित नहीं किया जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रत्येक युग में नारी, साहित्य और समाज का अभिन्न अंश रही है और सदा रहेगी। समाज और साहित्य से नारी को पृथक् करने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। ब्रह्मा ने अपने को द्विधा विभक्त करके स्त्री और पुरुष का निर्माण किया। अतः नर और नारी एक दूसरे के पूरक हैं। तुलसी ने अपने सरस स्वरों में इसका उद्घोष करते हुए उन्हें वाणी तथा उसके अर्थ, जल और उसकी लहर, सूर्य और उसकी प्रभा, चन्द्र और उसकी चन्द्रिका के समान अभिन्न और एकात्म कहा है। फिर भी जैसे प्रत्येक वस्तु के श्याम और शुभ्र दो पक्ष होते हैं, नारी के भी सत्त्व गुणों से अभिमंडित और असद् प्रवृत्तियों से परिपूरित पावन और पतित दो रूप हैं, जो प्रत्येक युग में प्रत्येक कलाकार की तूलिका से प्रशंसनीय और निन्दनीय रूप में अंकित किए गए हैं।

तुलसी साहित्य में भी नारी के दोनों रूप चित्रित किए गए हैं। सत्त्व-गुण-युक्त नारी उनकी सम्पूर्ण श्रद्धा, आदर और सम्मान को प्राप्त कर उनके साधुवाद की अधिकारिणी बनी है और असत् मनोवृत्तियों से युक्त अपने दोषों तथा दुर्बलताओं के फलस्वरूप कुनारी की संज्ञा से विभूषित की जाकर निन्दा की पात्री भी रही है जिसे अनपेक्षित नहीं कहा जा सकता।

तुलसी की नारी भावना और उनके पूर्ववर्ती, परवर्ती और समकालीन साहित्य की नारी भावना से तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट हो गया है कि मध्ययुगीन साहित्य की विशृंखलित परिस्थितियों के मध्य भी तुलसी ने नारी के जिन भव्य चित्रों का अंकन किया है, वह वस्तुतः अनुपम और अनूठे हैं।

तुलसी की नारी वैदिक कालीन संस्कृति में स्थित नारी के समकक्ष तथा सूत्र-स्मृति पुराण और संत कवियों की नारी से बहुत श्रेष्ठ है। रीतिकालीन काव्य की नारी जो केवल भोग की निर्जीव सामग्री के समान, विलास की लहरों पर तरंगित होने वाली केवल एक 'टाइप' के रूप में व्यक्तित्वहीन पात्र थी; तुलसी के सजीव और गरिमामय चरित्रों के समक्ष रख कर देखी ही नहीं जा सकती। आधुनिक काव्य में अंकित नारी के सत् रूप के समकक्ष भी तुलसी की नारी का सत् स्वरूप हेय और तुच्छ नहीं कहा जा सकता। असत् रूप का अंकन करते समय आज के युग का उद्बुद्ध मस्तिष्क जब नारी उर में स्वर्ग और उसके स्वरूप में श्रद्धा का प्रतिरूप देखकर भी, उसे एक छलना और उसके अन्तरतम में नरक की अनुभूति करता है; उसमें फुंकारती नागिन और अतृप्त वासनाओं के आधार पर भूखी बाघिन की कल्पना प्रस्तुत करता है तब वस्तुतः असीम आश्चर्य होता है। इसके सम्मुख तुलसी की नारी निन्दा नगण्य है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी ने अपने श्रेष्ठ नारी पात्रों में जिन प्रांजल आदर्शों का विकास किया है, वास्तव में वही अभ्यर्थनीय और प्रशंसनीय हैं। तुलसी ने सर्वत्र ही नारी को शाश्वत मातृत्व से युक्त उसके स्नेह, ममता, कर्तव्य और उत्सर्ग से परिपूरित आदर्श की रेखाओं पर विकसित होने वाले सत् स्वरूप को कल्याण और मंगल का प्रतीक माना है। उन्होंने माया का केवल अविद्या रूप ही नहीं देखा था अपितु वे उसके दूसरे उज्ज्वल पक्ष आदिशक्ति, महामाया के प्रति भी नतमस्तक हुए हैं। पावन भावनाओं और सद् मनोवृत्तियों से युक्त नारी के लौकिक रूप को भी उन्होंने दृढ़ पतिव्रत, वासना रहित पावन प्रणय और दया, क्षमा, प्रेम, त्याग एवं उत्सर्ग आदि के दिव्य गुणों से परिपूरित देखा है। अतः माता, पत्नी, कुल-वधू, पुत्री, प्रेयसी और प्रणयिनी, सखी और परिचारिका रूप में भी, वह श्रद्धा, मान, आदर, स्नेह, प्रेम और सम्मान की अधिकारिणी बनी है। तुलसी ने केवल व्यक्ति —नारी को ही श्रेष्ठ और सुंदर अंकित नहीं किया है वरन् सम्पूर्ण नारी समाज का समग्र रूप से चित्रण करते हुए भी उसका सुकोमल रूप ही अंकित किया है। जनकपुर की सुन्दर नारियाँ, सीता की सखियाँ, अयोध्या नगरी की सुचतुर नागरिकाएँ और वन पथ पर बसे ग्रामों की भोली भाली ग्राम वधुएँ तथा कोल भील आदि की कन्याएँ भी—सभी पावन और सरल भावनाओं से परिपूरित, निर्मल सहज-स्वच्छन्द और मंगलमयी हैं।

तुलसी ने परिवार में पिता को गृहस्वामी मानते हुए भी सन्तान के लिए माता को ही पिता से श्रेष्ठ स्थान की अधिकारिणी माना है। परिवार में कन्या जन्म और पुत्रोत्पत्ति समान रूप से हर्ष और उल्लास का कारण माने हैं। कुल-वधू और कुल-कन्या समान रूप से स्नेह और दुलार की अधिकारिणी हैं। पत्नी, पति की चिर सहचरी, उसके हृदय की एकमात्र अधिकारिणी, अभिन्न और एकात्म है, परिवार में उसका स्थान महत्त्वपूर्ण और गरिमामय है। इस प्रकार परिवार में नारी स्नेह, प्रेम, ममता और सौहार्द के सूत्र में बंधी महत्त्वपूर्ण स्थान पर अवस्थित है। केवल परिवार में ही नहीं, राजनीति, धर्म और समाज में भी विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी दिखलाई पड़ती है। राजनीति के क्षेत्र में उसका परामर्श अपेक्षित और मान्य रहा है। धर्म और भक्ति के क्षेत्र में उसे ज्ञान, तप, भक्ति तथा व्यक्तिगत साधना के समस्त अधिकार प्रदान किए गए हैं।

तुलसी साहित्य में चित्रित समाज में बाल-विवाह, सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा और बहु-पत्नी प्रथा जैसी कुप्रथाओं को, जो नारी की पतितावस्था की परिचायक है कोई प्रश्रय नहीं दिया गया है। बलात्कार आदि के गर्हित और विशिष्ट प्रसंगों का उल्लेख भी उन्होंने कहीं नहीं किया है। तुलसी का समाज नैतिक मान्यताओं पर आधारित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवन के स्वस्थ रूप का प्रदर्शन करता है। स्त्री के लिए पतिव्रत धर्म के साथ-ही-साथ उन्होंने पुरुष के लिए एक पत्नीव्रत नियम के आदर्श का निरूपण करके निष्पक्ष और उदार भाव का परिचय दिया है।

तुलसी साहित्य में लगभग सभी नारी पात्र, एक दो को छोड़कर, सन्तोन्मुखी हैं। सभी नारी पात्रों में सुन्दर और श्रेष्ठ भावनाओं का परिपाक, नारी-जाति के प्रति तुलसी की उदारता और समादर का परिचायक है। उनके सभी नारी पात्र सजीव सचेतन और महत्त्वपूर्ण हैं। जिनका व्यक्तित्व भव्य और उन्नत है। कौशल्या का शाश्वत मातृत्व, सुमित्रा का उल्लेखनीय त्याग और उत्सर्ग, मैना, सुनयना, मन्दोदरी और तारा की विवेकशीलता और प्रभावपूर्ण गृहिणीत्व, सती एवम् पार्वती का तप-तेज से परिपूरित अमर पतिव्रत और भक्त शिरोमणि शबरी की पावन और अनन्य भक्ति एवम् साध्वी विदुषी और सौम्य अनसूया की ज्ञान के तेज से अभिमंडित तपस्वी जीवन की साधना —सभी तुलसी की भव्य तूलिका से अत्यन्त अनुपम रूप में अंकित हुए हैं और सीता ! पति और पितृ कुल को पवित्र करने वाले पावन पुत्रीत्व, शील संयुक्त, कुलवधूत्व, गरिमामय पत्नीत्व और महिमामय मातृत्व एवम् दैवी सतेज सौन्दर्य तथा अभ्यंतर के सम्पूर्ण सुकोमल वैभव से अभिसिंचित पूर्णतम नारीत्व की परिसीमा हैं। सीता युग-युगों से भारतीय जनता के विमुग्ध आकर्षण का केन्द्र रही हैं। सीता अपने गरिमामय और भव्य व्यक्तित्व के कारण केवल भारतीय दृष्टि को ही नहीं अपितु पाश्चात्य विद्वान् और सहृदय विचारक डॉ० ग्रियर्सन की दृष्टि को भी विमुग्ध बनाए है। सीता में परिपूर्ण नारीत्व को देखकर "Sita the perfect woman nobly planned" कहकर उन्होंने तुलसी की अभ्यर्थना की है। यदि तुलसी नारी के प्रति वास्तविक रूप से अनुदार और असहिष्णु होते तो निश्चय ही ऐसे भव्य नारी चरित्र अंकित न कर पाते जो पूर्वी और पश्चिमी सभी आलोचकों के द्वारा मुग्ध भाव से सराहनीय हैं।

इस प्रकार निष्पक्ष भाव से विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी साहित्य के विशाल पट पर अंकित —तुलसी के सर्वांगी, सर्वपक्षीय और विस्तृत दृष्टिकोण के समक्ष उनकी नारी की आदर्श रूप रेखा—सत्यं शिवं और सुन्दरम् से परिपूरित है।

❁❁❁

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी ने अपने श्रेष्ठ नारी पात्रों में जिन प्रांजल आदर्शों का विकास किया है, वास्तव में वही अभ्यर्थनीय और प्रशंसनीय हैं। तुलसी ने सर्वत्र ही नारी को शाश्वत मातृत्व से युक्त उसके स्नेह, ममता, कर्तव्य और उत्सर्ग से परिपूरित आदर्श की रेखाओं पर विकसित होने वाले सत् स्वरूप को कल्याण और मंगल का प्रतीक माना है। उन्होंने माया का केवल अविद्या रूप ही नहीं देखा था अपितु वे उसके दूसरे उज्ज्वल पक्ष आदिशक्ति, महामाया के प्रति भी नतमस्तक हुए हैं। पावन भावनाओं और सद् मनोवृत्तियों से युक्त नारी के लौकिक रूप को भी उन्होंने दृढ़ पतिव्रत, वासना रहित पावन प्रणय और दया, क्षमा, प्रेम, त्याग एवं उत्सर्ग आदि के दिव्य गुणों से परिपूरित देखा है। अतः माता, पत्नी, कुल-वधू, पुत्री, प्रेयसी और प्रणयिनी, सखी और परिचारिका रूप में भी, वह श्रद्धा, मान, आदर, स्नेह, प्रेम और सम्मान की अधिकारिणी बनी है। तुलसी ने केवल व्यक्ति —नारी को ही श्रेष्ठ और सुंदर अंकित नहीं किया है वरन् सम्पूर्ण नारी समाज का समग्र रूप से चित्रण करते हुए भी उसका सुकोमल रूप ही अंकित किया है। जनकपुर की सुन्दर नारियाँ, सीता की सखियाँ, अयोध्या नगरी की सुचतुर नागरिकाएँ और वन पथ पर बसे ग्रामों की भोली भाली ग्राम वधुएँ तथा कोल भील आदि की कन्याएँ भी—सभी पावन और सरल भावनाओं से परिपूरित, निर्मल सहज-स्वच्छन्द और मंगलमयी हैं।

तुलसी ने परिवार में पिता को गृहस्वामी मानते हुए भी सन्तान के लिए माता को ही पिता से श्रेष्ठ स्थान की अधिकारिणी माना है। परिवार में कन्या जन्म और पुत्रोत्पत्ति समान रूप से हर्ष और उल्लास का कारण माने हैं। कुल-वधू और कुल-कन्या समान रूप से स्नेह और दुलार की अधिकारिणी हैं। पत्नी, पति की चिर सहचरी, उसके हृदय की एकमात्र अधिकारिणी, अभिन्न और एकात्म है, परिवार में उसका स्थान महत्त्वपूर्ण और गरिमामय है। इस प्रकार परिवार में नारी स्नेह, प्रेम, ममता और सौहार्द के सूत्र में बंधी महत्त्वपूर्ण स्थान पर अवस्थित है। केवल परिवार में ही नहीं, राजनीति, धर्म और समाज में भी विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी दिखलाई पड़ती है। राजनीति के क्षेत्र में उसका परामर्श अपेक्षित और मान्य रहा है। धर्म और भक्ति के क्षेत्र में उसे ज्ञान, तप, भक्ति तथा व्यक्तिगत साधना के समस्त अधिकार प्रदान किए गए हैं।

तुलसी साहित्य में चित्रित समाज में बाल-विवाह, सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा और बहु-पत्नी प्रथा जैसी कुप्रथाओं को, जो नारी की पतितावस्था की परिचायक है कोई प्रश्रय नहीं दिया गया है। बलात्कार आदि के गर्हित और विशिष्ट प्रसंगों का उल्लेख भी उन्होंने कहीं नहीं किया है। तुलसी का समाज नैतिक मान्यताओं पर आधारित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवन के स्वस्थ रूप का प्रदर्शन करता है। स्त्री के लिए पतिव्रत धर्म के साथ-ही-साथ उन्होंने पुरुष के लिए एक पत्नीव्रत नियम के आदर्श का निरूपण करके निष्पक्ष और उदार भाव का परिचय दिया है।

तुलसी साहित्य में लगभग सभी नारी पात्र, एक दो को छोड़कर, सन्तोन्मुखी हैं। सभी नारी पात्रों में सुन्दर और श्रेष्ठ भावनाओं का परिपाक, नारी-जाति के प्रति तुलसी की उदारता और समादर का परिचायक है। उनके सभी नारी पात्र सजीव सचेतन और महत्त्वपूर्ण हैं। जिनका व्यक्तित्व भव्य और उन्नत है। कौशल्या का शाश्वत मातृत्व, सुमित्रा का उल्लेखनीय त्याग और उत्सर्ग, मैना, सुनयना, मन्दोदरी और तारा की विवेकशीलता और प्रभावपूर्ण गृहिणीत्व, सती एवम् पार्वती का तप-तेज से परिपूरित अमर पतिव्रत और भक्त शिरोमणि शबरी की पावन और अनन्य भक्ति एवम् साध्वी विदुषी और सौम्य अनसूया की ज्ञान के तेज से अभिमंडित तपस्वी जीवन की साधना —सभी तुलसी की भव्य तूलिका से अत्यन्त अनुपम रूप में अंकित हुए हैं और सीता ! पति और पितृ कुल को पवित्र करने वाले पावन पुत्रीत्व, शील संयुक्त, कुलवधूत्व, गरिमामय पत्नीत्व और महिमामय मातृत्व एवम् दैवी सतेज सौन्दर्य तथा अभ्यंतर के सम्पूर्ण सुकोमल वैभव से अभिसिंचित पूर्णतम नारीत्व की परिसीमा हैं। सीता युग-युगों से भारतीय जनता के विमुग्ध आकर्षण का केन्द्र रही हैं। सीता अपने गरिमामय और भव्य व्यक्तित्व के कारण केवल भारतीय दृष्टि को ही नहीं अपितु पाश्चात्य विद्वान् और सहृदय विचारक डॉ० ग्रियर्सन की दृष्टि को भी विमुग्ध बनाए है। सीता में परिपूर्ण नारीत्व को देखकर "Sita the perfect woman nobly planned" कहकर उन्होंने तुलसी की अभ्यर्थना की है। यदि तुलसी नारी के प्रति वास्तविक रूप से अनुदार और असहिष्णु होते तो निश्चय ही ऐसे भव्य नारी चरित्र अंकित न कर पाते जो पूर्वी और पश्चिमी सभी आलोचकों के द्वारा मुग्ध भाव से सराहनीय हैं।

इस प्रकार निष्पक्ष भाव से विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी साहित्य के विशाल पट पर अंकित —तुलसी के सर्वांगी, सर्वपक्षीय और विस्तृत दृष्टिकोण के समक्ष उनकी नारी की आदर्श रूप रेखा—सत्यं शिवं और सुन्दरम् से परिपूरित है।

❁❁❁

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. मूल ग्रन्थ

(क) तुलसी साहित्य

१. रामचरितमानस और उसकी टीकाएँ

(अ) हनुमान् प्रसाद पोद्दार —गीता प्रेस, गोरखपुर

(आ) काशी नागरी प्रचारिणी सभा

(इ) डॉ० माताप्रसाद गुप्त

(ई) राम नरेश त्रिपाठी

(उ) ज्वाला प्रसाद मिश्र

(ऊ) विजयानन्द त्रिपाठी

(ए) अंजनी नंदन शरण —मानस पीयूष

(ऐ) डगलस हि डब्लू० पी० —मानस का अंग्रेजी अनुवाद

(ओ) विशप एटकिन्स —मानस का अंग्रेजी पद्यानुवाद —हिन्दुस्तान टाइम्स सं० १९९५

२. दोहावली —सं० हनुमान् प्रसाद पोद्दार —गीता प्रेस गोरखपुर तृ० सं० सम्वत् २०००

३. गीतावली —अनुवादक मुनिलाल —गीता प्रेस गोरखपुर तृ० सं० सम्वत् २००४

४. कवितावली —लाला भगवान दीन —इलाहाबाद सं० २००२

५. विनय पत्रिका और उसकी टीकाएँ

(अ) वियोगी हरि —प्रयाग —दूसरा संस्करण सं० १९८३

(आ) तपेश कुमार चतुर्वेदी —आलोचना —विनोद पुस्तक मंदिर —आगरा सं० १९५४

(इ) लाला भगवान्दीन

६. रामलला नहछू —सद्गुरु शरण अवस्थी —तुलसी के चार दल —प्रथम संस्करण, प्रयाग सं० १९३५

७. बरवै रामायण

८. पार्वती मंगल

९. जानकी मंगल

१०. वैराग्य संदीपनी-काशी नागरी प्रचारिणी सभा —बनारस सं० १९८०

११. रामज्ञा प्रश्न

१२. श्रीकृष्ण गीतावली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(ख) वैदिक वाङ्मय

१. ऋग्वेद —स्वाध्याय मंडल
२. यजुर्वेद —स्वाध्याय मंडल
३. सामवेद —स्वाध्याय मंडल
४. अथर्ववेद —स्वाध्याय मंडल
५. काठक संहिता —स्वाध्याय मंडल —औन्य, १९४३
६. तैत्तिरीय संहिता —स्वाध्याय मंडल —औन्य, १९४५
७. मैत्रायणी संहिता —स्वाध्याय मंडल —औन्य सं० १९९८
८. यजुर्वेद संहिता
९. ऐतरेय ब्राह्मण —आनन्द आश्रम पूना, १८९६ वि०
१०. शतपथ ब्राह्मण —वैदिक यंत्रालय —अजमेर १९०२
११. तैतिरीय ब्राह्मण —आनन्द आश्रम —संस्कृत ग्रन्थावली पूना
१२. पंचविश ब्राह्ममण —विब्लियोथिका इंडिका कलकत्ता, १९३१

(ग) गृह्य तथा धर्म सूत्र

१. बौधायन धर्मसूत्र —चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, बनारस १९३४
२. वशिष्ठ धर्मसूत्र —गर्वनमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, बम्बई १८८३
३. मीमांसा सूत्र

(घ) बौद्ध वाङ्मय

१. अनुभिरत जातक
२. अंडभूत जातक
३. असात मन्त जातक
४. चुल्लपदुम जातक
५. जातक दाम्मपद
६. दीघनिकाय
७. बन्धन मोक्ख जातक
८. मदन्त आनन्द कोसल्यवान जातक
९. महापदुम जातक
१०. बुद्ध चर्या —राहुल सांस्कृत्यायन

(ड) पुराण व स्मृति

१. ब्रह्म वैवर्त पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. मूल ग्रन्थ

(क) तुलसी साहित्य

१. रामचरितमानस और उसकी टीकाएँ

(अ) हनुमान् प्रसाद पोद्दार —गीता प्रेस, गोरखपुर

(आ) काशी नागरी प्रचारिणी सभा

(इ) डॉ० माताप्रसाद गुप्त

(ई) राम नरेश त्रिपाठी

(उ) ज्वाला प्रसाद मिश्र

(ऊ) विजयानन्द त्रिपाठी

(ए) अंजनी नंदन शरण —मानस पीयूष

(ऐ) डगलस हि डब्लू० पी० —मानस का अंग्रेजी अनुवाद

(ओ) विशप एटकिन्स —मानस का अंग्रेजी पद्यानुवाद —हिन्दुस्तान टाइम्स सं० १९९५

२. दोहावली —सं० हनुमान् प्रसाद पोद्दार —गीता प्रेस गोरखपुर तृ० सं० सम्वत् २०००

३. गीतावली —अनुवादक मुनिलाल —गीता प्रेस गोरखपुर तृ० सं० सम्वत् २००४

४. कवितावली —लाला भगवान दीन —इलाहाबाद सं० २००२

५. विनय पत्रिका और उसकी टीकाएँ

(अ) वियोगी हरि —प्रयाग —दूसरा संस्करण सं० १९८३

(आ) तपेश कुमार चतुर्वेदी —आलोचना —विनोद पुस्तक मंदिर —आगरा सं० १९५४

(इ) लाला भगवान्दीन

६. रामलला नहछू —सद्गुरु शरण अवस्थी —तुलसी के चार दल —प्रथम संस्करण, प्रयाग सं० १९३५

७. बरवै रामायण

८. पार्वती मंगल

९. जानकी मंगल

१०. वैराग्य संदीपनी-काशी नागरी प्रचारिणी सभा —बनारस सं० १९८०

११. रामज्ञा प्रश्न

१२. श्रीकृष्ण गीतावली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(ख) वैदिक वाङ्मय

१. ऋग्वेद —स्वाध्याय मंडल
२. यजुर्वेद —स्वाध्याय मंडल
३. सामवेद —स्वाध्याय मंडल
४. अथर्ववेद —स्वाध्याय मंडल
५. काठक संहिता —स्वाध्याय मंडल —औन्य, १९४३
६. तैत्तिरीय संहिता —स्वाध्याय मंडल —औन्य, १९४५
७. मैत्रायणी संहिता —स्वाध्याय मंडल —औन्य सं० १९९८
८. यजुर्वेद संहिता
९. ऐतरेय ब्राह्मण —आनन्द आश्रम पूना, १८९६ वि०
१०. शतपथ ब्राह्मण —वैदिक यंत्रालय —अजमेर १९०२
११. तैतिरीय ब्राह्मण —आनन्द आश्रम —संस्कृत ग्रन्थावली पूना
१२. पंचविश ब्राह्ममण —विब्लियोथिका इंडिका कलकत्ता, १९३१

(ग) गृह्य तथा धर्म सूत्र

१. बौधायन धर्मसूत्र —चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, बनारस १९३४
२. वशिष्ठ धर्मसूत्र —गर्वनमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, बम्बई १८८३
३. मीमांसा सूत्र

(घ) बौद्ध वाङ्मय

१. अनुभिरत जातक
२. अंडभूत जातक
३. असात मन्त जातक
४. चुल्लपदुम जातक
५. जातक दाम्मपद
६. दीघनिकाय
७. बन्धन मोक्ख जातक
८. मदन्त आनन्द कोसल्यवान जातक
९. महापदुम जातक
१०. बुद्ध चर्या —राहुल सांस्कृत्यायन

(ड) पुराण व स्मृति

१. ब्रह्म वैवर्त पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२. भागवत् पुराण — निर्णय सागर, बम्बई
३. मत्स्य पुराण — आनन्दाश्रम, पूना
४. स्कन्द पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
५. विष्णु पुराण — गोपाल नारायण कम्पनी, बम्बई
६. शिव — पुराण
७. पाराशर स्मृति — बिबलियोथिका इंडिका कलकत्ता —शकाब्द १९११
८. मनु स्मृति — निर्णय सागर प्रेस —१९२९
९. नारद स्मृति — बिबलियोथिका इंडिका, कलकत्ता
१०. याज्ञ वल्क्य स्मृति — आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना —१९०४
११. शंख स्मृति — गायकवाड़ ओरियन्टल — सीरीज

(च) संस्कृत के अन्य ग्रन्थ व काव्य

१. अभिज्ञान शाकुन्तलम् — कालिदास — निर्णय सागर प्रेस — बम्बई
२. महाभारत — ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट — पूना
३. टीकात्र्य (तिलक-भूषण-शिरोमणि) गुजराती प्रिंटिंग प्रेस — बम्बई
४. वाल्मीकि रामायण — हिन्दी अनुवाद —द्वारका प्रसाद मिश्र १९५०
५. श्रीमद्भागवत — गीता प्रेस, गोरखपुर
६. कुमारसम्भव — कालिदास — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
७. रघुवंशम — कालिदास — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई (१९४८)
८. पंचतंत्र — विष्णु शर्मा —ओरियन्टल बुक एजेन्सी —पूना (१९३०)
९. उत्तर रामचरित — भवभूति — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
१०. वैराग्य शतक — भर्तहरि

(छ) वीर-काव्य

१. गोरा बादल की कथा — जटमल सं० श्री अयोध्या प्रसाद —प्रयाग १९३४
२. छत्र प्रकाश — लाल — सं० बाबू श्यामसुन्दर दास —काशी — १९११
३. छत्रसाल ग्रन्थावली — वियोगि हरि
४. भूषण ग्रन्थावली —भूषण — सं० हरिऔध
५. वीर सिंह देवचरित — केशव — प्रयाग सं० १९१३

(ज) संत साहित्य

१. कबीर ग्रन्थावली — सं० बाबू श्यामसुन्दर दास — प्रयाग (१९३८)
२. कबीर वचनामृत — सं० मुंशीराम शर्मा
३. संत दर्शन — त्रिलोकी नारायण दीक्षित — कानपुर (१९५३)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

४. संतवानी संग्रह — वेलवेडियर प्रेस, १९३२
५. संत सुधासार — सं० वियोगी हरि, १९५३
६. सुन्दर दास ग्रन्थावली — सुन्दर दास — राजस्थान रिसर्च सोसायटी कलकत्ता — १९३६
७. सूरसागर — नन्ददुलारे वाजपेयी

(झ) सूफी रचनाएँ

१. इन्द्रावती — नूर मोहम्मद
२. चित्रावती उस्मान — सं० जगमोहन
३. जायसी ग्रन्थावली — सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद — १९५२
४. पद्मावत — मलिक मोहम्मद जायसी

(ञ) रीतिकालीन साहित्य

१. केशव — रामचन्द्र चन्द्रिका — सं० लाला भगवानदीन, सं० २००१
२. केशव — वीर सिंह देवचरित
३. बिहारी — बिहारी सतसई
४. मतिराम — मतिराम ग्रन्थावली — कृष्ण बिहारी मिश्र, द्वि० सं०, १९३४
५. सेनापति — कवित्त रत्नाकर —उमाशंकर शुक्ल

(ट) आधुनिक साहित्य

१. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — चुभते चौपदे — प्रथम संस्करण, १९२४
२. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — चोखे चौपदे — प्रथम संस्करण, १९२४
३. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — वैदेही वनवास — द्वितीय संस्करण, १९४६
४. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — रस कलस — द्वितीय संस्करण, १९३१
५. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — प्रिय प्रवास — चतुर्थ संस्करण
६. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — कल्प लता
७. आरसी प्रसाद सिंह — आरसी — प्रथम संस्करण, १९४२
८. जयशंकर प्रसाद — चित्राधार — द्वितीय संस्करण, १९२८
९. जयशंकर प्रसाद — आँसू — प्रथम संस्करण, १९३५
१०. जयशंकर प्रसाद — झरना — द्वितीय संस्करण, १९२७
११. जयशंकर प्रसाद — लहर— प्रथम संस्करण, १९३५
१२. जयशंकर प्रसाद — कामायनी — चतुर्थ संस्करण, १९४३
१३. तोरन देवी लली — जागृति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२. भागवत् पुराण — निर्णय सागर, बम्बई
३. मत्स्य पुराण — आनन्दाश्रम, पूना
४. स्कन्द पुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
५. विष्णु पुराण — गोपाल नारायण कम्पनी, बम्बई
६. शिव — पुराण
७. पाराशर स्मृति — बिबलियोथिका इंडिका कलकत्ता —शकाब्द १९११
८. मनु स्मृति — निर्णय सागर प्रेस —१९२९
९. नारद स्मृति — बिबलियोथिका इंडिका, कलकत्ता
१०. याज्ञ वल्क्य स्मृति — आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना —१९०४
११. शंख स्मृति — गायकवाड़ ओरियन्टल — सीरीज

(च) संस्कृत के अन्य ग्रन्थ व काव्य

१. अभिज्ञान शाकुन्तलम् — कालिदास — निर्णय सागर प्रेस — बम्बई
२. महाभारत — ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट — पूना
३. टीकात्र्य (तिलक-भूषण-शिरोमणि) गुजराती प्रिंटिंग प्रेस — बम्बई
४. वाल्मीकि रामायण — हिन्दी अनुवाद —द्वारका प्रसाद मिश्र १९५०
५. श्रीमद्भागवत — गीता प्रेस, गोरखपुर
६. कुमारसम्भव — कालिदास — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
७. रघुवंशम — कालिदास — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई (१९४८)
८. पंचतंत्र — विष्णु शर्मा —ओरियन्टल बुक एजेन्सी —पूना (१९३०)
९. उत्तर रामचरित — भवभूति — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
१०. वैराग्य शतक — भर्तहरि

(छ) वीर-काव्य

१. गोरा बादल की कथा — जटमल सं० श्री अयोध्या प्रसाद —प्रयाग १९३४
२. छत्र प्रकाश — लाल — सं० बाबू श्यामसुन्दर दास —काशी — १९११
३. छत्रसाल ग्रन्थावली — वियोगि हरि
४. भूषण ग्रन्थावली —भूषण — सं० हरिऔध
५. वीर सिंह देवचरित — केशव — प्रयाग सं० १९१३

(ज) संत साहित्य

१. कबीर ग्रन्थावली — सं० बाबू श्यामसुन्दर दास — प्रयाग (१९३८)
२. कबीर वचनामृत — सं० मुंशीराम शर्मा
३. संत दर्शन — त्रिलोकी नारायण दीक्षित — कानपुर (१९५३)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

४. संतवानी संग्रह — वेलवेडियर प्रेस, १९३२
५. संत सुधासार — सं० वियोगी हरि, १९५३
६. सुन्दर दास ग्रन्थावली — सुन्दर दास — राजस्थान रिसर्च सोसायटी कलकत्ता — १९३६
७. सूरसागर — नन्ददुलारे वाजपेयी

(झ) सूफी रचनाएँ

१. इन्द्रावती — नूर मोहम्मद
२. चित्रावती उस्मान — सं० जगमोहन
३. जायसी ग्रन्थावली — सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद — १९५२
४. पद्मावत — मलिक मोहम्मद जायसी

(ञ) रीतिकालीन साहित्य

१. केशव — रामचन्द्र चन्द्रिका — सं० लाला भगवानदीन, सं० २००१
२. केशव — वीर सिंह देवचरित
३. बिहारी — बिहारी सतसई
४. मतिराम — मतिराम ग्रन्थावली — कृष्ण बिहारी मिश्र, द्वि० सं०, १९३४
५. सेनापति — कवित्त रत्नाकर —उमाशंकर शुक्ल

(ट) आधुनिक साहित्य

१. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — चुभते चौपदे — प्रथम संस्करण, १९२४
२. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — चोखे चौपदे — प्रथम संस्करण, १९२४
३. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — वैदेही वनवास — द्वितीय संस्करण, १९४६
४. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — रस कलस — द्वितीय संस्करण, १९३१
५. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — प्रिय प्रवास — चतुर्थ संस्करण
६. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — कल्प लता
७. आरसी प्रसाद सिंह — आरसी — प्रथम संस्करण, १९४२
८. जयशंकर प्रसाद — चित्राधार — द्वितीय संस्करण, १९२८
९. जयशंकर प्रसाद — आँसू — प्रथम संस्करण, १९३५
१०. जयशंकर प्रसाद — झरना — द्वितीय संस्करण, १९२७
११. जयशंकर प्रसाद — लहर— प्रथम संस्करण, १९३५
१२. जयशंकर प्रसाद — कामायनी — चतुर्थ संस्करण, १९४३
१३. तोरन देवी लली — जागृति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१४. नरेन्द्र शर्मा — प्रवासी के गीत — तृतीय संस्करण, १९४५
१५. पद्मकान्त मालवीय —त्रिवेनी — प्रथम संस्करण, १९२९
१६. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — बाल बोधिनी
१७. महादेवी वर्मा — दीपशिखा — द्वितीय संस्करण, १९४६
१८. महादेवी वर्मा— नीरजा — प्रथम संस्करण, १९३४
१९. महादेवी वर्मा— नीहार — द्वितीय संस्करण, १९३०
२०. महादेवी वर्मा— रश्मि — १९३२
२१. महादेवी वर्मा— सांध्यगीत —१९३६
२२. माखन लाल चतुर्वेदी — हिमकिरीट प्रथम संस्करण, १९४१
२३. मैथिलीशरण गुप्त — साकेत — प्रथम संस्करण, १९३१
२४. मैथिलीशरण गुप्त — यशोधरा — द्वितीय संस्करण, १९३६
२५. मैथिलीशरण गुप्त — द्वापर — प्रथम संस्करण, १९३६
२६. मैथिलीशरण गुप्त — सिद्धराज — प्रथम संस्करण, १९३८
२७. मैथिलीशरण गुप्त — पंचवटी — प्रथम संस्करण, १९३३
२८. सुभद्रा कुमारी चौहान — त्रिधारा — प्रेम शृंखला
२९. सुमित्रानन्दन पंत — ग्रंथि १९२९, वीणा, १९२७, पल्लव १९२६, गुंजन १९३२, ज्योत्सना १९३९, युगान्त १९३६, युगवाणी १९३९, ग्राम्या १९४२
३०. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' — अनामिका १९३८, परिमल १९२९, गीतिका १९३८ तथा तुलसीदास १९३८।
३१. शिवरत्न शुक्ल — भरत भक्ति — प्रथम संस्करण, १९३२

२. आलोचना साहित्य

(क) हिन्दी

१. उदयनरायण तिवारी — जोधराज वीर काव्य — प्रयाग १९४०
२. ए० वारान्निकोव — मानस की रूसी भूमिका (हिन्दी अनुवाद केसरी नारायण शुक्ल) लखनऊ १९५५
३. गणेशदत्त शर्मा 'गौड़' विद्या वाचस्पति — वेद में स्त्रियाँ — अजमेर संस्करण १९८९
४. टीकम सिंह तोमर — हिन्दी वीर काव्य
५. धर्मदेव विद्या वाचस्पति — भारतीय समाजशास्त्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६. डॉ० नगेन्द्र — विचार और विश्लेषण — दिल्ली १६५५
७. नाथूराम प्रेमी — जैन साहित्य और इतिहास — बम्बई १६५६
८. डॉ० नामवर सिंह — हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग — चतुर्थ संस्करण, १६६५
६. पद्मराज जैन — मेवाड़ गौरव — कलकत्ता १६२६
१०. परशुराम चतुर्वेदी — उत्तरी भारत की संत परम्परा, प्रयाग १६५१
११. परशुराम चतुर्वेदी — संत काव्य
१२. प्रियव्रत वेद वाचस्पति — मेरा धर्म — गुरूकुल कांगड़ी १६५७
१३. बलदेव प्रसाद मिश्र — मानस-माधुरी
१४. ब्रज विलास श्रीवास्तव — पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ
१५. भगवत्शरण उपाध्याय — कालिदास का भारत
१६. भगीरथ प्रसाद दीक्षित — भूषण विमर्श, बनारस १६४१
१७. डॉ० माताप्रसाद गुप्त — जायसी ग्रन्थावली
१८. डॉ० माताप्रसाद गुप्त — तुलसीदास
१६. मिश्र बन्धु — हिन्दी नवरत्न हिन्दी ग्रंथ प्रचारक मंडल, प्रयाग, १६११
२०. मोतीलाल मोनारिया — डिंगल में वीर रस — हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १६११
२१. मोहन लाल मेहता — जातक कालीन भारतीय संस्कृति — ज्ञान मंडल लि०, प्रथम संस्करण
२२. रजनीकांत शास्त्री — मानस-मीमांसा
२३. रवीन्द्रनाथ टैगोर — प्राचीन साहित्य (हिन्दी अनुवाद) रा०द० मिश्र — तृतीय संस्रण — बम्बई, १६३३
२४. रांगेय राघव — प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, दिल्ली, १६५३
२५. रांगेय राघव — तुलसी दास का कथाशिल्प
२६. राजबहादुर लमगोड़ा — विश्व साहित्य में रामचरितमानस — सतना १६४४
२७. राजपति दीक्षित — तुलसी दास और उनका युग — प्रथम संस्करण, सं० २००६
२८. डॉ० राधाकृष्णन् — धर्म और समाज, १६६१
२६. राम कुमार वर्मा — हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १६३८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१५. पद्मकान्त मालवीय —त्रिवेनी — प्रथम संस्करण, १९२९
१६. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — बाल बोधिनी
१७. महादेवी वर्मा — दीपशिखा — द्वितीय संस्करण, १९४६
१८. महादेवी वर्मा— नीरजा — प्रथम संस्करण, १९३४
१९. महादेवी वर्मा— नीहार — द्वितीय संस्करण, १९३०
२०. महादेवी वर्मा— रश्मि — १९३२
२१. महादेवी वर्मा— सांध्यगीत —१९३६
२२. माखन लाल चतुर्वेदी — हिमकिरीट प्रथम संस्करण, १९४१
२३. मैथिलीशरण गुप्त — साकेत — प्रथम संस्करण, १९३१
२४. मैथिलीशरण गुप्त — यशोधरा — द्वितीय संस्करण, १९३६
२५. मैथिलीशरण गुप्त — द्वापर — प्रथम संस्करण, १९३६
२६. मैथिलीशरण गुप्त — सिद्धराज — प्रथम संस्करण, १९३८
२७. मैथिलीशरण गुप्त — पंचवटी — प्रथम संस्करण, १९३३
२८. सुभद्रा कुमारी चौहान — त्रिधारा — प्रेम शृंखला
२९. सुमित्रानन्दन पंत — ग्रंथि १९२९, वीणा, १९२७, पल्लव १९२६, गुंजन १९३२, ज्योत्सना १९३९, युगान्त १९३६, युगवाणी १९३९, ग्राम्या १९४२
३०. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' — अनामिका १९३८, परिमल १९२९, गीतिका १९३८ तथा तुलसीदास १९३८।
३१. शिवरत्न शुक्ल — भरत भक्ति — प्रथम संस्करण, १९३२

२. आलोचना साहित्य

(क) हिन्दी

१. उदयनरायण तिवारी — जोधराज वीर काव्य — प्रयाग १९४०
२. ए० वारान्निकोव — मानस की रूसी भूमिका (हिन्दी अनुवाद केसरी नारायण शुक्ल) लखनऊ १९५५
३. गणेशदत्त शर्मा 'गौड़' विद्या वाचस्पति — वेद में स्त्रियाँ — अजमेर संस्करण १९८९
४. टीकम सिंह तोमर — हिन्दी वीर काव्य
५. धर्मदेव विद्या वाचस्पति — भारतीय समाजशास्त्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६. डॉ० नगेन्द्र — विचार और विश्लेषण — दिल्ली १९५५
७. नाथूराम प्रेमी — जैन साहित्य और इतिहास — बम्बई १९५९
८. डॉ० नामवर सिंह — हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग — चतुर्थ संस्करण, १९६५
९. पद्मराज जैन — मेवाड़ गौरव — कलकत्ता १९२६
१०. परशुराम चतुर्वेदी — उत्तरी भारत की संत परम्परा, प्रयाग १९५१
११. परशुराम चतुर्वेदी — संत काव्य
१२. प्रियव्रत वेद वाचस्पति — मेरा धर्म — गुरूकुल कांगड़ी १९५७
१३. बलदेव प्रसाद मिश्र — मानस-माधुरी
१४. ब्रज विलास श्रीवास्तव — पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ
१५. भगवत्शरण उपाध्याय — कालिदास का भारत
१६. भगीरथ प्रसाद दीक्षित — भूषण विमर्श, बनारस १९४१
१७. डॉ० माताप्रसाद गुप्त — जायसी ग्रन्थावली
१८. डॉ० माताप्रसाद गुप्त — तुलसीदास
१९. मिश्र बन्धु — हिन्दी नवरत्न हिन्दी ग्रंथ प्रचारक मंडल, प्रयाग, १९११
२०. मोतीलाल मोनारिया — डिंगल में वीर रस — हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९११
२१. मोहन लाल मेहता — जातक कालीन भारतीय संस्कृति — ज्ञान मंडल लि०, प्रथम संस्करण
२२. रजनीकांत शास्त्री — मानस-मीमांसा
२३. रवीन्द्रनाथ टैगोर — प्राचीन साहित्य (हिन्दी अनुवाद) रा०द० मिश्र — तृतीय संस्रण — बम्बई, १९३३
२४. रांगेय राघव — प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, दिल्ली, १९५३
२५. रांगेय राघव — तुलसी दास का कथाशिल्प
२६. राजबहादुर लमगोड़ा — विश्व साहित्य में रामचरितमानस — सतना १९४४
२७. राजपति दीक्षित — तुलसी दास और उनका युग — प्रथम संस्करण, सं० २००९
२८. डॉ० राधाकृष्णन् — धर्म और समाज, १९६१
२९. राम कुमार वर्मा — हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९३८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१४. नरेन्द्र शर्मा — प्रवासी के गीत — तृतीय संस्करण, १९४५
१५. पद्मकान्त मालवीय —त्रिवेनी — प्रथम संस्करण, १९२९
१६. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — बाल बोधिनी
१७. महादेवी वर्मा — दीपशिखा — द्वितीय संस्करण, १९४६
१८. महादेवी वर्मा— नीरजा — प्रथम संस्करण, १९३४
१९. महादेवी वर्मा— नीहार — द्वितीय संस्करण, १९३०
२०. महादेवी वर्मा— रश्मि — १९३२
२१. महादेवी वर्मा— सांध्यगीत —१९३६
२२. माखन लाल चतुर्वेदी — हिमकिरीट प्रथम संस्करण, १९४१
२३. मैथिलीशरण गुप्त — साकेत — प्रथम संस्करण, १९३१
२४. मैथिलीशरण गुप्त — यशोधरा — द्वितीय संस्करण, १९३६
२५. मैथिलीशरण गुप्त — द्वापर — प्रथम संस्करण, १९३६
२६. मैथिलीशरण गुप्त — सिद्धराज — प्रथम संस्करण, १९३८
२७. मैथिलीशरण गुप्त — पंचवटी — प्रथम संस्करण, १९३३
२८. सुभद्रा कुमारी चौहान — त्रिधारा — प्रेम शृंखला
२९. सुमित्रानन्दन पंत — ग्रंथि १९२९, वीणा, १९२७, पल्लव १९२६, गुंजन १९३२, ज्योत्सना १९३९, युगान्त १९३६, युगवाणी १९३९, ग्राम्या १९४२
३०. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' — अनामिका १९३८, परिमल १९२९, गीतिका १९३८ तथा तुलसीदास १९३८।
३१. शिवरत्न शुक्ल — भरत भक्ति — प्रथम संस्करण, १९३२

२. आलोचना साहित्य

(क) हिन्दी

१. उदयनरायण तिवारी — जोधराज वीर काव्य — प्रयाग १९४०
२. ए० वारान्निकोव — मानस की रूसी भूमिका (हिन्दी अनुवाद केसरी नारायण शुक्ल) लखनऊ १९५५
३. गणेशदत्त शर्मा 'गौड़' विद्या वाचस्पति — वेद में स्त्रियाँ — अजमेर संस्करण १९८९
४. टीकम सिंह तोमर — हिन्दी वीर काव्य
५. धर्मदेव विद्या वाचस्पति — भारतीय समाजशास्त्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६. डॉ० नगेन्द्र — विचार और विश्लेषण — दिल्ली १६५५
७. नाथूराम प्रेमी — जैन साहित्य और इतिहास — बम्बई १६५६
८. डॉ० नामवर सिंह — हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग — चतुर्थ संस्करण, १६६५
६. पद्मराज जैन — मेवाड़ गौरव — कलकत्ता १६२६
१०. परशुराम चतुर्वेदी — उत्तरी भारत की संत परम्परा, प्रयाग १६५१
११. परशुराम चतुर्वेदी — संत काव्य
१२. प्रियव्रत वेद वाचस्पति — मेरा धर्म — गुरूकुल कांगड़ी १६५७
१३. बलदेव प्रसाद मिश्र — मानस-माधुरी
१४. ब्रज विलास श्रीवास्तव — पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ
१५. भगवत्शरण उपाध्याय — कालिदास का भारत
१६. भगीरथ प्रसाद दीक्षित — भूषण विमर्श, बनारस १६४१
१७. डॉ० माताप्रसाद गुप्त — जायसी ग्रन्थावली
१८. डॉ० माताप्रसाद गुप्त — तुलसीदास
१६. मिश्र बन्धु — हिन्दी नवरत्न हिन्दी ग्रंथ प्रचारक मंडल, प्रयाग, १६११
२०. मोतीलाल मोनारिया — डिंगल में वीर रस — हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १६११
२१. मोहन लाल मेहता — जातक कालीन भारतीय संस्कृति — ज्ञान मंडल लि०, प्रथम संस्करण
२२. रजनीकांत शास्त्री — मानस-मीमांसा
२३. रवीन्द्रनाथ टैगोर — प्राचीन साहित्य (हिन्दी अनुवाद) रा०द० मिश्र — तृतीय संस्रण — बम्बई, १६३३
२४. रांगेय राघव — प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, दिल्ली, १६५३
२५. रांगेय राघव — तुलसी दास का कथाशिल्प
२६. राजबहादुर लमगोड़ा — विश्व साहित्य में रामचरितमानस — सतना १६४४
२७. राजपति दीक्षित — तुलसी दास और उनका युग — प्रथम संस्करण, सं० २००६
२८. डॉ० राधाकृष्णन् — धर्म और समाज, १६६१
२६. राम कुमार वर्मा — हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १६३८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१४. नरेन्द्र शर्मा — प्रवासी के गीत — तृतीय संस्करण, १९४५
१५. पद्मकान्त मालवीय —त्रिवेनी — प्रथम संस्करण, १९२९
१६. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — बाल बोधिनी
१७. महादेवी वर्मा — दीपशिखा — द्वितीय संस्करण, १९४६
१८. महादेवी वर्मा— नीरजा — प्रथम संस्करण, १९३४
१९. महादेवी वर्मा— नीहार — द्वितीय संस्करण, १९३०
२०. महादेवी वर्मा— रश्मि — १९३२
२१. महादेवी वर्मा— सांध्यगीत —१९३६
२२. माखन लाल चतुर्वेदी — हिमकिरीट प्रथम संस्करण, १९४१
२३. मैथिलीशरण गुप्त — साकेत — प्रथम संस्करण, १९३१
२४. मैथिलीशरण गुप्त — यशोधरा — द्वितीय संस्करण, १९३६
२५. मैथिलीशरण गुप्त — द्वापर — प्रथम संस्करण, १९३६
२६. मैथिलीशरण गुप्त — सिद्धराज — प्रथम संस्करण, १९३८
२७. मैथिलीशरण गुप्त — पंचवटी — प्रथम संस्करण, १९३३
२८. सुभद्रा कुमारी चौहान — त्रिधारा — प्रेम शृंखला
२९. सुमित्रानन्दन पंत — ग्रंथि १९२९, वीणा, १९२७, पल्लव १९२६, गुंजन १९३२, ज्योत्सना १९३९, युगान्त १९३६, युगवाणी १९३९, ग्राम्या १९४२
३०. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' — अनामिका १९३८, परिमल १९२९, गीतिका १९३८ तथा तुलसीदास १९३८।
३१. शिवरत्न शुक्ल — भरत भक्ति — प्रथम संस्करण, १९३२

२. आलोचना साहित्य

(क) हिन्दी

१. उदयनरायण तिवारी — जोधराज वीर काव्य — प्रयाग १९४०
२. ए० वारान्निकोव — मानस की रूसी भूमिका (हिन्दी अनुवाद केसरी नारायण शुक्ल) लखनऊ १९५५
३. गणेशदत्त शर्मा 'गौड़' विद्या वाचस्पति — वेद में स्त्रियाँ — अजमेर संस्करण १९८९
४. टीकम सिंह तोमर — हिन्दी वीर काव्य
५. धर्मदेव विद्या वाचस्पति — भारतीय समाजशास्त्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६. डॉ० नगेन्द्र — विचार और विश्लेषण — दिल्ली १६५५
७. नाथूराम प्रेमी — जैन साहित्य और इतिहास — बम्बई १६५६
८. डॉ० नामवर सिंह — हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग — चतुर्थ संस्करण, १६६५
६. पद्मराज जैन — मेवाड़ गौरव — कलकत्ता १६२६
१०. परशुराम चतुर्वेदी — उत्तरी भारत की संत परम्परा, प्रयाग १६५१
११. परशुराम चतुर्वेदी — संत काव्य
१२. प्रियव्रत वेद वाचस्पति — मेरा धर्म — गुरूकुल कांगड़ी १६५७
१३. बलदेव प्रसाद मिश्र — मानस-माधुरी
१४. ब्रज विलास श्रीवास्तव — पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ
१५. भगवत्शरण उपाध्याय — कालिदास का भारत
१६. भगीरथ प्रसाद दीक्षित — भूषण विमर्श, बनारस १६४१
१७. डॉ० माताप्रसाद गुप्त — जायसी ग्रन्थावली
१८. डॉ० माताप्रसाद गुप्त — तुलसीदास
१६. मिश्र बन्धु — हिन्दी नवरत्न हिन्दी ग्रंथ प्रचारक मंडल, प्रयाग, १६११
२०. मोतीलाल मोनारिया — डिंगल में वीर रस — हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १६११
२१. मोहन लाल मेहता — जातक कालीन भारतीय संस्कृति — ज्ञान मंडल लि०, प्रथम संस्करण
२२. रजनीकांत शास्त्री — मानस-मीमांसा
२३. रवीन्द्रनाथ टैगोर — प्राचीन साहित्य (हिन्दी अनुवाद) रा०द० मिश्र — तृतीय संस्रण — बम्बई, १६३३
२४. रांगेय राघव — प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, दिल्ली, १६५३
२५. रांगेय राघव — तुलसी दास का कथाशिल्प
२६. राजबहादुर लमगोड़ा — विश्व साहित्य में रामचरितमानस — सतना १६४४
२७. राजपति दीक्षित — तुलसी दास और उनका युग — प्रथम संस्करण, सं० २००६
२८. डॉ० राधाकृष्णन् — धर्म और समाज, १६६१
२६. राम कुमार वर्मा — हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १६३८

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३०. राम कुमार वर्मा — कबीर का रहस्यवाद, प्रयाग, १९३८
३१. रामधारी सिंह दिनकर — संस्कृत के चार अध्याय, दिल्ली, १९५६
३२. रामनरेश त्रिपाठी — तुलसी और उनका काव्य — दिल्ली, १९५१
३३. रामनरेश त्रिपाठी — तुलसी और उनकी कविता
३४. रामचन्द्र शुक्ल — तुलसी ग्रन्थावली, बनारस, १९८०
३५. रामचन्द्र शुक्ल — त्रिवेणी
३६. रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास — काशी, १९५५
३७. राम बहोरी शुक्ल — तुलसी — द्वितीय संस्करण — इलाहाबाद, १९५१
३८. राम रत्न भटनागर — तुलसी — एक अध्ययन, प्रयाग संस्करण २००३
३९. कामिल बुल्के — रामकथाः उत्पत्ति और विकास, प्रयाग १९५०
४०. बेनी प्रसाद — हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, प्रयाग, १९३१
४१. बेनी प्रसाद दास — मूल गोसाई चरित्र
४२. शम्भुनाथ सिंह — हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, बनारस, १९५६
४३. शान्ति कुमार नानूराम व्यास — रामायण कालीन समाज, प्रथम संस्करण दिल्ली, १९५८
४४. शिवनन्दन सहाय — गोसाई जी का वृहद जीवन
४५. श्यामसुन्दर दास, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल — गोस्वामी तुलसी दास, प्रयाग १९३१
४६. श्यामसुन्दर दास — त्रिधारा, आगरा
४७. श्यामसुन्दर दास — साहित्यालोचन, संस्करण २००६
४८. श्रीकृष्ण लाल — मानस दर्शन, बनारस, संस्करण २००६
४९. सद्गुरूशरण अवस्थी — तुलसी के चार दल, प्रयाग १९५५
५०. हरि कृष्ण अवस्थी — तुलसी, व्यक्तित्व और विकास
५१. हजारीप्रसाद द्विवेदी — कबीर
५२. हजारीप्रसाद द्विवेदी — मध्यकालीन धर्म साधना, प्रथम संस्करण, १९५५
५३. हजारीप्रसाद द्विवेदी — नाथ सम्प्रदाय, इलाहाबाद १९५०
५४. हजारीप्रसाद द्विवेदी — हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, १९५२
५५. हजारीप्रसाद द्विवेदी — हिन्दी साहित्य की भूमिका, बम्बई, १९४८
५६. हरिदत्त वेदालंकार — हिन्दू परिवार मीमांसा, इलाहाबाद संस्करण, २०११

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५७. डॉ० उषा पांडेय — मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना, दिल्ली, १९५६

५८. डॉ० जगदीश नारायण अग्रवाल — रामचरितमानस और रामचन्द्रिका का तुलनात्मक अध्ययन, आगरा, १९६२

५९. डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल — वाल्मीकि और तुलसीः साहित्यिक मूल्यांकन, मेरठ १९६६

६०. डॉ० शिवराज शास्त्री — ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, मेरठ कॉलिज, मेरठ

६१. डॉ० शीलवती गुप्ता — तुलसी साहित्य में राजनीतिक विचार, आगरा, १९६४

६२. डॉ० शैल कुमारी — आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, इलाहाबाद, १९५१

(ख) अंग्रेजी

१. ए० ए० मैक्डोनल — इंडियाज़ पास्ट

२. अद्वैत आश्रम — ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया

३. आर० डी० राणाडे — मिस्टीसिज्म इन महाराष्ट्र

४. प्रो० इन्द्र — दि स्टेटस ऑफ विमेन इन एन्शियेटन्ट इंडिया, द्वितीय संस्करण — नैपाली खापरा, बनारस, १९५५

५. डॉ० ए० एल० बाशम — दि वंडर दैट वाज़ इंडिया — लंदन, १९५४

६. ए० एस० अल्तेकर — आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ, कलकत्ता, १९५३

७. ए० एस० अल्तेकर — पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलेजेशन, बनारस, १९३८

८. ए० एस० डांगे — इंडिया फ्राम प्रिमिटिव कम्यूनिज्म टू स्लेवरी, बम्बई, १९१९

९. डॉ० एस० सी० सरकार — सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि अर्लीयस्ट सोशल हिस्ट्री ऑफइंडिया, आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९२८

१०. ओर्टीश्राडर — प्रीहिस्टोरिक एण्टीविक्टीज ऑफ दि आर्यन पीपिल्स, इंगलिस ट्रांसलेशन, १९८० ई०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३०. राम कुमार वर्मा — कबीर का रहस्यवाद, प्रयाग, १९३८

३१. रामधारी सिंह दिनकर — संस्कृत के चार अध्याय, दिल्ली, १९५६

३२. रामनरेश त्रिपाठी — तुलसी और उनका काव्य — दिल्ली, १९५१

३३. रामनरेश त्रिपाठी — तुलसी और उनकी कविता

३४. रामचन्द्र शुक्ल — तुलसी ग्रन्थावली, बनारस, १९८०

३५. रामचन्द्र शुक्ल — त्रिवेणी

३६. रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास — काशी, १९५५

३७. राम बहोरी शुक्ल — तुलसी — द्वितीय संस्करण — इलाहाबाद, १९५१

३८. राम रत्न भटनागर — तुलसी — एक अध्ययन, प्रयाग संस्करण २००३

३९. कामिल बुल्के — रामकथाः उत्पत्ति और विकास, प्रयाग १९५०

४०. बेनी प्रसाद — हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, प्रयाग, १९३१

४१. बेनी प्रसाद दास — मूल गोसाई चरित्र

४२. शम्भुनाथ सिंह — हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, बनारस, १९५६

४३. शान्ति कुमार नानूराम व्यास — रामायण कालीन समाज, प्रथम संस्करण दिल्ली, १९५८

४४. शिवनन्दन सहाय — गोसाई जी का वृहद जीवन

४५. श्यामसुन्दर दास, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल — गोस्वामी तुलसी दास, प्रयाग १९३१

४६. श्यामसुन्दर दास — त्रिधारा, आगरा

४७. श्यामसुन्दर दास — साहित्यालोचन, संस्करण २००६

४८. श्रीकृष्ण लाल — मानस दर्शन, बनारस, संस्करण २००६

४९. सद्गुरूशरण अवस्थी — तुलसी के चार दल, प्रयाग १९५५

५०. हरि कृष्ण अवस्थी — तुलसी, व्यक्तित्व और विकास

५१. हजारीप्रसाद द्विवेदी — कबीर

५२. हजारीप्रसाद द्विवेदी — मध्यकालीन धर्म साधना, प्रथम संस्करण, १९५५

५३. हजारीप्रसाद द्विवेदी — नाथ सम्प्रदाय, इलाहाबाद १९५०

५४. हजारीप्रसाद द्विवेदी — हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, १९५२

५५. हजारीप्रसाद द्विवेदी — हिन्दी साहित्य की भूमिका, बम्बई, १९४८

५६. हरिदत्त वेदालंकार — हिन्दू परिवार मीमांसा, इलाहाबाद संस्करण, २०११

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५७. डॉ० उषा पांडेय — मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना, दिल्ली, १९५६

५८. डॉ० जगदीश नारायण अग्रवाल — रामचरितमानस और रामचन्द्रिका का तुलनात्मक अध्ययन, आगरा, १९६२

५९. डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल — वाल्मीकि और तुलसीः साहित्यिक मूल्यांकन, मेरठ १९६६

६०. डॉ० शिवराज शास्त्री — ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, मेरठ कॉलिज, मेरठ

६१. डॉ० शीलवती गुप्ता — तुलसी साहित्य में राजनीतिक विचार, आगरा, १९६४

६२. डॉ० शैल कुमारी — आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, इलाहाबाद, १९५१

(ख) अंग्रेजी

१. ए० ए० मैक्डोनल — इंडियाज़ पास्ट

२. अद्वैत आश्रम — ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया

३. आर० डी० राणाडे — मिस्टीसिज्म इन महाराष्ट्र

४. प्रो० इन्द्र — दि स्टेटस ऑफ विमेन इन एन्शियेटन्ट इंडिया, द्वितीय संस्करण — नैपाली खापरा, बनारस, १९५५

५. डॉ० ए० एल० बाशम — दि वंडर दैट वाज़ इंडिया — लंदन, १९५४

६. ए० एस० अल्तेकर — आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ, कलकत्ता, १९५३

७. ए० एस० अल्तेकर — पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलेजेशन, बनारस, १९३८

८. ए० एस० डांगे — इंडिया फ्राम प्रिमिटिव कम्यूनिज्म टू स्लेवरी, बम्बई, १९१९

९. डॉ० एस० सी० सरकार — सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि अर्लीयस्ट सोशल हिस्ट्री ऑफइंडिया, आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९२८

१०. ओर्टीश्राडर — प्रीहिस्टोरिक एण्टीविक्टीज ऑफ दि आर्यन पीपिल्स, इंगलिस ट्रांसलेशन, १९८० ई०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३०. राम कुमार वर्मा — कबीर का रहस्यवाद, प्रयाग, १९३८
३१. रामधारी सिंह दिनकर — संस्कृत के चार अध्याय, दिल्ली, १९५६
३२. रामनरेश त्रिपाठी — तुलसी और उनका काव्य — दिल्ली, १९५१
३३. रामनरेश त्रिपाठी — तुलसी और उनकी कविता
३४. रामचन्द्र शुक्ल — तुलसी ग्रन्थावली, बनारस, १९८०
३५. रामचन्द्र शुक्ल — त्रिवेणी
३६. रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास — काशी, १९५५
३७. राम बहोरी शुक्ल — तुलसी — द्वितीय संस्करण — इलाहाबाद, १९५१
३८. राम रत्न भटनागर — तुलसी — एक अध्ययन, प्रयाग संस्करण २००३
३९. कामिल बुल्के — रामकथाः उत्पत्ति और विकास, प्रयाग १९५०
४०. बेनी प्रसाद — हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, प्रयाग, १९३१
४१. बेनी प्रसाद दास — मूल गोसाई चरित्र
४२. शम्भुनाथ सिंह — हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, बनारस, १९५६
४३. शान्ति कुमार नानूराम व्यास — रामायण कालीन समाज, प्रथम संस्करण दिल्ली, १९५८
४४. शिवनन्दन सहाय — गोसाई जी का वृहद जीवन
४५. श्यामसुन्दर दास, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल — गोस्वामी तुलसी दास, प्रयाग १९३१
४६. श्यामसुन्दर दास — त्रिधारा, आगरा
४७. श्यामसुन्दर दास — साहित्यालोचन, संस्करण २००६
४८. श्रीकृष्ण लाल — मानस दर्शन, बनारस, संस्करण २००६
४९. सद्गुरूशरण अवस्थी — तुलसी के चार दल, प्रयाग १९५५
५०. हरि कृष्ण अवस्थी — तुलसी, व्यक्तित्व और विकास
५१. हजारीप्रसाद द्विवेदी — कबीर
५२. हजारीप्रसाद द्विवेदी — मध्यकालीन धर्म साधना, प्रथम संस्करण, १९५५
५३. हजारीप्रसाद द्विवेदी — नाथ सम्प्रदाय, इलाहाबाद १९५०
५४. हजारीप्रसाद द्विवेदी — हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, १९५२
५५. हजारीप्रसाद द्विवेदी — हिन्दी साहित्य की भूमिका, बम्बई, १९४८
५६. हरिदत्त वेदालंकार — हिन्दू परिवार मीमांसा, इलाहाबाद संस्करण, २०११

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५७. डॉ० उषा पांडेय — मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना, दिल्ली, १९५६

५८. डॉ० जगदीश नारायण अग्रवाल — रामचरितमानस और रामचन्द्रिका का तुलनात्मक अध्ययन, आगरा, १९६२

५९. डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल — वाल्मीकि और तुलसीः साहित्यिक मूल्यांकन, मेरठ १९६६

६०. डॉ० शिवराज शास्त्री — ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, मेरठ कॉलिज, मेरठ

६१. डॉ० शीलवती गुप्ता — तुलसी साहित्य में राजनीतिक विचार, आगरा, १९६४

६२. डॉ० शैल कुमारी — आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, इलाहाबाद, १९५१

(ख) अंग्रेजी

१. ए० ए० मैक्डोनल — इंडियाज़ पास्ट

२. अद्वैत आश्रम — ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया

३. आर० डी० राणाडे — मिस्टीसिज्म इन महाराष्ट्र

४. प्रो० इन्द्र — दि स्टेटस ऑफ विमेन इन एन्शियेटन्ट इंडिया, द्वितीय संस्करण — नैपाली खापरा, बनारस, १९५५

५. डॉ० ए० एल० बाशम — दि वंडर दैट वाज़ इंडिया — लंदन, १९५४

६. ए० एस० अल्तेकर — आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ, कलकत्ता, १९५३

७. ए० एस० अल्तेकर — पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलेजेशन, बनारस, १९३८

८. ए० एस० डांगे — इंडिया फ्राम प्रिमिटिव कम्यूनिज्म टू स्लेवरी, बम्बई, १९१९

९. डॉ० एस० सी० सरकार — सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि अर्लीयस्ट सोशल हिस्ट्री ऑफइंडिया, आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९२८

१०. ओर्टीश्राडर — प्रीहिस्टोरिक एण्टीविक्टीज ऑफ दि आर्यन पीपिल्स, इंगलिस ट्रांसलेशन, १९८० ई०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३०. राम कुमार वर्मा	कबीर का रहस्यवाद, प्रयाग, १९३८
३१. रामधारी सिंह दिनकर	संस्कृत के चार अध्याय, दिल्ली, १९५६
३२. रामनरेश त्रिपाठी	तुलसी और उनका काव्य — दिल्ली, १९५१
३३. रामनरेश त्रिपाठी	तुलसी और उनकी कविता
३४. रामचन्द्र शुक्ल	तुलसी ग्रन्थावली, बनारस, १९८०
३५. रामचन्द्र शुक्ल	त्रिवेणी
३६. रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास — काशी, १९५५
३७. राम बहोरी शुक्ल	तुलसी — द्वितीय संस्करण — इलाहाबाद, १९५१
३८. राम रत्न भटनागर	तुलसी — एक अध्ययन, प्रयाग संस्करण २००३
३९. कामिल बुल्के	रामकथाः उत्पत्ति और विकास, प्रयाग १९५०
४०. बेनी प्रसाद	हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, प्रयाग, १९३१
४१. बेनी प्रसाद दास	मूल गोसाई चरित्र
४२. शम्भुनाथ सिंह	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, बनारस, १९५६
४३. शान्ति कुमार नानूराम व्यास	रामायण कालीन समाज, प्रथम संस्करण दिल्ली, १९५८
४४. शिवनन्दन सहाय	गोसाई जी का वृहद जीवन
४५. श्यामसुन्दर दास, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल	गोस्वामी तुलसी दास, प्रयाग १९३१
४६. श्यामसुन्दर दास	त्रिधारा, आगरा
४७. श्यामसुन्दर दास	साहित्यालोचन, संस्करण २००६
४८. श्रीकृष्ण लाल	मानस दर्शन, बनारस, संस्करण २००६
४९. सद्गुरूशरण अवस्थी	तुलसी के चार दल, प्रयाग १९५५
५०. हरि कृष्ण अवस्थी	तुलसी, व्यक्तित्व और विकास
५१. हजारीप्रसाद द्विवेदी	कबीर
५२. हजारीप्रसाद द्विवेदी	मध्यकालीन धर्म साधना, प्रथम संस्करण, १९५५
५३. हजारीप्रसाद द्विवेदी	नाथ सम्प्रदाय, इलाहाबाद १९५०
५४. हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, १९५२
५५. हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य की भूमिका, बम्बई, १९४८
५६. हरिदत्त वेदालंकार	हिन्दू परिवार मीमांसा, इलाहाबाद संस्करण, २०११

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५७. डॉ० उषा पांडेय — मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना, दिल्ली, १९५६

५८. डॉ० जगदीश नारायण अग्रवाल — रामचरितमानस और रामचन्द्रिका का तुलनात्मक अध्ययन, आगरा, १९६२

५९. डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल — वाल्मीकि और तुलसीः साहित्यिक मूल्यांकन, मेरठ १९६६

६०. डॉ० शिवराज शास्त्री — ऋग्वैदिक काल में पारिवारिक सम्बन्ध, मेरठ कॉलिज, मेरठ

६१. डॉ० शीलवती गुप्ता — तुलसी साहित्य में राजनीतिक विचार, आगरा, १९६४

६२. डॉ० शैल कुमारी — आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, इलाहाबाद, १९५१

(ख) अंग्रेजी

१. ए० ए० मैक्डोनल — इंडियाज़ पास्ट

२. अद्वैत आश्रम — ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया

३. आर० डी० राणाडे — मिस्टीसिज्म इन महाराष्ट्र

४. प्रो० इन्द्र — दि स्टेटस ऑफ विमेन इन एन्शियेटन्ट इंडिया, द्वितीय संस्करण — नैपाली खापरा, बनारस, १९५५

५. डॉ० ए० एल० बाशम — दि वंडर दैट वाज़ इंडिया — लंदन, १९५४

६. ए० एस० अल्तेकर — आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ इंडियन विमेन इन सोशल लाइफ, कलकत्ता, १९५३

७. ए० एस० अल्तेकर — पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलेजेशन, बनारस, १९३८

८. ए० एस० डांगे — इंडिया फ्राम प्रिमिटिव कम्यूनिज्म टू स्लेवरी, बम्बई, १९१९

९. डॉ० एस० सी० सरकार — सम आस्पेक्ट्स ऑफ दि अर्लीयस्ट सोशल हिस्ट्री ऑफइंडिया, आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९२८

१०. ओर्टीश्राडर — प्रीहिस्टोरिक एण्टीविक्टीज ऑफ दि आर्यन पीपिल्स, इंगलिस ट्रांसलेशन, १९८० ई०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

११. ग्रियर्सन	मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान विद स्पेशल रेफरेन्स टू तुलसी दास, १८८६
१२. निकलसन	स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टीसिज्म, केम्ब्रिज, १९२१
१३. पूले स्टेनले	मिडीवीयल इंडिया अंडर मोहमडन रूल, लेन दिल्ली, १९६३
१४. भगवतशरण उपाध्याय	वीमेन इन ऋग्वेद, बनारस, १९४१
१५. प्रो० मेक्समूलर	फ्रेडरिक, बायोग्राफी ऑफ वर्डस — लागमैन्स ग्रीन एंड कम्पनी, लंदन, १८८८
१६. रमाबाई	दि हाई कास्ट हिन्दू विमेन
१७. रवीन्द्रनाथ टैगोर	स्टडीज़ इन रामायण
१८. राधाकुमुद मुखर्जी	हिन्दू सिविलिजेशन, बम्बई, १९५०
१९. वी० एस० एल० शास्त्री	लैक्चर्स ऑफ रामायण, मद्रास, १९५२
२०. वैस्टर मार्ग	शार्ट हिस्ट्री ऑफ मैरिज
२१. शकुन्तला राव शास्त्री	विमेन इन वैदिक एज़ बम्बई, १९५४
२२. शशि भूषण गुप्त	ग्रेट विमेन ऑफ इंडिया, कलकत्ता, १९५६
२३. बेनी प्रसाद	हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, १९४०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जन्म : 1 जनवरी 1932 तिगरी ग्राम, मुरादाबाद

शिक्षा : एम० ए०, पी-एच० डी० आगरा विश्वविद्यालय

विषय : 'तुलसी साहित्य में नारी' निर्देशक डा0 राजकिशोर कक्कड़

व्यवसाय : 1952 से शिक्षण कार्य प्रारम्भ, 1968 से इ. ने डिग्री कॉलिज में प्राचार्य पद पर कार्यरत, 1992 में सेवानिवृत्त

विशेष : विश्वविद्यालय की विभिन्न समितियों एवं माध्यमिक शिक्षा आयोग की सदस्या

सम्पादन : मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ के बी. ए. कक्षाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कहानी संकलन का सम्पादन

प्रकाशन : लिखना तो आठवीं कक्षा से ही प्रारम्भ कर दिया था जब तब लिखती रही लेकिन यह लिखना केवल अपने लिए था, प्रकाशन का विचार ही कभी मन में नही आया।

ईशान प्रकाशन
शिवपुरी, मेरठ
ESHAN PRAKASHAN

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Designed by - Eeshan Kriti, 0121-665091

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जन्म : 1 जनवरी 1932 तिगरी ग्राम, मुरादाबाद

शिक्षा : एम० ए०, पी-एच० डी० आगरा विश्वविद्यालय

विषय : 'तुलसी साहित्य में नारी' निर्देशक डा0 राजकिशोर कक्कड़

व्यवसाय : 1952 से शिक्षण कार्य प्रारम्भ, 1968 से इ. ने डिग्री कॉलिज में प्राचार्य पद पर कार्यरत, 1992 में सेवानिवृत्त

विशेष : विश्वविद्यालय की विभिन्न समितियों एवं माध्यमिक शिक्षा आयोग की सदस्या

सम्पादन : मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ के बी. ए. कक्षाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कहानी संकलन का सम्पादन

प्रकाशन : लिखना तो आठवीं कक्षा से ही प्रारम्भ कर दिया था जब तब लिखती रही लेकिन यह लिखना केवल अपने लिए था, प्रकाशन का विचार ही कभी मन में नही आया।

ईशान प्रकाशन
शिवपुरी, मेरठ
EESHAN PRAKASHAN

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Designed by-Eeshan Kriti, 0121-665091